एक उदारवादी स्वर

चेस्टर बौल्स

संकलित लेख और भाषण

संपादक
हेनरी स्टील कोमागर
प्रोफेसर, इतिहास विभाग, ऐमहर्स्ट कॉलेज

अनुवादक
ओमप्रकाश 'दीपक'

1965
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

EK UDARVADI SWAR
(Hindi Version of '*The Conscience of a Liberal*')
by
CHESTER BOWLES
Translated
by
OM PRAKASH 'DIPAK'

Rs. 5.00

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
17-अशोक मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ
चौड़ा रास्ता, धामानी मार्केट, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

मूल्य : पाँच रुपए
प्रथम संस्करण : 1965

मुद्रक
युगान्तर प्रेस,
दिल्ली-6

लेखक परिचय

चेस्टर बौल्स व्यापारी, लेखक, सार्वजनिक प्रशासक, कांग्रेस-सदस्य और राजदूत रह चुके हैं। अमरीका के सार्वजनिक जीवन में किसी अन्य व्यक्ति का अनुभव उनसे अधिक व्यापक नहीं रहा।

श्री बौल्स का जन्म 1901 में, स्प्रिंगफील्ड, मैसाचुसेट्स में हुआ, और उन्होंने अपना कार्य-जीवन एक व्यापारिक अधिकारी के रूप में आरम्भ किया। दूसरा महायुद्ध आरम्भ होने पर उन्होंने व्यापार छोड़कर पहले राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के अधीन संघीय मूल्य प्रशासक के रूप में, और फिर राष्ट्रपति ट्रूमन के अधीन आर्थिक स्थिरीकरण के निदेशक के रूप में काम किया।

युद्ध के बाद, श्री बौल्स संयुक्त राष्ट्र संघ के महामंत्री ट्राइग्वे ली के विशेष सहायक रहे। 1948 में वे कॉनेक्टिकट के गवर्नर चुने गए, और 1951 में राष्ट्रपति ट्रूमन ने उन्हें भारत और नेपाल में अमरीकी राजदूत नियुक्त किया।

1953 से 1958 तक का काल उन्होंने मुख्यत: विश्व-भ्रमण में और वैदेशिक मामलों पर लिखने और बोलने में बिताया। उन्होंने अधिकांश प्रमुख अमरीकी विश्वविद्यालयों में भाषण किए हैं। उन्होंने सात पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से पाँच इसी अवधि में लिखी गईं।

1958 में कॉनेक्टिकट से कांग्रेस-सदस्य चुने जाकर श्री बौल्स फिर से एक सार्वजनिक पद पर आए। 1960 के राष्ट्रपति चुनाव-अभियान में श्री बौल्स डेमॉक्रेटिक राष्ट्रीय सम्मेलन की मंच (घोषणा-पत्र) समिति के अध्यक्ष, और सीनेटर केनेडी के विदेश-नीति सम्बन्धी सलाहकार रहे। दिसम्बर, 1960 में वे विदेशी विभाग के अवर सचिव नियुक्त किये गए, और बाद में राष्ट्रपति केनेडी के अफ्रीकी, एशियाई और लातिन अमरीकी मामलों के सलाहकार और विशेष प्रतिनिधि रहे। जुलाई, 1963 में वे पुन: राजदूत के रूप में भारत आए।

राजदूत और श्रीमती बौल्स इस समय नई दिल्ली में निवास करते हैं। उनका स्थायी निवास-स्थान एसेक्स, कॉनेक्टिकट में है। उनके पाँच बच्चे हैं।

डी० एस० बी० को

मेरा देश जागे

जहाँ चित्त निर्भय हो और सिर ऊँचा हो;
जहाँ ज्ञान उन्मुक्त हो;
जहाँ संकीर्ण घरेलू दीवारों ने जगत को खण्डित न कर दिया हो,
जहाँ सत्य की गहराई से शब्द निकलते हों;
जहाँ अविरत प्रयास पूर्णता की ओर बढ़ता हो;
जहाँ विवेक की निर्मल धारा जड़ रूढ़ि की सूखी रेती में लुप्त न हो गई हो;
जहाँ विचार और कर्म आपकी प्रेरणा से नित्य अधिक व्यापक हों;
ओ पिता, स्वतंत्रता के उसी स्वर्ग में मेरा देश जागे ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर
('गीतांजलि' के अंग्रेजी संस्करण से)

अनुक्रम

परिचयात्मक भूमिका—हेनरी स्टील कोमागर ... (क)

पहला खण्ड : संयुक्त राज्य अमरीका और विश्व क्रान्ति

पहले खंड पर एक निजी टिप्पणी—चेस्टर बौल्स ... 3

पहला भाग—विश्व में हमारे लक्ष्य

1. धारा को मोड़ने का अवसर ... 7
भाषण, फ्रीडम हाउस, न्यूयार्क सिटी, 17 जनवरी, 1947
2. विधि और निषेध, दोनों के कार्यक्रम की आवश्यकता ... 10
न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन, 18 अप्रैल, 1948
3. एक और महान् बहस चले ... 14
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 28 फ़रवरी, 1954
4. क्या आशा का कोई मार्ग नहीं ? ... 20
न्यू लीडर, 26 जुलाई, 1954
5. लोगों और विचारों की शक्ति ... 24
भाषण, नौसैनिक युद्ध कालेज, 7 जून, 1956
6. हम कितने वस्तुनिष्ठ रहे हैं ? ... 29
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 20 मई, 1956
7. यूरोप में हमारे और रूस के लक्ष्य ... 32
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 12 मई, 1957
8. यूरोप के प्रति एक नई नीति ... 35
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 20 दिसम्बर, 1959
9. फिर से पहल करने का समय ... 44
भाषण, मिनेसोटा विदेश-नीति संघ, मिनीआपोलिस, 20 अक्टूबर, 1960
10. हमारी शताब्दी का भाग्य-निर्णय करने वाले पांच फैसले ... 48
भाषण, अमरीकी पुस्तक-विक्रेता संघ, वाशिंगटन, डी० सी०, 12 जून, 1961

11. संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलताएँ ... 56
भाषण, संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस भोज वाशिंगटन, डी० सी०, 24 अक्तूबर, 1961
12. नए मनगायवादी ... 61
भाषण राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन, वाशिंगटन, डी० सी०, 5 नवम्बर, 1961
13. सारी मानवता के लिए शान्ति ... 65
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 10 दिसम्बर, 1961
14. एक नई कूटनीति की ओर ... 71
फॉरेन एफेयर्स, जनवरी, 1962

दूसरा भाग—आर्थिक सहायता के रूप

15. भूखी दुनिया में अमरीकी भोजन ... 91
भाषण, गुडमार्केट सम्मेलन, शिकागो, 25 मई, 1947
16. आशाहीन बच्चों के लिए नई आशा ... 82
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 1 फरवरी, 1948
17. चतुःसूत्री कार्यक्रम से एशिया में एक नई क्रान्ति का आरम्भ ... 84
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 16 नवम्बर, 1952
18. विश्व के आर्थिक विकास में साझीदार ... 87
अटलांटिक मन्थली, दिसम्बर, 1954
19. विदेशी सहायता के प्रति नया दृष्टिकोण ... 93
प्रतिनिधि सभा की वैदेशिक मामलों की समिति के समक्ष वक्तव्य, 27 नवम्बर, 1956
20. विदेशी सहायता के वितरण में प्रतिमानों की आवश्यकता ... 100
प्रतिनिधि-सभा में भाषण, 20 अप्रैल, 1958
21. विदेशों में भोजन बैंकों की स्थापना का प्रस्ताव ... 109
सीनेट की वैदेशिक सम्बन्ध समिति के समक्ष वक्तव्य, 8 जुलाई, 1959
22. लोकतान्त्रिक विकास का मर्म : ग्राम विकास ... 112
भाषण, भूमि-रक्षण सम्बन्धी व्हाइट हाउस सम्मेलन, 24 मई, 1962

तीसरा भाग—विकासशील महाद्वीप

एशिया

23. एक साम्यवादी सहयात्री को उत्तर ... 121
ब्लिट्ज, 19 जुलाई, 1952

24. एशिया और अमरीकी सपना ... 126
भाषण, कम्युनिटी चर्च, न्यूयार्क सिटी, 28 मई, 1953
25. एशिया के लिए एक 'मार्शल योजना' ... 129
भाषण, इंस्टीट्यूट ऑफ आर्ट्स एण्ड सायन्सेज़, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क सिटी, 19 अक्टूबर, 1953
26. ब्रह्मा और वियतनाम : अन्तर और नतीजे ... 132
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 13 जून, 1954
27. 'भूरे व्यक्ति के भार' का विश्लेषण ... 138
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 5 सितम्बर, 1954
28. स्वतंत्र एशिया का भविष्य ? ... 143
फ़ॉरेन एफ़ेयर्स, अक्टूबर, 1954
29. एशियावासी कठोर प्रश्न पूछ रहे हैं ... 148
पॉकेट मैगज़ीन, नवम्बर, 1954
30. तटस्थ राष्ट्र और भारतीय सफलता की कहानी ... 155
दिस मंथ, जुलाई, 1962
31. मध्य-पूर्व में नई प्रवृत्तियाँ ... 159
भाषण, अमरीकी यहूदी कांग्रेस, न्यूयार्क सिटी, 12 अप्रैल, 1962

अफ्रीका

32. अफ्रीका में एक यात्री ... 164
1955 में अफ्रीका की यात्रा करते समय थी बौल्स द्वारा अपने परिवार को लिखे गए पत्रों के उद्धरण
33. अफ्रीका में अमरीका की भूमिका ... 172
कोलियर्स, 10 जून, 1955
34. संयुक्त राष्ट्रों को अफ्रीका की चुनौती ... 176
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 21 अगस्त, 1960
35. अफ्रीका में आशा की लहर ... 169
भाषण, अफ्रीका के लिए संयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक कमीशन, अदिस अबाबा, इथियोपिया, 21 फरवरी, 1962

लातिन अमरीका

36 लातिन अमरीका में जमीन की भूख ... 183
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 22 नवम्बर, 1959

37. 'प्रगति के लिए मित्रता' क्या है ? ... 188
भाषण, मेक्सिको उत्तर अमरीकी सांस्कृतिक संस्थान, मेक्सिको सिटी, 19 अक्टूबर, 1961

चौथा भाग—साम्यवादी चुनौती

38. अगर मार्क्स वापस आ सकते ... 195
भाषण, पोलिटिकल सायन्स सोसायटी, दिल्ली कॉलेज, नई दिल्ली, भारत, 15 अक्टूबर, 1952
39. सोवियत संघ को सबसे अधिक किसका भय है ... 199
भाषण, वाई. एम. सी. ए., हार्टफोर्ट, कॉनेक्टिकट, 21 अक्टूबर, 1953
40. संकट प्रतीक्षा नहीं करेगा ... 202
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 27 नवम्बर, 1955
41. एक प्रतियोगिता जिसमें हम हार नहीं सकते ... 205
सैटरडे रिव्यू, 24 अगस्त, 1957
42. चीनी मुख्य भूमि पर एक दृष्टि ... 209
सैटरडे इवनिंग पोस्ट, 4 अप्रैल, 1959
43. 'चीन की समस्या' पर पुनर्विचार ... 213
फॉरेन एफेयर्स, अप्रैल, 1960
44. रूस निरस्त्रीकरण क्यों नहीं करता ... 222
न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 19 अप्रैल, 1959
45. प्रतिरक्षा, निरस्त्रीकरण, और शांति ... 227
भाषण, मॉडर्न फोरम, लॉस ऐन्जेलेस, कैलिफोर्निया, 11 मार्च, 1960
46. सोवियत अजेयता की मिथ्या धारणा ... 234
भाषण, अमरीकी विदेश विभाग क्षेत्रीय सूचना सम्मेलन, डालास, टेक्सास, 27 अक्टूबर, 1961
47. साम्यवादी विचार-दर्शन की क्षीणता ... 239
फ़ॉरेन एफ़ेयर्स, जुलाई, 1962
48 साम्यवादी जगत को हमसे अलग करने वाली तीन सीमाएँ ... 245
भाषण, अमरीकी विदेश विभाग क्षेत्रीय सूचना सम्मेलन, नेब्रास्का विश्वविद्यालय, लिन्कन, 12 जून, 1962

दूसरा खण्ड—अमरीकी सपने की उपलब्धि

दूसरे खंड पर एक निजी टिप्पणी—चेस्टर बोल्स ··· 257

पहला भाग—अधिक समृद्ध समाज की ओर

1. शांति और सबको काम ··· 261
 पूर्ण रोजगार अधिनियम, 1945, के समर्थन में वक्तव्य
2. बदलते हुए अमरीका के नक्शे ··· 264
 सेविंग अमेरिकन कैपिटलिज्म, संपादक-सीमूर ई. हैरिस
3. आर्थिक विकास पर एक नई दृष्टि ··· 273
 प्रतिनिधि सभा में भाषण, 29 जून, 1959
4. इस्पात के मूल्य और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था ··· 279
 राष्ट्रपति आइजनहूवर को पत्र, 4 अगस्त, 1959
5. सातवें दशक का नया मोड़ ··· 282
 भाषण, येल लॉ फोरम, न्यूहैवेन, कॉनेक्टिकट, 21 नवम्बर, 1961

दूसरा भाग—जिम्मेदार राज्य शासन : विकेन्द्रीकरण की कुंजी

6. गवर्नर का कार्य, एक गवर्नर की दृष्टि में ··· 289
 न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 24 जुलाई, 1949
7. हमारे स्कूलों की चुनौती ··· 293
 कॉनेक्टिकट राज्य विधान-मंडल को विशेष संदेश 9 नवम्बर, 1949
8. कॉनेक्टिकट में मकानों के अभाव की पूर्ति ··· 298
 'टुवर्ड्स ऑफ ए नेशन', परिचर्चा, 30 नवम्बर, 1950
9. एक प्रस्तावित राज्य स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम ··· 302
 रेडियो भाषण, 28 अगस्त, 1950
10. राज्य शासन का आधुनिकीकरण ··· 304
 कॉनेक्टिकट राज्य विधान-मंडल को विशेष संदेश, अप्रैल 1950

तीसरा भाग—स्वतंत्र व्यक्ति और स्वतंत्र मन

11. स्वतन्त्रता की अन्तहीन खोज ··· 315
 न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 28 मई, 1950

12. नई आप्रवास नीति की आवश्यकता ··· 320
सर्वे पत्रिका, नवम्बर, 1951
13. एक अमरीकी कस्बे का चित्र—एसेक्स, कॉनेक्टिकट ··· 325
भाषण, नई दिल्ली समाज कल्याण सम्मेलन,
नई दिल्ली,भारत, 1952
14. नीग्रो लोग गांधी से क्या सीख सकते हैं ··· 329
सैटरडे इवनिंग पोस्ट, 1 मार्च, 1958
15. नीग्रो अधिकार—कार्यवाही का समय अभी है ··· 336
न्यू रिपब्लिक 6 जुलाई, 1959 और न्यूयार्क
टाइम्स सप्लिमेण्ट, 17 जनवरी, 1 60
16. नैतिक लड़ाई ··· 341
समारम्भ भाषण, स्मिथ कालेज, 5 जून 1960
पुनश्च 345

परिचयात्मक भूमिका

आज हमारी आँखों के सामने एक ऐसी क्रांति हो रही है, जिसकी तुलना पुनर्जागरण काल में, और पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में अमरीका की खोज के फल-स्वरूप हुई क्रांति से की जा सकती है—इतनी असाधारण क्रान्ति कि सारी दुनिया उससे प्रभावित प्रतीत होती है। इतिहास के क्षितिज पर पचास से अधिक नए राष्ट्रों का उदय हो रहा है। करोड़ों स्त्री-पुरुष, जो लम्बे अर्से तक उपेक्षित और दबे हुए रहे, आज स्वतंत्रता की साँस ले रहे हैं, नई उमंगों के साथ सिर उठाकर चल रहे हैं, और प्रतिष्ठा की माँग कर रहे हैं।

पश्चिम में शक्ति के पुराने केन्द्रों को चुनौती देने वाले नए और विशाल शक्ति-केन्द्र उभर रहे हैं—चीन, हिन्दुस्तान, लातिन अमरीका, अरब देश और निकट भविष्य में ही अफ्रीका। इस सबका मतलब है कि अटलांटिक से प्रशांत महासागर की ओर, उत्तरी से दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर, यूरोपीय से ग़ैर-यूरोपीय जगत की ओर, इतिहास के केन्द्र का व्यापक स्थानान्तरण हो रहा है।

तीन-चौथाई दुनिया आज यूरोपीय चौथाई से विद्रोह कर रही है—और हम अमरीकी निश्चय ही यूरोपीय चौथाई के अंग हैं। लेकिन इस व्यापक विद्रोह पर विचार करें, तो इसके चरित्र में तत्काल एक अन्तर्विरोध नज़र आता है। पिछली पाँच शताब्दियों में पश्चिम ने जो औज़ार, संस्थाएँ और विचार निर्मित किए हैं, उन्हीं के द्वारा पश्चिम के विरुद्ध यह विद्रोह चलाया जा रहा है। विज्ञान और यान्त्रिकी इसके उपकरण हैं। प्रगति और परिवर्तन के पश्चिमी विचार इसके प्रेरक हैं। पश्चिम की असाधारण खोज, राष्ट्रीयता, इसका माध्यम है।

यहाँ एक और बड़ा अन्तर्विरोध है। विज्ञान और यान्त्रिकी के जो उपकरण आज ग़ैर-यूरोपीय जगत का पुनःनिर्माण कर रहे हैं, वे बहुदेशीय हैं, बल्कि सार्वभौमिक हैं। इसके विपरीत, राष्ट्रीयता का राजनीतिक उपकरण क्षेत्रीय और वैभिन्न्यवादी है। सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय क्रान्ति के सभी उपकरण एकता लाने वाले हैं, जबकि राजनीतिक क्रान्ति की सारी शक्तियाँ विभाजक हैं।

एक महान् क्रान्ति से गुज़रता हुआ यह ग़ैर-यूरोपीय जगत, एक ज़बरदस्त छलाँग के द्वारा यूरोपीय जगत के समकक्ष आने का प्रयास कर रहा है। इतने दिनों से यूरोपीय जगत जिस जीवन स्तर का उपभोग करता रहा है, उसमें और एशिया, अफ्रीका तथा

अधिकांश लातिन अमरीका के पाँच सदियों की खाई को यह एक ही पीढ़ी में पाटने का प्रयास कर रहा है।

क्या नए राष्ट्र बिना जातीय, धार्मिक, और वैचारिक संघर्ष की ज्वालाएँ उत्पन्न किए, स्वतन्त्रता और सुधार के लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं ? जाने-अनजाने हम सभी लोग एक कठिन दौड़ में लगे हुए हैं—एकता, समृद्धि और प्रगति की आशाप्रद और हितकारी शक्तियों, तथा टूट, युद्ध और विध्वंस की दुखद और दुष्ट शक्तियों के बीच हो रही दौड़ में।

क्या अन्ततोगत्वा पश्चिम से स्वतन्त्र होने की माँग, पश्चिम की सहायता प्राप्त करने की माँग से अधिक सबल प्रमाणित होगी ? क्या राजनीतिक अलगाव की लहर, सहयोग और संयुक्ति की लहर से अधिक सशक्त प्रमाणित होगी ? क्या हिंसक क्रान्ति के द्वारा कार्य करने वाली भयानक शक्तियाँ, विकास द्वारा प्रगति की लम्बी प्रक्रियाओं में बाधा डाल कर उन्हें कुंठित कर देंगी ?

ये भयावह प्रश्न संसार के हर देश में राजनेताओं को बार-बार परेशान करते हैं।

इनमें से अधिकांश समस्याओं के लिए पश्चिम स्वयं ही जिम्मेदार है, उनसे अच्छी तरह परिचित है, और उनसे निपटना पश्चिम के लिए जरूरी है। इतिहास के इस संकट में पश्चिम की बुद्धिमत्ता, कल्पना, और उदारता पर ही भविष्य का रूप निर्भर है।

इस प्रसंग में अमरीका की स्थिति सर्वाधिक अनुकूल है। जबकि यूरोप के अधिकांश राष्ट्रों ने एशिया और अफ्रीका में साम्राज्य बनाए, और स्वयं अपने लाभ के लिए इन महाद्वीपों के लोगों का शोषण किया, यह अमरीका का महान् सौभाग्य था कि कम से कम अमरीकी महाद्वीप के बाहर, वह साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद दोनों से बचा रहा।

अतः जिन्हें 'अँधेरे' महाद्वीप कहा जाता था, उनके लोगों के सामने अमरीकी लोग बिना किसी दोष-भाव।। से ग्रस्त हुए जा सकते हैं। यही नहीं, अन्य किसी भी राष्ट्र की अपेक्षा, स्वशासन की, स्वतन्त्रता की, और सामान्य सार्वजनिक प्रबुद्धता की अमरीकी परम्पराएँ ज्यादा दीर्घकालीन हैं, और यही बातें हैं, जो आज एशिया और अफ्रीका के लोगों में आशा उत्पन्न करतीं, और उत्साह जगाती हैं।

हमारा धन, बुद्धि और कौशल के हमारे साधन, स्वशासन का हमारा अनुभव, सद्भावना की हमारी पूँजी, और इतिहास की अधिकांश दुखद शक्तियों से हमारा बचाव, इन सबके कारण, अन्य किसी भी पश्चिमी राष्ट्र की अपेक्षा, नए राष्ट्रों की सहायता करने के लिए हम ज्यादा अच्छी स्थिति में हैं।

निश्चय ही इसमें कठिनाइयाँ हैं, और हमें उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मिसाल के लिए, अलगाव की नीति ने गैर-जिम्मेदारी की एक परम्परा का पोषण किया। साम्राज्यवाद की रूढ़ अभिव्यक्तियों से हमारे बचाव ने हमें अधिकतम प्रबुद्ध

उपनिवेशवाद के भी विरुद्ध कर दिया, और अपने बहुतेरे यूरोपीय सहयोगियों की कठिनाइयों को समझना हमारे लिए कठिन बना दिया। इसके साथ ही, कभी-कभी हम लोगों ने अति-शुद्धतावादी रीति से साम्राज्यवाद का विरोध किया, जिसमें हम स्वयं आदिवासी और नीग्रो लोगों के प्रति अपने व्यवहार में पाखंड के आरोप का लक्ष्य बने। हमारी समृद्धि भी कभी-कभी बाधा बन जाती है। इससे न केवल कम सौभाग्यशाली राष्ट्रों में ईर्ष्या और सन्देह जन्म लेते हैं, बल्कि हममें भी यह विश्वास करने की प्रवृत्ति आती है कि ऐसा कुछ नहीं जो धनिक की सामर्थ्य के बाहर हो, या जिसे धन से खरीदा न जा सकता हो।

फिर भी, अमरीका की स्पष्टतः एक केन्द्रीय स्थिति है, और युद्धोत्तर-कालीन विश्व में उसकी एक निर्णायक भूमिका है। इसलिए, कि बड़े राष्ट्रों में अकेला अमरीका ही युद्ध के बाद धनी और सशक्त था, उसके साधन, कौशल, और राजनीतिक तथा प्रशासकीय संगठन को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची थी, और केवल वही इस स्थिति में था कि इतिहास के एक संकटपूर्ण क्षण में नेतृत्व ग्रहण कर सके।

अब यह कल्पना आदमी को गंभीरता से सोचने को मजबूर कर देती है, कि अगर नयी दुनिया चर्चिल के शब्दों में, 'पुरानी की रक्षा और मुक्ति के लिए आगे' न आती तो पश्चिमी जगत का—बल्कि समूचे विश्व का ही—क्या बनता। अगर अमरीका 'मार्शल योजना' बनाकर उसके अन्तर्गत सहायता न देता; अगर पश्चिमी यूरोप के युद्ध-पीड़ित राष्ट्रों के स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने तक वह उनके पुनर्वास में सहायता न करता; अगर वह (रूस द्वारा स्थल-मार्ग बन्द किए जाने पर) बर्लिन से हवाई यातायात की व्यवस्था करके उसे न चलाता—जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पिछले दिनों के इतिहास में एक मोड़ लाने वाली घटना थी; अगर वह निकट पूर्व में इंगलिस्तान द्वारा छोड़े गए शून्य को भरने के लिए तैयार न होता; अगर कोरिया के संकट की उस पर तीव्र और निर्णायक प्रतिक्रिया न होती; अगर वह छठे दशक में सारी दुनिया ही में संकटापन्न लोगों की रक्षा करने के योग्य न होता और उसके लिए तत्पर न होता, तो इतिहास का जो क्रम हम आज देखते हैं, उससे बिलकुल भिन्न होता।

अमरीका का भविष्य चाहे जो भी हो, कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि इतिहास की लगभग एक दशक की इस संकटपूर्ण अवधि में उसने घटनाओं की चुनौती का सामना किया, और अपनी बुद्धिमत्ता, अपने साधनों और अपने साहस से यह समर्थ बनाया कि पश्चिमी जगत अपनी रक्षा करे और भविष्य के कार्यों के लिए शक्ति एकत्रित करे।

विश्व शक्ति होने की आवश्यकताएँ पूरी करना सीखने में इंगलिस्तान को एक सौ साल लगे, और शायद पुरानी दुनिया का कोई अन्य राष्ट्र—स्पेन या फ्रांस या जर्मनी या रूस, या जापान भी—सीख ही नहीं सका। यह आश्चर्यजनक बात है कि अमरीका ने अपने अन्दर खुला दिमाग रखने की एक विशाल क्षमता और एक विशाल साधन-सम्पन्नता और उन साधनों का उपयोग करने की योग्यता खोज ली।

बीस वर्षों से भी कम समय में उसने जितना कुछ सीख लिया है, इस पर गौर करें।

उसने सीख लिया है कि विश्व सचमुच एक विश्व है, कोई राष्ट्र अपने-आप में एक अलग टापू नहीं है, और यह कि हर राष्ट्र के दुर्भाग्यों, असफलताओं, सकटों और कल्याण की जिम्मेदारी में कुछ हद तक हमारा भी हिस्सा है।

कि, दैवी विधान में यूरोपीय जगत, गोरे जगत, ईसाई जगत का कोई विशेषाधिकारपूर्ण स्थान नहीं है।

कि विश्व को साफ-साफ हमारे और रूसी, इन दो विरोधी खेमों में नहीं बाँटा जा सकता, बल्कि विश्व सचमुच कई शक्ति-केन्द्रों में बँटा हुआ है, और दो विश्वों की धारणा पर आधारित किसी भी रणनीति की असफलता अनिवार्य है।

कि हम दूसरे राष्ट्रों पर अपनी इच्छा नहीं लाद सकते, जो दुर्बल हैं, उन पर भी नहीं, और यह कि हम दूसरे लोगों से यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वे अर्थनीति या राजनीति की हमारी अपनी धारणाओं को अपना लें या उनसे सहमत भी हों।

कि हम तटस्थ (राष्ट्रों) पर पक्ष लेने के लिए दबाव डालने का प्रयास न करें, बल्कि तटस्थता को स्वीकार करें और समझें।

कि सहायता और पुनर्वास के महत्त्वपूर्ण कार्यों में हम अन्तर्राष्ट्रीय सगठनों के माध्यम से काम करें और अन्य राष्ट्रों के साथ—प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों के साथ भी—सहयोग करें।

कि लगभग हर स्थिति में सैनिक सहायता की अपेक्षा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहायता कहीं अधिक प्रभावकारी होती है।

कि शक्ति की, अणुशक्ति की भी, सीमाएँ होती हैं, और यह कि अधिकांश में सैनिक शक्ति की सीमाएँ स्वयं उसमें ही अन्तर्निहित होती हैं।

कि हम सभी विदेश-नीति से सम्बद्ध हैं, और यह कि एक राष्ट्र के रूप में हमारी सम्बद्धता पूर्ण सम्बद्धता है। कि हमारे काल में शान्ति नहीं है, झगड़े और सकट ही सामान्य हैं; कि जिन सकटों से दुनिया के लोग इतने दिनों से पीड़ित होते रहे हैं, अमरीका उनसे बचा नहीं रह सकता।

इनमें से अधिकांश बातों को आज हम मानकर चलते हैं, किन्तु हमारे वैदेशिक सम्बन्धों के समूचे इतिहास में, शायद हमारे सारे इतिहास में ही, ज्ञानार्जन में हुई यह सर्वप्रमुख प्रगति है।

× × ×

इस नए उद्यम को, जिससे हम सब इतने अविच्छिन्न रूप में सम्बद्ध हैं, एक रोचक विशेषता है एक नए प्रकार के सार्वजनिक कर्मचारी का जन्म—अन्तर्राष्ट्रीय सार्वजनिक अधिकारी जो आजादी से महाद्वीपों में घूमता है, जो हिन्दुस्तान, बोलिविया, कांगो और तैवान की समस्याओं से उसी तरह परिचित है जैसे पूर्व कालिक राजनेता मैसाचुसेट्स, अलाबामा, मिनेसोटा और ऑरिगोन की समस्याओं से हुआ करते थे; जो

अपने आप को किसी विशेष हित, या अर्थतंत्र, या राजनीतिक व्यवस्था का प्रवक्ता नहीं समझता, वरन् मनुष्य के हितों का प्रवक्ता समझता है।

निश्चय ही, इसके पूर्व-उदाहरण मिलते हैं, विशेषतः अठारहवीं शताब्दी में। बेन्जामिन थॉमसन, जो लंदन के रॉयल इंस्टिट्यूट के अध्यक्ष रूप में और बवेरिया के प्रधान मंत्री के रूप में एक समान प्रभावी थे, या ऐण्ड्रीज बर्नस्टॉफ, जो जर्मन राज्यों के दरबारों से बड़ी आसानी के साथ डेनमार्क के दरबार में चले गए। वॉल्टेयर, कॉण्डॉर्सेट, फ्रैंकलिन, थॉमस पेन—विशाल आत्माएँ, जो अपने को मानवता के सेवक मानती थीं। किन्तु विश्व के अधिकांश भागों में आधुनिक राष्ट्रीयता ने इस सब का अन्त कर दिया।

अब अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और अन्तर्राष्ट्रीय राजनेता, जो दूसरों की सेवा के द्वारा अपने देश की सेवा करता है, एक बार फिर आगे आ रहा है। नार्वे में नान्सेन, बेल्जियम में स्पाक, फ्रांस में जाँ मॉने, इंगलिस्तान में चर्चिल, हैमरशोल्ड, मिर्डल, बॉयड और, ऊ थाण्ट, श्रीमती पंडित, चार्ल्स मलिक, एलीनर रुजवेल्ट, स्टीवेन्सन—हमारी आँखों के सामने बन रहे नए विश्व के लिए नेतृत्व प्रदान करने वाले स्त्री-पुरुषों की यह नयी श्रेणी है।

इस नए प्रकार के सार्वजनिक कर्मचारी की विशेषताएँ क्या है?

प्रथम, वह अपने आप को क्षेत्रीय राष्ट्रीयता की पूर्व-धारणाओं और सीमाओं से मुक्त कर पाता है, और दूरस्थ राष्ट्रों और लोगों के मनों को सहानुभूतिपूर्वक समझ पाता है। सभी राष्ट्रों और जातियों की समानता को केवल बौद्धिक रूप में नहीं वरन् स्वतःस्फूर्त रीति से स्वीकार कर लेता है। जिनके बीच उसका पालन-पोषण हुआ था, उनसे बिलकुल भिन्न हितों, आदतों, प्रतिमानों, और संस्कृतियों को सहानुभूतिपूर्वक समझ सकता है।

दूसरे, वह स्वयं अपने अतीत, या अपने वर्तमान के साथ भी अपनी सम्बद्धता से सीमित नहीं होता, वरन् इतिहास और विज्ञान की उन महान् धाराओं को समझ सकता है, जो इतनी अटल रीति से विश्व का पुनर्निर्माण कर रही हैं। वह उन धाराओं के साथ मिलकर काम करने को तैयार है, जो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के, और एक जाति और महाद्वीप द्वारा दूसरी जाति और महाद्वीप के शोषण के अन्तिम अवशेषों को बहाए ले जा रही हैं। सारी दुनिया में हो, तेजी से हो रहे परिवर्तनों के साथ जो नई शकल उभर रही है, उसमें स्वयं राष्ट्र के स्थान को वह वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देख सकता है, यद्यपि वह कभी उसके प्रति उदासीन नहीं रहता।

तीसरे, वह इस बात को समझता है कि इतिहास और राजनीति का एक अविच्छिन्न ताना-बाना है, जिसके धागे हर गाँव, कस्बे, और शहर से हर अन्य गाँव, कस्बे और शहर तक, देश से देश तक और महाद्वीप से महाद्वीप तक फैले हैं। वह जानता है कि आर्थिक और राजनीतिक अलगाव के साथ-साथ बौद्धिक और नैतिक अलगाव का वक्त बीत गया—कि ब्रह्मा या कांगों में जो कुछ होता है, उसका सम्बन्ध

बीस वर्षों से भी कम समय में उसने कितना कुछ सीख लिया है, इस पर गौर करें !

उसने सीख लिया है कि विश्व सचमुच एक विश्व है, कोई राष्ट्र अपने-आप में एक अलग टापू नहीं है, और यह कि हर राष्ट्र के दुर्भाग्यों, असफलताओं, संकटों और कल्याण की जिम्मेदारी में कुछ हद तक हमारा भी हिस्सा है।

कि, दैवी विधान में यूरोपीय जगत, गोरे जगत, ईसाई जगत का कोई विशेषाधिकारपूर्ण स्थान नहीं है।

कि विश्व को साफ-साफ हमारे और रूसी, इन दो विरोधी खेमों में नहीं बाँटा जा सकता, बल्कि विश्व सचमुच कई शक्ति-केन्द्रों में बँटा हुआ है, और दो विश्वों की धारणा पर आधारित किसी भी रणनीति की असफलता अनिवार्य है।

कि हम दूसरे राष्ट्रों पर अपनी इच्छा नहीं लाद सकते, जो दुर्बल हैं, उन पर भी नहीं, और यह कि हम दूसरे लोगों से यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वे अर्थनीति या राजनीति की हमारी अपनी धारणाओं को अपना लें या उनसे सहमत भी हों।

कि हम तटस्थ (राष्ट्रों) पर पक्ष लेने के लिए दबाव डालने का प्रयास न करें, बल्कि तटस्थता को स्वीकार करें और समझें।

कि सहायता और पुनर्वास के महत्त्वपूर्ण कार्यों में हम अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से काम करें और अन्य राष्ट्रों के साथ—प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों के साथ भी—सहयोग करें।

कि लगभग हर स्थिति में सैनिक सहायता की अपेक्षा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहायता कहीं अधिक प्रभावकारी होती है।

कि शक्ति की, अणुशक्ति की भी, सीमाएँ होती हैं, और यह कि अधिकांश में सैनिक शक्ति की सीमाएँ स्वयं उसमें ही अन्तर्निहित होती हैं।

कि हम सभी विदेश-नीति से सम्बद्ध हैं, और वह कि एक राष्ट्र के रूप में हमारी सम्बद्धता पूर्ण सम्बद्धता है। कि हमारे काल में शान्ति नहीं है, झगड़े और संकट ही सामान्य हैं; कि जिन संकटों से दुनिया के लोग इतने दिनों से पीड़ित होते रहे हैं, अमरीका उनसे बचा नहीं रह सकता।

इनमें से अधिकांश बातों को आज हम मानकर चलते हैं, किन्तु हमारे वैदेशिक सम्बन्धों के समूचे इतिहास में, शायद हमारे सारे इतिहास में ही, ज्ञानार्जन में हुई यह सर्वप्रमुख प्रगति है।

× × ×

इस नए उद्यम की, जिससे हम सब इतने अविच्छिन्न रूप में सम्बद्ध हैं, एक रोचक विशेषता है एक नए प्रकार के सार्वजनिक कर्मचारी का जन्म—अन्तर्राष्ट्रीय सार्वजनिक अधिकारी जो आज़ादी से महाद्वीपों में घूमता है, जो हिन्दुस्तान, बोलिविया, कांगो और ताइवान की समस्याओं से उसी तरह परिचित है जैसे पूर्वकालिक राजनेता मैसाचुसेट्स, अलाबामा, मिनेसोटा और ऑरिगोन की समस्याओं से हुआ करते थे; जो

अपने आप को किसी विशेष हित, या अर्थतंत्र, या राजनीतिक व्यवस्था का प्रवक्ता नहीं समझता, वरन् मनुष्य के हितों का प्रवक्ता समझता है।

निश्चय ही, इसके पूर्व-उदाहरण मिलते हैं, विशेषतः अठारहवीं शताब्दी में। बेन्जामिन थॉमसन, जो लंदन के रॉयल इंस्टिट्यूट के अध्यक्ष रूप में और बवेरिया के प्रधान मंत्री के रूप में एक समान प्रभावी थे, या ऐण्ड्रीज बर्नस्टॉर्फ, जो जर्मन राज्यों के दरबारों से बड़ी आसानी के साथ डेनमार्क के दरबार में चले गए। वॉल्टेयर, कॉण्डोर्सेट, फ्रैंकलिन, थॉमस पेन—विशाल आत्माएँ, जो अपने को मानवता के सेवक मानती थीं। किन्तु विश्व के अधिकांश भागों में आधुनिक राष्ट्रीयता ने इस सब का अन्त कर दिया।

अब अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और अन्तर्राष्ट्रीय राजनेता, जो दूसरों की सेवा के द्वारा अपने देश की सेवा करता है, एक बार फिर आगे आ रहा है। नार्वे में नान्सेन, बेल्जियम में स्पाक, फ्रांस में जॉ मॉनेे, इंगलिस्तान में चर्चिल, हैमरशोल्ड, मिर्डल, बॉयड ओर, ऊ थाण्ट, श्रीमती पंडित, चार्ल्स मलिक, एलीनर रूज़वेल्ट, स्टीवेन्सन—हमारी आँखों के सामने बन रहे नए विश्व के लिए नेतृत्व प्रदान करने वाले स्त्री-पुरुषों की यह नयी श्रेणी है।

इस नए प्रकार के सार्वजनिक कर्मचारी की विशेषताएं क्या हैं ?

प्रथम, वह अपने आप को क्षेत्रीय राष्ट्रीयता की पूर्व-धारणाओं और सीमाओं से मुक्त कर पाता है, और दूरस्थ राष्ट्रों और लोगों के मनों को सहानुभूतिपूर्वक समझ पाता है। सभी राष्ट्रों और जातियों की समानता को केवल बौद्धिक रूप में नहीं वरन् स्वतःस्फूर्त रीति से स्वीकार कर लेता है। जिनके बीच उसका पालन-पोषण हुआ था, उनसे बिलकुल भिन्न हितों, आदतों, प्रतिमानों, और संस्कृतियों को सहानुभूतिपूर्वक समझ सकता है।

दूसरे, वह स्वयं अपने अतीत, या अपने वर्तमान के साथ भी अपनी सम्बद्धता से सीमित नहीं होता, वरन् इतिहास और विज्ञान की उन महान् धाराओं को समझ सकता है, जो इतनी अटल रीति से विश्व का पुनर्निर्माण कर रही है। वह उन धाराओं के साथ मिलकर काम करने को तैयार है, जो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के, और एक जाति और महाद्वीप द्वारा दूसरी जाति और महाद्वीप के शोषण के अन्तिम अवशेषों को बहाए ले जा रही हैं। सारी दुनिया में ही, तेजी से हो रहे परिवर्तनों के साथ जो नई शकल उभर रही है, उसमें स्वयं राष्ट्र के स्थान को वह वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देख सकता है, यद्यपि वह कभी उसके प्रति उदासीन नहीं रहता।

तीसरे, वह इस बात को समझता है कि इतिहास और राजनीति का एक अविच्छिन्न ताना-बाना है, जिसके धागे हर गाँव, कस्बे, और शहर से हर अन्य गाँव, कस्बे और शहर तक, देश से देश तक और महाद्वीप से महाद्वीप तक फैले हैं। वह जानता है कि आर्थिक और राजनीतिक अलगाव के साथ-साथ बौद्धिक और नैतिक अलगाव का वक्त बीत गया—कि बर्मा या कांगो में जो कुछ होता है, उसका सम्बन्ध

कॉनेक्टिकट अथवा यॉर्कशायर के नागरिक से भी है। कि जिन लोगों के लिए भोजन, दवा-दारू, औज़ार, मशीनें, स्कूल, पुस्तकालय, अस्पताल, विश्वविद्यालय आदि की व्यवस्था नहीं है, उन्हें ये सारी वस्तुएँ प्रदान करने के महान् उद्यम से हम सभी लोग सम्बद्ध हैं। वह जानता है कि स्वतंत्रता का भी एक अविच्छिन्न ताना-बाना है, कि अपने बीच छोटे-से-छोटे आदमी के साथ हम जो कुछ करते हैं, वह सारी मानवजाति के साथ करते हैं, और यह कि स्वतंत्रता और लोकतंत्र की कसौटी, विदेशों में उसका समर्थन करने के साथ-साथ, देश में उसे अमली रूप देने की तत्परता भी है।

चौथे, अपने सारे आदर्शवाद के बावजूद, वह एक दुनियादार आदमी होना है, एक व्यवहार कुशल प्रशासक, टिकाऊ दिमाग वाला और कठोर स्थितियों का सामना कर सकने वाला। और जिन्दा रहने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह आलोचनाओं से जल्दी प्रभावित न हो। उसके लिए प्रशासन की नित्य प्रति की समस्याओं का अनुभव आवश्यक है, यह समझना आवश्यक है कि काम करते जाना और नतीजे निकालना, भाषण कला और उदारतापूर्ण मुद्राओं से ज्यादा जरूरी है।

इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सार्वजनिक कर्मचारी की चेस्टर बौल्स से ज्यादा अच्छी मिसाल और कोई नहीं है।

श्री बौल्स ने लिखा है, "1924 में जब मैं कालेज का एक वरिष्ठ छात्र था, मैंने अपना जीवन शासन में लगाने का निश्चय किया।" वे हमें यह भी बताते हैं—और उनका कथन बड़ा अर्थमय है—कि 1924 में येल में उनकी कक्षा में उनके अतिरिक्त तीन या चार ही छात्र थे, जिनकी रुचि सार्वजनिक जीवन को अपनाने में थी। परिस्थितियों ने उनकी इस प्रारम्भिक महत्त्वाकांक्षा में बाधा डाली, किन्तु उसे नष्ट नहीं किया। जब 1941 में अमरीका युद्ध में फँसा, तो वे बड़ी तत्परता से निजी उद्यम को छोड़कर सार्वजनिक उद्यम में आ गए, और पिछले दो दशकों में उन्होंने अपनी शक्ति और प्रतिभा सार्वजनिक उद्यम में ही लगाई है।

श्री बौल्स के कार्य-जीवन में चार बड़े मोड़ नज़र आते हैं। पहला मोड़ युद्ध-काल में सार्वजनिक सेवा की माँग के समय आया। पहले राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के अधीन मूल्य प्रशासक के रूप में, और फिर संयुक्त राष्ट्र संघ में ट्राइग्वे ली के विशेष सहायक के रूप में श्री बौल्स ने राजनीति और प्रशासन के कुछ कठिन पाठ सीखे, और विश्व की वे यात्राएँ कीं, जिन्होंने उन्हें हर महाद्वीप में, और लगभग हर देश में, एक परिचित व्यक्ति बना दिया है, और जिनसे वह मानसिक आधार-भूमि तैयार हुई, जिसके फलस्वरूप 1947 के आरम्भ में उन्होंने अपना वह असाधारण निबन्ध तैयार किया, जिसमें 'मार्शल योजना' की पूर्व कल्पना थी। वह निबन्ध इस संग्रह में संकलित है।

दूसरा मोड़ था कॉनेक्टिकट के गवर्नर के रूप में उनका चुनाव। इस पद पर कार्य करते हुए, जनसामान्य पर आधारित लोकतंत्र और जनसामान्य पर आधारित उदारवाद का महत्त्व, नित्यप्रति के, और सुपरिचित रूप में उनके सामने प्रत्यक्ष हुआ। इसमें स्थानीय प्रश्नों का राष्ट्रीय और विश्व प्रश्नों के साथ भी सम्बन्ध स्पष्ट रूप में

सामने आया। इससे उनमे खेत और गाँव, तथा कारखाने और दफ्तर के लोगों को सम्बोधित करने की आदत भी आई, जिसके फलस्वरूप वे कई देशों में बड़े विविध प्रकार के श्रोताओं के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए हैं।

तीसरा मोड़ आया जब वे हिन्दुस्तान में राजदूत नियुक्त हुए। इससे उन्हें एक अन्य सभ्यता और एक अन्य संसार का परिचय मिला, और एक अन्तर्राष्ट्रीय सार्वजनिक कर्मचारी के रूप में उनकी शिक्षा इससे पूर्ण हो गई। श्री बौल्स के लचीलेपन का यह प्रमाण है कि वे असाधारण कौशल के साथ अपने को इस स्थिति के, और हिन्दुस्तान के बौद्धिक और सामाजिक वातावरण के अनुकूल बना सके, और वह स्वर निर्धारित कर सके, जिसे उनके कार्यकाल के बाद नई दिल्ली में अमरीकी प्रवक्ताओं ने बड़ी सफलता के साथ कायम रखा है।

इसने उन्हें अमरीकी सार्वजनिक जीवन में हिन्दुस्तान और उसके पड़ोसियों के बारे में सबसे अधिक जानकार व्यक्ति भी बनाया—उन्होंने अमरीका और हिन्दुस्तान के बीच ऐसे समय मध्यस्थता की, जब हिन्दुस्तान बढ़कर विश्व शक्तियों की पहली श्रेणी में आ रहा था, और निश्चय ही एशिया की स्वतन्त्र शक्तियों में प्रथम था।

चौथा मोड़ 1960 में आया, जब कनेक्टिकट से कांग्रेस के सदस्य के रूप में, अपने कार्यकाल के दूसरे वर्ष में वे पहले सीनेटर केनेडी के विदेश-नीति सम्बन्धी सलाहकार चुने गए, और फिर डेमॉक्रेटिक दल के राष्ट्रीय सम्मेलन की मंच समिति (नीति वक्तव्य तैयार करने वाली समिति) के अध्यक्ष चुने गए।

इस अनुकूल स्थिति में उन्होंने डेमॉक्रेटिक चुनाव-वक्तव्य के अधिकांश विदेश सम्बन्धी अंश, नागरिक अधिकार सम्बन्धी अंश, और आर्थिक नीति सम्बन्धी अंश के भी काफी हिस्से का मसौदा तैयार किया। इस वक्तव्य की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—प्रथम, घरेलू नीति और विश्वव्यापी प्रभाव दोनों ही दृष्टियों से, डेमॉक्रेटिक दल द्वारा स्वीकृत वक्तव्यों में यह सबसे अधिक उदार है। दूसरे, इसे सम्मेलन ने न्यूनतम विवाद के साथ, सामान्य उत्साह के बीच स्वीकार किया।

इस उपलब्धि का श्रेय बहुत कुछ श्री बौल्स को है। और यह श्री बौल्स का सौभाग्य था कि मतदाताओं ने वक्तव्य की इन नीतियों का समर्थन किया, और नये प्रशासन ने सार रूप में उन्हें स्वीकार किया, जिसमें उन्होंने पहले अवर विदेश सचिव के रूप में कार्य किया, और अब अफ्रीका, एशिया, और लातिन अमरीका सम्बन्धी मामलों में राष्ट्रपति के विशेष प्रतिनिधि और सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनका कार्यक्षेत्र काफी बड़ा है, और सद्बुद्धि, सद्भाव, विनोदप्रियता और सत्-परिणामों सहित वे उसका सचालन करते हैं।

सार्वजनिक सेवा के बीस वर्षों में श्री बौल्स निरन्तर अपना मत व्यक्त करते रहे हैं। इस अवधि में उन्होंने घरेलू, और विशेष रूप से, विदेश-नीति सम्बन्धी अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए सात पुस्तकें लिखी हैं। अमरीकी सार्वजनिक जीवन में शायद कोई अन्य व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसने पिछले दशक में अमरीकी लोगों

के समक्ष विदेश-नीति सम्बन्धी बातें करते हुए उनसे अधिक समय और शक्ति लगाई हो। इकतालीस राज्यों में, बीसियों विश्व-विद्यालयों में, डेमाक्रेटिक और रिपब्लिकन दोनों प्रकार के श्रोताओं के बीच समान रूप से, उन्होंने अपनी बात लोगों तक पहुँचा सकने की असाधारण क्षमता प्रदर्शित की है।

फलस्वरूप, उनके अनवरत दिमाग से लेखों और भाषणों की एक धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही है। इनमें से कुछ विद्वत्तापूर्ण पत्रिकाओं के लिए लिखे गए लेख हैं, कुछ कांग्रेस के सदस्यों अथवा विदेश-नीति निर्धारित करने वालों को सम्बोधित किये गए प्रभावशाली तर्क हैं, कुछ अर्द्ध-सरकारी प्रतिवेदन हैं, कुछ सामान्य या विशिष्ट अवसरों पर दिये गए भाषण हैं, और कुछ बिना किसी सहायक सामग्री के तत्काल दिये गए वक्तव्य हैं।

हम यहाँ उनके लेखों और भाषणों का एक प्रतिनिधि संकलन प्रस्तुत करते हैं, जो इसके पहले पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुए।

पहले मेरे मन में विचार आया कि मैं 1943 में संघीय मूल्य प्रशासक के रूप में, सार्वजनिक सेवा में श्री बौल्स के प्रवेश से आरम्भ करूँ, जब उन्होंने एक विशाल और अव्यवस्थाग्रस्त अभिकरण को अपने हाथ में लिया, प्रशासकीय शल्य-क्रिया का एक चमत्कार कर दिखाया और मूल्य प्रशासन के कार्यालय को मंहगाई और मुद्रा-स्फीति के विरुद्ध एक तेजी से काम करने वाला, कुशल और सुगठित औजार बना दिया।

किन्तु इस युद्धकालीन सामग्री पर नजर डालने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उसमें युद्धोत्तर-काल की चेतना और दृष्टि निरन्तर मौजूद होने पर भी, उसकी अधिकांश अन्तर्वस्तु काल सीमित है। फलस्वरूप मैंने इस पुस्तक को शान्ति स्थापना के बाद से, और युद्धोत्तर काल में श्री बौल्स के लेखन से आरम्भ करने का निश्चय किया।

मैंने इस सामग्री को दो व्यापक समूहों में विभाजित किया है—एक, ऐसी सामग्री जिसमें वैदेशिक मामलों के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया गया है, और दूसरे, ऐसी सामग्री जिसका सम्बन्ध, मुख्यतः देश की आन्तरिक स्थिति से है।

पिछले दिनों, श्री बौल्स का योग विदेश-नीति के क्षेत्र में रहा है। अतः यह उचित ही है कि पुस्तक की अधिकांश सामग्री इसी कोटि की हो। विदेश-नीति सम्बन्धी सामग्री को फिर उपयुक्त उप-खण्डों में विभाजित किया गया है, जिनका सम्बन्ध सामान्य प्रश्नों से, आर्थिक विकास के प्रश्नों से, एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के 'नए' राष्ट्रों की समस्याओं से, और हठीली समस्याओं से है, जो पृथ्वी के हर कोने में हमारे सामने आती हैं।

यह विभाजन हितों की असम्बद्धता का सूचक न होकर, केवल सुविधा की दृष्टि से किया गया है। जिस क्रम में इसे छापा गया है, उस क्रम से पढ़ने पर वह दार्शनिक एकसूत्रता और संगति हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाती है, जो श्री बौल्स की सार्वजनिक

जीवन मे उनके प्रवेश के समय से ही अनुप्राणित करती रही है।

इस सामग्री को संकलित करने में, कुछ रचनाओं को संपादित और संक्षिप्त करने की अनुमति मुझे श्री बौल्स ने दी थी। इस अधिकार का मैंने पूरा उपयोग किया है। किन्तु, ऐसा करते हुए मैंने कुछ मुख्य विषयों को रेखांकित करने का प्रयास किया है, जिनका प्रतिपादन श्री बौल्स ने इस अर्से मे किया है, और जिनकी चर्चा उन्होंने विभिन्न सन्दर्भों मे की है।

पिछले दो दशकों मे श्री बौल्स के विचारों का कुछ अंश अब राष्ट्रीय नीतियों और विधियों का अंग बन गया है। उनका ज्यादा बड़ा हिस्सा आज हमारी राष्ट्रीय बहस के केन्द्र में है। और कुछ हिस्सा ऐसे निर्णयों की ओर भी संकेत करता है जिन का सामना हमने अभी तक नहीं किया है, लेकिन एक राष्ट्र के रूप मे अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए जिनका सामना हमे करना पड़ेगा।

इस प्रकार अपनी सम्पूर्णता मे, यह पुस्तक विचार और क्रिया के पारस्परिक सम्बन्ध को, एक क्रान्तिकारी जगत मे विचारों की अदम्य शक्ति को नाटकीय रीति से प्रस्तुत करती है।

समय बीतने के साथ, चेस्टर बौल्स स्थानीय से राष्ट्रीय, और राष्ट्रीय से विश्व व्यक्तित्व बन गए हैं। इन सारे वर्षों में वे राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित करने और राष्ट्रीय अन्तरात्मा को रूपायित करने के लिए सोत्साह और निस्वार्थ रीति से काम करते रहे हैं। और आपने देशवासियों को निरन्तर याद दिलाते रहे हैं कि महानता का यही समय है। और वे स्वयं उन लोगों मे से रहे हैं, जिन पर पेरिक्लिस के ये स्मरणीय शब्द लागू होते हैं कि "यह जानते हुए कि स्वतन्त्रता सुख का रहस्य है, और स्वतन्त्रता का रहस्य वीर हृदय है, शत्रु के आक्रमण के समय वह चुपचाप अलग नहीं खड़ा रहा।"

—हेनरी स्टील कौमागर

ऐमहर्स्ट, मैसाचुसेट्स
15 जून, 1962

पहला खण्ड

संयुक्त राज्य अमरीका और विश्व-क्रान्ति

पहले खण्ड पर एक निजी टिप्पणी

युद्ध के बाद के मेरे लेखों और भाषणों का यह संकलन तैयार करने के लिए मैं प्रोफ़ेसर कोमागर का आभारी हूँ।

अमरीका के जागतिक लक्ष्यों को मैं जिस रूप में देखता हूँ और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जो कुछ मैं आवश्यक समझता हूँ उससे सम्बन्धित सामग्री पहले खंड में है। एक श्रेणी के रूप में, यह सामग्री विदेश-नीति के बहुतेरे निर्णायक प्रश्नों पर एक राष्ट्रीय द्विदलीय सहमति की ओर धीरे-धीरे हुई अमरीका की प्रगति को रेखांकित करती है।

इस सहमति में शस्त्रीकरण की निरन्तर चल रही होड़ के प्रति एक गम्भीर राष्ट्रीय चिन्ता के साथ-साथ, प्रत्यक्ष और परोक्ष आक्रमण का विरोध करने की और प्रभावकारी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं सहित पर्याप्त प्रतिरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता की स्वीकृति शामिल है। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के महत्त्व की स्वीकृति, विश्व व्यापार के विस्तार के लिए हमारी प्रतिबद्धता, और एशिया, अफ्रीका तथा लातिन अमरीका के महत्त्व की जहाँ मानव-जाति का बहुतांश निवास करता है, बड़ी देर से की गई स्वीकृति भी शामिल है।

किन्तु इन पृष्ठों को पुनः पढ़ते हुए मुझे विकासशील राष्ट्रों के सम्बन्ध में लक्ष्यों और प्राथमिकताओं सम्बन्धी बहुतेरे अमरीकियों में अब तक चली आ रही गभीर असहमतियों की और अपनी राष्ट्रीय सहमति को नयी स्थितियों पर लागू करने में हमारे ढीलेपन की भी याद आती है।

उदाहरण के लिए, प्रगति के लिए मित्रता की योजना ने अपने लातिन अमरीकी पड़ोसियों के प्रति हमारी बीस वर्षों की उदासीनता का स्थान बड़ी देर से लिया है।

देश में मिथ्या धारणाओं के संचय से और विदेशों में यथास्थिति के साथ हमारी प्रतिबद्धताओं से; एशिया में कार्य करने की हमारी स्वतन्त्रता में अब भी बाधाएँ आती हैं।

अब भी हर साल अमरीका की कांग्रेस में बहुमत को यह समझाने के लिए असाधारण प्रयत्न करने पड़ते हैं कि तथाकथित सोवियत चट्टान को क्षय करने, और स्वतंत्रता के क्षेत्र का विस्तार करने के लिए, स्वतंत्र राष्ट्रों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास सर्वाधिक आशाप्रद मार्ग है।

इसमें कोई शक नहीं कि स्वतन्त्रता और सम्पन्नता की शताब्दी में हम अमरीकी लोग बड़ी तेज़ी से और बहुत दूर निकल आए हैं। लेकिन क्या हम अपने अपार राष्ट्रीय साधनों का सर्वोत्तम उपयोग कर रहे हैं।

और सबसे कठिन और जटिल प्रश्न है—क्या अमरीका जैसा समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र शान्ति और सभी मनुष्यों के लिए अधिकाधिक न्याय पर आधारित विश्व के लिए हो रहे क्रान्तिकारी संघर्ष में सक्रिय सहयोगी हो सकता है ?

बीसवीं शताब्दी के मध्य के दशक में अमरीकी लोग इन प्रश्नों के क्या उत्तर देते हैं, इससे, लगभग निश्चित रूप से, शताब्दी के अन्त में हमारे विश्व का रूप निर्धारित होगा।

—चेस्टर बौल्स

पहला भाग

विश्व में हमारे लक्ष्य

हम में से जो लोग कम भीरु है, वे कम से कम इतना कर सकते हैं कि वर्तमान पीढ़ी के सामने जाएँ, और अपने काल के कुछ मूल सत्यों के लिए आग्रह करें—कि पृथ्वी पर मनुष्य के भविष्य का नष्ट होना आवश्यक नहीं; कि संकट आएगा ही, इसे स्वीकार कर लेना आवश्यक नहीं; कि हमारा राजनीतिक कौशल अब भी हमें विनाश से बचा सकता है; कि हमारे नैतिक प्रतिमान आज भी मौजूद हैं; कि युद्ध और अन्याय जैसी कुछ वस्तुएँ अन्तहीन प्रतीत हो सकती हैं, किन्तु ये वस्तुएँ हमेशा गलत होती हैं, उनसे हमेशा लड़ना होगा, और किसी दिन इन पर विजय पानी होगी।

26 जुलाई, 1954

एक

धारा को मोड़ने का अवसर

अल्प-विकसित राष्ट्रों को दीर्घकालीन आर्थिक और प्राविधिक सहायता देने, तथा एक नए समेकित यूरोप के निर्माण के लिए सर्व प्रथम प्रस्तुत प्रस्तावों में से एक श्री बौल्स ने फ्रीडम हाउस, विल्की मेमोरियल बिल्डिंग, न्यू यॉर्क में, 17 जनवरी, 1947 को दिये गए एक भाषण में प्रस्तुत किया।

अगर अमरीकी लोग अगले बीस वर्षों तक, कम भाग्यशाली देशों के विकास के लिए हमारी कुल आय का दो प्रतिशत प्रति वर्ष लगाने का समर्थन करे, तो हम इतिहास की धारा को मोड सकते हैं।

विदेशों मे लगाई गई निजी पूंजी के अतिरिक्त, इस धन से पृथ्वी की महान् नदियों में से कइयों की शक्ति का उपयोग करने मे, बाढ़ों को खतम करने मे, विशाल बिजली-घरो के निर्माण मे, और करोड़ो व्यक्तियों के लाभ के लिए सिचाई की व्यवस्था करने मे सहायता मिलेगी। समूचे पूर्व मे, दक्षिण अमरीका में, और यूरोप मे आधुनिक परिवहन व्यवस्थाओं के निर्माण में इससे बडी मदद मिलेगी।

यह धन लगाकर अमरीकी लोग दुनिया के कई हिस्सो मे शान्तिपूर्ण उद्योगों को आधुनिक बनाने मे सहायता कर सकते हैं, जिससे फिर यूरोप, एशिया, हिन्दुस्तान, दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका में जीवन-स्तर काफी बढ़ जाएगा, और असंख्य लोगों में एक-दूसरे के, और अमरीकी उद्यम के उत्पादनो को खरीदने की क्षमता आएगी।

हमारी राष्ट्रीय आय का दो प्रतिशत—चार अरब डालर—प्रतिरक्षा सम्बन्धी हमारे वर्त्तमान खर्च का केवल एक तिहाई है। नाजियो और फासिस्टो के विरुद्ध युद्ध करने में प्रति मास हमारा जो खर्च हुआ था, यह रकम उसकी केवल आधी है। फिर भी, यह निश्चित है कि बहुतेरे लोग इसे अपव्ययपूर्ण फिजूल खर्ची कहेगे, 'साम चाचा' के 'बुद्धू चाचा' बनने का एक और उदाहरण बताएँगे।

इन आलोचकों का दृष्टिकोण गलत है, और मैं आशा करता हूं कि उसे स्वीकार नही किया जाएगा। ऐसा खर्च अमरीकी लोगो द्वारा अपनी पूंजी का अधिकतम बुद्धि-पूर्ण उपयोग होगा। इससे सारी दुनिया में करोड़ों मनुष्यो को असीमित आर्थिक लाभ होगा। यह इस बात का जीवन्त प्रमाण होगा कि हमारी अमरीकी व्यवस्था न केवल हम अमरीकियों को एक ऊँचा जीवन-स्तर प्रदान कर सकती है, वरन् अधिक आत्म-

सम्मान के साथ, अधिक समृद्ध जीवन की ओर आगे बढ़ने मे दूसरों को भी सहायता कर सकती है। शान्ति की रक्षा के लिए, यह हमारी सबसे सस्ती गारंटी होगी।

यह धन किन्ही शर्तों के साथ, या सकुचित राजनीतिक लाभ के लिए नही लगाया जाना चाहिए। हमे एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के देशो, तथा यूरोप के अन्य देशो के साथ-साथ पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, और पूर्वी यूरोप के युद्ध से विनष्ट राष्ट्रो को भी कर्ज़ देने का समर्थन करना चाहिए।

किन्तु हमे यह बात पक्की कर लेनी चाहिए कि इस धन का यथासंभव प्रभावकारी उपयोग किया जाय। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक साधन राष्ट्रीय सीमाओ से बँधे हुए नही होते। अत प्राकृतिक साधनो के अधिक कुशल उपयोग के लिए, जो जीवन-स्तर को उठाने के लिए अनिवार्य है, सारी दुनिया मे ही अधिकाधिक क्षेत्रीय आधार पर नियोजन करना आवश्यक है।

अमरीका मे सौभाग्यवश हमारे पास इतना काफी बडा भौगोलिक क्षेत्र है, कि यहाँ उच्च औद्योगिक उत्पादन के लिए आवश्यक, व्यापक बाजारो का विकास किया जा सकता है। इसी कारण, सोवियत रूस मे भी ऐसा ही हो सकता है। अगर व्यवस्थित आर्थिक विकास और राजनीतिक अभिवृद्धि के आधार पर शान्ति कायम रखनी है, तो बाकी दुनिया को भी अधिकाधिक ऐसा ही अवसर मिलना चाहिए।

यूरोप ऐसे आर्थिक एकीकरण की, सभावनाओ का एक अच्छा उदाहरण है। यूरोप के विकास, और अततः राजनीतिक विकास में सहायता देने के लिए हमारे खर्चों से एकीकरण को प्रोत्साहन मिले, इसलिए ये खर्चे किसी प्रकार के यूरोपीय आर्थिक अधिकरण के माध्यम से होने चाहिए। यह अधिकरण यूरोपीय महाद्वीप के लिए एक व्यापक योजना तैयार करे, साधनो का बँटवारा करे, और उसकी देख-रेख मे योजना पर अमल हो।

इसमे एक यूरोपीय बिजली व्यवस्था, यूरोपीय सचार व्यवस्था, यूरोपीय परिवहन व्यवस्था और यूरोपीय खेती व इस्पात के उत्पादन का समन्वय करना शामिल हो।

अमरीका इस यूरोपीय आर्थिक अधिकरण की उदारतापूर्वक सहायता करे, बशर्ते कि यूरोपीय राष्ट्रो के बीच आपस मे, और हमारे अपने राष्ट्र व यूरोप के बीच चुंगी खतम कर दी जाय या बहुत कम कर दी जाय, ताकि माल फिर आसानी से इधर-उधर भेजा जा सके। धन का उपयोग इस प्रकार किया जाय कि हमारे भूतपूर्व शत्रुओं सहित यूरोपीय क्षेत्र के सारे ही तीस करोड से अधिक लोगो के जीवन का स्तर स्थिर गति से ऊँचा उठे। किन्तु, इस अधिकरण का गठन इस प्रकार किया जाय कि जर्मनी की सभाव्य सैनिक शक्ति हमेशा के लिए दब जाय।

अमरीकी आर्थिक सहायता के एक आधार के रूप मे, दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका के कुछ हिस्सों के लिए, दक्षिण-पूर्व और दक्षिण एशिया के लिए, और निकट पूर्व के लिए, ऐसे ही व्यापक आर्थिक अधिकरणो की योजनाएँ बनाई जाएँ।

स्थायी विश्व-शान्ति के लिए हमारे प्रयास के पहले कदम मे, क्षेत्रीय नियोजन

के आधार पर अमरीकी प्रविधियों और औद्योगिक उपकरणों का निर्यात अवश्य शामिल होना चाहिए, जिससे कि दूसरे देशों का जीवन-स्तर धीरे-धीरे उठाया जा सके।

अगले दस वर्षों में, या अगली पीढ़ी में विश्व सद्भावना के नवयुग की आशा करना नासमझी होगी। लेकिन विश्व-शान्ति की स्थापना, और मानवी स्वतन्त्रता की उपलब्धि के एकमात्र संभव मार्ग पर साहसपूर्वक कदम बढ़ाने मे देर करना, और भी बड़ी नासमझी होगी।

विधि और निषेध, दोनों के कार्यक्रम की आवश्यकता

श्री बौल्स नए, क्रान्तिकारी विश्व में अमरीकी विदेश-नीति के नैतिक, आर्थिक और सामाजिक पक्षों पर आग्रह करने की अपील करते हैं।
न्यूयार्क टाइम्स मेगज़ीन, 18 अप्रैल, 1948।

हम केवल साढ़े चौदह करोड़ है, और हम दो अरब लोगों के एक क्रान्तिकारी विश्व में रह रहे हैं। ऐसी स्थिति में, स्थायी शान्ति के आधार का निर्माण करने में हमारी सफलता बहुत कुछ हमारे विचारों की शक्ति पर और अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ हमारे सम्बन्धों पर निर्भर होगी।

हमारी सैन्य-शक्ति जितनी है, उसकी दुगुनी होने पर भी, हम बल-प्रयोग से, या बल-प्रयोग की धमकी के द्वारा अपना नेतृत्व दूसरों पर नहीं लाद सकते थे। भविष्य के संसार को हम तभी प्रभावित कर सकते हैं, जब दूसरे लोग हम पर विश्वास करें, और दूसरे लोग हम पर कभी विश्वास नहीं करेंगे, जब तक उन्हें भरोसा न हो कि हम उनके सच्चे मित्र और समर्थक हैं।

उनका आदर प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि हम पहले उन्हें समझें—और सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि किसी मात्रा में आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करने की उनकी आकांक्षा को समझें।

अगर हम लोगों के बजाए शासनों की ही दृष्टि से सोचते हैं, और लोगों को प्रभावित करने वाले विचारों और धारणाओं के बजाए, मुख्यतः रणनीति के आधार पर फैसले करते हैं, तो हम संकट में पड़ सकते हैं।

औसत अमरीकी न केवल राजनीतिक लोकतन्त्र में, वरन् आर्थिक लोकतन्त्र में भी विश्वास करता है। हमारे लम्बे इतिहास में उसे लगातार निहित आर्थिक हितों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा है।

इसके अतिरिक्त, अपने संघर्ष में उसे असाधारण सफलता भी मिली है। भूमि का व्यापक स्वामित्व, न्यूनतम वेतन कानून, श्रम संगठन, सहकारिता, सामाजिक सुरक्षा, आय-कर, बाल-श्रम कानून, सार्वजनिक स्कूल, रोजगार सम्बन्धी आचार-नियम, और अन्य सैंकड़ों तरीकों से हम उस आदर्श की ओर बहुत आगे बढ़ आए हैं, जिसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने आर्थिक अधिकार-पत्र में प्रस्तुत किया था।

फिर भी, जब हम अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भों में 'लोकतंत्र' की बात करते हैं, तो हमारा विचार राजनीतिक लोकतन्त्र तक ही सीमित प्रतीत होता है। हमने आर्थिक लोकतंत्र पर जोर नहीं दिया—जमीन की मिल्कियत का किसान का अधिकार, भोजन और आवास में उचित हिस्सा पाने का शहरी मजदूर का अधिकार, और हर जगह शिक्षा और स्वास्थ्य की एक उचित न्यूनतम मात्रा प्राप्त करने का सभी लोगों का अधिकार।

साम्यवादियों ने इस कमी का लाभ उठाकर, करोड़ों ग़रीबी से पीड़ित लोगों के हितों की ओर ध्यान देने वाली एकमात्र बड़ी शक्ति के रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना चाहा है। साम्यवादी नेता द्वेष दृष्टि के साथ लेकिन बड़ी प्रभावकारी रीति से कहते हैं—"साम्यवाद आर्थिक लोकतंत्र का समर्थक है, जिसका अर्थ है राजकीय नियोजन के द्वारा जीवन-स्तर में सुधार। अमरीका राजनीतिक लोकतंत्र का समर्थक है, जिसे आप खा नहीं सकते हैं, और जो कठिनाई के समय आपकी रक्षा नहीं करेगा।"

उनके इरादों में चाहे जितनी भी बेईमानी हो, साम्यवादी लोग राजकीय नियोजन, राजकीय स्वामित्व, और भूमि सुधारों के द्वारा जिस आर्थिक लोकतंत्र का प्रतिपादन करते हैं, ऐसे करोड़ों व्यक्तियों के लिए उसमें एक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक आकर्षण है, जिन्होंने ग़रीबी और अन्याय के सिवाय कभी और कुछ नहीं जाना।

हम लोग, जो पश्चिम के राजनीतिक लोकतंत्र में पले हैं, साम्यवाद के अत्याचार-पूर्ण पक्षों को बड़ा ही अप्रिय पाते हैं, किन्तु एशिया, अफ्रीका, पूर्वी यूरोप और दक्षिणी अमरीका के अधिकांश लोगों की दृष्टि में वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, जिसका सीधा-सा कारण है कि किसी न किसी प्रकार का राजनीतिक अन्याय हमेशा ही उनके जीवन का न्यूनाधिक स्वीकृत अंग रहा है।

साम्यवाद ने पिछले दो वर्षों में कई मौक़ों पर विजय प्राप्त की है। जो शक्तियाँ आज इतिहास का निर्माण कर रही हैं, अगर हमारी नीतियाँ उनके प्रति अधिक ग्रहणशील नहीं बनतीं, तो आने वाले वर्षों में और भी मौक़ों पर उसे विजय मिलेगी।

आम तौर पर, यूरोप, एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका में दो शक्तियाँ ऐसी हैं, जो विश्व साम्यवाद की अभिवृद्धि के विरुद्ध हैं। पहली शक्ति सामन्ती भूस्वामियों की, अर्द्ध-फासिस्ट उद्योगपतियों की, और पुराने अभिजात वर्ग की है—जो साम्यवाद से इस कारण नहीं लड़ते कि वे तानाशाही के विरुद्ध हैं, बल्कि इस कारण कि साम्यवादी तानाशाही से उनकी अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा को ख़तरा है। दूसरे प्रकार की शक्तियाँ उदार और लोकतांत्रिक हैं, जो साम्यवाद से इस कारण लड़ती हैं कि वे पुलिस-राज के अत्याचारों को स्वीकार नहीं कर सकतीं, नहीं करेंगी।

साम्यवाद के प्रति व्यापक जन-विरोध उत्पन्न करने की एक मात्र आशा उन

लोकतांत्रिक समूहों का निरन्तर समर्थन करने में है, जो मानवी स्वतन्त्रता सम्बन्धी हमारी धारणा में सहयोगी हैं। हमने बहुधा ऐसा नहीं किया है—कभी-कभी इस कारण कि ये समूह दुर्बल थे, कभी इस कारण कि 'समाजवाद की ओर झुकाव' होने के कारण हम उनके आर्थिक विचारों के विरुद्ध थे, और कभी सैन्य नीति दबाव के कारण।

कभी-कभी हमने केवल इस कारण प्रतिक्रियावादियों का समर्थन किया है, कि उन्हें साम्यवाद उतना ही नापसन्द है, जितना हमें, और वे उसके विरुद्ध बल-प्रयोग करने की स्थिति में हैं। इसके फलस्वरूप, साम्यवादी प्रचार की कुशल सहायता से, करोड़ों लोगों के मन में हम ऐसी शक्तियों के साथ जुड़ गए हैं जिन्हें वे अपने सुरक्षा-पूर्ण भविष्य के मार्ग में प्रमुख बाधा समझते हैं।

इसका विकल्प क्या है ? उन दो अरब लोगों के साथ, जो उत्तरी अमरीका में नहीं रहते, हम अपनी रणनीति सम्बन्धी स्थिति कैसे मजबूत बना सकते हैं ? युद्ध से बचने का सर्वोत्तम उपाय क्या है ? और अगर हमारी चेष्टाओं के बावजूद युद्ध होता है, तो हमारे लिए अधिकतम समर्थन प्राप्त करने का सर्वाधिक निश्चित उपाय क्या है ? हम जिन्हें कर सकते हैं, ऐसे बहुतेरे उपाय हैं।

सबसे पहले, हम सारी दुनिया में आर्थिक सुरक्षा में अभिवृद्धी के लिए भूखे और दबे हुए लोगों के संघर्ष का स्पष्ट रूप में समर्थन करें।

हम उन्हें विश्वास दिलाएँ कि हम पूरे दिल से आर्थिक और सामाजिक सुधारों के पक्ष में हैं, जिन्हें बहुत पहले ही करना चाहिए था, और यह कि हमारी सहायता से वे राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ अधिक ऊँचे जीवन-स्तर भी प्राप्त कर सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के द्वारा हम टेनेसी घाटी अधिकरण के नमूने पर दजला, फ़रात, और जॉर्डन नदियों पर नदी-घाटी विकास योजनाएँ चला सकते हैं। हम इस क्षेत्र के शासकों पर जीवन यापन, साक्षरता और स्वास्थ्य का स्तर उठाने वाले सुधारों के लिए दबाव डाल सकते हैं, जिनकी जरूरत बहुत दिनों से चली आ रही है।

यूरोपीय पुनःनिर्माण कार्यक्रम हमें यूरोप में एक असाधारण अवसर प्रदान करता है। यह एक साहसपूर्ण विचार है, जिसके लिए विदेश सचिव मार्शल प्रशंसा के पात्र हैं।

किन्तु, हमारे धन का उपयोग कैसे किया जाएगा, यह एक बड़ा सवाल है। क्या हमारे प्रधान प्रतियोगी राष्ट्रीयता की उसी परम्परागत धारणा को बढ़ावा देंगे, जिसने रोमी सभ्यता के युग से यूरोप को युद्ध का अखाड़ा बना रखा है ? या कि हम एक समेकित 'संयुक्त राज्य यूरोप' की नींव रखने के व्यावहारिक तरीके निकालेंगे, जो अमरीका का मित्र हो, और एक शान्तिपूर्ण विश्व के निर्माण में हमारे साथ काम करने को तैयार हो ?

हम दक्षिणी अमरीका के करोड़ों दबे हुए लोगों का पक्ष भी ले सकते हैं, और विशिष्ट स्थितियों में उनके जीवन-स्तर को उठाने के लिए ठोस सहायता प्रस्तुत कर सकते हैं। अगर हमने ऐसा किया, तो न केवल दक्षिणी अमरीका, बल्कि सारी दुनिया में ही हम लोगों की भावनाओं को प्रभावित करेंगे।

यही दृष्टि हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में भी अपनाई जानी चाहिए, कि हम उस समय साम्यवाद के प्रतियोगी न बनें जब वह अपने पाँव जमाने लगे, बल्कि साम्यवाद को मौका मिले, इसके पहले ही काम करें। जिन लोगों को गांधी और नेहरू ने उनकी लम्बी नींद से जगाया है, इन संकट पूर्ण प्रारम्भिक वर्षों में भौतिक सहायता की एक उचित मात्रा, अमरीकी कारीगरी की मदद से, उनके जीवन-स्तर को उठाने में सहायक हो सकती है।

किन्तु भौतिक सहायता के प्रस्ताव ही काफी नहीं होंगे। इसके साथ दूरदर्शी नेतृत्व की भी जरूरत होगी। अगर सफलतापूर्वक साम्यवाद का मुकाबला करना है, और स्थायी शान्ति की नींव रखनी है, तो हम अकुशलता और भ्रष्टाचार, प्रतिगामिता या फासिज़्म के साथ समझौता नहीं कर सकते।

हम यह प्रदर्शित करें कि हम अमरीकी लोग न केवल हर प्रकार के अत्याचार के विरुद्ध हैं, बल्कि उन व्यापक आर्थिक और सामाजिक सुधारों के भी समर्थक हैं, जिनकी जरूरत बहुत दिनों से है, और जिनका अभाव आज साम्यवाद को बड़े अनुकूल अवसर प्रदान करता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से, महान् राष्ट्रों ने नेतृत्व का अपना स्थान इस कारण खोया है कि समृद्ध होने पर उन्होंने एक जगह टिकना चाहा, और इस कारण निरन्तर आगे बढ़ती हुई दुनिया से कट गए। कट जाने पर, अपनी सुरक्षा के सम्बन्ध में उनका भय बढ़ा, और भय बढ़ने पर और भी अधिक अनुदारता आई, जिसने धीरे-धीरे पूर्णतः प्रतिगामिता का रूप ले लिया।

आज हम अमरीकी लोग इतिहास के मंच पर केन्द्र में हैं। अगर हमें एक महान् राष्ट्र बने रहना है, तो हमें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लोकतंत्र के एक साहसपूर्ण विश्व-व्यापी कार्यक्रम का समर्थन करना होगा, जो कुशलतापूर्वक बनाया और दृढ़तापूर्वक चलाया जाय।

ऐसा करके ही हमारा देश दो अरब लोगों की दुनिया में आशा का प्रतीक बना रह सकता है, जिनका दृढ़ निश्चय है कि वे पीछे नहीं जाएँगे।

तीन

एक और महान् बहस चले

अमरीकी विदेश सचिव जॉन फॉस्टर डलेस द्वारा जोरदार प्रत्युत्तर की नयी नीति की प्रसिद्ध घोषणा ने उसके सबल खंडन में एक चुनौती भरे लेख को प्रेरित किया। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 28 फरवरी, 1954।

दूसरे महायुद्ध के बाद, हमारी विदेश-नीति के सम्बन्ध में हुई महान् बहसों की सूची, उन ऐतिहासिक कदमों की सूची है, जो अपने ऊपर आई हुई विश्व सम्बन्धी जिम्मेदारियों को स्वीकार करने में अमरीका ने उठाए हैं। ट्रूमन सिद्धान्त, मार्शल योजना, उत्तरी अटलांटिक सन्धि, यूरोप में सेनाएँ भेजना, चीन पर हमला करके कोरिया युद्ध को विस्तार देने से इन्कार करना, ये सभी आधारभूत निर्णय थे, और पूरी तरह सशक्त सार्वजनिक बहस के बाद किये गए थे।

मैं समझता हूँ कि अब एक और महान् बहस होनी चाहिए। 'तात्कालिक प्रत्युत्तर' के सिद्धान्त—तथाकथित डलेस सिद्धान्त—पर बहस करने की तीव्र आवश्यकता है।

वैदेशिक सम्बन्ध परिषद् के समक्ष अपने भाषण में, 12 जनवरी को विदेश सचिव डलेस ने हमारी विश्व रणनीति सम्बन्धी 'नयी दृष्टि' की रूपरेखा प्रस्तुत की, और इसमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह हमारी विदेश-नीति में किया गया एक दूरगामी परिवर्तन प्रतीत होता है। श्री डलेस का ठीक-ठीक मतलब क्या था?

अपने भाषण के कुछ हिस्सों में, ऐसे हिस्सों में जिन पर वे बहुत जोर देते हैं, वे स्थानीय प्रतिरोध की, सीमित-युद्ध की धारणा के लगभग पूर्ण परित्याग का प्रस्ताव करते प्रतीत होते हैं। वे 'स्थानीय प्रतिरक्षात्मक शक्ति पर कम निर्भर रहने, और निरोधक शक्ति पर व्यापक निर्भरता द्वारा निरोध' पर जोर देते हैं।

वे कहते हैं कि पहले "हमें जरूरत थी कि आर्कटिक क्षेत्र और उष्ण क्षेत्रों में, एशिया, निकट पूर्व और यूरोप में, समुद्र, स्थल, और वायु में, पुराने हथियारों से और नये हथियारों से लड़ने को तैयार रहें।" अब कहा जाता है कि "तत्काल, अपनी पसन्द के साधनों से, अपनी पसन्द के स्थानों पर प्रत्युत्तर देने की विशाल क्षमता पर मुख्यतः निर्भर रहने के······(एक नए) मूल निर्णय" से यह जरूरत बदल गई है।

'तत्काल प्रत्युत्तर' को हमेशा आण्विक बमबारी के रणनीतिक प्रयोग से जोड़ा जाता रहा है। 'अपनी पसन्द के स्थानों' पर प्रत्युत्तर देने में आक्रमण के क्षेत्र के

बाहर के स्थान भी आते हैं, क्योंकि आक्रमण का क्षेत्र तो शत्रु की पसन्द का होता है।

सब मिलाकर, प्रशासन यह कहता प्रतीत होता है कि भविष्य में रूस या चीन द्वारा दुनिया में कहीं भी ग़ैर-कम्युनिस्ट क्षेत्र पर किये गए आक्रमण से निपटने में उसका इरादा मुख्यतः साम्यवादी देशों के प्रमुख नगरों पर रणनीतिक वायुसेना द्वारा आण्विक आक्रमण पर निर्भर रहने का है। उच्च शासकीय सूत्रों के इस सम्बन्धित वक्तव्य से भी इस व्याख्या की पुष्टि होती है कि "यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषण है, जो श्री डलेस ने कभी भी किया है, या कभी भी करने की संभावना है।"

अगर नयी नीति यही है, तो आक्रमण को निरुत्साहित करने में, और आक्रमण होने पर उसे पीछे हटाने में इस नीति के सफल होने की संभावनाएँ क्या हैं? जैसा श्री डलेस कहते हैं, क्या सचमुच इससे हमें 'कम कीमत पर अधिक सुरक्षा' प्राप्त होगी?

पहले, हम यह मान लें कि पश्चिमी यूरोप के लिए यह नीति नयी या अपरीक्षित नहीं है। निस्सन्देह, रूस बहुत पहले से जानता है कि यूरोप पर आक्रमण को हम अपने ऊपर हुआ आक्रमण समझेंगे। और ऐसे आक्रमण के उत्तर में हम उसके विरुद्ध अणु-बम का प्रयोग करेंगे; यद्यपि इसके बाद होने वाले सामान्य युद्ध में संभवतः हमारे अपने देश में व्यापक आण्विक विध्वंस होगा।

लेकिन क्या अमरीका इसके लिए तैयार होगा कि एशिया में हुए स्थानीय आक्रमण का सामना करने में भी वही भयानक खतरे उठाए—मिसाल के लिए अफगानिस्तान, ब्रह्मा, ईरान या इण्डोनीशिया में? कोरिया युद्ध की हमारे ऊपर जो गंभीर प्रतिक्रिया हुई थी, और हिन्द-चीन में उससे भी अधिक सीमित रूप में फँसने की सम्भावना की जो प्रतिक्रिया हुई, उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि हम इसके लिए तैयार नहीं होंगे।

किसी भी सूरत में, विशाल, विकेन्द्रित चीन पर हमारे आण्विक आक्रमण का कितना प्रभाव पड़ सकता है? सोवियत रूस के विपरीत, चीन में कोई बड़े औद्योगिक केन्द्र नहीं हैं। मंचूरिया में इस्पात का कुल उत्पादन डेलावेयर में 'यूनाइटेड स्टेट्स स्टील' कारखाने के उत्पादन का आधा भी नहीं है।

चीनी अर्थतंत्र परिवहन और संचार की अत्यधिक विकसित व्यवस्थाओं पर निर्भर नहीं है। चीनी सेनाएँ गतिशील हैं, छापामार युद्ध में और सम्बन्धित इलाके से ही रसद प्राप्त करने में शिक्षित हैं, और पश्चिमी सेनाओं में संभरण और समर्थन की जो विस्तृत व्यवस्था होती है, उसके बिना भी काम कर सकती हैं।

हम इसकी आशा नहीं कर सकते कि चीनी नगरों के आण्विक विध्वंस का कोई और नतीजा निकलेगा, सिवाय एक लम्बे, फैले हुए, अनिर्णायक संघर्ष के, जिसमें सम्भव है चीन अपने मुख्य साधन, जनशक्ति, से अधिकांश एशिया महाद्वीप पर अधिकार करले।

और क्या इस नीति में एक अधिक व्यापक प्रश्न, वस्तुतः एक आधारभूत नैतिक प्रश्न निहित नहीं है, जिसके सम्बन्ध में हमें पूरी तरह समझ-बूझ कर निर्णय करना चाहिए ? हम एक धार्मिक राष्ट्र हैं. हमारा विश्वास है कि ईश्वर के समक्ष मनुष्य पवित्र है। हम मनुष्य के परम मूल्य के सम्बन्ध में अपने लोकतांत्रिक विश्वास पर गर्व करते हैं। यही विश्वास है जो हमारी जीवन विधि को साम्यवादियों की जीवन-विधि से भिन्न बनाते हैं।

किन्तु, अगर हम चीन के नगरों पर बमबारी करने की धमकी देते हैं, तो यही प्रतीत होगा कि सोवियत रूस के नगरों के विपरीत, हम ऐसे बड़े नगरों में एकत्रित करोड़ों स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों को नष्ट करना चाहते हैं, जिनका सैनिक या औद्योगिक केन्द्रों के रूप में, लगभग कुछ भी महत्त्व नहीं है। क्या हम उन लोगों पर नियन्त्रण करने वाले शासकों को सजा देने के लिए, असहाय लोगों की ऐसी भयानक क्षति के लिए तैयार हैं ?

साम्यवादी प्रचार ने पहले ही करोड़ों एशियावासियों को यह विश्वास दिला दिया है कि हमने जर्मनी पर अणुबम न गिराकर जापान पर गिराया, क्योंकि हम एशियावासियों को नीची कोटि का मानते हैं। रूसी नगरों के अछूते रहने पर, अरक्षित चीनी नगरों का आण्विक विध्वंस क्या सारे एशिया को हमारा कटु और कठोर शत्रु नहीं बना देगा ?

यूरोप की स्थिति क्या है ? यूरोप में हमारी सबसे नाजुक कूटनीतिक समस्या यूरोपीय राष्ट्रों की एकता को सुरक्षित और सशक्त बनाए रखने की है। क्या श्री डलेस की नयी नीति इस समस्या की आवश्यकताओं को पूरा करती है ? श्री डलेस द्वारा घोषित नई रीति के फलस्वरूप, हमारे यूरोपीय मित्र हमारे साथ सम्बन्ध रखने में अधिक उत्साहित होंगे, या कम ?

हम अमरीकी लोग तीसरे महायुद्ध में सब कुछ दाँव पर लगा देने का खतरा उठाने को तैयार हो सकते हैं, जो 'आण्विक प्रत्युत्तर' की नई नीति में निहित है। किन्तु आण्विक प्रत्याक्रमण होने पर हमसे भी कहीं अधिक क्षति रूसी अड्डों से कुछ सौ मील की ही दूरी पर स्थित हमारे यूरोपीय मित्रों की होगी, जो पहले ही युद्धों से थके हुए हैं। ऐसा सन्देह होने पर कि हमारी नई नीति तीसरे महायुद्ध का अनावश्यक खतरा उठाती है, यूरोपीय प्रतिरक्षा के आवश्यक कार्य के प्रति उनका उत्साह बिलकुल ढीला पड़ जा सकता है।

एक और आधारभूत प्रश्न है—अन्तर्राष्ट्रीय आण्विक नियन्त्रण की जो कुछ आशा अभी भी शेष है, उस पर नयी नीति का क्या प्रभाव पड़ेगा ?

अपने लक्ष्यों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए हमने जो सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं, उनमें एक यह भी है कि हमने पूरे दिल से और दूरदर्शिता के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन आण्विक हथियारों के व्यावहारिक अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण का समर्थन किया है।

अगर हम शान्ति रक्षा के लिए लगभग पूरी तरह अणु-बमों पर निर्भर रहने की ओर बढ़ते हैं, तो संभव है कि इससे आण्विक निरस्त्रीकरण की वह संभावना नष्ट हो जाय, जिसकी इच्छा अधिकांश मनुष्यों में अणु-युग के आरम्भ से ही रही है। और इसके लिए हम दुनिया के सामने पूरी तरह जिम्मेदार होंगे।

मैं समझता हूँ कि एक अन्य प्रश्न पर भी गम्भीरता से विचार होना चाहिए, जिसका सम्बन्ध हमारे शासन के मूल ढांचे से है। संविधान के अन्तर्गत, कांग्रेस को और केवल कांग्रेस को ही, युद्ध घोषित करने का अधिकार है।

अगर, मिसाल के लिए चीनी सेनाएँ इण्डोनेशिया पर आक्रमण करती हैं, तो क्या राष्ट्रपति स्वयं चीन के विरुद्ध आण्विक प्रत्याक्रमण आरम्भ करने के पहले कांग्रेस से स्वीकृति माँगेंगे ? अगर हाँ, तो प्रत्याक्रमण 'तात्कालिक' कैसे हो सकता है, और क्या इसका खतरा न होगा कि इधर कांग्रेस विचार करती रहे, उधर रूस पूर्वानुमान के आधार पर, अमरीकी नगरों पर अपनी ओर से भीषण आण्विक हमले कर दे ?

या कि ऐसी संभावना को देखते हुए, राष्ट्रपति स्वयं अपने अधिकार से रणनीतिक वायु-सेना के बमवारों को हमले का आदेश देगा, और कांग्रेस को अपने सवैधानिक अधिकार के उपयोग का मौका दिए बग़ैर ही तीसरे महायुद्ध को न्योता देगा, या उसे शुरू कर देगा ?

एक अन्य प्रश्न—हमारे सामने जो स्थिति है, उसे लगभग पूरी तरह सैन्य-शक्ति के सन्दर्भ में देखकर, और वह भी केवल एक प्रकार की सैन्य-शक्ति के सन्दर्भ में देख कर, क्या नई नीति साम्यवादी खतरे के चरित्र और व्यापकता का अनुमान वास्तविकता से कम नहीं लगा रही ?

शीत-युद्ध की सर्वप्रमुख विशेषताओं में से एक यह भी है कि साम्यवादियों ने कहीं भी रूसी सेनाओं द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही नहीं की है। वास्तव में, बाहरी सैनिक आक्रमण के द्वारा लौह आवरण की सीमाओं को बदलने का प्रयास भी केवल कोरिया में ही किया गया।

इसके बजाए, हमारे सामने प्रभावकारी सोवियत कार्यपद्धतियों के कई विभिन्न रूप आए हैं। ईरान में 1946 में रूसियों ने उत्तरी प्रान्तों में एक ऐसे विद्रोह का समर्थन किया, जो स्पष्टतः मास्को के आदेश पर ईरानी साम्यवादी दल द्वारा आरम्भ किया गया था।

यूनान, ब्रह्मा, मलय, हिन्दचीन, इण्डोनेशिया, फ़िलीपीन और स्वयं चीन में, सुसगठित और भली भाँति प्रशिक्षित स्थानीय सेनाओं या छापामार दस्तों के द्वारा लड़ाई चलाई गई है, जिन्हें बहुधा रूसी हथियार और रूसी विशेषज्ञों की सलाह उपलब्ध रही है।

हर उस देश में, जहाँ शासन अपने देश के लोगों के स्पष्ट बहुमत की निष्ठा प्राप्त करने में सफल रहा है, इन साम्यवादी हमलों को सफलतापूर्वक रोका और पराजित

किया गया है। किन्तु जहाँ औपनिवेशिक शक्ति हठपूर्वक बनी रही है, या जहाँ साम्यवाद के विरोध का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में रहा है जिन पर लोगों को विश्वास नहीं रहा, वहाँ बड़े पैमाने पर पश्चिमी सैनिक और आर्थिक सहायता, यहाँ तक कि पश्चिमी सेनाओं का हस्तक्षेप भी निर्णायक नहीं सिद्ध हुआ।

अन्य मामलों में, विशेषत. चेकोस्लोवाकिया में, सोवियत रूस ने स्थानीय साम्यवादी दलों के सुसंगठित विध्वंसात्मक प्रयासों का सहारा लिया है। इस प्रकार विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा में, रूस ने हमेशा बड़ी ही लचीली रणनीति अपनाई है।

साम्यवादी खतरे के यही रूप हमारे सामने सबसे अधिक आते हैं, जो बाह्य आक्रमण का रूप नहीं ग्रहण करते। नई नीति इन खतरों का सामना किस प्रकार करती है?

इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि रूस कुछ नए क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है। मिसाल के लिए, इस बात के सभी संकेत मिलते हैं कि रूस का इरादा अपने तेजी से बढ़ते हुए उत्पादन का उपयोग एक ज़ोरदार व्यापारिक प्रयास में करने का है, जिसका उद्देश्य न केवल रूसी अर्थतन्त्र की सहायता करना होगा, बल्कि पश्चिमी राष्ट्रों में नई फूट पैदा करना और एशिया की नई सरकारों के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित करना भी होगा।

इसके भी संकेत मिल रहे हैं कि रूस आगे चलकर एक चतुःसूत्री सहायता कार्यक्रम चलाए। राजनीतिक, आर्थिक और अर्द्ध-सैनिक उपायों से प्रस्तुत रूस की बहुमुखी चुनौती के समक्ष, केवल अणु-बमों का सहारा लेने से क्या हमारा काम चल सकता है?

उदाहरण के लिए, क्या एशिया में ऐसे गतिशील और स्वतंत्र राष्ट्रों के विकास की आशा, और उसके लिए काम करना हमने बन्द कर दिया है, जो हमारे लिए नहीं वरन् स्वतन्त्र रहने के, स्वयं अपने अधिकार के लिए लड़ने को तत्पर हों?

हमारे अपने पिछड़ रहे चतुःसूत्री सहायता कार्यक्रम के बारे में क्या नीति है, जिसका श्री डलेस ने केवल ज़िक्र भर किया?

हमारे प्रतिरक्षा प्रयास और खर्च के बोझ में कोई बड़ी कटौती तभी हो सकती है, जब दुनिया के उन हिस्सों में स्थानीय शक्ति का विकास हो, जहाँ साम्यवादी आक्रमण या विध्वंसक कार्यवाही का खतरा है। यह स्थानीय शक्ति केवल वास्तव में स्वतन्त्र शासनों, और स्वस्थ, बढ़ते हुए आर्थिक ढाँचों के विकास से ही उत्पन्न हो सकती है।

हम आशा कर सकते हैं कि ये सरकारें हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करेंगी, किन्तु हमारे साथ हुए रोज़ ब रोज़ के समझौतों से कहीं अधिक महत्त्व इस बात का है कि वे स्वयं अपनी एक गतिशील आस्था विकसित करें, जिसके लिए वे आवश्यकता पड़ने पर किसी भी आक्रान्ता से लड़ने को तैयार हों।

आणविक प्रहार शक्ति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निरन्तर बना रहने वाला

स्थान है। किन्तु यह मान लेना मूर्खतापूर्ण होगा कि एशिया के ललचाने वाले शक्ति-शून्यों में यह शक्ति साम्यवादी आक्रमण से सुरक्षा प्रदान कर सकती है। विध्वंसक कार्यवाहियों और आन्तरिक क्रान्तियों के सम्बन्ध में ऐसा मानना और भी मूर्खतापूर्ण होगा।

उदाहरण के लिए, जब हम दुनिया के सामने घोषणा करते हैं कि हम हिन्दचीन में सीधे कभी नहीं फंसेंगे, तो कोरिया से भी कहीं अधिक, हम हिन्दचीन में साम्यवादियों को न्योता देते हैं।

बड़े पैमाने पर आण्विक प्रत्याक्रमण की धमकियों की अपेक्षा, जिनके बारे में लौह आवरण के दोनों ओर हर जानकार व्यक्ति को पता है कि जब तक हमारे यूरोपीय मित्रों पर प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं होगा, तबतक इन धमकियों पर अमल होने की संभावना नहीं है, लचीले, गतिशील सैनिक दस्ते इन स्थितियों में आक्रमण को निरुत्साहित करने में अधिक उपयोगी हो सकते हैं, जिन के बारे में सारी दुनिया को मालूम है कि संकट के अवसरों पर हम उनका उपयोग करने को तैयार हैं।

हमारी कूटनीति को दृढ़ होने के साथ-साथ दुनिया की उन क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रति भी पूरी तरह जागरूक होना चाहिए, जो भविष्य का निर्माण कर रही हैं। उसे इतना चुस्त होना चाहिए कि दूर तक फैले साम्यवादी जगत के अन्तर्विरोधों को देखकर उनका उपयोग कर सके।

उसे साम्यवादी राष्ट्रों की कार्यवाहियों के फलस्वरूप, सम्मोहन में पड़कर नकारात्मक दृष्टिकोण अपना लेने के खतरे से बचना चाहिए। उसे व्यावहारिकता की अन्तिम सीमा तक, सभी लोगों की स्वतंत्र होने की आकांक्षाओं का समर्थन करना चाहिए।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि वह उस दृष्टिकोण को बनाए रखे, जिसे हमारे पूर्वजों ने स्वतंत्रता के घोषणा-पत्र में 'मानव-जाति के मतों का उचित आदर' कहा था।

इन निर्णायक प्रश्नों पर एक 'महान् बहस' से हम ऐसे सन्तुलित हल खोज सकते हैं, जो हमें चुनौती का सामना करने के योग्य बनाएं। ऐसी बहस ही, जिसमें कांग्रेस, और देश के लोग भाग लें, लोकतंत्र में विदेश-नीति के विकास की एकमात्र उचित और टिकाऊ रीति है।

क्या आशा का कोई मार्ग नहीं ?

1954 में, जब दुनिया ने हाइड्रोजन बम की संभावनाओं को पहली बार समझा थी बौल्स ने कुछ आशाप्रद विकल्प सुझाए, और कहा कि सशक्त राष्ट्रीय नेतृत्व के अन्तर्गत ये मार्ग खुले हैं। न्यूलीडर में प्रकाशित एक लेख से 26 जुलाई 1954।

एडमण्ड बर्क ने एक बार इंगलिस्तान की संसद् में अपने सहयोगियों को सलाह दी थी कि जब बुरे लोग आपस में मिल जाएँ, तो अच्छे लोगों को भी साहचर्य स्थापित करना चाहिए। अन्यथा वे एक-एक करके नष्ट हो जाएंगे, एक तिरस्करणीय संघर्ष में ऐसा बलिदान, जिस पर किसी को दया नहीं आएगी"

आज जिस संघर्ष का खतरा सामने है, वह आण्विक और पूर्ण हो सकता है, किन्तु इस कारण कम तिरस्करणीय नहीं हो जाता। इससे बचने के लिए अच्छे लोग किस प्रकार साहचर्य स्थापित करें ? कौन-से विकल्प हमारे सामने हैं, जिनमें से हम चुनाव कर सकते है ?

पिछले अठारह महीनों में हमारे सामने असम्भव विकल्प रखे गए हैं। इनमें से बहुतों ने तो नारेबाजी का ऐसा रूप ले लिया है, कि उनका कोई अर्थ ही नहीं रह गया। हम से कहा गया है कि हमें 'निवारक युद्ध' और 'तुष्टीकरण' के बीच, 'विरोध नीति' और 'मुक्ति' के बीच 'खैराती कार्यक्रमों' और शुल्क-बोझिल 'सहायता नहीं व्यापार' प्रस्ताव के बीच, 'अपने साधनों के अन्दर घरेलू अर्थनीति और 'लगभग दीवालियापन' के बीच चुनाव करना है।

ऐसा कहना असहनीय पराजयवाद है कि हम जहाँ पहुँच गए हैं वहाँ से वापसी का कोई मार्ग नहीं है, और सारे ही वांछनीय मार्ग बन्द हो गए हैं। जब तक बम गिरने न लगें, तब तक सद्बुद्धि वाले व्यक्ति एक-दूसरे के सामने भी यह स्वीकार नहीं कर सकते कि ऐसी स्थिति आ गई है।

अगर हम खुद पल्ला झाड़कर दूसरों पर जिम्मेदारी डाल देते हैं, तो हममें से कोई भी एक ऐतिहासिक द्रोह की व्यक्तिगत, नैतिक जिम्मेदारी से बच नहीं सकता हाइड्रोजन-बम से ग्रस्त भविष्य की अपेक्षा अधिक आशाप्रद विकल्प हमारे सामने मौजूद हैं, ऐसे विकल्प जो हमारी परम्पराओं और हमारे सिद्धान्तों के अधिक अनुकूल हैं।

ये विकल्प नये नहीं हैं। हमें केवल पुराने और सार्विक सूत्रों के कुछ परिवर्तित

रूपों को लेकर ही काम करना है। नए भयावह हाइड्रोजन बमों ने केवल कुछ पुरानी मानवीय द्विविधाओं को नाटकीय रूप देकर तत्काल उन पर ध्यान केन्द्रित कर दिया है। और इन द्विविधाओं में निहित मूल नैतिकता से बचा नहीं जा सकता।

जब हमारे बजट में कटौती करने वाले चतु.सूत्री कार्यक्रम का गला घोटते हैं, तो वे कहते हैं कि उनका निर्णय आर्थिक है लेकिन वह एक नैतिक निर्णय भी है।

जब आपत्कालीन शरणार्थी कार्यक्रम पर ऐसे प्रशासकों और विनियमों का बोझ लाद दिया जाता है, जो कानून की भावना के अनुकूल नहीं हैं, तो यह केवल प्रशासकीय मामला ही नहीं है नैतिक मामला भी है।

जब हम अल्पसंख्यक समूहों के साथ भेदभाव बरतते हैं, तो हम न केवल ऐसे परमाधिकार का प्रयोग करते हैं जिसकी अब गुंजाइश नहीं रही, वरन् अपने जैसे एक मनुष्य की हीनता का नैतिक आकलन भी करते हैं।

जब स्थानीय देशभक्त संयुक्त राष्ट्र संघ को लेकर होश-हवास खो बैठते हैं, तो वे केवल सनक भरी प्रान्तीयता का ही प्रदर्शन नहीं करते, नैतिक सन्तुलन का अभाव भी प्रदर्शित करते हैं।

हमें ऐसे प्रेतों के पीछे भागना छोड़ देना चाहिए, जिनका हमारी स्वतन्त्रता या सुरक्षा में कभी कोई योग नहीं हो सकता, और उसके बजाए अपने समय और अपनी प्रतिभा का उपयोग महत्वपूर्ण मानवी समस्याओं का हल करने की चेष्टा में करना चाहिए, जो बहुत दिनों से उपेक्षित चली आ रही हैं।

हाइड्रोजन बम ऐसे समय में आया है, जबकि दुनिया के बड़े हिस्से में यथास्थिति के विरुद्ध विद्रोह की लहर उठ रही है। यह विद्रोह कई रूप लेता है—एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रीयता, और उपनिवेशवाद का विरोध, यूरोप में शीत युद्ध के संघर्ष से गहरी निराशा, अमरीका में दूसरे दर्जे की नागरिकता के विरुद्ध नीग्रो लोगों का संघर्ष, सभी अर्द्ध-विकसित क्षेत्रों में खेती सम्बन्धी सुधारों और औद्योगीकरण का संघर्ष।

साम्यवादियों ने ये समस्याएँ उत्पन्न नहीं की। वे केवल इनका उपयोग करते हैं।

हमारी यह उक्ति बिलकुल सही और अपने आप में जरूरी है, कि 'प्रत्यक्ष आक्रमण' का सामना हम सैनिक कार्यवाही से करेंगे। किन्तु आन्तरिक जन असन्तोष की जिन आकस्मिक स्थितियों को साम्यवादी अपनी चालों से उत्पन्न करते, और अन्ततोगत्वा जिनका वे संचालन करते हैं, उनकी गहरी जड़ें पीड़ा, दमन, और गरीबी में होती हैं, और उनका सामना करने के लिए यह घोषणा काफी नहीं है। और दक्षिण-पूर्वी एशिया में पिछले दिनों हमारी असफलता इस मूल तथ्य को रेखांकित करती है।

जब तक विश्व क्रान्ति रूस का लक्ष्य बनी रहती है, तब तक सोवियत गुट के साथ स्थायी समझौते का कोई आधार नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम अणु-शक्ति के व्यावहारिक नियन्त्रण, लागू किए जा सकने वाले निरस्त्रीकरण,

और संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिक सबल बनाने की योजनाएँ प्रस्तुत करना बन्द कर दें।

ऐसा प्रतीत होता है कि रूस ने हमारे ऊपर एक मानसिक शिकंजा डाल दिया है। हमें उस शिकंजे को काट कर बाहर निकलने की कोशिश करनी चाहिए। रूस क्या कहता या करता है, इसकी चिन्ता किए बग़ैर, विश्व के रोग के मर्म में जो आधारभूत समस्याएँ हैं, हमें उन को हल करने में लगना चाहिए।

ऐसे बहुतेरे रचनात्मक कार्य हैं, जिन पर रूस कोई नियंत्रण नहीं लगा सकता। मिसाल के लिए, संयुक्त-राष्ट्र विश्व विकास अधिकरण के निर्माण को रूस नहीं रोक सकता। उसी तरह, विश्व स्वास्थ्य संगठन, खाद्य और खेती संगठन, शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन, बाल-निधि और स्वयं महासभा जैसी संयुक्त राष्ट्र संघ की सफल एजेन्सियों के विकास पर रूस कोई रोक नहीं लगा सकता।

जो राष्ट्र रूस को साथ लिए बग़ैर सहयोग करना चाहें, उनके द्वारा अणुशक्ति के संचय को रूस नहीं रोक सकता।

वाशिंगटन में प्रबुद्ध नेतृत्व पर, या अमरीकी लोगों के दिलों में सक्रिय सद्भावना पर रूस कोई रोक नहीं लगा सकता।

अमरीका किसी समय इतिहास की आशा था, लेकिन पिछले दिनों दुनिया के दो अरब लोगों के मन और भावनाओं को प्रभावित करने के लिए बहुत कम सामग्री प्रस्तुत करता रहा है। अमरीकी जिन बातों को कहने के लिए पैदा हुए थे, वे बातें हम लोग क्यों नहीं कह रहे हैं? पहले अणु-बम एशिया में गिराने के बाद, हम फिर नए बमों के परीक्षण के लिए वहीं क्यों गए। आस-पास के निर्दोष जापानी मछुआरों से, मनुष्य-जाति की ओर से सार्वजनिक क्षमा-याचना करने का काम हमने दूसरों पर क्यों छोड़ दिया?

अपने महानतम समारम्भ के इन शब्दों को उच्चारित करने का काम हमने पिछले दिनों श्री लंका सम्मेलन में श्री नेहरू पर क्यों छोड़ दिया—"किसी के प्रति भी विद्वेष नहीं, और सबके प्रति उदारता के साथ।" देश में और सारी दुनिया में, लिंकन के देशवासियों के ओठों पर ऐसे शब्द क्यों नहीं हैं?

मास्को के दोष-दृष्टि से ग्रस्त व्यक्ति भी अपनी अपील गरीब और वंचित लोगों को सम्बोधित करते हैं। उन्होंने हमारे नारे चुरा लिए हैं; और हमारे सिद्धान्तों को विकृत करके प्रस्तुत किया है। यह उनकी एक भोंडी चाल है, किन्तु आगे चलकर इस के अच्छे नतीजे निकल सकते हैं। इस अन्तर्ज्ञान का दावा करने वाली अपील की, वर्गविहीन समाज की इस मृग-मरीचिका की, भाईचारे के इस खोखले नारे की, न्याय पर आधारित समाज प्रदान करने के इस झूठे दावे की हम उपेक्षा करते रहें, संभव नहीं है।

इस चुनौती से हमें छुटकारा नहीं मिल सकता, मिलना चाहिए भी नहीं। साम्यवादियों के पाखंड का पर्दाफाश करना हमारे लिए ज़रूरी है, और उसका एक ही विश्वनीय मार्ग है—हम स्वयं अपने पाखंड को खतम करें।

हम मे से जो लोग कम भीरु हैं, वे कम से कम इतना कर सकते हैं कि वर्त्तमान पीढ़ी के सामने जाएँ और अपने काल के कुछ मूल सत्यों के लिए आग्रह करें—कि पृथ्वी पर मनुष्य के भविष्य का नष्ट होना आवश्यक नहीं : कि संकट आएगा ही, इसे स्वीकार कर लेना आवश्यक नही : कि हमारा राजनीतिक कौशल अब भी हमें विनाश से बचा सकता है ; कि हमारे नैतिक प्रतिमान आज भी मौजूद हैं ; कि युद्ध और अन्याय जैसी कुछ वस्तुएँ अन्तहीन प्रतीत हो सकती हैं ; किन्तु ये वस्तुएँ हमेशा गलत होती हैं, इनसे हमेशा लड़ना होगा, और किसी दिन इन पर विजय पानी होगी ।

पाँच

लोगों और विचारों की शक्ति

नौ सैनिक युद्ध कालेज मे दिये गए एक भाषण में श्री बोल्स केवल सैन्य शक्ति पर निर्भर रहने की परम्परा को चुनौता देते हैं, और परिवर्तन तथा क्रान्ति लाने के लिए विचारों और लोगों की शक्तिमय क्षमता पर ज़ोर देते है। न्यूपोर्ट, रोडे आइलैण्ड, 7 जून 1956।

एक रात वाशिंगटन मे भोजन के समय मैंने एक दर्जन मित्रो से 'शक्ति' की परिभाषा पूछी। उनमे सेना के लोग, कांग्रेस-सदस्य और विदेश विभाग के सदस्य थे। मैंने पूछा कि "जब हम लोग शक्ति की बात करते हैं, तो हमारा मतलब क्या होता है?"

एक-एक करके उन्होंने उन वस्तुओ की सूची गिनाई जो उनके विचार से शक्ति का निर्माण करती हैं। इस मिली-जुली सूची में जल, स्थल और वायु सेनाएँ थी, इस्पात उत्पादन की क्षमता थी, औद्योगिक उत्पादन-शक्ति थी, भूगोल, विदेश स्थित अड्डे, और अन्य ऐसी ही वस्तुएँ थी।

यह परिभाषा हमारे युग की मूल गत्यात्मकता की उपेक्षा करती है। आठ वर्षों की संक्षिप्त अवधि मे, लगभग 120 करोड़ लोगों ने—दुनिया की आधी आबादी ने अपना शासन बदला है, और हमारे द्वारा इस प्रकार संकीर्ण रीति से परिभाषित शक्ति का इसमे बहुत कम योग था।

वस्तुत. हर मामले मे शक्ति की परम्परागत धारणा लगभग पूरी तरह यथास्थिति के पक्ष मे थी। बार-बार यह शक्ति अपर्याप्त प्रमाणित हुई, और जो परिवर्तन हुए, उन्होंने इस अपर्याप्तता को रेखांकित किया।

चीन इसका एक उदाहरण है। वहाँ प्रारम्भ में माओ-त्से-तुंग के पास केवल दो सौ राइफ़लें, एक हज़ार व्यक्ति, और साम्यवादी तानाशाही की एक ऐसी धारणा थी, जो पुराने चीनी समाज के सन्दर्भ मे आकर्षक थी, और इसी से माओ ने एक ऐसे जन आन्दोलन का विकास किया, जो बीस वर्ष बाद पूरे राष्ट्र पर विजयी हुआ। यद्यपि चीन की परम्परागत सैनिक और औद्योगिक शक्ति ने आम तौर पर कोमितांग का समर्थन किया था, फिर भी माओ और साम्यवादी चीन के मालिक बन गए।

हिन्द-चीन में भी हमने एक विचार की शक्ति को देखा, जो राष्ट्रीयता से जुड़ा

हुआ था। हिन्द-चीन की स्वतन्त्रता की चुनौती का विघ्यात्मक उत्तर देने में फ्रांस असफल रहा, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रवाद और साम्यवाद का एक सशक्त और विस्फोटक मेल हुआ। चीन की ही भाँति, दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी टैंकों, हवाई जहाजों और सैन्य-शक्ति के अन्य परम्परागत अंगों ने यथा-स्थिति का साथ दिया। फ्रांसीसियों के पास सक्षम सेना थी—संसार की सर्वोत्तम पेशेवर सेनाओं में से एक और हमने उनकी सहायता करने के लिए तीन अरब डालर का सामान वहाँ पहुँचाया फिर भी फ्रांसीसी हारे, और उनके साथ हम भी हारे।

हिन्दुस्तान में हम एक रचनात्मक लोकतांत्रिक विचार की विजय देखते हैं। अहिंसात्मक कार्यवाही द्वारा स्वतन्त्रता सम्बन्धी गांधी की धारणा हिन्दुस्तानी लोगों की प्रकृति और आकांक्षाओं के अनुकूल थी। गांधी ने इस सीधी-सादी कार्य-पद्धति का प्रयोग अपने महान् राजनीतिक कौशल, और प्रशासन तथा संगठन की विशाल क्षमता के साथ किया, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों को अन्ततः हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, ब्रह्मा और श्री लंका को छोड़ना पड़ा।

· परम्परागत अर्थ में अंग्रेजों के पास सैन्य शक्ति का बाहुल्य था। उस समय भी वे दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी सैनिक शक्ति थे। फिर भी, वे गांधी के विचार की शक्ति का सामना करने में असमर्थ रहे।

फिर, इण्डोनेशिया में डच शासकों के पास सामन टैंक, पी-38 राइफिलें और आधुनिक मशीनगनें थी। लेकिन जीत आखिरकार स्वतंत्रता के विचार की हुई।

नतीजा साफ होना चाहिए—यथार्थ हमें बाध्य करता है कि हम 'शक्ति' की अपनी परिभाषा में लोगों की शक्ति और विचारों की शक्ति को भी शामिल करें। हमारे नए, क्रान्तिकारी जगत में ये निर्णायक बल वाली शक्तियाँ हैं, जिनके माध्यम से अधिक अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उत्सुक करोड़ों लोग ऐसे आन्दोलनों में संगठित किए जा सकते हैं जिनमे यथा-स्थिति की सरकारों पर असह्नीय दबाव डाल सकने की क्षमता हो।

दुर्भाग्य वश, हमने बहुधा केवल तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर, अपनी प्रतिष्ठा का समर्थन ऐसे लोगों को दिया है जो अतीत की रक्षा करना चाहते हैं, जबकि करोड़ो व्यक्तियों के मन मे, इसके विपरीत, परिवर्तन की कामना है। फलस्वरूप हम बहुधा हारने वाले पक्ष के साथ नजर आते हैं।

एशिया और अफ्रीका के लोग सचमुच क्या चाहते हैं, मुख्यतः इस सम्बन्ध में स्टालिन के अज्ञान के कारण, सोवियत नीति भी बहुधा असफल रही है। जिस प्रकार हम बहुधा उन आधार भूत शक्तियों को नही समझ पाए, जो काम कर रही हैं, उसी प्रकार सोवियत रूस भी उन्हें अच्छी तरह नही समझ पाया।

सोवियत रूस की सेनाएँ जितना आगे बढ़ सकी थी युद्धोत्तर काल में प्रचार और विध्वंसक कार्यों द्वारा अपने सारे प्रयत्नों के बावजूद रूस यूरोप में उसके आगे एक

वर्ग मील क्षेत्र भी अपने हाथ में नही ले सका। एशिया मे भी रूस को वैसी ही असफलता मिली—जो कुछ आश्चर्यजनक है।

चीन के राष्ट्रपति सन-यात-सेन अपनी नई संघर्षरत सरकार के लिए अमरीकी आर्थिक सहायता प्राप्त करने की चेष्टाओं में असफल होने के बाद, 1923 मे हताश होकर सहायता के लिए रूस की ओर मुड़े। उन्हें विश्वास था कि वे लेनिन और सोवियत रूस से विचार, कार्य पद्धतियाँ, और पूंजी उधार लेने के बाद भी किसी प्रकार उनके द्वारा आत्मसात किए जाने से बच जाएंगे।

सन-यात-सेन की गलती से चीन को मुख्यतः स्टालिन की गलतियो ने बचाया। चीन सरकार के निमत्रण पर बोरोडिन के नेतृत्व मे एक दल यह प्रदर्शित करने के लिए चीन मे आया कि एक आधुनिक अर्द्ध-विकसित राष्ट्र को किस प्रकार सगठित करके बीसवी सदी के अनुरूप बनाया जा सकता है। नव-स्थापित सोवियत शासन के लिए यह कितना बढिया अवसर था।

फिर भी, यह दल अपने कार्य मे बुरी तरह असफल रहा। इसके सदस्य मार्क्सवाद की इस स्थापना के आधार पर काम करते रहे कि क्रान्तियाँ शहरी मजदूरो और छात्रो द्वारा की जाती हैं। उन्होने लेनिन की इस सलाह की पूर्ण उपेक्षा की कि खेतिहर देश मे आखिरी निर्णय किसानो के हाथ मे होता है।

माओ-त्से-तुग ने सोवियत-निर्देशित प्रयत्नो की भूल को समझा, और शहरो से मुँह मोड़कर जिन युगो पुराने अन्यायों से किसान पीडित थे, उनके सरल सन्दर्भ मे किसानो को सगठित करने के लिए गाँवों मे घूमने लगे।

उनका नारा सशक्त और आकर्षक था। माओ ने कहा—"जमीदारो और सूदखोरों को नष्ट कर दो, और तुम आबाद हो जाओगे।" बीस वर्षों के अन्दर ही माओ और उनके निष्ठावान साथी सारे चीन में अपने सन्देश का प्रचार करने मे सफल हो गए।

किन्तु, स्टालिन ने इस बीच चीन से अपनी असफलता से कुछ भी नही सीखा। सारे एशिया मे वे अपनी क्रान्ति को और अपने प्रयत्नो को छात्रो पर, और बहुत कुछ अस्तित्वहीन सर्वहारा वर्ग पर आधारित करते रहे, और किसानो की उपेक्षा करते रहे, जो जनसख्या का 80 प्रतिशत थे, और जिनके हाथ मे राजनीति की कुंजी थी।

इस अनुपयुक्त दृष्टिकोण के परिणाम 1949-50 तक भी, हिन्दुस्तान मे साम्यवादी प्रयत्नों में साफ देखे जा सकते थे। 1948 के अन्त मे हैदराबाद मे एक तूफानी किसान विद्रोह उठ खड़ा हुआ। यह विद्रोह साम्यवादियो के एक 'पथभ्रष्ट' समूह द्वारा सगठित किया गया था, जिन्होने ग्रामीण क्षेत्रों मे ध्यान केन्द्रित करके स्टालिनवादी दल नीति की अवज्ञा की थी। इसका नतीजा निकला कि वे कई हजार गाँवों पर अधिकार करने मे सफल हुए। बड़ी कठिनाई से, और काफी सख्या मे लोगो के हताहत होने के बाद, अन्ततः भारतीय सेना इस विद्रोह को दबा सकी।

मारको के आदेशों, और हिन्दुस्तान में स्वयं अपने साम्यवादी दल की इच्छा के विपरीत, माओ की शिक्षा का अनुसरण करने वाले ये 'पथभ्रष्ट' साम्यवादी, आशंका-जनक बिन्दु तक सफलता के निकट आ गए थे। अगर हिन्दुस्तानी साम्यवादियों ने आम तौर पर उनका सबल समर्थन किया होता तो संभव है कि वे हिन्दुस्तान में अपनी कार्यवाहियों का एक स्थायी अड्डा बनाने में सफल हो जाते। हमारे सौभाग्य से किसानों की निर्णायक राजनीतिक शक्ति को न समझने के कारण, रूस ने उनका समर्थन करने से इन्कार कर दिया।

स्टालिन की मृत्यु के बाद, रूस की कार्यनीति में एक गंभीर परिवर्तन आया है। सारे विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करने के अपने अन्तिम लक्ष्य में कोई परिवर्तन किए बिना, सोवियत रूस अब आर्थिक स्वार्थों के आधार पर यूरोप, एशिया और अफ्रीका से सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता प्रतीत होता है।

उसके राजनीतिक लक्ष्य मूलतः अपरिवर्तित होने पर भी, उन्हें अब सावधानी से पृष्ठभूमि में ही रखा जाता है। इसका सार्वजनिक आग्रह अब ऐसे मूल सुधारों पर है, जिनके बारे में सभी लोग एकमत हैं कि ये सुधार जल्दी से जल्दी हो जाने चाहिए। उसका उद्देश्य एशिया को धीरे-धीरे सोवियत क्षेत्र में खींच लेना है।

ये नई कार्यनीतियाँ हमारे हितों के लिए एक गंभीर खतरा उत्पन्न कर सकती हैं। आज हम अपने औद्योगिक कच्चे माल का लगभग 50 फी सदी एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका से आयात करते हैं। पेली रपट के अनुसार 1965-70 तक यह संख्या बढ़कर संभवतः 70 फी सदी हो जाएगी।

अगर सोवियत रूस की इस नई 'दमघोटू कार्यवाई' के फलस्वरूप, इन विशाल महाद्वीपों में हमारे प्रवेश का मार्ग बन्द हो जाय, तो हमारी सैन्य शक्ति धीरे-धीरे नष्ट होने लगेगी, और हमारा जीवन-स्तर खतरे में पड़ जाएगा।

यही परिणाम है जो हमेशा रूसियों का लक्ष्य रहा है। अब उनकी चालें अधिकाधिक कौशलपूर्ण हैं।

हमारी अपनी नीतियों का निर्माण करने वालों के लिए उन राष्ट्रों का पक्ष लेना स्वाभाविक और मानवीय है, जो 'हमारे पक्ष' में खड़े होने को, और ऐसा न करने वालों की निन्दा करने को तैयार हों।

किन्तु हम संयुक्त राज्य अमरीका के प्रति निष्ठा खरीद नहीं सकते। हम एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका वालों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे अमरीका के जीवन-स्तर को उठाने के लिए अपनी जान देंगे। सारी मनुष्य जाति के समान, वे केवल अपने देश के लिए, और जिसे वे अपना हित समझते हैं, उसी के लिए बलिदान करेंगे।

अतः, हम उनके स्वार्थ के साथ अपने स्वार्थ का मेल बिठाना होगा। और यह काम नारों से नहीं, बल्कि ठोस कार्यवाही के द्वारा करना होगा। हमें ऐसे सामान्य लक्ष्यों

की रक्षा करने और उन्हे आगे बढाने के लिए तैयार रहना चाहिए, जिन्हे वे लोग महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

सौभाग्यवश, इन लक्ष्यो को समझना और स्वीकार करना हम अमरीकियों के लिए आसान है—औपनिवेशिक शासन से आज़ादी, बिना जाति, धर्म, या रंग सम्बन्धी किसी भेदभाव के सभी लोगो की मानवी प्रतिष्ठा, और आर्थिक अवसरों का विस्तार।

हम कितने वस्तुनिष्ठ रहे हैं ?

विदेशों में हमारी नीतियों की 'वैचारिक शून्यता' को सशक्त चुनौती देते हुए श्री बौल्स आग्रह सम्बन्धी एक बड़े परिवर्तन का, अमरीका की महानता के उपयुक्त एक नए दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन 20 मई, 1956।

वर्तमान अमरीकी विदेश-नीति के भावी आलोचक शायद एक ऐसी बात पर ध्यान दें, जिस पर इस समय बहुत कम टीका होती है—उसकी वैचारिक शून्यता, किसी ऐसे उद्देश्य का अभाव जिसमें बहुसंख्यक लोग साझीदार हों।

डेमाक्रैट लोगों के साथ-साथ बहुतेरे रिपब्लिकन भी हमारी विदेश-नीति के पुनः मूल्यांकन की, कष्टदायक पुनः मूल्यांकन की माँग कर रहे हैं।

किन्तु अगर यह माँग केवल आय-व्यय और कार्यनीतियों पर पुनर्विचार करने तक ही सीमित रहती है, तो यह एक अत्यधिक संकुचित दृष्टिकोण होगा। विदेश-नीति अपने आप में स्वयं कोई लक्ष्य नहीं है, यह एक साधन है, जिसके द्वारा कोई राष्ट्र अपनी सीमाओं के बाहर अपने राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयास करता है।

इससे एक आधारभूत प्रश्न उठता है—अमरीका का राष्ट्रीय उद्देश्य क्या है ? अमरीका दुनिया से क्या चाहता है ? वह अपनी ओर से किस योगदान के लिए तैयार है ?

जरूरत इस बात की है कि हम न केवल अपने सैनिक कार्यक्रम का, अपनी मित्रताओं का और अपने विदेशी सहायता कार्यक्रम का पुनः मूल्यांकन करें, बल्कि उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि हम अन्य मनुष्यों के साथ अपने सम्बन्धों का, विश्व के मामलों में अपनी उचित भूमिका का, और अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों और आकांक्षाओं का पुनः मूल्यांकन करें।

विश्व के मामलों में वैचारिक दीवालियेपन का यह एक प्रमाण है कि अमरीकी विदेश-नीति में सिद्धान्तों को उचित स्थान देने का सुझाव देने वाले पर तत्काल वास्तविकता से अपरिचित होने का आरोप लगा दिया जाता है।

वे यह मान लेते हैं कि निजी व्यवहार में सिद्धान्तों का पर्याप्त महत्त्व होता है। लेकिन विदेश-नीति का मामला अधिक जोखिम भरा होता है। उनके कथनानुसार, इसमें हमारा ध्यान मुख्यतः शक्ति की कठोर-बुद्धि समझ पर होना चाहिए।

मैं सोचता हूँ कि शक्ति की यह 'रक्षा-प्राचीर' वाली धारणा ही क्या हमारी वर्त्तमान विश्व-व्यापी द्विविधा के मर्म मे नही है, जिसे बहुतेरे लोग अन्तर्राष्ट्रीय 'यथार्थवाद' का परम रूप मान लेते हैं ? हम कुछ ऐसे खतरनाक अवरोधों को देखें, जो इस संकुचित दृष्टिकोण ने अभी भी हमारे सामने उत्पन्न कर दिए हैं।

पाँचवें दशक मे हमारा यह मान लेना कहाँ तक यथार्थ के अनुरूप था कि राष्ट्रवादी चीन की संकुचित आधार वाली सरकार, जो सामन्तवादी जमींदारी पर आधारित थी, और जिसके नेतृत्व का चीनी लोगो से सम्पर्क टूट गया था, माओ-त्से-तुग द्वारा चलाई गई क्रांतिकारी लहर को रोकने मे समर्थ हो सकती थी ?

हमारा यह मान लेना कहाँ तक यथार्थ के अनुकूल था, कि एक कुशलतम पेशेवर सेना भी हिन्दचीन में साम्यवादियों को रोक सकती थी, जबकि साम्यवाद-विरोधी प्रयास मृतप्राय फ्रांसीसी उपनिवेशवाद पर आधारित था, जो एक पुरानी पड चुकी भूमि-व्यवस्था से बधा हुआ था, और स्थानीय भ्रष्टाचार ने जिसे जकड रखा था ?

कोरिया मे सयुक्त राष्ट्र सघ की सेनाओं को ऐसा मानकर अड़तीसवें अक्षांश के पार ले जाना कहाँ तक यथार्थ के अनुकूल था, कि चीन की चेतावनी केवल गीदड़ भभकी थी, और चीन युद्ध में प्रवेश करने की हिम्मत नही कर सकता था—जबकि तीन वर्ष बाद हमे उसी रेखा पर युद्ध-विराम स्वीकार करना पड़ा ?

हमारा यह मान लेना कहाँ तक यथार्थ के अनुकूल था कि अपने अच्छे मित्र पाकिस्तान को हथियारो से लैस करके हम इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को अधिक सुरक्षित बना सकते हैं, जबकि दक्षिण एशिया के शक्ति-सतुलन को इस प्रकार परिवर्तित करने के फलस्वरूप, अफ़ग़ानिस्तान ने भयभीत होकर रूसी सहायता स्वीकार कर ली, और हिन्दुस्तान ने अपनी सेना मे काफी अधिक वृद्धि की ?

अपने पश्चिमी उपनिवेशवादी मित्रो से मतभेद बचाने के लिए, अफ्रीका में राष्ट्रवाद के सशक्त, अनिवार्य की विकास की उपेक्षा करना हमारे लिए कहाँ तक यथार्थ के अनुकूल था ?

हमारा यह मान लेना कहाँ तक यथार्थ के अनुकूल था कि बिना राजनीतिक या आर्थिक आधारों के, उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि (रूस की) नई कार्य नीतियों से दुर्बल नही होगी, और यह कि हमारी अपनी शर्तों के अनुसार जर्मनी का एकीकरण हो सकता है ?

ऐसे विचारो मे जो सकीर्ण दृष्टि परिलक्षित होती है, उससे सकेत मिलता है कि विश्व क्रांति के युग मे हमारे बहुतेरे नीति-निर्माता विचारों और लोगो की शक्ति को नहीं देख पाते।

जब तक मनुष्यों के मन विचारों से प्रभावित होते हैं, जब तक मनुष्य और उनकी आकांक्षाएँ शक्ति का एक मुख्य अंग हैं, तब तक अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विचार राष्ट्रों मे उलट-पलट करते रहेंगे, सेनाओं की शक्ति को झुठलाते रहेंगे, और इतिहास का निर्माण करते रहेंगे। मेरा विश्वास है कि शक्ति के इस मूल पक्ष की स्वीकृति

नया यथार्थवाद है। विल्सन और फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट इसे समझते थे। हमारी पीढ़ी के नेताओं ने बहुधा इसकी उपेक्षा की है।

हमें विचारों और प्रति-रक्षा के बीच संतुलन प्राप्त करने की चेष्टा करनी होगी। एक ओर दुनिया के ऐसे सभी लोगों को एक संघर्षरत नई स्वतत्रता के झंडे के नीचे लड़ना होगा, और आज ऐसे लोगों का विशाल बहुमत है, जिनके लक्ष्य वही हैं जो हमारे—आत्म-निर्णय, मानवी प्रतिष्ठा और बढ़ते हुए अवसर। दूसरी ओर हमें एक विशाल, सक्षम प्रतिरक्षा-कवच निर्मित करना होगा, जिसके पीछे इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सशक्त प्रयास किए जा सकें।

अगर हम उस तेजी से बदलते हुए, क्रांतिकारी विश्व के संदर्भ मे अपने हितों पर विचार करें, जिसमे हम रह रहे हैं, तो हम पाएँगे कि हमारे हित आश्चर्यजनक सीमा तक दूसरे लोगो के हितों से मिलते हैं।

एक वर्ष पहले एशिया और अफ्रीका के अट्ठाइस राष्ट्रों ने अपने चार प्राथमिक लक्ष्य निरूपित किए—औपनिवेशिक प्रभुत्व से आज़ादी, जाति, धर्म या रग के भेद-भाव के बिना व्यक्ति की प्रतिष्ठा आर्थिक अवसरो का विस्तार, और शान्ति।

ये मार्क्सवादी विचार नही हैं। ये पश्चिमी और अमरीकी विचार हैं—जिस अब तक चल रही अमरीकी क्रांति के पक्ष में जेफरसन, लिंकन, विल्सन, और रूज़वेल्ट इतने प्रभावशाली ढंग से बोले थे, यह इन दो विशाल महाद्वीपों में उसी क्रान्ति की छाया है।

अगर इस धरती पर हमारा कोई उद्देश्य है—और मैं गभीरता से विश्वास करता हूँ कि है तो वह उद्देश्य सारी दुनिया मे उदार लोकतंत्र की उस भावना का संरक्षण और अन्तत. विस्तार है, जिसमें मनुष्य की प्रतिष्ठा और सत्यनिष्ठा सर्वप्रमुख है।

इसके लिए अन्य लोगों के साथ हमारे सम्बन्धो में आग्रह सम्बन्धी काफ़ी बड़े परिवर्तन की, और अमरीकी सुरक्षा, विकास और अभिवृद्धि की समस्या के प्रति एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, संयुक्त राज्य अमरीका में अपनी सारी यात्राओं में हर जगह मैंने देखा कि अमरीकी लोग ईमानदारी के साथ अपनी निराशा से छुटकारा पाने की, और एक नया दिशा-बोध प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं।

विश्व में अमरीका की भूमिका के सम्बन्ध में सार्वजनिक दृष्टि अगर कहीं अति संकीर्ण है, तो इस कारण कि दोनो राजनीतिक दलों के नेता वह व्यापक दृष्टि प्रदान करने मे असफल रहे हैं, जो इसके पहले हमारे इतिहास की सकटपूर्ण अवधियों में महान् अमरीकियों ने प्रदान की थी।

सात

यूरोप में हमारे और रूस के लक्ष्य

श्री पौल्स का कथन है कि मध्य यूरोप में सैनिक शक्ति को धीरे-धीरे घटाने से दोनों पक्षों को लाभ हो सकता है। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन 12 मई, 1957 में प्रकाशित इस लेख में उक्त प्रस्ताव पर श्री ख्रु श्चोव की प्रतिक्रिया पर विचार किया गया है।

यूरोप मे हम अमरीकी लोग वस्तुतः चाहते क्या हैं ? हमारा पहला सुरक्षा सम्बन्धी लक्ष्य यह आश्वासन प्राप्त करना है कि यूरोप की औद्योगिक और सैनिक शक्ति कभी हमारे विरुद्ध सगठित नही होगी।

यूरोप मे किसी शक्ति या शक्ति-समूह का प्रभुत्व न होने पाए, इसके लिए इगलिस्तान ने पाँच बड़े युद्ध लड़े। जब इगलिस्तान की सैनिक क्षमता दूसरे महायुद्ध के बाद कुछ कमज़ोर पड़ी तो कुछ दूरदर्शी अमरीकी नेताओं ने उस कमी को पूरा करने के निर्णायक महत्त्व को समझा।

इस प्रकार 1947 मे भूमध्य सागरीय क्षेत्रपर रूस के दवाव के फलस्वरूप हमने 'ट्रूमन सिद्धान्त' का साहस पूर्ण निर्णय लिया। जब रूस ने मध्य और पूर्वी यूरोप से हटना अस्वीकार किया, तो हमने जर्मनी मे काफ़ी मात्रा में सैनिक शक्ति लगाई और उत्तरी अटलांटिक सघि संगठन की रक्षा-पंक्ति को सगठित और सुसज्जित करने मे सहायता की।

यूरोप की समृद्धि और उसकी राजनीतिक स्थिरता के निकट सम्बन्ध को समझने के कारण हमने पहले युद्ध मे हुई क्षति की पूर्ति करने के लिए, और फिर यूरोप के असाधारण युद्धोत्तर कालीन आर्थिक विस्तार की ठोस नीव डालने के लिए अरबों डालर लगाए।

किन्तु, अधिकाश अमरीकी यूरोप को राजनीतिक क्रीड़ा क्षेत्र मात्र नही समझते। यूरोप के साथ सस्कृति, इतिहास, धर्म, और विचार-दर्शन मे हमारे निकट सम्बन्ध हैं। वस्तुत, हममे से 80 प्रतिशत यूरोप के वशज हैं।

यद्यपि 1944 से पूर्वी यूरोप के राष्ट्र बहुत कुछ सोवियत प्रभुत्व मे रहे हैं, किन्तु हम इसी क्षेत्र के लोगो के प्रति, जिनके लाखों मित्र और सम्बन्धी अमरीका मे हैं, हमारी चिन्ता अब भी गहरी और सच्ची है।

मोटे तौर पर, हमारा विश्वास है कि यूरोप और अमरीका, दोनों के ही लक्ष्यों की पूर्ति अधिकाधिक समेक्य और संघ के द्वारा हो सकती है, जिसमें अन्ततोगत्वा पूर्वी यूरोप के राष्ट्र भी शामिल हो सकते हैं। यूरोप के राष्ट्र जैसे-जैसे इकट्ठा होंगे, यूरोप के लोगों में नया आत्म-विश्वास और सोद्देश्यता आएगी। इंगलिस्तान, फ्रांस और अन्य औपनिवेशिक राष्ट्रों के पास सदियों तक दुनिया के विभिन्न भागों में फैली हुई जो शक्ति थी, उसकी समाप्ति को स्वीकार करना भी ऐसे समेकित यूरोप में उनके लिए ज्यादा आसान होगा।

किन्तु रूस की दृष्टि में स्थिति क्या है? 20 फरवरी को, अपने मास्को दफ्तर में निकिता ख्रुश्चोव ने दो घण्टे की एक चर्चा में रूसी दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया।

1. मध्य यूरोप की वर्त्तमान 'अस्वाभाविक' स्थिति रूस, अमरीका अथवा यूरोप वालों के हित में नहीं है। यह भी संभव है कि किसी अचानक उठी चिनगारी के फलस्वरूप उत्तरी अटलांटिक संधि और सोवियत रूस की सेनाएँ ऐसे किसी संघर्ष में टकरा जाएँ, जिसे कोई भी न चाहता हो।

2. यद्यपि सोवियत रूस या अमरीका, कोई भी जर्मनी के आर्थिक और राजनीतिक भविष्य का निर्णय नहीं कर सकता, किन्तु एकीकरण की प्रक्रिया सोपानों में चलनी चाहिए, ताकि पूर्वी जर्मनी में विकसित साम्यवादी 'आर्थिक संस्थाएँ' सुरक्षित रह सकें।

3. रूस सारी रूसी सेनाओं को रूसी सीमा के अन्दर ले जाने को तैयार होगा, बशर्ते कि अमरीकी और इंगलिस्तानी सेनाएँ भी अपनी सीमाओं के अन्दर चली जाएँ। श्री ख्रुश्चोव ने कहा कि तब उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि और वार्सा सन्धि के सदस्य, राष्ट्रों के बीच एक समझौते के द्वारा, जिसमें अधिक शस्त्रीकरण के विरुद्ध भी व्यवस्था हो, यूरोप में शान्ति सुरक्षित हो सकती है। सोवियत रूस चाहेगा कि दोनों ही संगठन भंग कर दिये जाएँ, और उनके स्थान पर एक ऐसा संगठन आए जिसके सदस्यों में अमरीका और रूस दोनों ही हों। किन्तु वे इस पर आग्रह नहीं करेंगे।

4. श्री ख्रुश्चोव ने कहा कि यद्यपि राष्ट्रपति आइजनहूवर के समक्ष प्रधान मंत्री बुल्गानिन ने धीरे-धीरे सेनाएँ हटाने का प्रस्ताव पूरी सचाई से रखा था, किन्तु, उन्होंने कहा कि अमरीकी सरकार उसे स्वीकार नहीं करेगी। क्यों? 'अरबपति हथियार-निर्माताओं' के दबाव के कारण, जो श्री ख्रुश्चोव के अनुसार 'शीत-युद्ध में कोई ढिलाई लाने के विरुद्ध हैं।'

अपने उत्तर में मैंने कहा कि एक सामान्य नागरिक के रूप में मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि दोनों ही दलों के अमरीकी इसके इच्छुक हैं कि यूरोप अपने ढंग से विकसित हो। युद्ध के बाद सोवियत रूस ने लाल सेना को अपनी सीमाओं तक हटा लेने से इन्कार किया, इसीके फलस्वरूप जर्मनी में अमरीकी सेनाएँ मौजूद रहीं, और उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन का विकास हुआ।

वर्तमान तनाव भरी स्थिति मे सोवियत नेताओं का हमसे यह आशा करना यथार्थ के अनुकूल नही था कि हम तीन हजार मील समुद्र के पार चले जाएँ, जब कि उनकी अपनी सेनाएँ अच्छी सड़कों पर केवल कुछ सौ मील हटकर रूसी सीमाओं के अन्दर जाएँ।

श्री ख्रुश्चोव हमसे ऐसा करने की आशा नही कर सकते थे जब तक कि रूस अपनी सेना और साज-सामान के सारे बड़े अड्डो को अपनी पश्चिमी सीमा से कुछ दूर पूर्व की ओर रखने को तैयार न हो और इस सारे क्षेत्र मे संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षको को पूर्ण सैनिक निरीक्षण का अधिकार न दे।

श्री ख्रुश्चोव हमसे यह आशा भी नही कर सकते थे कि दुनिया के अन्य भागों मे हवाई अड्डो की अपनी व्यवस्था को हम खत्म कर देंगे जब तक कि सैनिक प्रविधियों मे कोई जबरदस्त परिवर्तन न हो जाय, या सार्विक निरस्त्रीकरण के लिए कोई समझौता न हो जाय।

मैंने कहा कि बहुतेरे कारणो से अधिकांश अमरीकियों के लिए यह विश्वास करना कठिन था, कि अन्तिम, निर्णायक फैसले का वक्त आने पर श्री ख्रुश्चोव और उनके साथी सचमुच रूसी सेनाओ को यूरोप मे उनके मौजूदा स्थानो से ऐसी शर्तों के अन्तर्गत पीछे हटाने को तैयार होंगे, जो अमरीका और उत्तरी अटलांटिक सन्धि मे उसके मित्रों को स्वीकार्य हो।

पहली बात यह है कि पूर्वी जर्मनी, हंगरी, और पोलैण्ड की घटनाओ से मिले संकेत के अनुसार, पूर्वी यूरोप से सोवियत सेनाओं के हटने पर उस क्षेत्र मे रूस के राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव मे तेजी से कमी आएगी।

उदाहरण के लिए, पूर्वी जर्मनी के निवासियो का जीवन-स्तर पश्चिमी जर्मनी के निवासियो से काफी नीचा है। वे एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था के साथ क्यों चिपके रहेंगे, जो पश्चिमी जर्मनी की अधिक स्वतंत्र व्यवस्था की तुलना मे कम उत्पादक साबित हुई है? एक बार लाल सेना के हट जाने के बाद, श्री ख्रुश्चोव जर्मन लोगो को अपने देश का एकीकरण करके उसे अपने ढंग से विकसित करने से कैसे रोकने की आशा कर सकते थे?

इसके अतिरिक्त, रूसी सेना के हटने पर, इसकी संभावना थी कि यूरोप का एकीकरण हो और *पश्चिमी यूरोप के साथ पूर्वी हिस्सों का निकट सम्बन्ध स्थापित हो।*

श्री ख्रुश्चोव ने उत्तर दिया कि रूसी नेताओ ने इन प्रश्नो पर ध्यानपूर्वक विचार किया था। उनकी राय थी कि समेकित यूरोप, अमरीका, इंगलिस्तान या फ्रांस के दीर्घ-कालीन हित के अनुकूल नही होगा। उन्होने कहा कि ऐसे यूरोप पर जर्मनी का प्रभुत्व होगा, जो "शान्ति-काल मे उन सभी लक्ष्यो को प्राप्त कर लेगा, जिन्हे वह युद्ध के द्वारा प्राप्त नही कर सका।"

मैंने उनसे पूछा कि जैसा मैंने कहा था, उस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी यूरोप का एकीकरण होने पर, उसे रोकने के लिए क्या रूस युद्ध करेगा। उन्होने उत्तर दिया,

"अगर हमारे यूरोपीय पड़ोसी युद्ध पर उतारू नही हो जाते, तो निश्चय ही नही।"

पिछले कुछ हफ्तों में इस वार्ता के सम्बन्ध में मैंने कई लोगों से बातचीत की, जिन्होंने वर्षों तक सोवियत रूस का अध्ययन किया है, और जिनमें से कई लोग रूस के वर्त्तमान नेताओं को व्यक्तिगत रूप में जानते हैं। उनमे न केवल मास्को स्थित विदेशी कूटनीतिज्ञ शामिल हैं, वरन् पोलैण्ड और युगोस्लाविया की सरकारों के सदस्य, मास्को, बेलग्रेड, बर्लिन और अन्य स्थानों मे स्थित अमरीकी अधिकारी और अमरीका में सोवियत रूस के अध्येता भी शामिल हैं।

इनमें से अधिकांश का विचार है कि बुल्गानिन और ख्रुश्चोव की बातों को गंभीरता से नहीं लेना चाहिए, किन्तु सबकी राय ऐसी नही है।

एक प्रभावशाली विदेशी सैनिक नेता ने, जिन्हें रूसी सरकार के नेताओं को जानने का अवसर मिला था, इसके विपरीत एक रोचक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा, "मैं नहीं जानता कि श्री ख्रुश्चोव के मन मे क्या था, किन्तु मार्शल जुकोव किस तरह सोचते होंगे, इसका अनुमान लगाने की चेष्टा मैं कर सकता हूँ। मेरा ख्याल है कि वे इस प्रकार सोचते होंगे—

" 'पूर्वी जर्मनी में मेरे पास रूसी सेना के बाइस डिवीजन हैं, जो मध्य यूरोप में केन्द्रित है। उनकी संचार व्यवस्था पोलैण्ड और हंगरी से होकर चलती है। अब हम जानते हैं कि इन तीनों राष्ट्रों के लोग हमारे खिलाफ खड़े होने को तैयार हैं।

" 'हम लाल सेना के लोग विशेष रूप में यह जान गए हैं कि पूर्वी यूरोप मे हमारी नीतियाँ असफल रही हैं। तेरह वर्ष तक हमारे राजनीतिक नेताओं ने इस इलाके को सोवियत क्षेत्र मे खींच लाने की और वहाँ के लोगों का विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की है। इसमें वे पूरी तरह असफल रहे हैं। उनकी असफलता के फलस्वरूप मुझे सोवियत सैनिकों को बुडापेस्ट की सड़कों पर हंगरी के हजारों नागरिकों को मारने का आदेश देना पड़ा।

" 'किन्तु हमारी सैनिक कठिनाइयाँ यहीं समाप्त नही हो जाती। पिछले तेरह वर्षों मे हमने पूर्वी यूरोप के देशों मे साठ से अधिक डिवीजन संगठित किए हैं, और उन्हें आधुनिक रूसी तोपों, टैंकों और हवाई-जहाजों से सज्जित किया है। बुडापेस्ट में हमने जो कुछ देखा और पोलैण्ड तथा पूर्वी जर्मनी मे जिसका हम अनुमान लगा सकते हैं, उससे संकेत मिलता है कि युद्ध होने पर यह अनुपेक्षणीय ताकत हमारे खिलाफ़ खडी हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों मे, पूर्वी और मध्य यूरोप की सैनिक शक्ति को कठोरता से सीमित करने वाले किसी समझौते से सोवियत रूस को बड़ा लाभ हो सकता है।

" 'फिर आर्थिक समस्या भी है। युद्ध के बाद से हमने सोवियत यूनियन को मजबूत बनाने के लिए पूर्वी यूरोप से पूंजी, सामान और कच्चे माल के रूप में प्रति वर्ष अरबों रूबल प्राप्त किये हैं। इस इलाके मे झंझट से बचने के लिए अब हमें पूंजी के प्रवाह को इस दिशा को बदलना होगा। क्या इस धन को एशिया और

में लगाना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा, जहाँ हम वेदाग हैं, और नए सिरे से काम कर सकते हैं ?

" 'निश्चय ही हमारा प्रचार विभाग इतना चतुर होना चाहिए कि जर्मनी से हट जाने के प्रस्ताव का उपयोग हमारे राजनीतिक लाभ के लिए कर सके। क्या वे ऐसा नहीं दिखा सकते कि तनाव कम करने की चेष्टा करने वाले हम लोग ही हैं ? अगर अमरीकी लोग इसे अस्वीकार करते हैं, तो यही प्रतीत होगा कि वे यूरोप को विभाजित रखना चाहते हैं।' "

मार्शल जुकोव के विचारों की संभव रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए मेरे यूरोपीय सैनिक मित्र ने चेतावनी भी दी—"निस्सन्देह अन्तिम निर्णय मार्शल जुकोव नहीं, वरन् ख्रुश्चोव और अन्य लोग करेंगे।"

जब तक रूस को आशा रहेगी कि एशिया और अफ्रीका के साथ पहले मास्को के आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने के बाद, अन्ततः उन्हें सोवियत क्षेत्र में खींचा जा सकता है, तब तक सोवियत रूस किसी सार्थक, दीर्घकालीन, विश्व-व्यापी समझौते के लिए गम्भीरता से बातचीत करेगा, इसमें मुझे सन्देह है। और एक तटस्थ, असम्बद्ध जर्मनी हमारे हित में भी नहीं होगा।

फिर भी, मध्य यूरोप में ऐसी स्थिति बने रहने में न हमें कोई लाभ है, न रूस को, जिसमें किसी आकस्मिक दुर्घटना से आण्विक युद्ध की ज्वाला फूट सकती है, जिससे दोनों ही पक्ष बचना चाहते हैं।

आठ

यूरोप के प्रति एक नई नीति

श्री बौल्स का कथन है कि यूरोप में एक नया युग आरम्भ हो रहा है। इसमें निहित संभावनाओं का सामना करने के लिए अमरीका को अपने लक्ष्यों और साधनों का पुनः मूल्यांकन करना होगा। न्यूयार्क टाइम्स मंगजीन, 20 दिसम्बर, 1959।

राष्ट्रपति आइजनहावर, प्रधान मन्त्री मैकमिलन, राष्ट्रपति दिगाल और चान्सलर आदेनावर, शिखर वार्त्ता के पूर्व पेरिस में बातचीत कर रहे हैं, और इसकी पृष्ठभूमि में यूरोप में अमरीकी नीति के सम्बन्ध में आशंकाएँ हैं।

राष्ट्रपति के शानदार दौरे से हमारे तात्कालिक इरादों के बारे में शंकाओं का समाधान करने में सहायता मिली है। किन्तु, जिसे आम तौर पर यूरोप में एक नया और भिन्न काल माना जाता है, उसके बारे में हमारी समझ, और उसमें आत्मविश्वास के साथ, प्रभावकारी रीति से काम करने के बारे में हमारी क्षमता के बारे में अब भी सन्देह बने हुए हैं।

हमारे अल्प-कालीन और दीर्घकालीन दोनों प्रकार के लक्ष्यों पर वस्तुपरक रीति से पुनर्विचार करने की आवश्यकता काफी दिनों से है। हमारी यूरोपीय नीति के मूल में पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों के साथ निकटतम राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक सम्बन्धों के आधार का बने रहना आवश्यक है। किन्तु, तेजी से सामने आती हुई नयी स्थितियों का प्रभावकारी रीति से सामना करने के लिए, इन नीतियों को नया स्वर, नयी दिशा और नयी शक्ति प्रदान करनी होगी।

शीत-युद्ध की कठोरता के स्थान पर बातचीत और आर्थिक प्रतियोगिता चलाने के प्रस्तावों में श्री ख्रुश्चोव ने काफी बड़ी निजी राजनीतिक पूँजी दाँव पर लगाई है। उनकी मंशा चाहे जो भी हो, उनके वाक्यों ने देश और विदेश में कुछ आशाएँ उत्पन्न की हैं—ऐसी आशाएँ, जिन्हें वे या और कोई भी आसानी से या जल्दी समाप्त नहीं कर सकता।

चीन की बढ़ती हुई हठवादिता निश्चय ही रूस के नीति-निर्माण में काफी परेशानी पैदा करती होगी। तनाव बढ़ाने का चीन का प्रकट निश्चय, मास्को के नए दृष्टिकोण के विपरीत है। जहाँ तक देखा जा सकता है, चीन रूस धुरी को कायम रखना दोनों के ही लिए निर्णायक महत्त्व की बात प्रतीत होती है। किन्तु रूस से

तीन गुनी आबादी वाले, अतिसाहसिक और आक्रमण की मनोवृत्ति वाले 'छोटे भाई' की शकल निश्चय ही रूसी नीति निर्माताओं के मन मे गम्भीर चिन्ता उत्पन्न करती होगी।

अगर हथियारों की प्रविधि और रणनीति में तेजी से बढती हुई क्रांति बिना किसी नियन्त्रण के चलती रही, तो अगले कुछ वर्षों मे विश्व की सभी बडी शक्तियो को खर्च, खतरों और तनावो मे विशाल वृद्धियो का सामना करना पड़ेगा। इसके साथ ही, फ्रास और अन्य राष्ट्रो के पास भी आण्विक हथियार हो जाने पर, किसी विश्वसनीय नियन्त्रण व्यवस्था की स्थापना के साधन अधिकाधिक उलझते जाएँगे।

यूरोप के अन्दर, और यूरोप व अमरीका के बीच आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध भी बदल रहे हैं। 1953 से हमारे आर्थिक विकास की औसत वार्षिक गति 2.5 प्रतिशत रही है, जबकि पश्चिमी यूरोप के बडे हिस्से की रफ्तार इसकी तीन गुनी है। सापेक्षिक दृष्टि से यूरोप के आर्थिक विकास मे यह तेजी का काल है जबकि हमारे यहाँ प्रगति धीमी है।

इन सारी बातो को देखते हुए हमारे वर्त्तमान दृष्टिकोणो और कार्यनीतियो मे बहुत कुछ ऐसा है जो समयानुकूल नही रह गया। युद्धोत्तर काल का अन्त हो गया है। अब हम पुन. समजन, प्रयोग, व्यावहारिकता और प्रवाह के एक नये युग मे प्रवेश कर रहे हैं।

जहाँ तक मैं देख पाता हूँ यूरोप मे अमरीकी नीति के तीन लक्ष्य हैं—

1. बर्लिन जैसे दबाव बिन्दुओ के सम्बन्ध मे हमे अपनी दृढता के सम्बन्ध मे विश्वास को पुनः प्रतिष्ठित करना है।

2. एक स्वतन्त्र यूरोपीय समुदाय की स्थापना और विकास को प्रोत्साहित करना हमारे लिए आवश्यक है, जो हमारा मित्र हो और जिसमे अपने पाँव पर खडे होने की क्षमता हो।

3. हमे सभी राष्ट्रो के सभी लोगो के मन मे एक शान्तिपूर्ण, दीर्घकालीन समझौते की आकांक्षा को स्वीकार करना होगा और ऐसे प्रस्ताव तैयार करके प्रस्तुत करने होगे जो कभी ऐसे समझौते का आधार बन सकें।

पहली आवश्यकता है कि हम उत्तरी अटलांटिक सन्धि को दुर्बलता और सभ्रम की स्थिति मे पडने से रोकें। जब तक रूसी सीमा के पश्चिम मे रूसी सेना के लगभग तीस डिवीजन मौजूद हैं, तब तक यूरोपीय प्रतिरक्षा की तैयारियो को, जो अभी भी अपर्याप्त हैं, और दुर्बल करना नादानी होगी।

पिछले दिनो सरकारी सूत्रो की ओर से यह बडा ही अनुपयुक्त सुझाव रखा गया कि हम निकट भविष्य में यूरोप स्थित अपनी स्थल और वायु सेनाओं मे और भी एकतरफा कटौती कर सकते हैं। स्वयं सेनाध्यक्ष (राष्ट्रपति) द्वारा इसका खंडन होना चाहिए। जहाँ तक अब यह संभव हो बर्लिन के सम्बन्ध में दृढता की नीति पुनः अपनाने की दिशा में यह पहली महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

बर्लिन की स्थिति किसी के लिए भी अच्छी नहीं है। यह स्थिति हमारे लिए खतरनाक है, रूसियों को परेशान करने वाली है, और अत्यधिक साहसी बर्लिन वासियों के लिए और सचमुच सभी जर्मन लोगों के लिए हताशा उत्पन्न करने वाली है। फिर भी जब तक सारे मध्य यूरोप में वर्तमान स्थिति बनी रहती है, तब तक किसी दबाव के अन्तर्गत बर्लिन की विशिष्ट स्थिति के सम्बन्ध में रूसियों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा का केवल यही परिणाम होगा कि हमारे मित्र भयभीत हो जाएँगे और रूस को अपनी माँगें और बढ़ाने के लिए बल मिलेगा।

मिसाल के लिए, मित्र राष्ट्रों के बर्लिन स्थित दस हजार सैनिकों की संख्या में किसी संभव कटौती को लेकर सौदेबाजी करने से हमें कोई लाभ नहीं हो सकता। सामरिक दृष्टि से उनकी वर्तमान संख्या रूसियों के लिए भी महत्त्वहीन है और हमारे लिए भी। कोई भी ऐसा नहीं समझता कि रूसी आक्रमण होने पर वे सफलतापूर्वक नगर की रक्षा कर सकते हैं। उनके वहाँ रहने का उद्देश्य यही है कि हम वहाँ रहने के अपने अधिकार का एक ठोस प्रतीक बनाए रखें।

अत, उनकी संख्या में कमी करने के लिए रूसी दबाव का उद्देश्य केवल ऐसी रिया-यतें प्राप्त करना है, जिन्हें बर्लिन वासी और आम तौर पर सभी जर्मन लोग अमरीकी धीरज और शक्ति में कमी होने का चिन्ह समझेंगे।

ऐसे प्रश्नों पर अधिक दृढ़ नीति अपनाने के फलस्वरूप अगर रूसी लोग बर्लिन और उसके मार्गों सम्बन्धी अपने अधिकार पूर्वी जर्मनी के अपने एजेण्टों को सौंप देते हैं तो हम पश्चिमी बर्लिन में अपनी सेनाएँ रखने, और कब्जा रखने के अपने वर्त्त-मान कानूनी अधिकार को कायम रखने के अतिरिक्त अपने अन्य सभी अधिकार अपने एजेण्टों के रूप में पश्चिमी जर्मनी को सौंप देने पर विचार करें।

सारभूत प्रश्नों पर दृढ़ता का अर्थ हर छोटे-मोटे सवाल पर आँख मूँदकर हठ करना नहीं है। बर्लिन में अपने अधिकारों के सम्बन्ध में दृढ़ रहने का यह नतीजा नहीं निकलना चाहिए कि पूर्वी जर्मनी और शेष पूर्वी यूरोप के साथ हमारे व्यवहार में आगे-पीछे का कोई व्यवहार न रहे। पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया, और हंगरी से आए लोगों के मत प्राप्त करने के उद्देश्य से 1952 में राष्ट्रपति के चुनाव के समय पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों को मुक्त कराने का वादा बड़ी गैर-जिम्मेदारी का और छल पूर्ण कार्य था, जिसकी असफलता स्पष्टतः स्वयं उसमें ही निहित थी।

एक ओर रूसी हितों, तथा दूसरी ओर अमरीकी शक्ति की सीमाओं की वस्तुपरक समझ के साथ-साथ अमरीकी नीति के अवसरों का होशियारी से सहयोग करने से कहीं अधिक ठोस परिणाम निकलेंगे। कूटनीति, विचार-विनिमय, परामर्श, आर्थिक सहायता और खेती में हमारे अतिरिक्त उत्पादन का उपयोग पूर्वी यूरोप की राजनीति और आर्थिक जीवन में विभिन्नता लाने में सहायक हो सकता है—जो इस क्षेत्र में हमारी नीति का मूल लक्ष्य होना चाहिए।

इस विभिन्नता से ऐसी हलचल पैदा हो सकती है, जो इस दु.ख पीड़ित क्षेत्र के

लोगों के लिए अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना सम्भव बनाए। हमारा लक्ष्य हंगरी जैसी अव्यवस्था और संकट नहीं है, वरन् उस प्रकार का राष्ट्रीय पुनः जागरण है, जो पोलैण्ड में रक्तहीन क्रान्ति से विकसित हुआ। पिछले दिनों हुए सरकारी दमन के बावजूद स्टालिन के काल में जितना सम्भव था, पोलैण्ड में आज उससे कहीं अधिक स्वतन्त्रता है।

दूसरी बात यह है कि यूरोपीय एकता की धारणा के विकास के पक्ष में अमरीकी प्रभाव का उपयोग हर सम्भव अवसर पर होना चाहिए। संयुक्त यूरोप की उपलब्धि के मार्ग में जो विशाल कठिनाइयाँ हैं, उनके बावजूद यह विचार उन सभी लोगों के सामने बराबर रखा जाता रहे जो अपने को यूरोपीय समझते हैं, इसमें अमरीका का अधिकतम हित है।

इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि कोयला और इस्पात समूह यूरोपीय अणु समझौता, और फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी, इटली, बेल्जियम, हालैण्ड, और लक्जेमबर्ग द्वारा मिलकर बनाये गए सामान्य बाजार का निर्णायक महत्त्व है। ये विभिन्न संस्थाएँ अब धीरे-धीरे मिलकर काम करने की ओर बढ़ रही हैं। अधिकांश अमरीकी लोग जैसा समझते हैं, आर्थिक और राजनीतिक एकीकरण की रफ्तार निश्चय ही उससे कहीं अधिक है।

अगर इन छह राष्ट्रों के साथ इंगलिस्तान भी मिल जाय तो इनकी संभाव्य औद्योगिक शक्ति काफी अधिक होगी, और ये मिलकर एक 'संयुक्त राज्य यूरोप' की नींव डाल सकते हैं। इससे फिर एक ऐसी रचनात्मक और गतिशील शक्ति प्राप्त हो सकती है, जो अन्ततः यूरोप के स्थायी विभाजन को रोके।

अमरीकी सैन्य नीति उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि के साथ जुड़ी हुई है, और जुड़ी रहनी चाहिए, इस कारण ही यह आवश्यक है कि हम एकीकरण के इस आन्दोलन को प्रोत्साहित करें कि वह बाल्टिक सागर से काला सागर तक फैले हुए वर्तमान सैनिक विभाजन को मजबूत बनाने में नहीं वरन् उसे कमजोर करने में सक्रिय आर्थिक और राजनीतिक योग दे। हम इस आशा से कार्य करें कि इस समुदाय का विकास इस प्रकार होगा कि रूस के पिछलग्गू देशों सहित, शेष यूरोप को वह यूरोप के एकीकरण में शामिल होने के लिए निरन्तर आकर्षित करता रहेगा, चाहे इस दिशा में पहले कदम कितने भी प्रयोगात्मक और कमजोर क्यों न हों। मिसाल के लिए सामान्य बाजार में यूनान और तुर्की की सह-सदस्यता से सम्भव है कि आगे चलकर युगोस्लाविया *भी उससे इसी प्रकार सम्बद्ध हो जाय।*

दूसरे शब्दों में नया संगठन दीवारें खड़ी करने वाला न होकर दरवाजे खोलने वाला हो—और न केवल युगोस्लाविया, के लिए वरन् पोलैण्ड, हंगारी, जेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और बुल्गारिया के लिए भी। इससे एक ऐसे ढांचे के निर्माण में भी सहायता मिल सकती है, जिसके सन्दर्भ में अन्ततः बर्लिन और पूर्वी जर्मनी के बारे में भी कोई निर्णय किया जा सके।

ऐसा कहा जा सकता है कि हमारे और रूस के भी तात्कालिक हित जर्मनी के विभाजित रहने में हैं। निश्चय ही वर्तमान स्थिति में जर्मनी का एकीकरण असंभव है। किन्तु दीर्घकालिक दृष्टि से, जर्मनी का विभाजन यूरोप के विभाजन का तीव्र रूप है, और बर्लिन का विभाजन जर्मनी के विभाजन का तीव्र रूप है। ये विभाजन सभी सम्बन्धित लोगों के लिए खतरनाक हैं।

केवल संयुक्त यूरोप में ही संयुक्त जर्मन बिना किसी खतरे के रह सकता है, और संयुक्त यूरोप तथा संयुक्त जर्मनी में ही एक प्रमुख राजनगर के रूप में अपना स्थान ग्रहण कर सकता है। अतः अगर संयुक्त यूरोप के धीरे-धीरे निर्मित होने का ठोस प्रमाण सामने आए, तो यह आशा की जा सकती है कि पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड, और पूर्वी यूरोप के अन्य देशों की भावनाओं और आशाओं पर भी उसका रचनात्मक प्रभाव पड़ेगा।

यह आकर्षण और भी अधिक बढ़ जाएगा, अगर इस सम्बन्ध में अमरीकी नीति को अधिक स्पष्ट करने की दिशा में चेष्टा की जाय कि प्रतिबन्धहीन यूरोपीय बाजार को अधिक से अधिक व्यापक बनाने के प्रयासों का अमरीका दृढ़ समर्थन करेगा। अगर यूरोप में स्वतंत्र बाज़ार का विकास हो, तो हम उसे खतरा न समझकर अपने लिये एक अवसर समझें। उदाहरण के लिए, सामान्य बाजार हमें अवसर देता है कि हम छह देशों से अलग-अलग समझौते करने के बजाए, एक ही समझौते के द्वारा अमरीकी माल पर लगाये गए आयात प्रतिबन्धों, मात्रा सम्बन्धी सीमाओं और शुल्कों आदि के सम्बन्ध में रियायतें हासिल कर सकें चूंकि व्यापार सम्बन्धी समझौते के प्रसंग में हमारी स्थिति मजबूत है, अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें सक्रिय होकर इस स्थिति का उपयोग करना चाहिए।

निश्चय ही, हमें हर उपलब्ध अवसर का उपयोग करना चाहिए कि अर्द्धविकसित देशों की सहायता के संयुक्त प्रयासों में समृद्ध यूरोपीय देशों के अधिक भाग लेने को प्रोत्साहित करें। ऐसी सहायता में न केवल ऐसे अफ्रीकी देश शामिल हों जिनसे विभिन्न यूरोपीय सरकारों के निकट सम्बन्ध हैं, वरन् यह सहायता विशेषत. जर्मन की ओर से एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के अन्य ऐसे देशों को भी दी जाय, जहाँ उसकी आवश्यकता है और उपयोगिता भी।

यूरोप में आर्थिक एकीकरण से गरीबी और आर्थिक अन्याय की उन गम्भीर समस्याओं को हल करने की भी सहायता मिल सकती है, जो आज भी मौजूद हैं। वस्तुतः इन आर्थिक अन्यायों को समाप्त करने के लिए जल्दी-जल्दी प्रभावकारी कदम उठाना, विशेषतः दक्षिणी यूरोप में, आवश्यक है।

पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप के सभी देशों में, 'आर्थिक पुनःनिर्माण' ने शानदार मकानों और बढ़िया दूकानों के अतिरिक्त उत्पादन वृद्धि के सुप्रचारित सूचक-अंकों का एक प्रभावशाली दृश्य खड़ा कर दिया है। किन्तु इनमें से कई देशों में वितरण, सहभाग, और न्याय के और भी महत्त्वपूर्ण सूचक अंक उतने प्रभावशाली नहीं हैं।

अमीर और गरीब के बीच खाई, बनी रहने के कारण राजनीतिक विभाजन भी गहरे बने रहे हैं।

युद्ध समाप्त होने के चौदह वर्ष बाद भी, इटली में 37 प्रतिशत लोगों ने साम्यवादी या उनके सहयोगी उम्मीदवारों को वोट दिया। फ्रांस में साम्यवादी वोट 51 प्रतिशत है। यूनान में गृह-युद्ध और साम्यवादी दल के गैर कानूनी होने के बावजूद, साम्यवादियों द्वारा नियन्त्रित 'जनवादी वामपक्षी संघ' को पिछले चुनाव में लगभग 25 प्रतिशत वोट मिले।

इसका यह अर्थ नहीं कि इटली, फ्रांस और यूनान के लगभग एक चौथाई लोग साम्यवाद में विश्वास करते हैं। वामपक्षियों को अब भी भारी संख्या में मिलने वाला वोट बहुत-कुछ ऐसी सरकारों के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन है, जिन पर यदि उचित ही यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे जन सामान्य के विरुद्ध धनी और शक्तिशाली लोगों का पक्ष लेती हैं। यह विरोध अब भी इतना बड़ा है, यह तथ्य ऐसे सुधारों की आवश्यकता को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करता है, जिन्हें बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था।

तीसरी और अंतिम बात यह है कि अधिकांश यूरोपीय और अन्य लोग भी समान रूप से अब किसी ऐसे साहसपूर्ण और सच्चे प्रस्ताव के लिए तैयार हैं, जो रूस द्वारा स्वीकृत हो जाने पर अधिक शान्तिपूर्ण भविष्य का मार्ग प्रशस्त करे। इस प्रस्ताव का तर्कसंगत और विश्वसनीय होना आवश्यक है। यूरोप में रणनीति सम्बन्धी हमारी आवश्यकताओं का बलिदान किए बिना, यह प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए जिसे सोवियत रूस समझौता-वार्ता के लिए आधार रूप में स्वीकार कर सके।

क्या कोई ऐसा प्रस्ताव है, जो इस लक्ष्य के अनुकूल हो, जो विशिष्ट रूप में सम्पूर्ण यूरोप पर लागू हो सके, जिसमें उत्तरी अटलांटिक संधि सम्बन्धी हमारी प्रतिबद्धता कायम रहे, जो 'पीछे हटने' के पुराने प्रस्तावों को जाने-पहचाने खतरों से दूर हो, लेकिन फिर भी जो नई समझौता वार्त्ता की दिशा में एक रचनात्मक प्रयास हो? कोई व्यक्ति विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि ऐसा कोई प्रस्ताव मौजूद है। याकि ऐसे प्रस्ताव में ठीक ठीक क्या बातें हो सकती हैं। लेकिन मैं समझता हूँ कि पिछले बसन्त में राष्ट्रपति दिगाल और चासलर आदेनावर ने जो सुझाव रखा था, उसे प्रस्थान-बिन्दु के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

25 मार्च को दिगाल ने कहा—'अगर पीछे हटने में जो क्षेत्र खाली होता है, वह यूराल पर्वत से भी उतना ही दूर नहीं होता जितना अटलांटिक से, तो कैसे······ हम किसी आक्रमणकारी को एक छलांग या एक उड़ान में जर्मनी के खाली इलाके को पार करने से रोक सकेंगे; निश्चय ही हम युद्ध के सभी हथियारों को नियन्त्रित और सीमित करने के पक्ष में हैं। लेकिन इन उपायों में······इतना काफी बड़ा क्षेत्र आ जाना चाहिए कि फ्रांस सुरक्षित रहे, अरक्षित नहीं।"

दो सप्ताह बाद चासलर आदेनावर ने बॉन में एक पत्रकार सम्मेलन में कहा—

"जिम्मेदार सैन्य अधिकारियों से बातचीत करने के बाद, मैं इस स्थिति में हूँ कि आम तौर पर तथाकथित तनाव-रहित क्षेत्र के आकार, फैलाव, और प्रकृति के बारे में जनरल दिगाल ने जो कुछ कहा है, उसका समर्थन करूँ।……ऐसे क्षेत्र का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब अटलांटिक से यूराल तक समस्त क्षेत्र का निःशस्त्रीकरण हो।"

सम्पूर्ण यूरोप की सुरक्षा को सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करने वाले इलाके में सीमित सैनिक क्रियाकलाप का ऐसा व्यापक क्षेत्र, आगे बढ़ने के लिए सचमुच एक संभव आधार प्रदान कर सकता है। अगर ध्यानपूर्वक बनाये गए कार्यक्रम के अनुसार आण्विक हथियारों के अड्डों, राकेटों और प्रक्षेपास्त्रों के अड्डों, और परम्परागत सैन्य बल के विशाल केन्द्रों को, पूर्ण निरीक्षण और नियन्त्रण के अन्तर्गत धीरे-धीरे घटाया जाय, तो हमें आक्रमण और प्रतिरक्षा की क्षमताओं में अन्तर करने में सहायता मिलेगी, जो इस समय अधिकाधिक कठिन कार्य होता जा रहा है। यह कार्यक्रम एक विश्व-व्यापी शस्त्र-नियन्त्रण समझौते के एक अंग के रूप में, या एक अधिक सीमित क्षेत्रीय सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है।

सम्पूर्ण यूरोप मे सैन्य बल घटाने का ऐसा कार्यक्रम सोवियत रूस और हमारे द्वारा चीन को बढ़ती हुई सैन्य शक्ति के कठिन प्रश्न को छोड़कर भी अपनाया जा सकता है, जिसके कारण किसी विश्व-व्यापी शस्त्र-नियन्त्रण समझौते की संभावनाएँ कम से कम फिलहाल बहुत कम हैं। इस प्रस्ताव की एक अच्छाई यह भी है कि इसमे सभी विदेशी सेनाओं को यूरोपीय महाद्वीप से हटाने की, या किसी देश अथवा किन्हीं देशों के समूह के 'विसैन्यीकरण' की शर्तें नहीं हैं। इन दोनों प्रस्तावों से जितनी समस्याएँ हल हो सकती हैं, उससे अधिक नई समस्याएँ पैदा होने की संभावना है।

इस प्रस्ताव पर सोवियत रूस की प्रतिक्रिया चाहे जो भी हो, अगर हम इसे बराबर प्रस्तुत करते रहें, तो इससे भय के स्थान पर आशा उत्पन्न होगी, और सारा विश्व पुनः आश्वस्त होगा कि अमरीकी कूटनीति जागरूक और रचनात्मक है, और शान्ति की ओर प्रगति की किसी भी वास्तविक संभावना का उपयोग करने को पुनः तत्पर है।

नौ

फिर से पहल करने का समय

श्री बौल्स का कथन है कि सब कुछ भूलकर, रूस आगे क्या करेगा, इसी में डूबे रहना अमरीका की गतिशील परम्पराओं के अनुपयुक्त है। अक्टूबर, 1960 में मिनेसोटा विदेश-नीति-संघ के समक्ष एक भाषण में वे अमरीकी विदेश-नीति के लिए कुछ सशक्त और नई निर्देश रेखाएँ प्रस्तुत करते हैं।

श्री ख्रुश्चोव अब क्या करेंगे ?

कितने ही महीनों से उनकी धमकियाँ और लालच भरे प्रस्ताव, उनके पैंतरे और भाषण हमारे अखबारों और टेलीविज़न के परदों पर, हमारे राजनीतिक नेताओं के मन पर, और हमारी विदेश-नीति के निर्धारण पर छाए रहे हैं।

किसी मोटर को चकाचौंध करने वाली रोशनी में जकड़े हुए खरगोशों की तरह, हमारा ध्यान सोवियत प्रधान मंत्री की हर मुद्रा पर केन्द्रित रहा है।

इतिहासकार निश्चय ही इसे एक विचित्र बात समझेंगे। वे पूछेंगे कि अपनी जीवन्त जनता, अपनी गतिशील औद्योगिक व्यवस्था, अपने असीमित साधनों, और मानवीय स्वतन्त्रता के पक्ष में अपनी सारी शानदार परम्पराओं के बावजूद, बीसवीं सदी का अमरीका अन्धा होकर रूस के कथनों और कार्यों में कैसे जकड़ गया ?

इस स्थिति में नए चेहरों और नए विचारों की आवश्यकता है। इसमें एक नए नेतृत्व की आवश्यकता है, जो हमारा ध्यान रूस की ओर से, जिसके बारे में हम आज विशेष कुछ नहीं कर सकते, हटाकर उन विशाल संभावनाओं की ओर लगाए, जो हमें बहुत कुछ करने का इशारा कर रही हैं।

मैं कुछ ऐसे कर्मक्षेत्र गिनाऊँ, जिनमें एक नया प्रशासन अगली जनवरी में तेज़ी से आगे बढ़ सकता है, चाहे श्री ख्रुश्चोव कुछ भी कहें या करें।

1. हम अपनी प्रतिरक्षा व्यवस्था को सुधार सकते हैं। हमारी सैन्यशक्ति को सतुलित करना आवश्यक है, जिससे ऐसी आण्विक प्रहार-शक्ति प्राप्त हो जिसे अचानक हमले के द्वारा पंगु न किया जा सके। इसके साथ ही हमारी स्थल सेनाओं में अधिक लचीलापन और गतिशीलता आए, ताकि अगर स्थानीय संघर्ष फिर उत्पन्न हो, जैसा कि पहले होता रहा है, तो हम उनका सामना कर सकें। हमारी वर्तमान प्रतिरक्षा नीतियों ने हमें केवल एक ही प्रकार का युद्ध लड़ने के लायक छोड़ा है, जिस

के बारे में हमारा कहना है कि हम वैसा युद्ध कभी नहीं लड़ेंगे—एक सर्वग्राही आण्विक युद्ध जो हमने ही शुरू किया हो।

2. हम निःशस्त्रीकरण और शस्त्र-नियन्त्रण के क्षेत्र में अपने सारे प्रयत्नों को एक साथ और तेजी से बढ़ा सकते हैं। नए प्रशासन में निःशस्त्रीकरण और प्रतिरक्षा को उनके वास्तविक रूप में देखना होगा—असंगत, प्रतियोगी नीतियां नहीं, वरन् आने वाले महीनों में विश्व की स्थिरता के लिए समान रूप में आवश्यक।

अपने वक्तव्यों और कार्यों के द्वारा, अगला प्रशासन यह प्रदर्शित कर सकता है कि हम जीवन और मृत्यु के नए तथ्यों को जानते हैं, कि हम आण्विक भय के सन्तुलन पर आधारित शान्ति की दुर्बलता को समझते हैं, और यह कि हम निरन्तर ऐसे नए रास्तों की तलाश के लिए प्रतिबद्ध हैं, जिनसे निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी वर्तमान गतिरोध को अगर समाप्त नहीं तो कम किया जा सके।

इन नए रास्तों में वास्तविक सुरक्षाओं के साथ शस्त्र-नियन्त्रण के, उपयुक्त खोज पर आधारित नए प्रस्ताव भी शामिल करने चाहिए, और धीरज तथा कौशल के साथ उनके बारे में बातचीत चलानी चाहिए।

3. हम अटलांटिक के उस पार रहने वाले, विकसित उद्योग-धन्धों और कौशल वाले चालीस करोड़ लोगों के साथ अधिक प्रभावकारी सहयोग सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। हमारी और उनकी एक सामान्य सांस्कृतिक और राजनीतिक परम्परा है।

इस समय उत्तरी अटलांटिक समझौते को कायम रखने वाला सबसे बड़ा अकेला तत्व शायद यह है कि हम सबको ख्रुश्चोव से भय है। ख्रुश्चोव की कठोर या कोमल मुख मुद्रा के अनुसार उत्तरी अटलांटिक सन्धि भी सबल या दुर्बल होती है।

यह सामान्य भय अपने यूरोपीय मित्रों के साथ हमारे दीर्घ-कालीन सम्बन्धों को क़ायम रखने के लिए अपर्याप्त है। हमें फिर से इन सम्बन्धों के मूल में जाना चाहिए, और उन राजनीतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाना चाहिए, जो हमें जोड़ते हैं।

अटलांटिक समाज में सहयोग की व्याख्या को सबल बनाना नए प्रशासन का पहला काम होना चाहिए।

4. हम अपने आर्थिक सहायता कार्यक्रमों का पुनः मूल्यांकन और पुनः संगठन कर सकते हैं।

इन कार्यक्रमों के लिए नई कसौटियां बनाने की जरूरत है, जिससे उन राष्ट्रों को अधिक सहायता मिले जो उसका अधिक से अधिक प्रभावकारी उपयोग कर सकते हों, और जो तीव्र गति से प्रगति करने के लिए स्वयं भी आवश्यक बलिदान करने को तैयार हों।

ऐसे मामलों में जहां समस्या को देखते हुए दीर्घकालीन सहायता का आश्वासन उचित हो, इसकी व्यवस्था करके हम व्यवस्थित और कम खर्च नियोजन को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

5. संयुक्त-राष्ट्र संघ में हम शीत-युद्ध की तू-तू मैं-मैं में भाग लेना कम करके, एशिया और अफ्रीका के व्यवस्थित राजनीतिक और आर्थिक विकास में सहायता देने की ओर अधिक ध्यान दे सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की इन महाद्वीपो में महत्त्वपूर्ण भूमिका है, और इनमें संघ के कार्यक्षेत्र को असैनिक शासकीय सेवा से लेकर आर्थिक सहायता तक, और शस्त्र-नियंत्रण से लेकर शिक्षा तक, जहाँ भी आवश्यकता हो, बढ़ाना चाहिए।

6. हम लातिन अमरीका में संकट उत्पन्न होने पर दबाव के अधीन, समय निकल जाने के बाद प्रस्ताव प्रस्तुत करने की नीति को त्याग सकते हैं। इसके बजाए, हम वर्तमान आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए श्री रूज़वेल्ट की 'अच्छे पड़ोसी' वाली नीति को व्यावहारिक रूप मे पुन. प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

इसमे अमरीकी राज्य संघ को सबल बनाना और बगोटा के नए अधिनियम को लागू करना शामिल है।

सोवियत रूस और अमरीका के बीच शस्त्र-नियन्त्रण में प्रगति न होने पर, हम कम से कम नि शस्त्रीकरण के क्षेत्रीय प्रयासो को प्रोत्साहित कर सकते हैं। इसके लिए दक्षिण अमरीका एक उत्तम आरम्भ-स्थल है।

7. चीन के प्रति हम अधिक वस्तुपरक दृष्टिकोण अपना सकते हैं। जब तक पीकिंग की सरकार से एशिया की शान्ति को खतरा है, और वह फारमोसा पर अपनी प्रभुसत्ता का दावा करती रहती है, तब तक उसे मान्यता प्रदान करने का कोई सवाल नहीं उठता।

इस बीच संयुक्त राष्ट्र मे प्रतिनिधित्व, जापान और दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ चीन का व्यापार, चीन-रूस सम्बन्ध और चीन द्वारा अपने चारो ओर खड़े किए आवरण मे दरार डालना, ये चीनी समस्या के अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष होगे जिनका नए प्रशासन को सामना करना पड़ेगा।

यद्यपि चीन के प्रति कठोर नीति अपनाने के बारे में हमने बहुत कुछ सुना है, किन्तु आइज़नहूवर प्रशासन जैसा सोचता प्रतीत होता है, खतरा वास्तव मे उससे बड़ा है। वस्तुत प्रशासन ने लगातार स्थिति के आधारभूत खतरो को असलियत से कम आंका है।

चीनी विस्तारवाद का सामना हम प्रभावकारी रीति से तभी कर सकते हैं, जब हम इस बात को समझें कि उसके मूल मे केवल चीनी साम्यवाद ही नही, वरन् चीन की साम्राज्यवादी परम्परा, और पर्याप्त भूमि, तेल, और अन्य साधनो का अभाव भी है।

पूर्वी एशिया मे यथार्थपरक नीति को अपना ध्यान सैन्य-क्षेत्र के अलावा आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र मे भी, वास्तविक शक्ति की स्थितियाँ निर्मित करने पर केन्द्रित करना होगा, जो चीन के पड़ौसियो पर चीनी मुख्य भूमि के 65 करोड़ लोगों के प्रभाव को काट सकें।

जापान और फ़ारमोसा से लेकर, दक्षिण पूर्वी एशिया होते हुए हिन्दुस्तान और

पाकिस्तान तक, राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यवस्थित आर्थिक विकास की नींव डालने में हम जो कुछ सहायता करते हैं या नहीं करते उसका स्वतंत्र एशिया के भविष्य पर निर्णायक प्रभाव होगा।

8. अन्त में अमरीका को नेतृत्व के अधिक उपयुक्त बनाने के लिए, ऐसे बहुसंख्यक कार्य हैं, जो हम स्वयं अपने सम्बन्ध में कर सकते हैं।

हम अपने आर्थिक विकास की गति को बढ़ा सकते हैं, ताकि अपने विस्फोटक किन्तु असीमित संभावनाओं से भरे विश्व की चुनौती का सामना करने के लिए आवश्यक लोग, उत्पादन और मशीनें हमें उपलब्ध हो सकें।

हम आधुनिक स्कूल और विश्वविद्यालय बना सकते हैं, और योग्य अध्यापकों को प्रशिक्षित कर सकते है, जो इसके लिए आवश्यक है कि हर अमरीकी लडका या लड़की जितनी शिक्षा उपयोगी रूप मे ग्रहण कर सके, उतनी उसे उपलब्ध हो।

हम अपनी गन्दी बस्तियों को साफ करके अपने शहरों को पुनः निर्मित कर सकते हैं।

हम ज्यादा अच्छे, और आसानी से उपलब्ध अस्पतालों और चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था कर सकते हैं।

हम अपनी खेती के बहुत उत्पादन का उपयोग सारी दुनिया में अमरीकी विदेश नीति की एक मौलिक उपयोगी वस्तु के रूप में कर सकते हैं।

सारे अमरीका मे मनुष्यों की समान प्रतिष्ठा के मार्ग में जो बाधाएँ हैं, उन्हें दूर करके हम सर्वत्र, सभी मनुष्यों के समक्ष यह प्रमाणित कर सकते हैं कि स्वतन्त्रता के घोषणापत्र के इन शब्दों में अब भी हमारा विश्वास है कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं।

ये कुछ मुख्य कार्य हैं जो हमारे सामने हैं, और यह सूची किसी भी तरह से पूर्ण नहीं है। इन सभी क्षेत्रों में हमे रोकने वाले श्री ख्रुश्चोव नहीं हैं, वरन् हमारे शासन के वर्तमान नेतृत्व का निष्क्रियता, संभ्रम और आस्था का अभाव हमें रोके हुए हैं।

दस

हमारी शताब्दी का भाग्य-निर्णय करने वाले पाँच फ़ैसले

श्री बौल्स का विचार है कि इनमें से दो फैसलों का सामना हमने सफलतापूर्वक किया, दो के सम्बन्ध में असफल रहे और एक अभी अनिर्णीत है। अमरीकी पुस्तक-विक्रेता संघ के वार्षिक सम्मेलन के समक्ष एक भाषण से, वाशिंगटन, 12 जून 1961।

आज मैं बहुत आगे जाकर ऐसे लेखकों की तरफ देखना चाहूँगा—लगभग एक पीढ़ी बाद के इतिहासकार—जो हमारे राष्ट्र, विश्व के साथ उसके सम्बन्ध और दुनिया में अधिक स्थिरता लाने में उसके योगदान के बारे में अपना फैसला लिखेंगे।

मध्य-बीसवीं सदी के घटना-क्रम पर अमरीका के प्रभाव के सम्बन्ध में ये इतिहासकार क्या कहेंगे ?

शान्ति और समृद्धि के पक्ष में अपनी असाधारण नयी औद्योगिक क्षमता के उपयोग की सफलता या असफलता के बारे में वे क्या कहेंगे ?

बीसवीं सदी के पहले पाँच दशकों पर विचार करते हुए, मेरा विचार है कि वे अपना ध्यान निर्णय के कम से कम पाँच क्षेत्रों पर केन्द्रित करेंगे। दो मामलों में वे कह सकते हैं कि हम असफल रहे। अन्य दो के बारे में कह सकते हैं कि हम सफल हुए। पाँचवें मामले का फैसला अभी नहीं हुआ।

हमारी पहली दुखद असफलता थी कि 1919 में हम 'लीग ऑफ नेशन्स' में शामिल नहीं हुए, और यूरोप में उस समय स्थापित शान्ति को कायम रखने के कार्यक्रम के पीछे हमने अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा नहीं लगाई।

दूसरी, उतनी ही बड़ी असफलता यह थी कि 1911 में मांचू साम्राज्य का पतन होने पर हमने चीन की क्रान्तिकारी उथल-पुथल को, और भविष्य में हमारी सुरक्षा के साथ उसके सम्बन्ध को नहीं समझा।

तीसरी घटना पश्चिमी यूरोप के लिए नाजी खतरे का सामना करने में हमारी सफलता की थी।

चौथा फ़ैसला यूरोप में युद्धोत्तर-कालीन आर्थिक और राजनीतिक अव्यवस्था की चुनौति को दिया गया हमारा शानदार और निर्णायक उत्तर था।

पाँचवाँ, और आखिरी फ़ैसला सातवें दशक में हमारे सामने है, और उसका सम्बन्ध एशिया, अफ्रीका, मध्य-पूर्व और लातिन अमरीका में रहने वाले दुनिया के दो-तिहाई लोगों की बढ़ती हुई आशाओं और अपेक्षाओं ने मानव-जाति के लम्बे और घटनापूर्ण इतिहास की सबसे सशक्त और खतरनाक, लेकिन साथ ही सबसे अधिक संभावनापूर्ण क्रान्ति को जन्म दिया है।

इस आखिरी फ़ैसले में न केवल अमरीकी सरकार द्वारा, वरन् अमरीकी लोगों द्वारा भी, एक सर्वथा अभूतपूर्व, बड़ी गम्भीर और दूरगामी परिणामों वाली प्रतिबद्धता शामिल है।

अत. हम निर्णय के पहले चार क्षेत्रों पर सक्षेप मे इस आशा से नजर डालें, कि शायद इससे हमें पाँचवें फ़ैसले के सम्बन्ध मे कोई नया दृष्टिकोण प्राप्त हो सके।

1. 'लीग ऑफ नेशन्स में शामिल न होना

1919 में हमारे 'लीग ऑफ नेशन्स' में न शामिल होने के जो परिणाम हुए, उनकी केवल एक संक्षिप्त चर्चा काफी होगी।

विल्सन ने हमें बार-बार चेतावनी दी थी कि अगर हमने उनकी दृष्टि का परित्याग किया और नवोदित विश्व-समाज से अलग हो गए, तो इससे न केवल 'विश्व का दिल टूटेगा' बल्कि हमे अपनी असफलता का मूल्य रक्त से चुकाना पड़ेगा।

लेकिन अलगाववादी प्रवृत्तियाँ तब तक सबल थी, और उनके समर्थक चतुर और दृढ निश्चयी थे। उन्होने कहा कि 'यूरोप की समस्याओं को हल करने' के लिए अपने नौजवानों और अपने धन को विदेश भेजकर हम काफी उदारता दिखा चुके थे।

और इस कारण वुडरो विल्सन की बात नहीं मानी गई, और उनकी 'लीग ऑफ नेशन्स' का परित्याग किया गया। इस तरह हमारे पिताओं की पीढ़ी ने, जो विश्व व्यवस्था के आरम्भ के लिए आवश्यक उत्साह और बल प्रदान कर सकती थी, भविष्य की ओर से मुँह मोड़ लिया। मैं समझता हूँ कि 1919 में विश्व उत्तरदायित्व से अमरीका के पीछे हटने पर सन् 2000 ईस्वी का ऐतिहासिक निर्णय बड़ा कठोर होगा।

2. चीनी क्रान्ति की चुनौती

निर्णय का दूसरा बड़ा क्षेत्र चीनी क्रान्ति की चुनौती से उत्पन्न हुआ। चीनी गणराज्य का जन्म होने पर, नवोदित चीन की भौतिक और मानसिक आवश्यकताओं को समझने, और उसके आर्थिक विकास पर ठोस और शायद निर्णायक प्रभाव डालने के लिए हमारी स्थिति बड़ी ही अनुकूल थी।

किन्तु, 1920 और 1921 मे जब सन-यात-सेन ने चीन के एकीकरण और आर्थिक विकास को आगे बढाने के लिए, काफी मात्रा में कर्ज माँगे, तो हमने फौरन साफ इन्कार कर दिया। यह सवाल उठा था, उस समय इसकी जानकारी भी केवल मुट्ठी भर दूरदर्शी अमरीकियों को थी।

और इस तरह, पश्चिमी यूरोप की राजधानियों में भी ऐसे ही निराश होने के बाद, हताश होकर सन यात सेन उस सहायता के लिए मास्को की नयी साम्यवादी सरकार की ओर मुड़े, जिसे देना अटलांटिक राष्ट्रों ने स्वीकार नहीं किया था।

1922 के वाशिंगटन में हुए निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में हार्डिंग प्रशासन ने इस असफलता को और भी बढ़ाया। जापान ने अपनी शक्ति पर कुछ सीमाएँ लगाना स्वीकार किया था, इसके बदले में हमने अपनी नयी नौसेना के बड़े हिस्से को खत्म कर दिया, पश्चिमी प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में अपनी शक्ति का परित्याग कर दिया, और जापानी आक्रमणों के उस सिलसिले के लिए मार्ग खोल दिया जिसकी परिणति उन्नीस वर्ष बाद पर्ल हार्बर की घटना में हुई।

किन्तु हमारे सामने और भी अवसर आए, हमने और भी बड़ी गलतियाँ कीं। 1927 में, जब सन-यात-सेन के उत्तराधिकारी, चयांग-काई-शेक साम्यवादियों के विरुद्ध हो गए, और उन्होंने एक आधुनिक, अ-साम्यवादी राज्य स्थापित करने की योजना बनाई, तो हमें एक और मौका मिला कि हम पुरानी गलतियों को सुधार सकें। लेकिन एक बार फिर समृद्ध, सन्तुष्ट, दूरस्थ, सुरक्षित अमरीका इस चुनौती को समझने में असफल रहा।

1931 में जापानी सेना ने मन्चूरिया में प्रवेश किया। उस समय भी दृढ़ अमरीकी कार्यवाही जापानी आक्रमण को रोक सकती थी, और चीन को एक स्वतन्त्र और राजनीतिक दृष्टि से स्थायित्वपूर्ण राष्ट्र बनने का मौका मिल सकता था। लेकिन 1930 के बाद हम स्वयं अपनी समस्याओं में फँसे हुए थे, और जापानी नौसेना की शक्ति को तोड़ने के लिए, या लड़खड़ाती हुई चीनी सरकार को अति आवश्यक सहायता प्रदान करने के लिए तैयार नहीं थे।

कोई नहीं जानता कि ठीक-ठीक किस समय चीन की घटनाओं को प्रभावित कर सकने की हमारी क्षमता खतम हो गई।

कुछ प्रेक्षकों का कथन है कि 1941 में भी, अमरीका की ओर से एक व्यापक सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रयास, साम्यवाद का एक प्रभावकारी, लोकतान्त्रिक विकल्प प्रस्तुत कर सकता था। लेकिन युद्ध समाप्त होने तक यह बात स्पष्ट हो गई थी कि बड़े पैमाने पर अमरीकी सैनिक हस्तक्षेप के अलावा और किसी तरह चीन के घटनाक्रम को बदला नहीं जा सकता था।

युद्ध और संकट से जनता की ऊब, और दोनों दलों के राजनीतिक नेताओं द्वारा इस स्वाभाविक मनःस्थिति के अनुकूल चलने के प्रयत्नों के फलस्वरूप, आवश्यक कार्यवाही के सम्बन्ध में बहस भी नहीं हुई।

इस प्रकार, हम अपनी सदी की विदेश नीति सम्बन्धी दूसरी बड़ी चुनौती का सामना करने में असफल रहे। इस असफलता के परिणाम कई पीढ़ियों तक दुनिया के साथ रहेंगे।

3. नाज़ी जर्मनी का विरोध

तीसरी चुनौती को हमने देर से, लेकिन प्रभावकारी रीति से समझा और उसका सामना किया।

इतिहास सम्बन्धी अपनी सबल दृष्टि के कारण, फ्रैंकलिन डेलानो रूज़वेल्ट ने इस बात को समझा कि यूरोप में नाज़ी प्रभुत्व का अर्थ होगा एक ऐसी दुनिया, जिसमें अमरीका की अपनी स्वतंत्रता के लिए आधारभूत खतरा उत्पन्न हो जायगा। 1937 में उन्होंने अमरीकी लोगों में भी यही समझ उत्पन्न करने के लिए धीरे-धीरे प्रयत्न करना शुरू किया।

हमारी पहली प्रतिक्रिया यही थी कि रूज़वेल्ट की अपील को अस्वीकार करके सबसे अलग हो जाएँ। पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों को सामान भेजने पर रोक लगाने वाला तटस्थता अधिनियम हमारी राष्ट्रीय मनःस्थिति को व्यक्त करता था।

फिर भी, आत्म-निर्भरता की पुरानी मिथ्या धारणाएँ कमजोर पड़ने लगी थीं। देर से सही, लेकिन हम राष्ट्रों की परस्पर-निर्भरता को समझने लगे थे, जिसे स्वीकार करने की अपील वुडरो विलसन ने हमसे की थी। और इसलिए, इंगलिस्तान की कठिनतम और श्रेष्ठतम घड़ी में हमने उसका समर्थन किया।

4. युद्धोत्तर-कालीन पुनःनिर्माण की चुनौती

चौथी चुनौती यूरोप में युद्ध समाप्त होने के शीघ्र बाद ही सामने आने लगी।

वर्षों की बमबारी और सड़कों पर हुई लड़ाइयों से यूरोप के नगर खंडहर हो गए थे। भोजन, ईंधन, और इमारती सामान नाकाफ़ी था। बढ़ती हुई मँहगाई और मुद्रा-स्फीति से यूरोप की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था टूटने के निकट आ गई थी।

और इस बीच, कुछ सौ मील दूर पूर्वी जर्मनी और पोलैण्ड में सोवियत सेना के दो सौ डिवीज़न तैयार खड़े थे, जो चाहने पर लगभग निर्विरोध इंगलिश चैनल तक बढ़ जा सकते थे।

सोवियत रूस ने प्रारम्भ में यूनान और तुर्की पर दबाव डाला। इंगलिस्तान, जिसकी चतुर कूटनीति और सैन्य शक्ति ने दो सदियों से रूस को भूमध्य सागर तक पहुँचने से सफलतापूर्वक रोक रखा था, अब इस चुनौती का सामना करने में समर्थ नहीं था।

इसके साथ ही, सारे पश्चिमी यूरोप में, साम्यवादी दल, जो नाज़ीवाद के विरुद्ध भूमिगत प्रतिरोध के साथ सक्रिय रूप में सम्बद्ध रहे थे, संभ्रम उत्पन्न करने, संयुक्त मोर्चे बनाने और अन्ततः सत्ता हथियाने के लिए ज़ोर-शोर से कार्यवाही कर रहे थे।

हमारा सौभाग्य था कि असाधारण सत्यनिष्ठा और बुद्धि के एक व्यक्ति, जनरल जार्ज मार्शल इस संकट-काल में हमारे विदेश सचिव थे। हैरी ट्रूमन हमारे राष्ट्रपति थे, जिनका प्रत्यक्ष साहस और सोद्देश्यता की अविचल भावना निश्चय ही हमारे काल के इतिहास में उन्हें एक विशिष्ट स्थान प्रदान करेगी।

इन व्यक्तियों ने संकट का सामना किया, और फलस्वरूप एक शानदार रचना-

त्मक राष्ट्रीय प्रयास ने रूस के सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक खतरे को रोका, एक नए स्वतंत्र यूरोप की फिर से नींव डाली, और लगभग निश्चित रूप में हमें एक तीसरे विश्व-युद्ध से बचाया।

यूनान और तुर्की की रक्षा के ट्रूमन सिद्धान्त के बाद, पश्चिमी यूरोप के आर्थिक और राजनीतिक पुनःनिर्माण की मार्शल योजना आई। फिर पश्चिमी यूरोप की सैनिक प्रतिरक्षा के लिए उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन बना, और बर्लिन के साथ हवाई यातायात की नाटकीय घटना हुई, जिसमें हमने यह प्रमाणित कर दिया कि हम अमरीकियों और हमारे मित्रों के पास साधनों के साथ-साथ संकल्प भी था।

1949 में, जब नए आज़ाद हुए, बहुत ही ग़रीब, और अब तक बहुत कुछ अविकसित राष्ट्रों की नई चुनौती सामने आने लगी, तब भी हमने एशिया अफ्रीका और लातिन अमरीका के साथ रचनात्मक साझेदारी के लिए चतु:सूत्री कार्यक्रम के द्वारा कुछ सर्वथा नए कदम उठाए।

इन वर्षों में हमने एक अभूतपूर्व चुनौती का शानदार, रचनात्मक और दलीय भावना से रहित उत्तर दिया। इन वर्षों में नेताओं ने सचमुच नेतृत्व किया और जागरूक तथा जानकारीपूर्ण अमरीकी लोगों ने उत्तर में ऐसी निष्ठा और बुद्धि का प्रदर्शन किया, जो किसी महान् राष्ट्र की विशिष्टता होती है।

5. अमरीकी नेतृत्व को सातवें दशक की चुनौती

महत्त्वपूर्ण स्थितियों के इस क्रम में, जिन्होंने इस सदी के पहले साठ वर्षों में अमरीकी लोगों की ऐसी कठिन परीक्षाएँ ली, अब हम पाँचवीं, और सबसे बड़ी चुनौती पर आते हैं।

उन्नीसवीं सदी, और बीसवीं सदी के पहले कुछ वर्षों में, ऐसा कहा जा सकता था कि विश्व-शान्ति लगभग पूरी तरह यूरोप में शक्ति के सन्तुलन, पर निर्भर थी। दूसरे विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद से, इस स्थिति में आधारभूत परिवर्तन हो गया है।

एशिया और अफ्रीका के करोड़ों लोग, जो कभी लंदन, पेरिस, और हाग के आदेशों के अधीन थे, अब स्वतंत्र हो गए हैं। इन नए और अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के उदय ने अनिवार्य ही अमरीकी सरकार, और अमरीकी लोगों के लिए एक बिलकुल नई चुनौती को जन्म दिया।

यह स्थिति, जिसका प्रभाव-क्षेत्र नया और बहुत अधिक व्यापक है, इस कारण और भी उलझ गई है कि अधिकांश उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र में रहने वाली समृद्ध गोरी अल्पसंख्या, और अधिकांश पृथ्वी के दक्षिणी भाग में रहने वाली गरीब रंगीन बहुसंख्या के बीच पहले से ही जो अत्यधिक विस्फोटक अन्तर है, आधुनिक यान्त्रिकी उसे तेजी से और बढ़ा रही है।

इसी समय, विश्व के मामलों में अग्रपंक्ति की ओर बढ़ता हुआ चीन का नया दैत्य है, जो रातोंरात अपना औद्योगीकरण कर लेना चाहता है, जिसमें 65 करोड़

क्रियाशील लोग निवास करते हैं, एक रूढ़िनिष्ठ, आक्रामक नेतृत्व है, अपर्याप्त प्राकृतिक साधन हैं, और जिसके सामने दक्षिण-पूर्वी एशिया में उसे ललचाने वाला शक्ति का अभाव है, जहाँ तेल और उपजाऊ भूमि की बहुतायत है, जिनकी चीन को बड़ी ज़रूरत है।

और अन्त में सोवियत रूस है, जिसमें छह करोड़ टन इस्पात उत्पादन की क्षमता है, हमारी अपेक्षा तीन गुनी औद्योगिक विकास की गति है, दुगुनी संख्या में इंजीनियर और वैज्ञानिक प्रतिवर्ष प्रशिक्षित होते हैं, और आण्विक हथियारों तथा पारम्परिक सैन्य-बल की विशाल शक्ति है।

पिछले दिनों सोवियत नेताओं ने अल्प-विकसित क्षेत्रों के निर्णायक महत्त्व को नए रूप में समझा है, और उनके साथ अपने व्यवहार में एक नए लचीलेपन, नई चतुराई और नए आर्थिक व राजनीतिक कौशल का विकास किया है।

सब मिलाकर, यह स्थिति अब तक किसी समाज के समक्ष कभी भी आई सबसे बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती है। हमारे मूल्यों, हमारे साहस, और हमारी बुद्धि सबकी परीक्षा है। एक स्वतन्त्र समाज के रूप में कार्य करने और समृद्धि प्राप्त करने की हमारी क्षमता की इस अन्तिम परीक्षा के प्रति हमारी राष्ट्रीय प्रतिक्रिया क्या होगी ?

हम कुछ अधिक विस्तार से विचार करें कि हमारे लिए क्या करना आवश्यक है।

पहली आवश्यकता है कि हम उन शक्तियों की प्रकृति को समझें, जो पुरानी व्यवस्था को उलट रही हैं, पुराने समाजों को तोड़ रही हैं, नई उमंग भरी आशाएँ और अपेक्षाएँ उत्पन्न कर रही हैं, करोड़ों व्यक्तियों के समक्ष ज़्यादा अच्छे भविष्य की संभावना प्रस्तुत करते हुए, बहुधा शान्ति के लिए ख़तरे उत्पन्न कर रही हैं।

इस क्रान्ति के मर्म में मानवी गरिमा के विस्तार की, व्यक्ति के लिए अधिक अवसरों की, अधिक मात्रा में न्याय की सार्विक संभावना है। यद्यपि इसके कार्य बहुधा हिंसापूर्ण, तर्कहीन और विध्वंसात्मक होते हैं, किन्तु यह क्रान्तिकारी संभावना उन्हीं मानवी मूल्यों पर आधारित है, जो दुनिया के लगभग हर धर्म में मिल सकते हैं।

सोवियत रूस ने इस क्रान्तिकारी लहर को नहीं उत्पन्न किया, किन्तु वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस लहर को मोड़ने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रयत्न में, कई महत्त्वपूर्ण दृष्टियों से सोवियत रूस की स्थिति बड़ी अनुकूल है।

रूस इन क्रान्तिकारी शक्तियों को समझता है। जातीय संघर्षों से, अथवा दुनिया में रंगीन चमड़ी वाले लोगों के प्रति भेदभाव के इतिहास से उसका चेहरा दूषित नहीं है। अपने तानाशाही शासन के द्वारा वह अपने शैक्षिक, औद्योगिक, आर्थिक या राजनैतिक साधनों को इस प्रकार केन्द्रित कर सकता है जिससे वे सोवियत रूस के लक्ष्यों की पूर्ति में सर्वाधिक उपयोगी हों। आम तौर पर इन साधनों को नए राष्ट्र के आन्तरिक गठन के सबसे कमज़ोर बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है।

फिर भी, रूसी सफलता के मार्ग में कई बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। पहली बात तो यह है कि जो राष्ट्रवाद एशिया और अफ्रीका के नए राष्ट्रों की और लातिन अमरीका

के नव जाग्रत राष्ट्रो की प्रेरक शक्ति बन गया है, सोवियत रूस के घोषित राष्ट्रीय
और सैद्धान्तिक लक्ष्य उसके बिलकुल विरुद्ध हैं। राष्ट्रवाद के विरुद्ध होने के कारण,
सोवियत रूस संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रभावशाली बनाने के भी विरुद्ध है, जहाँ इन
नए राष्ट्रो को अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने के लिए एक विश्व-मंच प्राप्त हुआ है।
सोवियत रूस औपचारिक धर्म का भी गंभीर विरोधी है जिसे वह लोगो के
लिए अफीम समझता है। उसका लक्ष्य स्वतंत्रता का विस्तार नही है, जिसकी सारी
दुनिया को तलाश है, वरन् व्यक्ति को राज्य की सेवा मे जोत देना है।

अमरीका की शक्ति और दुर्बलताएँ क्या हैं?

निर्णायक सातवें दशक की चुनौती का सामना करने मे, बहुत कुछ ऐसा है जो
हमारे प्रतिकूल है। सर्वाधिक हानिप्रद यह तथ्य है कि अमरीकी लोग और उनकी
कांग्रेस इस चुनौती की आवश्यकताओ के प्रति पूर्णतः जागरूक नही है। वे समस्या के
रूप के प्रति निश्चित नही हैं, और स्वयं अपने भविष्य के प्रसग मे उसकी सार्थकता
के प्रति शंकालु हैं।

इसके अतिरिक्त, जातीय भेदभाव का लम्बा इतिहास भी हमारी एक कठिनाई
है। और अन्त मे, हमारी अर्थ-व्यवस्था एक मामूली मदी के प्रभावो से धीरे-धीरे मुक्त
तो हो रही है, किन्तु हमारा उत्पादन अभी हमारी पूर्ण क्षमता से बहुत कम है।

यद्यपि ये कठिनाइयाँ गंभीर हैं, किन्तु हमारी शक्ति भी बहुत अधिक है, और
उसे कम समझना बहुत बडी गलती होगी। हमारे पक्ष मे पहली बडी बात यह है कि
हमारा जन्म एक महान् क्रान्तिकारी नेतृत्व के अन्तर्गत एक क्रान्तिकारी राष्ट्र के रूप
मे हुआ था। उससे भी अधिक महत्त्व की बात है कि यह क्रान्ति अब तक चलती आ
रही है।

किन्तु हमारे पक्ष में सबसे महत्त्वपूर्ण बात वह है, जिसे हम सबसे कम समझते
प्रतीत होते हैं—यह तथ्य कि नए उभरते हुए महाद्वीपों के लोगों के लिए हम ठीक वही
कुछ चाहते हैं, जो वे स्वयं अपने लिए चाहते हैं।

हमें पिछलग्गुओं की, या हमारी इच्छा के अधीन राष्ट्रो की कोई आकांक्षा नही
है। टांगानीका, बोलिविया, बर्मा, कोरिया और अन्य नए व पुराने राष्ट्रों के लोगो के
लिए, हम आर्थिक अवसरो का विस्तार चाहते हैं, अधिक प्रतिष्ठा और न्याय, उनके
बीमारो की देखभाल के लिए अधिक डाक्टर, भूखो के लिए अधिक भोजन, और
निरक्षरता को खतम करने के लिए अधिक संख्या मे और ज्यादा अच्छे स्कूल चाहते
हैं, संचार के बेहतर साधन चाहते हैं ताकि हम एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ
सकें, यात्रा, व्यापार, और स्वतन्त्रतापूर्वक आने-जाने का, और स्वयं अपनी रुचि की
सरकारों के अन्तर्गत, अपनी इच्छानुसार बोलने, सोचने और उपासना करने का
अधिकार चाहते हैं।

विश्व में एक शान्तिपूर्ण, समृद्ध, समाज्यवादी साझेदारी का निर्माण करने के
प्रयास मे, सदस्यों की यह एकता संयुक्त राज्य के हित मे सबसे बड़ी और आधारभूत

शक्ति है। यह तथ्य कि नए राष्ट्रों के लोगों के सोवियत रूस के लक्ष्य, उनके अपने लक्ष्यों के सर्वथा विरुद्ध हैं, सोवियत रूस की आधारभूत दुर्बलता है।'

फिर भी, मुख्य प्रश्न रह जाता है—क्या हम चुनौति का सामना करने के लिए आवश्यक समझ प्राप्त कर सकते हैं, और सफलतापूर्वक उससे निपटने के लिए अपनी शक्तियों को सगठित कर सकते है ?

अगर हम अपने उत्तराधिकार के प्रति सच्चे हैं, तो इसका एक ही उत्तर हो सकता है।

हम ऐसा करें कि सन् 2000 ईस्वी के इतिहासकार यह लिख सकें कि हमारी सदी के पांच महान् निर्णयो मे से पांचवें और सबसे कठिन प्रश्न का अमरीका ने आत्मविश्वास, साहस और सहानुभूति के साथ उत्तर दिया—ऐसा उत्तर जो हमेशा के लिए सही था।

ग्यारह

संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलताएँ

संयुक्त राष्ट्र दिवस के उपलक्ष्य में हुए भोज में श्री बोल्स अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में दुनिया के सबसे बड़े प्रयोग का मूल्यांकन करते हैं। वाशिंगटन, 24 अक्टूबर 1961।

हमारे सामने दो विशाल प्रतियोगी ज्वार विपरीत दिशाओं में उठ रहे हैं। कभी-कभी ये दोनों ज्वार परस्पर इतने विरोधी प्रतीत होते हैं, कि एक को यथार्थ और दूसरे को भ्रम मान लेने का लोभ होता है।

एक ओर शीत युद्ध के संघर्ष की विशाल धारा है। यह कँटीले तारों और पत्थर की दीवारों, जंगल में छिपकर किये गए हमलों और आणविक विध्वंस के खतरों की दुनिया है, हिंसा, अविश्वास और भय की, अलगाव और टकराव की दुनिया है। स्टालिन ने 1946 में जब पहली बार यूनान और तुर्की पर कुदृष्टि डाली, तब से शीत-युद्ध के संघर्ष का यह तूफ़ानी ज्वार अखबारों की सुर्खियों पर छाया रहता है।

किन्तु, शस्त्रीकरण की होड़ के समानान्तर, तनाव के साथ-साथ ही चलता हुआ लोगों की जानकारी से बहुत कुछ छिपा हुआ, एक और भी ज्वार स्वतंत्रता और आशा की ओर, राष्ट्रों और मनुष्यों के बीच अधिक सद्भावना और न्याय की ओर बढ़ता रहा है।

मानवी प्रयास की इस कम नाटकीय, किन्तु शायद निर्णायक धारा के तत्व क्या हैं?

पहला तत्व राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन है, जिसके द्वारा एशिया और अफ्रीका के 10 करोड़ लोगों ने पुराने यूरोपीय और व्यापारिक साम्राज्यों का जुआ उतारकर, पन्द्रह वर्षों के अन्दर चालीस नए देशों का निर्माण किया है। इतिहास के पृष्ठों में सम्भवतः शीत-युद्ध की अपेक्षा मुक्ति की इस लहर को अधिक स्थान मिले।

इस आशाप्रद ज्वार का दूसरा पक्ष है उस भूख, बीमारी और निराशा के विरुद्ध अभियान का विश्व-व्यापी निश्चय, जो सदियों से दुनिया के अल्प-विकसित भागों के लोगों के विशाल बहुमत का भाग्य रहा है।

इस समस्या को दूर करने में नए राष्ट्रों ने काफी अच्छी शुरुआत की है। यद्यपि कई इलाकों में प्रगति धीमी है, किन्तु अन्य क्षेत्रों में हम नियोजन को, सुधार को, और आन्तरिक साधनों को संगठित करने की असाधारण क्षमता देखते हैं।

कुछ समय पहले तक केवल कुछ मुट्ठी भर ऐसे राष्ट्र थे जो उपनिवेशवादी नहीं थे, और जो आवश्यक पूंजी और प्राविधिक समर्थन देने के योग्य थे, और इसके लिए तैयार थे, जिनमें अमरीका भी एक था। अब लगभग पन्द्रह विकसित उद्योग-धन्धों वाले राष्ट्र ऐसे हैं, जो कम विकसित क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रगति में तेज़ी लाने के लिए अपनी पूँजी और प्राविधिक कौशल द्वारा सहायता प्रदान कर रहे हैं। इस सहायता का काफी बड़ा हिस्सा अब क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की मार्फ़त दिया जा रहा है।

यह इस बात का अधिक ठोस प्रमाण है कि आशा की धारा विश्व की समस्याओं के प्रसंग में सबल रूप में प्रवाहित हो रही है।

तीसरी आशाप्रद घटना यह है कि स्वतंत्र राज्यों के नए अन्तर्राष्ट्रीय समूहों का तेज़ी से उदय हुआ है, जो सुरक्षा और विकास के सामान्य उद्देश्यों के लिए स्वतंत्र साहचर्य में काम करना सीख रहे हैं। दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद, राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर निकलने की, और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के नए रूपों को खोजने की एक विशाल प्रक्रिया चली है, और विश्व समाज में, जो अभी तक अनियोजित और भ्रूण रूप में ही है, अचानक नई संस्थाएँ हमारे सामने आई हैं।

ये तीन तत्व आशा के ज्वार का निर्माण करते हैं।

इन घटनाओं से संयुक्त राष्ट्र संघ का क्या सम्बन्ध है? और संयुक्त राष्ट्र संघ से हमारा क्या सम्बन्ध है?

हमारे चारों ओर की उलझी हुई और बहुत कुछ अपरिचित दुनिया से अपनी निराशा के फलस्वरूप, सर्वाधिक विचारपूर्ण और जानकर प्रेक्षकों में भी यह प्रवृत्ति होती है कि संभावनाओं को केवल अंधेरे और उजाले के विरोधी सन्दर्भों में देखें। बीच की विभिन्न स्थितियों का सामना करने का कार्य बहुतेरे अमरीकियों के लिए अपरिचित, कष्टप्रद और असन्तोषजनक है।

इस महान् राष्ट्र का निर्माण करने में हमारे अनुभव ने हममें यह सोचने की आदत डाल दी है कि हर प्रश्न के केवल दो ही पक्ष होते हैं, एक सही और एक ग़लत। यह भी, कि अगर समस्याएँ हैं, तो हल भी होंगे, अगर खुला संघर्ष होता है, तो एक की पूर्ण विजय होगी, दूसरे की पूर्ण पराजय।

लेकिन जिस नई दुनिया का सामना करना हमारे लिए ज़रूरी है, वह बहुत ज़्यादा उलझी हुई है, और उसमें सीधे-सादे हल शायद ही कभी मिलते हैं। हम मनुष्य--जाति के केवल छह प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं, और अपने सारे महान् उद्योगों और सैन्य बल के बावजूद, हम क्या कर सकते हैं, इसकी बड़ी कठोर सीमाएँ हैं।

यह अनिवार्य है कि जो अमरीकी उन उलझनों को नहीं समझ पाते, जिनका सामना संयुक्त राष्ट्र संघ को करना पड़ता है, वे यह आरोप लगाएँगे कि जिस कार्य के लिए इस महान् विश्व संगठन का निर्माण किया गया था, उसे पूरा करने में वह असफल रहा है।

फिर भी, अपने सर्वाधिक सशक्त सदस्यो मे से एक के दृढ विरोध के बावजूद, संयुक्त राष्ट्र संघ, और उसकी विशेष एजेन्सियो का परिवार, बहुसख्यक और विभिन्न प्रकार के मोर्चों पर अधिकाधिक शक्ति और दूरदर्शिता के साथ काम करते रहे हैं।

उदाहरण के लिए, विश्व स्वास्थ्य सगठन इस समय मलेरिया की समाप्ति के लिए अभियान चला रहा है—इतिहास मे कोई अन्य रोग इतनी अधिक मृत्युओ का, और कार्य मे इतनी अधिक क्षति का कारण नही रहा। उसने दुनिया के हर गाँव मे साफ पानी पहुँचाने मे सहायता देने का अभियान भी शुरू किया है।

पिछले वर्ष सयुक्त राष्ट्र बाल निधि ने, जिसमे अट्ठानवें सरकारों ने भाग लिया, साढे पाँच करोड गर्भवती स्त्रियो और छोटे बच्चो की माताओं के लिए ज्यादा अच्छी देख-भाल की व्यवस्था की। उसने पन्द्रह सेंट (लगभग बारह आना) प्रति बच्चे के औसत खर्च पर, नीग्रो बच्चो को होने वाली सूजन की एक व्यापक बीमारी के सिल-सिले मे साढे सात करोड बच्चो का परीक्षण भी किया।

विश्व मौसम सगठन मौसम की सूचना देने के लिए एक विश्वव्यापी व्यवस्था की योजना बना रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय दूर-सचार सघ अब सारी दुनिया के लिए रेडियो तरगो का बँटवारा करता है।

इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय आधार पर आर्थिक और सामाजिक सहयोग के सिल-सिले मे, जिसका जिक्र मैंने पहले किया था, हर क्षेत्र मे द्विराष्ट्रीय या बहुराष्ट्रीय सम-झौतो के साथ-साथ सयुक्त राष्ट्र सघ की सशक्त और रचनात्मक एजेन्सियो का भी विकास होता रहा है, जैसे एशिया और सुदूर पूर्व का आर्थिक कमीशन, और लातिन अमरीका का आर्थिक कमीशन।

सयुक्त राष्ट्र सघ की महासभा ने ठोस राजनीतिक और आर्थिक कार्यवाही की अपनी क्षमता का शानदार प्रदर्शन पिछले वर्ष कागो मे किया।

कागो मे सयुक्त राष्ट्र सघ ने शान्ति और सुरक्षा के अधिक ठोस आधार निर्मित करने की अपनी क्षमता का भी परिचय दिया। बहुत ही कठिन और तात्कालिक परि-स्थितियो मे, अट्ठारह देशो के लगभग बीस हजार व्यक्तियो की आपद्‌कालीन सेना एकत्रित करने का जो असाधारण कार्य सयुक्त राष्ट्र सघ ने किया, वह निकट अतीत मे इस क्षमता का एक नाटकीय उदाहरण है। सघ ने बहुत थोडे समय मे एक बड़ी शान्ति-रक्षक सेना को सगठित करने, नियत स्थानो पर ले जाने, उसे रसद पहुँचाने और सचालित करने की जो योग्यता प्रदर्शित की, वह लगभग सभी लोगों की आशा से अधिक थी। ईरान, यूनान, फिलिस्तीन, स्वेज और कोरिया मे सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा शान्ति रक्षा के कार्य को भी हमें नही भूलना चाहिए।

अन्त मे, शान्ति रक्षा और आर्थिक व सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने के अतिरिक्त, सयुक्त राष्ट्र सघ एक अन्तर्राष्ट्रीय मच के रूप मे भी काफी प्रभावकारी रहा है, जहाँ लोग अपने झगड़े पेश कर सकें। सघ के आलोचक इस कार्य को सिर्फ वाद-विवाद समाज का कार्य कहते हैं, किन्तु सघ मे होने वाली बहसें अत्यधिक महत्व

पूर्ण हैं, यद्यपि उनमें हमे बहुधा कटुता और आडम्बर दिखाई देते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने जो प्रश्न आते हैं, वे इतिहास के सबसे पुराने और कठिन प्रश्न हैं, जिन्हें किसी अन्य मंच पर प्रभावकारी रूप मे प्रस्तुत नही किया जा सकता।

तो फिर, 1961 के यथार्थ जगत मे हम संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल्यांकन कैसे कर सकते हैं ?

स्पष्टतः, हम ऐसा नही कह सकते कि उसने युद्ध की आशंका को समाप्त कर दिया है, या कि विश्व की बड़ी शक्तियों के बीच असहमति की खाई को कम किया है। फिर भी, उसके कार्य कई रूपो में असाधारण रहे हैं।

सभी स्थानों पर स्वतन्त्र मनुष्यों की अनथक शक्तियाँ जिस विशाल वैचारिक संघर्ष में लगी हुई हैं, उसके कारण बडी बाधाएँ आने पर भी, संयुक्त राष्ट्र संघ किसी प्रकार आशा की सशक्त धाराओं के साथ अपने को अधिकाधिक प्रभावकारी रूप में सम्बद्ध करके बढा और विकसित हुआ है।

जहाँ न्याय के महान् प्रश्न उठे हैं, वहाँ संघ ने सारी मानवता के मत की अभिव्यक्ति के लिए मंच का काम किया है।

जहाँ हिंसा का खतरा उत्पन्न हुआ है, वहाँ संघ ने बार-बार धारा को मोड़ने और शान्ति कायम रखने की अपनी बढ़ती हुई क्षमता प्रमाणित की है।

जहाँ लोग गरीबी के अत्याचार से मुक्ति पाने की चेष्टा करते रहे हैं, वहाँ मानवी पीड़ा के विरुद्ध संघर्ष में अनिवार्य सहयोग के लिए उसने नए मार्ग खोले हैं।

हम एक शोर भरे बेचैन और अव्यवस्थित संसार में रहते हैं, जिसमे भय के एक समाज के साथ-साथ आशा का भी एक समाज है। शीत-युद्ध के समानान्तर, एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका के लोगों के साथ संयुक्त राज्य अमरीका की बढ़ती हुई साझेदारी है। यह विकासशील जगत ही संयुक्त राष्ट्र संघ को रूपायित करने मे सहायक होता है, और उसके स्वयं भी अधिकाधिक संघ द्वारा रूपायित होने की संभावना है।

एक अन्तिम बात। हम सब लोग जानते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ को क्या बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति मे हमारी पीढ़ी के अन्य किसी भी व्यक्ति से अधिक जो व्यक्ति सहायक हुआ है, उसे श्रद्धांजलि अर्पित किए बिना मैं अपनी बात समाप्त नहीं कर सकता।

वे जिस संगठन की वाणी और अन्तरात्मा बन गए थे, उसके समक्ष अपने अंतिम प्रतिवेदन मे डॉग हैमरशोल्ड ने यह गम्भीर चेतावनी दी थी।

"संघ के माध्यम से एक ऐसा मार्ग पाने की चेष्टा, जिसके द्वारा विश्व समाज धीरे-धीरे संघ के घोषणापत्र के अन्तर्गत संगठित अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का रूप ले सके, या तो आगे बढ़ेगी, या पीछे हटेगी। संघ के कार्यों के प्रति जिनकी प्रतिक्रियाएँ उसके विकास मे बाधा डालती हैं, या उसके द्वारा प्रभावी कार्य की संभावनाओं को कम

करती हैं, उन पर एक ऐसी स्थिति के पुनः उत्पन्न होने की जिम्मेदारी आ सकती है, जिसे पहले ही सरकारों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद अत्यधिक खतरनाक पाया था।"

डॉग हैमरशोल्ड में व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ की सामान्य बुद्धि के साथ एक प्रेरणाप्रद आदर्शवाद का मिश्रण था। 1961 का यथार्थ जगत ही था जिससे वे सम्बद्ध थे, और इसी जगत में उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिकाधिक प्रभावी रूप में कार्य करने के योग्य बनाया।

हम लोग, जो उनके काम को आगे बढ़ा रहे है, इससे अच्छा और कुछ नहीं कर सकते कि उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते रहें। हमें उस दृष्टि को बनाए रखना होगा, जो हमेशा संयुक्त राष्ट्र संघ का लक्ष्य रही है। ऐसा करके ही हम संयुक्त राष्ट्र संघ को आशा के विश्व-व्यापी समाज का वह उपकरण बना सकते हैं, जो संघ के संस्थापक उसे बनाना चाहते थे।

बारह

नए अलगाववादी

विदेशी मामलों में सुप्रचारित अति दक्षिण-पक्षीय दृष्टिकोण, और हमारे राष्ट्रीय हितों के लिए उसमें निहित खतरों का यह विश्लेषण राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन के समक्ष एक भाषण में किया गया था। वाशिंगटन, 5 नवम्बर, 1961।

जिस नए विश्व का उदय हो रहा है, वह न केवल उलझा हुआ है, बल्कि विशाल भी है, और हम अमरीकी मनुष्य जाति में केवल एक छोटा-सा अल्पसंख्यक समूह हैं। बुद्धिपूर्ण और साहसपूर्ण नीतियों के द्वारा हम विश्व के मामलों पर सबल प्रभाव डाल सकते हैं, किन्तु हम अब यह समझने लगे हैं कि हम उनका नियन्त्रण नहीं कर सकते। हम में से बहुतों के लिए यह एक नया अनुभव है।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि नई समस्याओं और नई शक्तियों से निराशा और परेशानी होने के फलस्वरूप, हमारे कुछ सर्वाधिक समादृत नागरिक छोटे और जल्दी के रास्ते खोजने लगे हैं।

आज अमरीका में कम से कम तीन प्रकार के नए अलगाव-समर्थक विचार हैं, जिनमें यह निराशा परिलक्षित होती है।

प्रथम वे लोग हैं, जो यह मानने लगे हैं कि जल्दी या देर से, युद्ध संभवतः अनिवार्य है। यह सबसे खतरनाक किस्म का पराजयवाद है।

निस्संदेह, हम युद्ध की संभावना से मुँह चुरा कर शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। जब तक नियन्त्रित निःशस्त्रीकरण, और क़ानून के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के सम्बन्ध में पूर्ण सहमति नहीं हो जाती, तब तक हमारी सैन्य शक्ति न केवल हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आवश्यक है, वरन् मनुष्य जाति के विशाल बहुमत के लिए भी आवश्यक है, जो कम्युनिस्ट जगत में रहने के कदापि इच्छुक नहीं है।

हमारी प्रतिरक्षा क्षमता को इस समय सबल बनाने का अर्थ यह नहीं है कि युद्ध अनिवार्य है। इसके विपरीत, यह एक आवश्यक रक्षा-कवच है, जिसके पीछे रचनात्मक शक्तियाँ एक तर्क संगत विश्व समाज की नींव डालने के लिए कार्य कर सकती हैं।

आजकल के लगाववादी विचारों का दूसरा रूप यह है कि बहुतेरे अमरीकी विदेशों की कहीं अधिक बड़ी चुनौती को भूलकर मुट्ठी भर स्थानीय साम्यवादियों की

कार्यवाहियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं ।

हर बुद्धिपूर्ण व्यक्ति जानता है कि एक विश्व-व्यापी साम्यवादी षड्यन्त्र चल रहा है, और दुनिया के लगभग हर राष्ट्रों में, जिनमें अमरीका भी है, सोवियत साम्राज्य के एजेण्ट हैं ।

लेकिन आन्तरिक विध्वंस के प्रति अपनी चिन्ता में इस बात का ध्यान रहे कि हम कहीं गलत लक्ष्य पर वार न कर बैठें । कुछ निराश अमरीकी ऐसा कहते प्रतीत होते हैं कि साम्यवाद का उदय समाजवाद से होता है, समाजवाद का उदारवाद से, और उदारवाद का जन्म उन लोकतान्त्रिक विचारों से होता है जिन्हें थॉमस जेफरसन ने हमारे स्वतन्त्रता के घोषणापत्र में समाविष्ट किया । यह धारणा सर्वथा असंगत है।

साम्यवादी चुनौती का एक मात्र यथार्थनिष्ठ उत्तर यही है कि न केवल अमरीका में, वरन् दुनिया में हर जगह लोकतन्त्र और प्रगतिशीलता कम न होकर अधिक हो ।

अलगाववादियों का तीसरा और शायद सबसे ज्यादा परेशान समूह उन लोगों का है, जो व्यवहार में ऐसा कहते प्रतीत होते हैं कि, 'दुनिया को रोको, मैं इससे निकलना चाहता हूँ ।' अगर उनका वश चलता तो वे दुनिया के मामलों से अलग होकर भविष्य का बोझ दूसरों पर छोड़ देते, यह मानकर कि हम मानवी घटनाओं के प्रवाह से अपने को काटकर अलग कर सकते हैं ।

क्या किसी विचारशील व्यक्ति को ऐसी किसी नीति के परिणाम के बारे में कोई संदेह हो सकता है ? वास्तव में, प्रथम महायुद्ध के बाद क्या हमने लगभग पूर्णतः यही नीति नहीं अपनाई थी, जिसके विनाशकारी परिणाम हुए ? मुझे बार-बार यह प्रश्न चिन्तित करता है कि क्या हमने पूरी तरह और आखिरी तौर पर सबक सीख लिया है ?

फिर, हम कुछ ईमानदार लेकिन दिग्भ्रमित लोगों की आवाज सुनते हैं, जो यह मानते हैं कि हम इतिहास के परिणामों की उपेक्षा कर सकते हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ के मार्मिक महत्त्व की ओर से आँख मूँद सकते हैं, विना समझे-बूझे अपने शुल्क बढ़ा सकते हैं, विदेशी सहायता बन्द कर सकते हैं, अपने मित्रों का साथ छोड़ सकते हैं, जो राष्ट्र हमें अच्छा न लगे उस पर आक्रमण कर सकते हैं, और किसी प्रकार इन कार्यों के परिणामों से बच सकते हैं ।

मैं उनकी ईमानदारी का आदर करता हूँ, और सीधे-सादे उत्तरों के लिए उनकी सच्ची इच्छा को समझता हूँ । लेकिन उनकी बुद्धिहीन सलाह को मान लेने पर जो विपत्ति निश्चय ही आएगी, उनकी असंदिग्ध देशभक्ति और सदिच्छाएँ क्या उसमें रत्ती भर भी कमी कर सकेंगी ?

विश्व की अभूतपूर्व चुनौती जो आज हमारे सामने है, वह विदेशी सहायता या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, या संयुक्त राष्ट्र संघ की बहसों के उतार-चढ़ाव या हमसे असहमत पड़ोसियों के दृष्टिकोण से नहीं उत्पन्न हुई, वरन् आज की दुनिया की भूत-पूर्व क्रांतिकारी शक्तियों से उत्पन्न हुई है ।

इन सबल शक्तियों का प्रभावकारी रीति से सामना करने के लिए विशाल शक्ति, धीरज और बुद्धिमत्ता की आवश्यकता पड़ेगी। हमारा बहुतत्ववादी समाज उपकरणों की जो व्यापक विभिन्नता प्रस्तुत कर सकता है, उस सब की आवश्यकता पड़ेगी—कूटनीति का कौशल, निजी सम्बन्धों की गरमाहट, आर्थिक और प्राविधिक सहायता का सहयोगी हाथ, और सैन्य शक्ति का रक्षा-कवच।

फिर भी, एक आवश्यक शर्त के साथ, मुझे विश्वास है कि हम सफलतापूर्वक चुनौती का सामना कर सकते हैं। शर्त सीधे-सादे रूप में यह है—क्या हम संघर्ष की प्रकृति को साफ-साफ समझते हैं? इतिहास की इस निर्णायक घड़ी में, हम अमरीकी लोग वस्तुतः चाहते क्या हैं?

कुछ लोग उत्तर देंगे कि हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य स्वतः स्पष्ट है—अमरीकी जीवन-पद्धति का संरक्षण। लेकिन आज की निकट पारस्परिक सम्बन्धों वाली दुनिया में, क्या यह उत्तर अब भी पर्याप्त है?

एक क्षण के लिए कल्पना करें कि आप विशाल ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे एक युवा भारतीय अध्यापक मोहन चौधरी से बात कर रहे हैं। वह पूछ सकता है "साम्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में हम हिन्दुस्तानी लोग अमरीकियों का साथ क्यों दें?"

और मान लीजिए कि आप उत्तर देते हैं, "इसलिए कि अमरीकी जीवन-पद्धति की रक्षा करने में हमें आपकी सहायता की आवश्यकता है।" क्या आप पूर्ण विभ्रम के अतिरिक्त और किसी प्रतिक्रिया की आशा कर सकते हैं?

बारह हजार मील दूर दुनिया के सबसे धनी लोग आगे भी अपनी आराम की जिन्दगी बनाए रखें, इसके लिए एक सामान्य भारतीय अध्यापक मोहन चौधरी अपने जीवन को खतरे में डालना क्यों स्वीकार करे?

कुछ अन्य लोग कह सकते हैं कि अमरीका के राष्ट्रीय उद्देश्य को अधिक व्यापक सन्दर्भ में व्यक्त करना चाहिए। वे पूछ सकते हैं, "हमारा सच्चा लक्ष्य क्या यह नहीं है कि हम आर्थिक सहायता और कुशल कूटनीति का प्रयोग अन्य राष्ट्रों को अमरीकी नेतृत्व के पीछे लाने के लिए करें।"

लेकिन क्या हममें से सर्वाधिक स्वार्थ बुद्धि वाला व्यक्ति भी गंभीरता से यह विश्वास कर सकता है कि सम्पूर्ण राष्ट्रों की निष्ठा को खरीदना संभव है?

अधिकांश मनुष्य जाति को ऐसे तर्क बिलकुल खोखले लगते हैं, क्योंकि वे हमारे लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। फिर, अमरीका के सच्चे उद्देश्य क्या हैं, और हम उन्हें दुनिया के समने ऐसे रूप में किस प्रकार रख सकते हैं कि उन्हें समझा जा सके?

निश्चय ही, वर्तमान चुनौती केवल मनुष्यों की उस विशेषाधिकारयुक्त अल्पसंख्या के लिए नहीं है, जिनकी सर्वाधिक भौतिक हानि होने की आशंका है। यह चुनौती सभी ऐसे मनुष्यों के लिए है जिन्हें स्वतन्त्रता से और स्वयं अपने ढंग से अपने भाग्य का निर्माण करने के अधिकार से प्रेम है।

हम फिर कल्पना करें कि हम ब्रह्मपुत्र के किनारे एक गाँव में हैं, और मोहन

चोपरी हमसे फिर यह निर्णायक प्रश्न पूछता है, 'साम्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में हम हिन्दुस्तानी लोग अमरीकियों का साथ क्यों दें ?'

और मान लीजिए कि आप उत्तर देते हैं, " 'भौतिक दृष्टि से आप और हम हजारों मील दूर हैं, लेकिन कुछ सार्वभौतिक विश्वासों में हम हिस्सेदार हैं, जिनके लिए हमारे पुरखे पीढ़ियों तक लड़े, जिनकी रक्षा करने के लिए हम आज तैयार हैं, और जिनके लिए आपके अपने महान् गांधी ने अपनी जान दी।

" 'इसलिए हम आपसे और इन विश्वासों में हिस्सेदार अन्य सभी लोगों से कहते हैं—हम एक ऐसे विश्व का निर्माण करने के लिए मिलकर काम करें, जिसमें मनुष्य ऐसी तानाशाही के बजर पाश से अपने को मुक्त कर सकें, जो इन मूलभूत मानवी मूल्यों से इन्कार करती है।' "

जब हम ऐसे सात्विक शब्दों में बोलना सीख लेंगे, तो सभी जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के करोड़ों लोगों के चेहरे एक नई समझ और नए आत्मविश्वास से चमक उठेंगे।

एक राष्ट्र के रूप में हमारी ऐतिहासिक भूमिका हमेशा स्पष्ट रही है। आज उसे देश और विदेश में फिर से दुहराने का समय है।

तेरह

सारी मानवता के लिए क्रान्ति

क्या हमारे जैसा अभावहीन, समृद्ध राष्ट्र, विकासशील राष्ट्रों में शान्तिपूर्ण परिवर्तन की एक विश्व-व्यापी क्रान्ति को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकता है? श्री बौल्स का विश्वास है कि ऐसा हो सकता है—बशर्तेकि हम स्वयं अपनी क्रान्तिकारी परम्पराओं के प्रति सच्चे रहें। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन में प्रकाशित एक लेख से, 10 दिसम्बर, 1961।

क्या हमारे जैसा अभावहीन और सुविधायुक्त राष्ट्र शान्तिपूर्ण परिवर्तन की एक विश्व-व्यापी क्रान्ति में एक नेता और सहयोगी के रूप में भाग ले सकता है? या कि स्वयं अपनी आशंकाओं और कुंठाओं के फलस्वरूप, उसका यही भाग्य है कि वह यथा-स्थिति के साथ जुड़ा रहे, जिसका विनाश निश्चित है, या अधिक से अधिक, किनारे पर खड़ा आशंका भरी दृष्टि से देखता रहे?

ये प्रश्न उस चुनौती के केन्द्र में हैं, जो अमरीकी विदेश-नीति के सामने है। एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका में जहाँ भी मैंने यात्रा की हमारी द्विविधा के मर्म में वही बात मिली—क्या हम समझेंगे, क्या हम अपने को आवश्यकतानुसार ढाल सकते हैं, क्या हम प्रभावी रीति से कार्य कर सकते हैं?

पिछले चार महीनों में, हमारे विदेशस्थित कूटनीतिक कार्यालयों के पुनः संगठन के सिलसिले में, और मलाया में कोलम्बो योजना की वार्षिक बैठक में भाग लेने के फलस्वरूप मैंने यूरोप के अतिरिक्त सभी महाद्वीपों की यात्रा की। और हर जगह ये प्रश्न बार-बार दुहराये गए—नए अफ्रीकी राष्ट्रों में हमारे राजदूतों द्वारा उठाई गई समस्याओं में, लातिन अमरीका में हमारे आर्थिक सहायता प्रशासकों के सामने आने वाली कठिनाइयों में, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया की सरकारों में हमारे आलोचकों और शुभचिन्तकों के सन्देहों और आशाओं में।

हम निस्सन्देह एक विश्व क्रान्ति के मध्य खड़े हैं। क्या विशाल समृद्धि और भौतिक सुविधाओं वाला कोई राष्ट्र कभी कमर कस कर ऐसी किसी क्रान्ति में सक्रिय योग देने वाला हिस्सेदार बना है? मैंने इतिहास को जितना पढ़ा है, उसमें ऐसा कोई राष्ट्र नहीं मिलता।

तब, क्या अमरीका इतिहास का पहला अपवाद बन सकता है? लगभग निश्चित

रूप में, इस प्रश्न का हमारा उत्तर न केवल भविष्य का रूप निर्धारित करेगा, वरन् आने वाली कई पीढ़ियों के लिए सभ्यता की दिशा भी निर्धारित करेगा।

एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका में करोड़ों लोग अधीर होकर पुरानी संस्थापित व्यवस्था को तोड़ने की चेष्टा कर रहे हैं—जमींदार और किसान की पुरानी अर्थ-व्यवस्था को, मालिक और नौकर की पुरानी समाज-व्यवस्था को, शासक और शासित की पुरानी राजनीतिक व्यवस्था को।

इन सभी विकासशील महाद्वीपों में, सबसे खतरनाक खाई अब भी अत्यधिक धनी और अत्यधिक निर्धन लोगों के बीच की खाई है। इस पृष्ठभूमि में अमरीकी लोगों की स्थिति सम्पन्नता के सर्वाधिक मुखर अन्तर्राष्ट्रीय उदाहरण की है। और हमारा काम इस कारण और भी कठिन हो जाता है कि हमारा राष्ट्र मुख्यतः गोरे लोगों का है, जबकि दुनिया के दो तिहाई लोग रंगीन चमड़ी वाले हैं।

विश्व व्यापी क्रान्ति के मार्ग-दर्शन में सहायक होने की बात तो छोड़ें, ऐसा राष्ट्र उस क्रान्ति से जुड़ भी कैसे सकता है? दो मोटरें रखने वाला आदमी, उस आदमी से कैसे बात कर सकता है, जो अपनी पहली साइकिल का सपना देख रहा है? मोटापे से चिन्तित स्त्री, किसी ऐसी स्त्री से क्या कह सकती है जिसके बच्चे भूखे हैं?

यद्यपि हमारी सफलता के मार्ग में बाधाएं बहुत बड़ी हैं, किन्तु चुनौती का सामना करने में, कुछ बातें हमारे पक्ष में भी हैं। पहली बात हमारी अपनी अमरीकी क्रान्तिकारी परम्परा है। एक राष्ट्र के रूप में हमारा जन्म एक सकल्प के साथ हुआ था, पहले तो अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने का, और फिर हमारी सारी जनता को अधिकाधिक न्याय और आर्थिक तथा सामाजिक अवसर उपलब्ध हों, इसके लिए आवश्यक सभी कदम उठाने का।

हमारा क्रान्तिकारी उत्साह हमारे अपने महाद्वीप तक सीमित भी नहीं रहा। आरम्भ से ही हमारे संस्थापकों ने अपनी दृष्टि अधिक व्यापक क्षितिज पर रखी थी। जेफरसन ने कहा था, "अमरीकी क्रान्ति सारी मनुष्य जाति के लिए है।" और *मनुष्यों की बहुसंख्या*, उन्होंने आगे कहा, *"का जन्म इसलिए नहीं हुआ कि कुछ विशेष कृपापात्र लोग ईश्वर के अनुग्रह से उनकी पीठ पर सवारी करें।"*

लोकतांत्रिक क्रान्ति सम्बन्धी जेफरसन की दृष्टि, कि उसके लाभ में सभी मनुष्यों को हिस्सा मिलना चाहिए, हमारे सारे इतिहास में हमारे साथ रही है। एक के बाद एक हमारे राष्ट्रपतियों ने ऐसे प्रेरणादायक शब्द और कार्य कहे और किए हैं, जिन्होंने मनुष्य की आत्माओं को जगाया है।

लिंकन ने कहा, "क्रान्ति का अधिकार, एक अधिकतम पवित्र अधिकार है। ऐसा अधिकार जो हम समझते हैं *विश्व को मुक्त करने का है।"* *1817* में विल्सन के चौदह सूत्रों में हर जगह पराधीन लोगों के लिए आत्म-निर्णय के अधिकार का समर्थन किया गया था, और इन प्रस्तावों की जड़ें अमरीकी परम्परा में बहुत गहरी थीं।

फ्रैंकलिन डी० रूज़वेल्ट की चार स्वतंत्रताओं के साथ भी ऐसा ही था—भाषण

ग्रौर ग्रभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वयं ग्रपनी रीति से ईश्वर की उपासना करने की स्वतत्रता, ग्रभाव से मुक्ति, ग्रौर भय से मुक्ति—ग्रौर इनमें से हर एक विशिष्ट रूप में 'दुनिया में हर जगह' के लोगो के लिए थी।

ग्रतः हमारे नैतिक ग्रौर वैचारिक साधनों मे सर्वप्रथम हमारी ग्रपनी क्रान्तिकारी परम्परा का ग्रादर्शवाद है। दूसरा उपकरण उस परम्परा की ग्रार्थिक, राजनीतिक, ग्रौर सामाजिक ग्रन्तर्वस्तु है। एक राष्ट्र के रूप मे हमने केवल क्रान्ति को मौखिक श्रद्धांजलि ही नहीं ग्रर्पित की, वरन् हमने क्रान्ति को कानून का रूप दिया। ग्राज की दुनिया के सन्दर्भ में, बहुतेरे ग्रार्थिक ग्रौर सामाजिक कानून ग्रौर कार्यक्रम, जिन्हे हम ग्रमरीकी लोग जीवन का सामान्य ग्रंग मानकर चलते हैं, वैचारिक दृष्टि से ग्रामूल परिवर्तन लाने वाले ग्रौर परिणाम की दृष्टि से क्रान्तिकारी है।

उदाहरण के लिए, एशिया, ग्रफ्रीका, ग्रौर लातिन ग्रमरीका के बहुतेरे नेता ग्रभी भी क्रमशः बढ़ते हुए ग्रायकर को एक गम्भीर परिवर्तन लाने वाला सिद्धान्त मानते हैं, जबकि हम ग्रमरीकियो ने इसे पचास वर्ष पहले ही स्वीकार कर लिया था। ग्रधिकाश ग्रमरीकियों ने, चाहे वे किसी भी दल में हों, बहुत पहले से ही इस पद्धति को स्वीकार कर लिया है, जिससे न केवल राजस्व की प्राप्ति होती है, वरन् धन का पुनर्विभाजन करके जो ग्रमीर ग्रौर गरीब के फर्क को बहुत ग्रधिक घटा देती है।

इसी प्रकार, सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक ग्रावास, उपयोगी सेवाग्रों ग्रौर परिवहन का नियमन, ग्रौर काफी भारी निगम कर जैसी धारणाएँ, जो ग्रब हमारी ग्रर्थव्यवस्था का सामान्य ग्रंग हैं, दुनिया के बड़े हिस्से में ग्रब भी 'ग्रामूल परिवर्तन' की धारणा से जुड़ी हुई हैं।

एशिया, ग्रफ्रीका, ग्रौर लातिन ग्रकरीका में इस समय जो क्रान्तियाँ हो रही है, वे जीवन स्तरो को उठाने, राष्ट्रीय सम्पत्ति का वितरण ग्रौर स्त्रियों, पुरुषो व बच्चो को न्यूनतम सुरक्षा प्रदान करने की चेष्टा कर रही हैं। ये ऐसे लक्ष्य हैं, जिन्हें प्राप्त करने की चेष्टा हम करते रहे हैं, ग्रौर ग्रब भी कर रहे हैं।

ग्राज की विश्व-व्यापी क्रान्ति से हमें सम्बद्ध करने वाला तीसरा मूल तत्व हमारे इस गंभीर विश्वास से उत्पन्न होता है, कि हर ग्रामीण परिवार को स्वयं ग्रपनी भूमि का मालिक होने का ग्रवसर मिलना चाहिए। ग्रौर ग्राज तीन महाद्वीपों में उठ रही क्रान्ति की लहर मे ग्रौर कोई तत्व ऐसे भूस्वामित्व के लिए भूमिहीनो ग्रौर काश्तकारो की ग्राकांक्षा से ग्रधिक मौलिक नही है।

ग्रौपनिवेशिक काल से ही, भूस्वामी किसानों, ग्रौर देशभक्त सेनाग्रों के सदस्यों के रूप में, हमने दूरगामी प्रभाव डालने वाले कानूनों के द्वारा हर प्रकार की ग्रामीण सामन्तशाही का विरोध किया है। सौ वर्ष पहले हमने ग्रपने विश्वासों को 'होमस्टेड ग्रधिनियम' का रूप दिया, जिसके ग्रनुसार हर ऐसा परिवार जो खेती कर सकता या ग्रौर करना चाहता था, 160 एकड़ भूमि ले सकता था। बाद में ग्रामीण कर्जों, सहकारिता, ग्रौर कृषि-सुधार की एजेन्सियो के द्वारा स्वतंत्र भूस्वामित्व की इस

धारणा को हमने सबल बनाया।

ये तीन बड़े अमरीकी प्रसाधन—हमारी उपनिवेश-विरोधी क्रान्तिकारी परम्परा, आर्थिक और सामाजिक सुधारों का समर्थन, और भूमि के निजी स्वामित्व के प्रति हमारी निष्ठा—आज के क्रान्तिकारी जगत द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत कसौटी का सामना करने में हमारी बहुत अधिक सहायता कर सकते हैं।

लेकिन आज बहुतेरे एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका वासी ऐसा अनुभव करते हैं कि अपनी परम्पराओं से हमारा सम्बन्ध टूट गया है। इसलिए यह आवश्यक है कि आधुनिक क्रान्तिकारी विश्व के सन्दर्भ में हम अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों पर गंभीरता से विचार करें और उन्हें साफ-साफ परिभाषित करें। विश्व के साथ अपने सम्बन्धों में हम वस्तुतः चाहते क्या हैं? हमारे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कदम क्या हैं? हम दूसरे राष्ट्रों की सद्भावना और समर्थन क्यों प्राप्त करना चाहते हैं?

इन प्रश्नों पर नागरिकों और मतदाताओं के रूप में हमें निरन्तर विचार करना होगा। ये प्रश्न हैं, जिन पर हमारे नीति-निर्माता और दूतावासों के अधिकारी पिछले कई महीनों से पुनर्विचार करते रहे हैं। कारण, कि विदेशों में हमारी सारी कार्यवाहियों के मर्म में यही प्रश्न हैं।

उदाहरण के लिए, हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य क्या केवल साम्यवाद का प्रतिकार करना है? साम्यवाद हर जगह स्वतन्त्र संस्थाओं के लिए एक जबरदस्त चुनौती है, और साम्यवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई, हर प्रकार के अत्याचार के विरुद्ध हमारे संघर्ष का एक अंग है।

किन्तु, मात्र साम्यवाद के विरोध को जेफरसन और लिंकन के राष्ट्र का एकमात्र राष्ट्रीय उद्देश्य नहीं माना जा सकता। वस्तुतः जब हम अपने सारे कार्यों को किसी राष्ट्र में साम्यवादी खतरे की उपस्थिति या अनुपस्थिति से जोड़ देते हैं, तो हम उस राष्ट्र में साम्यवाद को यूरेनियम या मिट्टी के तेल की भाँति एक प्राकृतिक साधन का सा रूप देने लगते हैं, एक ऐसी वस्तु जिसके बदले में अमरीकी राजकोष से डालर प्राप्त किये जा सकते हैं।

या, जैसा हमसे बहुधा कहा जाता है, क्या हमारा उद्देश्य 'लोगों के मन पर अधिकार करना' है? विश्लेषण करने पर, यह लक्ष्य भी, व्यावहारिक यथार्थ और हमारे लोकतान्त्रिक विश्वास, दोनों ही दृष्टियों से अनुपयुक्त सिद्ध होता है। क्या जेफरसन ने हमारे प्रयत्नों को मनुष्यों के मन की मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध नहीं किया था, और क्या यह लक्ष्य हमारे सारे इतिहास में परिलक्षित नहीं होता?

अन्त में, कुछ ऐसे लोग हैं जिनका कहना है कि हमारा उद्देश्य सार्वजनिक स्वामित्व की तुलना में निजी स्वामित्व की उत्कृष्टता प्रदर्शित करना है। पूंजीवाद ने हमारे अपने देश में आश्चर्यजनक कार्य किए हैं, और दुनिया के अन्य हिस्सों में भी वह बड़े कार्य कर सकता है। लेकिन पूंजीवाद की सार्वभौमिक स्वीकृति अमरीका का अन्तिम राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं है। पूंजीवाद लक्ष्य-प्राप्ति का एक साधन है, स्वयं लक्ष्य

नही है।

हमारा सच्चा राष्ट्रीय उद्देश्य, जहाँ तक मैं समझता हूँ, कही अधिक सरल, कही अधिक सार्वभौमिक, और कही अधिक प्रभावकारी है। यह उद्देश्य है असाम्यवादी राष्ट्रों के साथ मिलकर, एक ऐसे विश्व-समाज के निर्माण के प्रति हमारी निष्ठा, जिसमें वरण की स्वतन्त्रता सभव हो, जिसमें लोग अधिकाधिक मात्रा में आर्थिक अवसर और सामाजिक न्याय प्राप्त करते हुए स्वयं अपनी मर्जी का जीवन बिता सकें, और जिसमें राष्ट्र स्वयं अपनी सस्कृतियो और परम्पराओं के अन्तर्गत स्वयं स्वतन्त्र निर्णय कर सकें।

अपने पक्ष के तत्वो को समझना, और अपने लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करना एक बात है। विशिष्ट कार्यक्रमों और नीतियों के द्वारा अपनी नई चेतना के अनुरूप कार्य करना बिलकुल अलग बात है।

अपने राष्ट्रीय उद्देश्य को इस क्रान्तिकारी विश्व के लिए बुद्धिपूर्ण और रचनात्मक कार्यक्रमों का रूप देने के तरीके की खोज में जो उत्तर हमारे सामने आए हैं, उन पर पुनर्विचार करना उपयोगी हो सकता है।

सर्व प्रथम, यह बात बिल्कुल साफ है कि सभी कार्यवाहियो की पूर्व-आवश्यकता के रूप में, अपनी सैन्य शक्ति को कायम रखना हमारे लिए उस समय तक आवश्यक है, जब तक संभाव्य आक्रान्ता शक्तियाँ मौजूद हैं। इसके साथ ही, हमारी प्रतिरक्षा नीति हमेशा स्पष्ट सयम की रहनी चाहिए, कभी भी उत्तेजित करने की नही।

दूसरे, यह बात भी उतनी ही साफ है कि आणविक हथियारों की बढ़ती हुई होड़ के जबरदस्त खतरे को हमे कभी नहीं भूलना चाहिए। प्रभावकारी और सुरक्षा-पूर्ण निःशस्त्रीकरण योजनाओं की तलाश में हमारा धीरज अनन्त होना चाहिए।

तीसरे, हमें अहंकार और निराशा का परित्याग करके, हमेशा के लिए यह निर्णय करने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी चाहिए कि जो लोग हमारे साथ नही हैं, वे निश्चय ही हमारे विरुद्ध होंगे।

हम यह न भूलें कि जार्ज वाशिंगटन से लेकर, वुडरो विल्सन तक, यूरोप के 'अनन्त झगड़ों' के प्रति 'तटस्थता', हमारी विदेश नीति का मुख्य अंग थी। कि दुनिया के नए राष्ट्र, जो हाल ही में यूरोप की औपनिवेशिक शक्तियों का जुआ उतार फेंकने में सफल हुए हैं, अपनी तात्कालिक समस्याओं में उसी तरह फँसे हुए हैं, जैसे अपने विकास के वैसे ही काल मे हम फँसे हुए थे। और यह कि इस बात की पूरी संभावना है कि ये राष्ट्र आगे भी साम्यवादी चुनौती को पूरी तरह नही समझेंगे, जिसकी हमें उचित ही चिन्ता है।

अपने राष्ट्रीय उद्देश्य को कार्यान्वित करने मे चौथा और निर्णायक महत्त्व का प्रश्न विदेशों मे आर्थिक और प्राविधिक सहायता का हमारा कार्यक्रम है।

विदेशो मे हमारे सूचना कार्यक्रम पाँचवाँ और अन्तिम तत्व हैं। इन कार्यक्रमों मे हमारा वास्तविक रूप प्रस्तुत होना चाहिए—सौभाग्यशाली लेकिन आत्मतुष्ट नहीं;

एक राष्ट्र जो अब भी शिक्षा, आवास, और जातीय सम्बन्धों की समस्याओं से जूझ रहा है; एक राष्ट्र जो अब भी अधिक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की ओर आगे बढ़ रहा है। हमें उन लक्ष्यों की चर्चा करनी चाहिए, जिन्हें प्राप्त करने की हम अब भी चेष्टा कर रहे हैं, और जिन्हें हम विदेशों में दूसरों के साथ मिलकर प्राप्त करना चाहते हैं।

अपनी सारी क्षतियों और विभ्रम सहित, एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका में मानवी स्वतन्त्रता की वर्तमान लहर में मूलतः उन सार्विक लक्ष्यों का संघर्ष ही चला आ रहा है, जिन्हें हमारे पूर्वजों ने स्वतन्त्रता के घोषणापत्र में स्वयं-सिद्ध घोषित किया था।

अगर हमारी पीढ़ी के अमरीकी अच्छी तरह इस चुनौती को समझकर उसका सामना कर सकें, तो किसी के भी लिए इस तरह भय का कारण बहुत कम है कि विकासशील नए राष्ट्र साम्यवादी प्रति क्रान्ति के खोखलेपन, कटुता, और झूठे मूल्यों के शिकार हो जाएँगे।

चौदह

एक नयी कूटनीति की ओर

विदेशी सहायता, शान्ति सेना, शान्ति के लिए भोजन, और विदेशों में अन्य विकास कार्यक्रमों ने मध्य-बीसवीं सदी की कूटनीति के बढते हुए कार्यक्षेत्र को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है। 1962 के प्रारम्भ में फॉरेन एफेयर्स में प्रकाशित एक लेख में श्री बोल्स बताते हैं कि इस चुनौती का सामना करने के लिए, नए प्रशासन ने अपने विदेश-स्थित कार्यालयों का संगठन किस प्रकार किया है।

पिछले महायुद्ध के पूर्व, अमरीकी विदेश-नीति के कार्य अपेक्षतया सुनिर्दिष्ट थे। विदेश सचिव कॉर्डेल हल के पास वाशिंगटन में एक हज़ार से कम कर्मचारी थे, और वे सारी दुनिया में फैले हुए हमारे कूटनीतिक कार्यालयों का संचालन एक ऐसी इमारत से करते थे, जिसमें युद्ध और नौसेना विभागों के दफ़्तर भी थे।

विदेश स्थित अठहत्तर राजदूतों का कार्य अधिकांश यही था कि घटनाक्रमों की सूचना दें और उनका विश्लेषण करें, और समझौता-वार्ताओं तथा समारोहों में राष्ट्रपति का प्रतिनिधित्व करें।

बीस निर्णायक वर्षों ने इस परम्परागत रूप को नाटकीय रीति से बदल दिया है। विश्व-क्षेत्र में हमारी जिम्मेदारियाँ बढने के साथ-साथ, हमारी कूटनीति का कार्य अधिक पेचीदा हो गया, और उसके उपकरण भी तदनुसार बहुगुणित हो गए।

राजदूतों के लिए, इस परिवर्तन के फलस्वरूप, चुपचाप देखने की अपेक्षा सक्रिय रूप में काम करना अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। आय-व्यय और प्रशासन की दृष्टि से, इस परिवर्तन के फलस्वरूप विदेशी विभाग में अब 38,000 कर्मचारी हैं, जिनमें वैदेशिक सेवा और अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी (जिसमें 17,000 कर्मचारी हैं) के सदस्य भी शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त, एक शान्ति सेना है, एक 'शान्ति के लिए भोजन' कार्यक्रम है, एक संयुक्त राज्य सूचना एजेन्सी है, एक केन्द्रीय गुप्त-सूचना एजेन्सी है, विभिन्न प्रकार के सैन्य कार्यक्रम हैं, और श्रम, व्यापार, खेती, तथा राजकोष विभागों के फैले हुए विदेश स्थित कार्यक्रम हैं।

इसके अतिरिक्त, अब सौ से अधिक देशों में हमारे कूटनीतिक प्रतिनिधि हैं और

166 कौन्सल कार्यालय और कौन्सल-जनरल कार्यालय इनसे अलग हैं। इनमें से कई स्थानों पर मुख्य अधिकारी के नीचे एक मंत्रि-परिषद् जैसी होती है। उदाहरण के लिए, दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ होने के समय, हमारे पेरिस स्थित दूतावास में अठहत्तर व्यक्ति काम करते थे, जिनमें चार अन्य एजेन्सियों के कर्मचारी भी थे। अब वहाँ सात सौ व्यक्ति हैं, जिनमें अट्ठारह अन्य एजेन्सियों के कर्मचारी भी हैं।

कार्यकलाप और एजेन्सियों में हुई इस असाधारण वृद्धि में आधुनिक विश्व की पेचीदगी और परस्पर-निर्भरता व्यक्त होती है। इसका बड़ा हिस्सा ऐसा है जो सोवियत चुनौती के न होने पर भी सामने आता। फिर भी, हमारे समाजों के बीच, मानवी विकास के प्रति सोवियत दृष्टिकोण, और उदार-लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के बीच बढ़ती हुई प्रतियोगिता के फलस्वरूप, इस प्रक्रिया में काफी तेजी आई है, और हम यह जानते हैं कि भविष्य में भी, जहाँ तक देखा जा सकता है, यह प्रतियोगिता जारी रहेगी।

हमारे नए युग की चुनौती को प्रारम्भ में हमारे शासन की कार्यकारी और विधायिका, दोनों शाखाओं ने मुख्यतः नीति-निर्माण की चुनौती समझा—और उनका यह सोचना अकारण भी नहीं था। किन्तु प्रभावकारी विदेश नीति का विकास केवल पहला कदम है। हमें उन नीतियों पर अमल करने के लिए प्रभावकारी उपाय भी निकालने होंगे। और हमारी नीति के उपकरणों के लिए, देश और विदेश में हमारे प्रयत्नों के संगठन, प्रशासन, और कार्यान्वयन के लिए इस चुनौती को पिछले कुछ दिनों से ही समझा जाने लगा है, और तदनुसार कार्य होने लगा है।

चुनौती और विकास की इस पृष्ठभूमि में प्रशासन विदेशों में अपने कार्यकलाप को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए उन्हें समन्वित करने की चेष्टा करता रहा है। इस चेष्टा के तीन रूप हैं : (1) हमारे राजदूतों में क्या विशेष गुण होने चाहिए, इस प्रश्न पर आलोचनात्मक पुनर्विचार, (2) जिस देश में उसकी नियुक्ति होती है, उसमें राजदूत की बहुत अधिक बढ़ी हुई जिम्मेदारियों का राष्ट्रपति द्वारा स्पष्टीकरण, (3) जहाँ भी हमारे कूटनीतिक या कौन्सल कार्यालय हैं, वहाँ अपने फैले हुए क्रिया-कलाप को समन्वित करने का कार्यक्रम।

कूटनीति की बदली हुई आवश्यकताओं ने स्पष्टतः उन गुणों को भी बदल दिया है, जिनका हमारे राजदूतों में होना आवश्यक है। यद्यपि मोहक व्यक्तित्व, आकर्षक पत्नी, राजनीतिक ग्रहणशीलता, और विश्लेषण-क्षमता अब भी अत्यधिक उपयोगी हैं, किन्तु अब ये गुण पर्याप्त नहीं हैं।

आधुनिक राजदूत के लिए प्रशासक होना भी आवश्यक है, जो विविध प्रकार के कार्यों की देख-रेख कर सके। उसमें रचनात्मक नेतृत्व का गुण होना चाहिए, जिससे वह किसी काम में पहल कर सके, अपने अधीनस्थ लोगों को प्रेरणा दे सके, और विस्तार की उलझनों में न फँसकर दूसरों को अधिकार सौंप सके। उसे एक कुशल और दूसरों को प्रभावित कर सकने वाला कूटनीतिज्ञ होना चाहिए, जो कठोरता और संयम को मिश्रित कर सके।

इन परिस्थितियों में, प्रशासन इस नतीजे पर पहुंचा कि चुनाव अभियान में चन्दा देने वाले कुछ धनी व्यक्तियों को राजदूत बनाकर भेजने की पुरानी परम्परा अब नहीं चलाई जा सकती। फलस्वरूप, 1961 में वैदेशिक सेवा के सदस्यों में से नियुक्त किए गए राजदूतों का अनुपात हमारे इतिहास में सबसे अधिक था। इसके अतिरिक्त, वैदेशिक सेवा के ऐसे प्रभावशाली युवा सदस्यों को जल्दी उच्च पदों पर लाने के लिए विशेष प्रयास किया गया, जिनके बारे में समझा गया कि युवा और हाल ही में स्वतंत्र हुए राष्ट्रों की विशेष समस्याओं को वे अच्छी तरह समझ कर, आवश्यक लचीलेपन से उनका सामना कर सकेंगे। वैदेशिक सेवा से अलग जो लगभग बीस नए राजदूत नियुक्त किये गए वे लगभग निरपवाद ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें विदेश-नीति सम्बन्धी व्यापक अनुभव था। उनमें से अधिकांश विश्वविद्यालयों से और सार्वजनिक संस्थाओं से लिये गए थे। कुछ को छोड़कर, अब सारे ही राजदूत उस देश की राजकाज की भाषा बोल लेते हैं, जिसमें उनकी नियुक्ति होती है।

इसकी भी चेष्टा की गई कि हर राजदूत को ऐसा कार्य सौंपा जाय जिसके बारे में वह स्वयं अनुभव करता हो कि वह उस को भलीभांति कर सकता है। 'उनके चरित्र को सबल बनाने' के लिए, वैदेशिक सेवा के अधिकारी जहाँ न जाना चाहते हों उन्हें वहीं भेजने की अग्नि परीक्षा वाली परम्परा छोड़ दी गई। एक पद पर राजदूत और उसके प्रमुख सहयोगियों के सामान्य कार्यकाल की अवधि को बढ़ाकर चार साल कर दिया गया। राजदूत और उसकी पत्नी को एक जोड़ी के रूप में देखा गया। अपने सहायकों और सहयोगियों का चुनाव करने में राजदूत के अधिकार भी बढ़ाये गए।

अधिक उपयुक्त कर्मचारियों का चुनाव पहला आवश्यक कदम था। अगला कदम था राजदूत के अधिकारों का स्पष्टीकरण।

तदनुसार, 29 मई, 1961 को राष्ट्रपति केनेडी ने हर अमरीकी राजदूत को एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने राष्ट्रपति के निजी प्रतिनिधि के रूप में राजदूत की भूमिका की पुनः पुष्टि किया, जिसे अपनी नियुक्ति के देश में अमरीकी शासन की सभी कार्यवाहियों और कर्मचारियों पर निर्बाध अधिकार था। राष्ट्रपति ने लिखा, "मैं आप पर भरोसा करूँगा कि संयुक्त राज्य शासन के सारे ही क्रियाकलाप पर आप नजर रखेंगे और उसे समन्वित करेंगे।......संयुक्त राज्य का सम्पूर्ण कूटनीतिक कार्यालय आपके जिम्मे है, और मैं आशा करूँगा कि आप उसके सारे कार्यों की देख-रेख करेंगे।" राष्ट्रपति के पत्र ने जिम्मेदारियों के बँटवारे से उत्पन्न होने वाले संघर्षों को हमेशा के लिए खतम करने की चेष्टा की। राजदूत को स्पष्टतः राष्ट्रपति के सर्वोच्च प्रतिनिधि के रूप में, सर्वोच्च अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

अमरीकी कूटनीतिक आचरण के आधुनिकीकरण, और उसकी प्रभावकारिता में वृद्धि करने की दिशा में अगला कदम था छह क्षेत्रीय सम्मेलनों का सिलसिला, जिसमें न केवल राजदूतों को वरन् उनकी पत्नियों, उनके प्रशासकीय अधिकारियों, उनके मुख्य सूचना, सहायता और सैन्य सलाहकारों को भी निमन्त्रित किया गया।

यद्यपि राजदूतों को नए अधिकार प्रदान कर दिये गए थे, किन्तु उनमें से बहुतों को भव भी सन्देह था कि नए आदेश कहाँ तक अमल में लाए जाने वाले थे। इसके अतिरिक्त, कार्यपद्धति बहुत-कुछ अछूती, पहले जैसी ही थी, और वाशिंगटन के साथ विभिन्न दूतावासों के आदान-प्रदान में बहुतेरे कार्य सम्बन्धी प्रश्न अनुत्तरित रह गए थे। सेना के मुख्य कार्यालय, नए सहायता प्रशासन, सूचना एजेन्सी, शान्ति सेना, शान्ति के लिए भोजन, केन्द्रीय गुप्त-सूचना एजेन्सी, आय-व्यय ब्यूरो, और व्यापार तथा श्रम जैसे विभागों के प्रतिनिधियों को राजदूतों और उनके अधिकारियों के साथ कार्य, जिम्मेदारी और सहयोग सम्बन्धी विशिष्ट समस्याओं की चर्चा करने का अवसर भी नहीं मिला था। इन सम्मेलनों में इसका अवसर मिला। बहुतेरे मामलों में, बहुत दिनों से अनिर्णीत पड़े हुए प्रश्नों पर तत्काल निर्णय ले लिए गए।

इन क्षेत्रीय सम्मेलनों में जो नई बातें थीं, उनमें राजदूतों की पत्नियों की उपस्थिति भी एक थी। जैसा कि वैदेशिक सेवा का हर अधिकारी जानता है, ऐसी पत्नी जो स्थानीय समस्याओं के प्रति जागरूक हो, हमारे राष्ट्रीय उद्देश्यों को समझती हो, और उन्हें क्रियान्वित करने में सहायक होना चाहती हो, किसी भी दूतावास के लिए बहुमूल्य होता है। इसी प्रकार, अगर किसी पत्नी में इन गुणों का अभाव हो, तो उससे बड़ी दिक्कत भी हो सकती है। अच्छी या बुरी जैसी भी हो, राजदूत की पत्नी ही भोजों और सरकारी समारोहों में शासन के उच्चतम अधिकारियों के साथ बैठती है।

हर सम्मेलन में, केवल कुछ विशिष्ट बैठकों को छोड़कर, पत्नियाँ अपने पतियों के साथ रहीं, ताकि उनकी जानकारी और समझ बढ़े।

इन सम्मेलनों में अकेले विदेश विभाग में ही प्रशासकीय सुधारों के लगभग दो सौ प्रस्ताव सामने आए, जिनमें से आधे से अधिक पर अमल भी हो चुका है। इन प्रस्तावों में छोटी सरकारी मोटरें रखने की वाञ्छनीयता से लेकर कार्यालय कर्मचारियों और अफसरों के लिए अधिक सघन भाषा प्रशिक्षण तक के सुझाव शामिल थे। दफ्तरी कार्यवाहियों में होने वाली देरी को खतम करने के लिए, वाशिंगटन और विदेशस्थित कार्यालयों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान में लगने वाले समय को घटाने के लिए, और अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों के कार्यों को समन्वित करने के लिए बहुतेरे रचनात्मक सुझाव सामने आए।

यह स्वीकार करना ही होगा कि पूर्ण कूटनीति के इस युग में जिन उपकरणों के द्वारा अमरीकी कूटनीति को प्रभावी बनाया जा सकता है, उनके आवश्यक पुनःनिर्माण और सुगठन की दिशा में अभी केवल शुरुआत ही हुई है। अमरीकी लोगों को, और कुछ अधिकारियों को भी, यह समझाने के लिए अधिक सार्वजनिक शिक्षा की आवश्यकता होगी, कि लगभग हर काम जो हम करते हैं, चाहे उसका सम्बन्ध श्रम, नागरिक अधिकार, अतिरिक्त भोजन-सामग्री, व्यापार, विज्ञान, या पर्यटन, किसी से भी हो, अब किसी अंश तक उसका सम्बन्ध हमारी विदेश-नीति से होता है। अपने वैदेशिक

कार्यकलाप के इन बहुतेरे पक्षों के परस्पर सम्बन्ध को एक बार समझ लेने पर, समस्या यह सीखने की होती है कि उनका प्रशासन किस प्रकार अधिकाधिक कौशल से और प्रभावी रीति से किया जाय।

इस प्रसग में यह हमारा सौभाग्य है कि इस समय राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् में ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी दृष्टि जागतिक है, जो वैदेशिक मामलों को और एक सुगठित विदेश-नीति को क्रियान्वित करने में अपने विभागों की भूमिका को समझते हैं। यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राजदूतों के नेतृत्व में अपने विदेश स्थित कार्यालयों के क्रियाकलापों को समन्वित करने में जो प्रगति हमने की है, उसे वाशिंगटन में विदेश-नीति के वैसे ही बेहतर नियन्त्रण और समन्वय के द्वारा पुष्ट करना आवश्यक है।

विदेश विभाग के क्षेत्रीय सहायक सचिव इस समन्वय के स्वाभाविक केन्द्र हैं। इन अधिकारियों के अधिकारों में वृद्धि करके हम उन्हें उनकी जिम्मेदारी के क्षेत्रों में अपने सारे विविध प्रकार के कार्यों में वास्तविक समन्वय लाने का काम सौंप सकते हैं। यह उन बहुतेरे आवश्यक नए सुझावों में से एक है, जिनका विरोध होने की संभावना है।

किन्तु जो काम हमारे सामने हैं, उन्हें पूरा करने के लिए नए दृष्टिकोण, अधिक कल्पनाशील पद्धतियाँ, और कठोरमना प्रशासन आवश्यक हैं, अन्यथा हमारी विदेश-नीति के उपकरण उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने में पिछड़ जाएँगे। यद्यपि शुरुआत अच्छी हुई है, किन्तु अभी बहुत-कुछ करना बाक़ी है।

दूसरा भाग

आर्थिक सहायता के रूप

हमारे सहायता कार्यक्रम का व्यापक लक्ष्य स्पष्ट, तात्कालिक और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है—स्वतंत्र विश्व के राष्ट्रों में स्थानीय राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का विकास, ताकि वे अमरीका के नहीं, वरन् अपने हित साधन के लिए जीवित रह सकें।

जैसे-जैसे वे अपनी जनता की जरूरतें पूरी करने में सफल होंगे, लोकतांत्रिक पद्धतियों में उनका विश्वास बढ़ेगा, और उसके साथ ही, अन्दर या बाहर के सभी शत्रुओं के विरुद्ध अपनी उपलब्धियों की रक्षा करने के लिए उनकी दृढ़ता भी बढ़ेगी।

ऐसे राष्ट्रों के साथ अमरीका एक स्वतंत्र और गतिशील साझेदारी का निर्माण कर सकता है, जो आने वाले वर्षों में साम्यवादी आक्रमण के खतरे को कम करेगी और धीरे-धीरे शान्ति की नींव रखेगी।

दिसम्बर, 1954

पन्द्रह

भूखी दुनिया में अमरीकी भोजन

युद्ध-काल में अमरीका की खेतिहर उत्पादन सम्बन्धी आश्चर्यजनक सफलताओं ने श्री वॉलेस को प्रेरित किया कि वे भूख को खतम करने के लिए एक विश्व-व्यापी खेतिहर क्रान्ति में अमरीकी नेतृत्व का सुझाव दें। सुपरमार्केट इन्स्टीट्यूट के ग्यारहवें वार्षिक सम्मेलन में दिया गया भाषण, 25 मई, 1947।

सुदूर भविष्य तक, न केवल स्वयं अपने लोगों के लिए, वरन् सारी दुनिया मे करोडो भूखे लोगों के लिए भोजन के उत्पादन, और वितरण में अमरीका को बहुत बडा काम करना है।

1939 मे दुनिया के तीन चौथाई लोग भोजन पैदा करने, तैयार करने, और वितरित करने में लगे हुए थे। फिर भी, जिसे हम युद्ध-पूर्व की सामान्य स्थिति कहा करते थे, उसमें मनुष्य जाति के दो तिहाई हिस्से को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था।

हममे से कोई भी, भूखे असुरक्षित लोगो की बस्ती मे धनी और विशेषाधिकार-युक्त व्यक्ति बनकर रहना पसन्द नही करेगा। लेकिन ठीक ऐसी ही स्थिति आज हम अमरीकियों के सामने है। व्यवहार में, हमने दुनिया की गंदी बस्ती के बीच 'संयुक्त राज्य अमरीका' नाम का एक ऐश्वर्यपूर्ण महल खड़ा कर लिया है।

जब तक विश्व समाज के अन्य सदस्य ज्यादा अच्छी जिन्दगी बिताने के क़ाबिल नही होते, तब तक हमारे और हमारे बच्चों के लिए कोई शान्ति और सुरक्षा नहीं हो सकती। और भोजन उस बेहतर जिन्दगी का आधार है।

यद्यपि भोजन का उत्पादन बढ़ाकर दुनिया में जीवन स्तरों को ऊँचा उठाने की प्रक्रिया को सिद्धान्त रूप मे निरूपित करना आसान है, किन्तु उस पर अमल करना बड़ा ही दुरूह कार्य होगा। भोजन के उत्पादन के सम्बन्ध में यहाँ अमरीका मे पिछले 150 वर्षों मे हमने जो कुछ किया है, उसी से संकेत मिलता है कि अगली पीढ़ी के अन्दर हमें किस लक्ष्य की उपलब्धि में सहायता करनी होगी।

अमरीका में 1795 मे 90 प्रतिशत लोग अपना भोजन स्वयं पैदा करते थे, और इतना काफी अतिरिक्त भोजन जो उन शेष 10 प्रतिशत लोगों के लिए पर्याप्त हो, जो खेतों से सम्बद्ध नही थे।

पन्द्रह

भूखी दुनिया में अमरीकी भोजन

युद्ध-काल में अमरीका की खेतिहर उत्पादन सम्बन्धी आश्चर्यजनक सफलताओं ने श्री वौलस को प्रेरित किया कि वे भूख को खतम करने के लिए एक विश्व-व्यापी खेतिहर क्रान्ति में अमरीकी नेतृत्व का सुझाव दें। सुपरमार्केट इन्स्टीट्यूट के ग्यारहवें वार्षिक सम्मेलन में दिया गया भाषण, 25 मई, 1947।

सुदूर भविष्य तक, न केवल स्वयं अपने लोगों के लिए, वरन् सारी दुनिया में करोड़ों भूखे लोगों के लिए भोजन के उत्पादन, और वितरण में अमरीका को बहुत बड़ा काम करना है।

1939 में दुनिया के तीन चौथाई लोग भोजन पैदा करने, तैयार करने, और वितरित करने में लगे हुए थे। फिर भी, जिसे हम युद्ध-पूर्व की सामान्य स्थिति कहा करते थे, उसमें मनुष्य जाति के दो तिहाई हिस्से को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था।

हममें से कोई भी, भूखे असुरक्षित लोगों की बस्ती में धनी और विशेषाधिकार-युक्त व्यक्ति बनकर रहना पसन्द नहीं करेगा। लेकिन ठीक ऐसी ही स्थिति आज हम अमरीकियों के सामने है। व्यवहार में, हमने दुनिया की गंदी बस्ती के बीच 'संयुक्त राज्य अमरीका' नाम का एक ऐश्वर्यपूर्ण महल खड़ा कर लिया है।

जब तक विश्व समाज के अन्य सदस्य ज्यादा अच्छी जिन्दगी बिताने के क़ाबिल नहीं होते, तब तक हमारे और हमारे बच्चों के लिए कोई शान्ति और सुरक्षा नहीं हो सकती। और भोजन उस बेहतर जिन्दगी का आधार है।

यद्यपि भोजन का उत्पादन बढ़ाकर दुनिया में जीवन स्तरों को ऊँचा उठाने की प्रक्रिया को सिद्धान्त रूप में निरूपित करना आसान है, किन्तु उस पर अमल करना बड़ा ही दुरूह कार्य होगा। भोजन के उत्पादन के सम्बन्ध में यहाँ अमरीका में पिछले 150 वर्षों में हमने जो कुछ किया है, उसी से संकेत मिलता है कि अगली पीढ़ी के अन्दर हमें किस लक्ष्य की उपलब्धि में सहायता करनी होगी।

अमरीका में 1795 में 90 प्रतिशत लोग अपना भोजन स्वयं पैदा करते थे, और इतना काफी अतिरिक्त भोजन जो उन शेष 10 प्रतिशत लोगों के लिए पर्याप्त हो, जो खेतों से सम्बद्ध नहीं थे।

आज अमरीका में, आधुनिक औज़ारों और तरीक़ों की सुधरी हुई पद्धतियों के फल-स्वरूप, लगभग 20 प्रतिशत लोग न सिर्फ़ अपने लिए भोजन पैदा करते हैं, बल्कि नगरों और कस्बों में रहने वाले शेष अस्सी प्रतिशत लोगों के लिए भी, और काफ़ी बड़ी मात्रा उसके बाद निर्यात के लिए बच जाती है।

बहुत कुछ इसी परिवर्तन के फलस्वरूप लाखों कुशल कर्मचारी हमारे बड़े-बड़े विशाल उत्पादन वाले उद्योगों के निर्माण के लिए उपलब्ध हो सके, और हमारे जीवन-स्तर दुनिया में सबसे ऊँचे स्तरों तक उठ सके।

अब हमारे लिए आवश्यक है कि क्षमतासाध्य और कष्टसाध्य रीति से हम दूसरों की सहायता करें ताकि सारी दुनिया में ऐसा ही विकास हो। हमें ऐसे साधन प्राप्त करने होंगे जिनसे दुनिया में उपलब्ध भोजन की मात्रा काफ़ी बढ़ाई जा सके। कुछ विशेषज्ञों का कथन है कि उसे एक पीढ़ी के अन्दर दुगुना करना आवश्यक है। इस बीच हमारी अपनी 'बचतों' के द्वारा कमी की पूर्ति करने में सहायता करनी होगी।

दुनिया की खेती में सचमुच क्रान्ति करने की ज़रूरत होगी। एशिया, दक्षिण अमरीका और अफ्रीका की महान् नदियों के लिए टेनेसी घाटी अधिकरण के नमूने पर नदी घाटी विकास कार्यक्रमों के व्यापक नियोजन की आवश्यकता होगी।

हमें खेती के आधुनिक औज़ारों की उत्पादन-शक्ति को बहुत अधिक बढ़ाने की ज़रूरत पड़ेगी। विशाल सिंचाई योजनाओं और बड़े-बड़े नए उर्वरक कारखानों की ज़रूरत होगी।

सबसे अधिक, कई देशों में हमें भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा, ताकि बँटकर खाने वाले भूस्वामियों के बजाए, ज़मीन को जोतने वाले ही उसके मालिक हों।

इसके लिए व्यापक और कल्पनाशील नियोजन की आवश्यकता होगी। पुरानी ग्रामीण निषिद्धियों, पूर्वाग्रहों, और परम्पराओं को तोड़ना होगा। उसके लिए ज़रूरी होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिक सबल बनाया जाय, और सभी राष्ट्र—हमारा राष्ट्र भी—प्रत्यक्ष, एक तरफ़ा कार्यवाही करने के बजाय संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से काम करें। इसके लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के भोजन और खेती संगठन में, महासभा में, और आर्थिक तथा सुरक्षा परिषदों में, हम अमरीकियों को पहल करनी चाहिए।

सारी दुनिया में खेती के पुनःसंगठन के ऐसे कार्यक्रमों में जो साहसपूर्वक बनाये जाएँ और सशक्त रीति से अमल में लाये जाएँ, हमें अपने सर्वोत्तम कौशल और साधनों के उपयोग के लिए असीमित प्रेरणा और अवसर मिलेंगे। मानवी प्रतिष्ठा के दृष्टि-कोण से, इस प्रकार की नीति सही है। हमारी अपनी अर्थनीति और सुरक्षा की दृष्टि से भी यह नीति सही है।

जब तक विश्व-शान्ति अरक्षित रहती है, तब तक हम न केवल सावधान रहें, बल्कि पूरी तरह तैयार रहें। लेकिन हम इस बात को कभी न भूलें कि भविष्य को

रॉकेटों, टैंकों और दूरमारक बमबारों से नहीं जीता जा सकता।

अगर सभ्यता को सार्थक होना है, तो लोकतंत्रवादी लोगों को उसकी रक्षा करनी होगी और सबल बनाना होगा—ऐसे लोगों को, जिनके विचार गतिशील हों और जिनमें उन विचारों को अमल मे लाने का कौशल और साहस हो। सारी मनुष्य जाति का भविष्य उस चुनौती को स्वीकार करने में हमारी तत्परता पर निर्भर हो सकता है, जो भूखा और अव्यवस्थित विश्व हमारे सामने रखता है।

आज अमरीका में, आधुनिक औजारों और खेती की सुधरी हुई पद्धतियों के फलस्वरूप, लगभग 20 प्रतिशत लोग न सिर्फ अपने लिए भोजन पैदा करते हैं, बल्कि नगरों और कस्बों में रहने वाले शेष अस्सी प्रतिशत लोगों के लिए भी, और काफी बड़ी मात्रा उसके बाद निर्यात के लिए बच जाती है।

बहुत कुछ इसी परिवर्तन के फलस्वरूप लाखों कुशल कर्मचारी हमारे बड़े-बड़े विशाल उत्पादन वाले उद्योगों के निर्माण के लिए उपलब्ध हो गये, और हमारे जीवन-स्तर दुनिया के सबसे ऊंचे स्तरों तक उठ सके।

अब हमारे लिए आवश्यक है कि श्रमसाध्य और कष्टसाध्य रीति से हम दूसरों की सहायता करें ताकि सारी दुनिया में ऐसा ही विकास हो। हमें ऐसे साधन प्राप्त करने होंगे जिनसे दुनिया में उपलब्ध भोजन की मात्रा काफी बढ़ाई जा सके। कुछ विशेषज्ञों का कथन है कि उसे एक पीढ़ी के अन्दर दुगुना करना आवश्यक है। इस बीच हमारी अपनी 'बचतों' के द्वारा कमी की पूर्ति करने में सहायता करनी होगी।

दुनिया की खेती में सचमुच क्रान्ति करने की जरूरत होगी। एशिया, दक्षिण अमरीका और अफ्रीका की महान् नदियों के लिए टेनेसी घाटी अधिकरण के नमूने पर नदी घाटी विकास कार्यक्रमों के व्यापक नियोजन की आवश्यकता होगी।

हमें खेती के आधुनिक औजारों की उत्पादन-शक्ति को बहुत अधिक बढ़ाने की जरूरत पड़ेगी। विशाल सिंचाई योजनाओं और बड़े-बड़े नए उर्वरक कारखानों की जरूरत होगी।

सबसे अधिक, कई देशों में हमें भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा, ताकि बैठकर खाने वाले भूस्वामियों के बजाए, जमीन को जोतने वाले ही उसके मालिक हों।

इसके लिए व्यापक और कल्पनाशील नियोजन की आवश्यकता होगी। पुरानी ग्रामीण निषिद्धियों, पूर्वाग्रहों, और परम्पराओं को तोड़ना होगा। उसके लिए जरूरी होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिक सबल बनाया जाय, और सभी राष्ट्र—हमारा राष्ट्र भी—प्रत्यक्ष, एक तरफा कार्यवाही करने के बजाय संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से काम करें। इसके लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के भोजन और खेती संगठन में, महासभा में, और आर्थिक तथा सुरक्षा परिषदों में, हम अमरीकियों को पहल करनी चाहिए।

सारी दुनिया में खेती के पुनःसंगठन के ऐसे कार्यक्रमों में जो साहसपूर्वक बनाये जाएँ और सशक्त रीति से अमल में लाये जाएँ, हमें अपने सर्वोत्तम कौशल और साधनों के उपयोग के लिए असीमित प्रेरणा और अवसर मिलेंगे। मानवी प्रतिष्ठा के दृष्टि-कोण से, इस प्रकार की नीति सही है। हमारी अपनी अर्थनीति और सुरक्षा की दृष्टि से भी यह नीति सही है।

जब तक विश्व-शान्ति अरक्षित रहती है, तब तक हम न केवल सावधान रहें, बल्कि पूरी तरह तैयार रहें। लेकिन हम इस बात को कभी न भूलें कि भविष्य को

पेरिस के निकट एक औद्योगिक बस्ती में एक कमरे की एक झोंपड़ी में, जिसमें कोई खिड़की नहीं थी, ग्यारह साल की एक लड़की अपने से छोटे तीन बच्चों के साथ-साथ अपने पिता की भी देखभाल कर रही थी जिसकी टाँगें काट दी गई थी, और जिसे नकली टाँगो के लिए अभी कई सप्ताह और प्रतीक्षा करनी थी।

उसकी माँ परिवार को जीवित और एक साथ रखने के लिए पर्याप्त धन कमाने की चेष्टा में पचास रुपए प्रति सप्ताह वेतन का एक काम कर रही थी। झोंपड़ी साफ-सुथरी थी, और बच्चे भी। और सबसे अधिक अचरज की बात थी कि ग्यारह साल की वह बच्ची गा रही थी।

वार्सा में बम से ध्वस्त एक मकान के तहखाने के दस फुट चौड़े चौदह फुट लम्बे कोने में मार्शी परिवार के बचे हुए सदस्य रहते थे—सात वर्ष का एक लड़का उसकी दस वर्षीय बहन और उनकी दादी। पिता, माँ, एक गोद का बच्चा, और एक लड़की जो अब पन्द्रह साल की होती, 1944 में हुए वार्सा विद्रोह में मारे गए थे।

दादी ने बच्चों को सड़कों पर भटकते हुए पाया, और उन्हें तहखाने में अपने घर ले आई। उन्हें पालने के लिए, वह हाथ से मलबा हटाकर कुछ पैसे प्रति घंटा कमाती है। इसके अलावा, कल्याण विभाग की ओर से उसे लगभग दस रुपए प्रति मास मिलते हैं। बच्चे बारी-बारी से स्कूल जाते हैं, क्योंकि कपड़े इतने नहीं हैं जो दोनों के लिए काफी हों।

वे कुछ उन भाग्यशाली लोगों में से हैं, जिन्हें सरकार की ओर से चिकनाई लगी हुई रोटी मिलती है, और साथ में संयुक्त राष्ट्र बाल निधि की ओर से कुछ दूध।

जिन देशों में मैं गया, उनमें लाखों बच्चे ऐसी ही हालत में हैं। लेकिन मुझे केवल तकलीफ भूख और गन्दगी ही याद नहीं रहेगी। वार्सा और बुडापेस्ट के अनाथालयों में बच्चियों के बालों में सफाई से बांधे गए फ़ीते इटली और चेकोस्लोवाकिया में किसानों के झोपड़ों में सजावट करने की कोशिशें, पोलैण्ड के ध्वस्त स्कूलों में प्रसन्न शिशुओं के समूह, स्विट्जरलैण्ड से प्राप्त अस्पतालों के नए सामान के लिए हंगरी और फ्रांस के डाक्टरों की कृतज्ञता भी मुझे याद रहेगी। और साथ ही, सभी देशों में शिक्षकों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, नर्सों और डाक्टरों की शान्त, निरुद्विग्न, उत्फुल्ल दृढ़ता, जो युद्धकाल में उत्पन्न एक नयी पीढ़ी की समस्याओं का अल्प साधनों से मुकाबला कर रहे हैं।

यूरोप और एशिया के बच्चे, हमारी पीढ़ी द्वारा उत्पन्न कष्टों की दुनिया में रह रहे है। हमारी जिम्मेदारी है कि उनके पिताओं की पीढ़ी ने जिस दुनिया को नष्ट करने में योग दिया था, उससे कहीं ज्यादा अच्छी दुनिया का निर्माण करने का अवसर उन्हें मिले।

सोलह

आशाहीन बच्चों के लिए नई आशा

बच्चों के लिए संयुक्त राष्ट्रों की अपील के अध्यक्ष के रूप में युद्ध से ध्वस्त यूरोप की यात्रा करने के बाद श्री होल्म्स यूरोप की 'नई पीढ़ी' के लिए सहायता और भोजन की अपील करते हैं। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन में प्रकाशित एक लेख से, 1 फ़रवरी, 1958।

मैं यूरोप की पाँच सप्ताह की सघन यात्रा से अभी-अभी वापस आया हूँ। संयुक्त राष्ट्र सघ के प्रधान सचिव ट्राइग्वे ली ने मुझे वहाँ भेजा था कि बच्चों पर युद्ध के प्रभाव का अध्ययन करूँ, और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करूँ।

अधिकांश अमरीकियों की भांति, यूरोप मे युद्धोत्तर कालीन पुन निर्माण की विशाल कठिनाइयों की जानकारी मुझे भी थी, कि यूरोपीय लोग स्वयं अपने लिए क्या कर रहे हैं, और विदेशो से उन्हे क्या सहायता मिल रही है।

लेकिन मैंने ऐसी बहुतेरी चीजें देखी, जिनके लिए मैं बिलकुल भी तैयार नही था—वार्सा का ध्वस, लिडाइस मे मारे गए लोगों के सम्बन्ध में चेक लोगों की कटुता, फ्रांस और हंगरी के बच्चो में क्षयरोग का व्यापक प्रसार, अंग्रेजों का मौन धीरज।

सबसे अधिक प्रभाव मुझ पर उस साहस और तीव्रता का पड़ा, जिसके साथ सब लोग अपनी समस्याओं का सामना कर रहे हैं, और उस कड़ी मेहनत का, जो पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे सभी कर रहे हैं, यद्यपि उनमे से बहुतेरे पर्याप्त पौष्टिक भोजन के अभाव में दुर्बल हो गए हैं।

बच्चो के लिए संयुक्त राष्ट्रों की अपील का उन्होने जो स्वागत किया है, वह भी उतना ही प्रेरणाप्रद है—ऐसे देशो मे भी, जिनकी स्वयं भयकर क्षति हुई है। यूरोप के लोगों के लिए इस अपील का अर्थ केवल भोजन ही नही है। इसका अर्थ है स्थायी शान्ति की आशा और एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में सभी लोगों द्वारा प्रत्यक्ष सहयोग का अवसर। इस सम्बन्ध मे, मैं समझता हूँ वे अपनी सरकारों से आगे हैं।

इस सक्षिप्त यात्रा मे कुछ प्रभाव जो मेरे मन पर अकित हो गए हैं, उन्हे व्यक्त करने के लिए शब्द और सख्याएँ पर्याप्त नही हैं। मैं केवल इतना ही कर सकता हूँ कि कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत कर दूँ जिन्हें मैं कभी भूल नही सकता।

पेरिस के निकट एक औद्योगिक बस्ती में एक कमरे की एक झोंपड़ी में, जिसमें कोई खिड़की नही थी, ग्यारह साल की एक लड़की अपने से छोटे तीन बच्चो के साथ-साथ अपने पिता की भी देखभाल कर रही थी जिसकी टाँगे काट दी गई थीं, और जिसे नकली टाँगो के लिए अभी कई सप्ताह और प्रतीक्षा करनी थी।

उसकी माँ परिवार को जीवित और एक साथ रखने के लिए पर्याप्त धन कमाने की चेष्टा में पचास रुपए प्रति सप्ताह वेतन का एक काम कर रही थी। झोंपड़ी साफ-सुथरी थी, और बच्चे भी। और सबसे अधिक अचरज की बात थी कि ग्यारह साल की वह बच्ची गा रही थी।

वार्सा मे बम से ध्वस्त एक मकान के तहखाने के दस फुट चौड़े चौदह फुट लम्बे कोने में मार्शी परिवार के बचे हुए सदस्य रहते थे—सात वर्ष का एक लड़का उसकी दस वर्षीय बहन और उनकी दादी। पिता, माँ, एक गोद का बच्चा, और एक लड़की जो अब पन्द्रह साल की होती, 1944 में हुए वार्सा विद्रोह मे मारे गए थे।

दादी ने बच्चों को सड़कों पर भटकते हुए पाया, और उन्हे तहखाने में अपने घर ले आई। उन्हे पालने के लिए, वह हाथ से मलवा हटाकर कुछ पैसे प्रति घंटा कमाती है। इसके अलावा, कल्याण विभाग की ओर से उसे लगभग दस रुपए प्रति मास मिलते हैं। बच्चे बारी-बारी से स्कूल जाते हैं, क्योकि कपड़े इतने नही हैं जो दोनों के लिए काफी हों।

वे कुछ उन भाग्यशाली लोगों मे से हैं, जिन्हें सरकार की ओर से चिकनाई लगी हुई रोटी मिलती है, और साथ में संयुक्त राष्ट्र बाल निधि की ओर से कुछ दूध।

जिन देशों मे मैं गया, उनमें लाखों बच्चे ऐसी ही हालत मे हैं। लेकिन मुझे केवल तकलीफ भूख और गन्दगी ही याद नही रहेगी। वार्सा और बुडापेस्ट के अनाथालयो मे बच्चियो के बालों मे सफाई से बाँधे गए फीते इटली और जेकोस्लोवाकिया मे किसानों के झोपड़ो मे सजावट करने की कोशिशें, पोलैण्ड के ध्वस्त स्कूलो मे प्रसन्न शिशुओं के समूह, स्विट्ज़रलैण्ड से प्राप्त अस्पतालों के नए सामान के लिए हँगरी और फ्रांस के डाक्टरो की कृतज्ञता भी मुझे याद रहेगी। और साथ ही, सभी देशों में शिक्षकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं, नर्सों और डाक्टरों की शान्त, निरुद्विग्न, उत्फुल्ल दृढ़ता, जो युद्धकाल में उत्पन्न एक नयी पीढ़ी की समस्याओं का अल्प साधनों से मुकाबला कर रहे हैं।

यूरोप और एशिया के बच्चे, हमारी पीढी द्वारा उत्पन्न कष्टों की दुनिया में रह रहे है। हमारी जिम्मेदारी है कि उनके पिताओ की पीढ़ी ने जिस दुनिया को नष्ट करने मे योग दिया था, उससे कहीं ज्यादा अच्छी दुनिया का निर्माण करने का अवसर उन्हे मिले।

सत्रह

चतुःसूत्री कार्यक्रम से एशिया में एक क्रान्ति का आरम्भ

1951-52 में अमरीका के प्राविधिक और आर्थिक सहायता के नए चतुःसूत्री कार्यक्रमों के अन्तर्गत, भारत ने सबसे पहला और सबसे बड़ा कार्यक्रम आरम्भ किया। इसके लिए समझौता वार्त्ता राजदूत बौल्स ने की थी। यहाँ श्री बौल्स कार्यक्रम की संभावनाओं पर विचार करते हैं। न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन, 16 नवम्बर, 1952।

एशिया मे कोई भी व्यक्ति जो चतु.सूत्री कार्यक्रम पर अमल होते देखता है, उसके ध्यान मे शीघ्र ही एक चुनौती भरा तथ्य आता है। चतु सूत्री सहायता केवल एक साहसपूर्ण और नया कार्यक्रम ही नही है। अपनी सभावनाओ में, यह एक क्रान्तिकारी विचार है।

अगर हम इसको समझें और इसका पोषण करें तो इतिहास मे चतु.सूत्री कार्यक्रम हमारी पीढ़ी का सबसे महत्त्वपूर्ण विचार बन जा सकता है—ऐसा प्रतिक्रान्तिकारी आन्दोलन जिसका सामना करने मे विश्व साम्यवाद समर्थ न हो।

अर्नोल्ड टायनबो ने हाल ही में कहा कि हमारा युग 'अपने भयकर अपराधों या अपने आश्चर्यजनक आविष्कारो के लिए नही' याद किया जाएगा वरन् इस कारण याद किया जाएगा कि 'इतिहास मे यह पहला युग है, जब मनुष्य-जाति ने इस विश्वास को व्यावहारिक मानने का साहस किया है, कि सभ्यता के लाभ सारी मानव-जाति को उपलब्ध हो सकते हैं।'

अधिकाश विचारशील लोग, जिन्होने एशिया मे रहकर काम किया है, उनसे सहमत होगे। यहाँ लम्बे अर्से से दबे हुए करोड़ो व्यक्तियो के लिए इस नए उभरते हुए विश्वास का गभीर क्रान्तिकारी महत्त्व है, कि ज्यादा अच्छी जिन्दगी हासिल करना किसी तरह सभव है। यही वह हलचल है, और वह चालक शक्ति है, जो एशिया का रूप बदल रही है, और आने वाले वर्षों मे और भी अधिक बदल सकती है।

एशिया की प्रभावी, प्रगतिशील सरकारो के सहयोग से, चतु सूत्री कार्यक्रम इन करोड़ों व्यक्तियों को ज्यादा अच्छी जिन्दगी की आशा, और उसे प्राप्त करने का उत्साह और उपकरण प्रदान कर सकता है। यह उनकी शक्तियों को विस्फोटक निराशा के मार्ग से हटाकर, विकास के ठोस अवसरों की दिशा मे लगा सकता है—

ज्यादा अच्छी फ़सलें, अधिक स्कूल, साक्षरता, नलकूप, ज्यादा अच्छे हल, अधिक स्वस्थ बच्चे, और चेचक तथा मलेरिया से राहत।

दूसरे शब्दो में, चतु सूत्री कार्यक्रम मे अगर पर्याप्त धन लगाया जाय, और बुद्धिमत्ता पूर्वक अगर उसे चलाया जाय तो वह गरीबी, भूख, रोग और अज्ञान के विरुद्ध एक गतिशील, रक्तहीन, अ-साम्यवादी क्रान्ति में सहायक हो सकता है। कोई आश्चर्य नही कि साम्यवादी आन्दोलनकर्ता इस कार्यक्रम की तीव्र भर्त्सना करते हैं, क्योकि हममे से बहुतेरे लोगो की अपेक्षा वे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि मनुष्य-जाति की समस्याओ के प्रति इस यथार्थवादी, हल-बैल से जुड़े हुए दृष्टिकोण की संभावनाएँ लगभग असीमित हैं।

चतु:सूत्री कार्यक्रम एक जबरदस्त चुनौती है। यह एक बडी जिम्मेदारी भी है।

हमे समझना चाहिए कि इस गतिशील विचार को अपने साथ काम करने वाली स्थानीय शक्तियो के साथ और मनुष्य की बेहतरी की उस जागरण धारा की साथ किस प्रकार मिलना होगा, जो अर्द्धविकसित कहे जाने वाले क्षेत्रों मे रहने वाले करोड़ों लोगों को तेजी से जगा रही है।

कई बातें हैं, जिन्हे दुहराना उचित होगा।

प्रथम, चतु सूत्री कार्यक्रम कोई बना-बनाया इलाज नही है, जिसे तैयार माल की तरह इस सुरक्षा के साथ भेजा जा सके कि इससे अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक और सामाजिक रोग दूर हो जाएँगे। चतु सूत्री कार्यक्रम के लक्ष्य सीधे-सादे शब्दों में ये हैं—आधुनिक औजारों और प्राविधिक सहायता के लोकतांत्रिक उपयोग के द्वारा ग़रीबी, रोग और अज्ञान पर विजय पाना।

इन व्यापक लक्ष्यों को हर देश के विशिष्ट सन्दर्भ मे अलग-अलग निरुपति करना होगा। और विशिष्ट कार्यक्रम को सम्बन्धित देश की अर्थ-व्यवस्था, उसके रीति-रिवाज उसकी संस्कृति और उसके शासन के अनुरूप बनाना होगा।

दूसरे, चतु सूत्री कार्यक्रम कोई दान-खाता नही है, वरन् अपनी सहायता आप करने के सामाजिक कार्य सम्बन्धी आधुनिकतम सिद्धान्त पर आधारित, मनुष्य की जिन्दगी को बेहतर बनाने का एक ढंग है। यह ढग, कभी-कभी धीमा और निराशाजनक होने पर भी, एकमात्र स्थायी ढग है।

अगर लोग स्वय भाग नही लेते, अगर वे यह नही देखते कि वे स्वय अपने प्रयत्नों से, धन और सामान की थोडी-सी बाहरी मदद पाकर, अपने भविष्य को बेहतर बना सकते हैं, तो वक्ती तौर पर हुए लाभो की जड़ें नही जमेंगी, और अन्ततः उदासीनता उन्हें नष्ट कर देगी।

तीसरे, हर देश में चतु सूत्री कार्यक्रम को मानवी समस्याओं के सम्बन्ध मे व्यापकतम कार्यवाही को प्रोत्साहित करना चाहिए। चतु:सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत, कुछ थोड़े-से विकास कार्यों को पूर्णता के उच्च-स्तर तक ले जाने की अपेक्षा, ऐसे बहुसंख्यक कार्य कही अधिक लाभकारी होगे, जो अधिक लोगों को प्रभावित करें, उन्हें स्वयं

अपने हित में सक्रिय होने को प्रेरित करें, और प्रगति की साथिक आकांक्षा में रचनात्मक सहायता पहुँचाएँ।

आदर्श अस्पतालों, आदर्श स्कूलों, और आदर्श खेतों की आवश्यकता उतनी नहीं है, जितनी व्यापक आधार पर सार्वजनिक स्वास्थ्य, साक्षरता, और खेती की समस्याओं को हल करने के लिए कार्यवाही करने की और स्थानीय उद्योग को प्रोत्साहित करने की, जिसके पीछे अधिकतम संभव संख्या में स्वयं जनता के सक्रिय भाग लेने का ठोस आधार हो।

चौथे, चतु सूत्री कार्यक्रम आरम्भ करते हुए हमें यह सोचने की भूल नहीं करनी चाहिए कि इससे हम लाभ उठाने वाले देश में अपना कोई हित साधन कर सकेंगे, या कि उनकी कृतज्ञता प्राप्त कर सकेंगे वस्तुतः कुछ अर्द्धविकसित देश मुख्यतः इसी भय के कारण अमरीकी सहायता स्वीकार करने से हिचकते हैं कि हम शायद उनकी नयी-नयी प्राप्त हुई आजादी को सीमित करने की, या उनकी राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करने की चेष्टा करें।

केवल एक ही आधार है जिस पर अमरीका और अर्द्ध-विकसित देश परस्पर अधिक निकट आ सकते हैं, और वह है अधिक सुरक्षित और अधिक स्वतंत्र विश्व का निर्माण करने की सामान्य इच्छा। अगर हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, जापान, इण्डोनीशिया, इथियोपिया, लाइबेरिया, मिस्र, ब्राजील, वेनेजुला और एशिया, अफ्रीका, व दक्षिण अमरीका के अन्य देशों में लोकतंत्र सफल होता है, तो हर अमरीकी के लिए यह आशा करने के कारण अधिक होंगे कि उसकी और उसके बच्चों की जिन्दगी ज्यादा अच्छी होगी।

अगर हम इस सीधे-सादे लक्ष्य से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, तो हमारे प्रयत्नों की असफलता अनिवार्य है। हम न केवल एशिया और अफ्रीका के करोड़ों ऐसे लोगों के साथ सहकार का अवसर खो देंगे, जो हमारे मित्र बनना चाहते थे, बल्कि उस रक्तहीन, लोकतांत्रिक क्रान्ति की आशा भी नष्ट हो जाएगी, केवल जिसके द्वारा ही विश्व-शान्ति और मनुष्य की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा की नींव डाली जा सकती है।

अठारह

विश्व के आर्थिक विकास में साझीदार

श्री बौल्स का कथन है कि स्वयं अपने उद्देश्य के लिए बढ़ती हुई आशाओं की क्रान्ति को नष्ट करने के चतुर साम्यवादी प्रयासों को रोकने के लिए केवल सैन्य सहायता ही पर्याप्त नहीं है। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में विकासशील राष्ट्रों की सहायता करने के लिए हम क्या कर सकते हैं, इसे उन्होंने अटलांटिक मंथली के दिसम्बर, 1954 के अंक में प्रकाशित इस लेख में प्रस्तुत किया है।

स्टालिन की मृत्यु के बाद से, सोवियत रूस निरन्तर कूटनीतिक पहल अपने हाथ में लेने और स्वतंत्र विश्व को विभाजित करने के लिए प्रयास करता रहा है। रोज ब रोज वह यूरोप, एशिया और और दक्षिण अमरीका के करोड़ो लोगों को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा कर रहा है, कि साम्यवादी राष्ट्र शान्ति के सच्चे समर्थक हैं, और यह कि अमरीका जिसकी ओर 1945 में दुनिया इतनी उत्साहभरी दृष्टि से देख रही थी, एक शक्ति का भूखा, आक्रांता देश है।

हमारे सामने कितनी बड़ी समस्या है, इसका कुछ संकेत इस बात से मिलता है, कि इस अविश्वसनीय रूप में विकृत चित्र को बहुत-से लोग सच समझते हैं। अगर हमें इस तस्वीर को बदलना है, तो अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धो के बारे मे हमें एक नई दृष्टि अपनानी होगी, क्रान्तिकारी जगत मे शक्ति के स्वरूप के बारे मे नई समझ प्राप्त करनी होगी, और उस समझ के अनुरूप एक नयी साहसपूर्ण कार्य-नीति पर चलना होगा।

यूरोप में हम क्या करते हैं या नही करते, इसका निर्णायक महत्त्व है। किन्तु एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका मे हम क्या करते हैं, यह भी कम से कम उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इन अल्प-विकसित क्षेत्रों में हमारा ध्यान सैनिक हलों पर केन्द्रित रहने से, और आर्थिक तथा राजनीतिक तत्वों के प्रति हमारी उदासीनता से विशेष हानि हुई है।

अगर विश्व का साम्यवादी आन्दोलन कल खतम हो जाय, तो भी हर अमरीकी के लिए अल्प विकसित क्षेत्रो का गम्भीर महत्त्व होगा। यद्यपि हम दुनिया के कुल औद्योगिक उत्पादन का 40 प्रतिशत उत्पन्न करते हैं, किन्तु हमारी आबादी दुनिया की आबादी का केवल छह प्रतिशत है। जैसे-जैसे हमारी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं

शत्रुओं के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए उनकी क्षमता भी बढ़ेगी।

ऐसे राष्ट्रों के साथ अमरीका एक स्थायी और गतिशील साझेदारी का निर्माण कर सकता है, जो आने वाले वर्षों में साम्यवादी आक्रमण के खतरे को कम करेगी, और धीरे-धीरे स्थायी शान्ति की नींव रखेगी।

इस कारण, किसी भी प्रभावी कार्यक्रम का उद्देश्य केवल गरीबी को कम करना न होकर, अधिक व्यापक होना चाहिए। गैर-जानकार लोग हमसे कहते हैं कि जिस 'मनुष्य का पेट भरा होगा, वह कभी भी साम्यवादी नहीं बनेगा' यह बात इतिहास से प्रमाणित नहीं होती। क्रान्तियों का नेतृत्व भूखे किसान नहीं करते वरन् महत्त्वाकांक्षी, कुटिल और सामान्यतः भरपेट खाने वाले बुद्धिजीवी करते हैं।

× × ×

गैर-साम्यवादी राष्ट्रों के लिए हमारे सहायता कार्यक्रमों को राजनीतिक शर्तों से मुक्त होना चाहिए। लेकिन यह आवश्यक है कि दीर्घकालीन आर्थिक नियोजन, भूमि-सुधार, कर-व्यवस्था में सुधार और धनियों के लिए विलास सामग्री खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा के उपयोग पर रोक लगाने की व्यावहारिक शर्तें लगाई जाएँ।

आज बहुतेरे अल्पविकसित देशों में अमरीकी सहायता का प्रभाव इन सुधारों में तेजी लाने के बजाए, उन्हें स्थगित करने के पक्ष में होता है। अगर हम इन सवाल से कतराते हैं, तो हमारी सहायता का एक बड़ा हिस्सा व्यर्थ जाएगा, और हम पर सामन्ती अर्थ-व्यवस्थाओं को सहायता देने का आरोप लगेगा, जो बहुसंख्या के बजाय, कुछ थोड़े-से लोगों के हित में चलती हैं।

अन्त में, हमें किसी सरल, चतुराई भरे, और सर्व-व्यापी सूत्र की तलाश छोड़नी होगी। आर्थिक विकास की सीमाओं में असीमित उलझनें हैं, और ये उलझनें हमारे द्वारा इन समस्याओं को हल करने के प्रयासों में भी परिलक्षित होंगी।

उदाहरण के लिए, अपने यहाँ शुल्क घटाकर, और व्यापार को बढ़ाकर, आवश्यक सहायता की मात्रा को बहुत घटाया जा सकता है। अल्प-विकसित राष्ट्र यथासंभव अपनी प्रगति का मूल्य देने को तैयार हैं, और इसके इच्छुक हैं। किन्तु उनके सामने डालर प्राप्त करने के दो ही मार्ग हैं। या तो वे हमारी आवश्यकता की वस्तुएँ हमारे हाथ बेचकर डालर प्राप्त करें, या फिर अमरीकी कर्जों और अनुदानों के रूप में उन्हें डालर मिलें।

हम इन राष्ट्रों के लिए अपनी पैदावार अमरीका के हाथ बेचना जितना आसान बनाएँगे, उन्हें हमसे उतनी ही कम सहायता लेनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त, उनके जीवन-स्तर जितने ऊँचे उठेंगे, अमरीकी विनिर्माताओं से वे उतना ही अधिक सामान खरीद सकेंगे।

अल्प-विकसित क्षेत्रों में हम जो कच्चा माल खरीदते हैं, उनके मूल्यों में अधिक स्थिरता लाने के लिए भी हमें कोशिश करनी चाहिए। मलाया के तीन-चौथाई परि-

चारों की आमदनी अमरीका में रबड़ के मूल्य के साथ बंधी रहती है। चाय, कहवा, कोको, टीन और तेल का उत्पादन करने वाले बहुतेरे राष्ट्रों में भी लगभग इतना ही निकट सम्बन्ध है।

निश्चय ही, हममें इतनी काफी बुद्धि है कि हम न्यूनतम और अधिकतम मूल्यों की कोई ऐसी व्यवस्था बना सकें जिसमें बाजार भाव में असामान्य उतार-चढ़ाव न आए, जिससे बड़ी मुसीबत और कटुता उत्पन्न होती है, और केवल सट्टेबाजों को लाभ होता है। सामान्य परिवर्तनों के लिए, न्यूनतम और अधिकतम सीमाओं के साथ एक मूल्य-क्षेत्र बांधा जा सकता है, जिसे हम सामान्यतः अपने भंडारों को बढ़ा या घटाकर नियंत्रित कर सकते हैं।

अगर उत्पादन इतना अधिक होता रहता है कि बाजार में उसे खपाने की क्षमता न हो, तो उत्पादन के अन्य क्षेत्रों की ओर व्यवस्थित और नियोजित ढंग से मुड़ने की प्रक्रिया चलाई जा सकती है। कोई जिम्मेदार व्यक्ति ऐसा नहीं कहेगा कि इस तरह का कार्यक्रम आसानी से बनाया जा सकता है, या कि इस पर जल्दी सहमति प्राप्त की जा सकती है। किन्तु इसकी चेष्टा करने का समय अभी ही है, जब इस पर ध्यानपूर्वक विचार करने की हमारे पास काफी गुंजाइश है।

व्यापार अधिक मुक्त हो, और कच्चे माल के लिए स्थिर मूल्यों पर निश्चत बाजार उपलब्ध हो, तो अल्प-विकसित राष्ट्रों की अर्थ-व्यवस्थाओं को बल मिलेगा, और वे स्वयं अपनी सहायता ज्यादा अच्छी तरह कर सकेंगे। किन्तु प्रत्यक्ष सहायता के काफी बड़े कार्यक्रम की भी तीव्र आवश्यकता है। यह कार्यक्रम उतना ही साहसपूर्ण और कल्पनाशील होना चाहिए जितनी मार्शल योजना थी, जिसने पश्चिमी यूरोप की अर्थ-व्यवस्थाओं को 1947 और 1951 के बीच अपने पैरों पर खड़े होने में सहायता दी।

अमरीका और अन्य पश्चिमी देशों से आने वाली पूंजी केवल एक सीमित अंश तक ही पूंजी की इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। युद्ध के बाद से, अमरीका में निजी पूंजी के विनियोग का औसत प्रति वर्ष 46 अरब डालर रहा है। इस अवधि में हमने विदेशों में कुल दस अरब डालर की पूंजी लगाई है। इसका अधिकांश यूरोप और कनाडा में लगा है, और उसका भी बड़ा भाग इन देशों में अमरीकी निगमों द्वारा अर्जित मुनाफों से प्राप्त हुआ था। अगर हम दक्षिण अमरीका में अमरीकी तेल उद्योग के फैलाव को छोड़ दें, तो अल्प-विकसित क्षेत्रों में युद्ध के बाद लगी निजी अमरीकी पूंजी का कुल योग मुश्किल से एक अरब डालर होगा। हिन्दुस्तान में इस अवधि में लगी ऐसी पूंजी 10 करोड़ डालर से कम है।

पूंजी का यह प्रवाह इतना कम होने के उचित और समझ आने वाले कारण हैं। अधिकांश अल्प-विकसित देशों में स्थिति अनिश्चित है। बहुधा, औपनिवेशिक अनुभवों के फलस्वरूप, विदेशी पूंजी लगाने वालों के विरुद्ध अकारण विद्वेष रहा है। कुछ मामलों में, कर सम्बन्धी कानून ऐसे हैं कि अर्जित मुनाफे के एक उचित भाग

को बाहर निकालना कठिन होता है। बहुधा काम करने मे नौकरशाही के कारण परेशान करने वाली कठिनाइयाँ सामने आती है।

किन्तु आदर्श स्थितियों मे भी यह सोचना भूल होगी कि अल्प-विकसित राष्ट्रों मे आर्थिक विकास के आवश्यक आधार निजी पूंजी के द्वारा निर्मित हो सकते हैं। आवश्यक पूंजी की मात्रा बहुत अधिक है, और मुनाफा कमाने के अवसर बहुत सीमित और अनिश्चित हैं।

अधिक मात्रा मे बिजली, बन्दरगाहो की पर्याप्त सुविधाएँ, अधिक कुशल रेलें, और सुधरी हुई सचार व्यवस्थाएँ, इस तरह की मूल प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकांश सरकारी धन से ही हो सकती है। इन आधारो के निर्मित हो जाने के बाद, और औपनिवेशिक शासकाओ के दूर हो जाने के बाद ही, निजी पूंजी के लिए व्यापक अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। अत. अधिकाश अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे काफी बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष शासकीय कर्ज और अनुदान पर्याप्त प्रगति के लिए आवश्यक है।

एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के बड़े हिस्से मे जो गरीबी फैली हुई है, वही साम्यवाद को ऐसी भूमि प्रदान करती है, जिसमें उसके बढने की अधिक सभावना है। जब हम अल्प-विकसित राष्ट्रो की सहायता करने की अपनी इच्छा को इस आधार पर सीमित करते हैं कि हम प्रतिरक्षा और आर्थिक विकास, दोनो के खर्चे एक साथ नही उठा सकते तो हम केवल रूसियों को शस्त्रों की वर्त्तमान होड़ को बनाये रखने का एक और कारण प्रदान करते हैं।

रूसियो के भय के भूत से हम अपना पीछा क्यो नही छुड़ा सकते? हम ऐसे उपाय क्यो नही करते, जो स्पष्टतः हमारी अमरीकी परम्परा के अनुरूप है, और जिनसे अन्य मनुष्यो की सर्वाधिक आवश्यक मांगे पूरी होने की शुरूआत होगी?

अब दोनों राजनीतिक दलो के सदस्यो के लिए समय आ गया है कि भविष्य के लिए कार्य के नए प्रतिमान स्थापित करे। अमरीका को अब उधेड़-बुन छोड़कर, साहस-पूर्वक एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के स्वतत्र, अल्प-विकसित, और अजुड़ राष्ट्रो को, उनकी आर्थिक प्रगति मे तेजी लाने के लिए अपने साथ साझेदारी की दावत देनी चाहिए।

उन्नीस

विदेशी सहायता के प्रति नया दृष्टिकोण

अल्पविकसित राष्ट्रों की द्विविधा का हल करने के लिए, कि आर्थिक विकास में तेजी लाने के साथ-साथ ही जीवन स्तरों को कैसे उठाएँ, हमारी वैदेशिक सहायता में अधिक यथार्थ परक दृष्टि की आवश्यकता है, जैसा प्रतिनिधि सभा की वैदेशिक मामलों की समिति के समक्ष नवम्बर, 1956 में प्रस्तुत श्री बोल्स की साक्षी से प्रकट है।

पिछले कुछ वर्षों में दुनिया के अल्प विकसित, और अधिकांश मजुड़ क्षेत्रों में हमारा प्रभाव घटने के कई कारण बताये गए हैं। सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक यह है कि नयी सोवियत कार्यनीतियो के फलस्वरूप विश्व की अर्थ-व्यवस्था मे बढ़ते हुए संकट का मुकाबला करने में हम असफल रहे हैं।

अ-साम्यवादी एशिया और अफ्रीका के अधिकांश नए नेताओं ने पश्चिम में शिक्षा पाई है, और वे आमतौर पर लोकतांत्रिक लक्ष्यों को, तथा विभिन्न अंशों तक लोकतांत्रिक पद्धतियों को स्वीकार करते हैं। किन्तु उन्हें नीचे जीवन स्तरों द्वारा उत्पन्न अभूतपूर्व आन्तरिक दबावों का भी सामना करना पड़ता है। लोगों में आधुनिक प्रविधियों की संभावनाओं की नई समझ आ जाने के कारण ये दबाव और भी विस्फोटक हो गए हैं।

फलस्वरूप उनके सामने बहुत बड़ी द्विविधा आ जाती है।

औद्योगीकरण चूँकि राष्ट्रीय उद्देश्यों और शक्ति का पर्यायवाची बन गया है, और नई यांत्रिक प्रविधियों के बारे में लोगों की जानकारी चूँकि व्यापक है, अतः अत्यधिक तीव्र गति से विकास के लिए राजनीतिक दबाव अब एशिया और अफ्रीका में, हमारे अपने औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवधि की अपेक्षा बहुत अधिक है।

इसके साथ ही जिन राष्ट्रों का झुकाव लोकतंत्र की ओर है, वहाँ लोगों का ध्यान भारी उद्योगों के आवश्यक आधार का निर्माण करने पर नहीं, वरन् जीवन-स्तरों में तत्काल सुधार करने पर केन्द्रित हो गया है।

अपने प्रतियोगी राजनीतिक नेताओं के वादों, संयुक्त राष्ट्र संघ और चतु सूत्री कार्यक्रम के सर्वेक्षणों, और साम्यवादी प्रचार के फलस्वरूप, लोगों की दृष्टि ऐसी बन गई है, कि वे अपने शासन की प्रभावकारिता को बहुत-कुछ इस आधार पर आंकते

हैं कि वह किस हद तक उन्हें तत्काल अधिक भोजन, वस्त्र, और शिक्षा प्रदान कर सकती है, रोग कम कर सकती है, और कल्याण-सेवाओं को सुधार सकती है।

इस प्रकार, जो राष्ट्र लोकतांत्रिक रीतियों से अपने साधनों का विकास करने का निर्णय करता है, उसे अपने करों को स्वीकार्य सीमाओं के अन्दर ही रखना पड़ता है। उसे अपनी उत्पादन क्षमता का इतना काफी हिस्सा उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं में लगाना पड़ता है, जिससे जीवन-स्तरों में प्रत्यक्ष सुधार की सार्वजनिक माँग को सन्तुष्ट किया जा सके। इसके साथ ही, उसके लिए उचित सीमाओं के अन्दर, तुलनीय साम्यवादी राष्ट्रों की सुप्रचारित औद्योगिक उपलब्धियों का मुकाबला करना भी आवश्यक होता है।

किन्तु किसी साम्यवादी देश का शासन, पुलिस राज के तरीकों का इस्तेमाल करके, अपनी जनता से कहीं अधिक कर वसूल कर सकता है, बलात् की गई अपनी लगभग सारी ही बचत को भारी उद्योगों और सैन्य प्रतिरक्षा में लगा सकता है, और जीवन स्तरों में किसी ठोस सुधार को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर सकता है।

कार्यरूप में दोनों वैकल्पिक व्यवस्थाओं के व्यावहारिक प्रभावों के विशिष्ट उदाहरण चीन की तानाशाही और हिन्दुस्तान के लोकतन्त्र में देखे जा सकते हैं। चीन अपने कुल वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन का 22 प्रतिशत विस्तार कार्यों में लगा रहा है, विशेषतः भारी उद्योग, परिवहन, और बिजली के उत्पादन में। हिन्दुस्तान के शासक यद्यपि बड़े ही योग्य और बड़े राजनीतिक साहस वाले व्यक्ति हैं, फिर भी हिन्दुस्तान ऐसे ही विकासों के लिए उपलब्ध बचतों की वार्षिक दर को केवल 8 या 9 प्रतिशत तक ले जा सका है।

इस संक्षिप्त विश्लेषण से यह बात साफ तौर पर सामने आ जाती है कि एशिया और अफ्रीका के उन नए राष्ट्रों के लिए, जो तानाशाही से बचना चाहते हैं, एक बुद्धिपूर्ण अमरीकी आर्थिक सहायता कार्यक्रम का निर्णायक महत्त्व है। यह महत्त्व इसमें है कि उन आन्तरिक बलिदानों और दबावों को, जो तीव्र गति से आर्थिक विकास होने पर अनिवार्य ही उत्पन्न होते हैं, स्वतन्त्र लोगों द्वारा स्वीकार्य सीमाओं के अन्दर रखा जा सके, और लोकतांत्रिक शासनों को इस योग्य बनाया जा सके कि वे पुलिस राज के तरीकों से बचते हुए, आर्थिक विकास की साम्यवादी गति का अगर मुकाबला न कर सकें, तो कम से कम उसके निकट पहुँच सकें।

अधिकांश अल्प-विकसित और लोकतन्त्र की ओर झुकाव रखने वाले राष्ट्रों को न केवल प्राविधिक सहायता की आवश्यकता है, वरन् आन्तरिक करों के बोझ को सहनीय सीमाओं के अन्दर ही रखते हुए, वे उद्योग-धन्धों, परिवहन, और बिजली के विकास के साथ-साथ उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं में प्रत्यक्ष वृद्धि की वित्तीय व्यवस्था कर सकें, इसके लिए काफी बड़ी मात्रा में पूँजी की भी आवश्यकता है।

विकसित राष्ट्रों से अल्प-विकसित राष्ट्रों की ओर पूँजी के प्रवाह का परम्परागत साधन निजी वित्त-व्यवस्था रही है। किन्तु बड़ी हद तक, यह साधन अब इतने काफी

बड़े पैमाने पर उपलब्ध नही है, कि अंतिम परिणाम को प्रभावित कर सके।

जिन राष्ट्रों मे राजनीतिक अशांति व्याप्त है, उनमें प्रत्यक्ष अमरीकी निजी पूँजी का विनियोजन भी उस समय तक सीमित रहेगा जब तक मुनाफों के ऊँचे स्तर राजनीतिक दृष्टि से इस राष्ट्र को अस्वीकार्य रहते हैं, क्योंकि ऊँचे मुनाफे ही ऐसे विनियोजन का औचित्य होते हैं। तेल और खनिज उद्योगों को छोड़कर, 1948 से अब तक एशिया और अफ्रीका में 20 करोड़ डालर से भी कम निजी अमरीकी पूँजी लगी है।

विदेशों मे निजी पूँजी के विनियोजन को, अब तक की अपेक्षा काफी अधिक कौशल के साथ प्रोत्साहित करना होगा। आधुनिक परिवहन, पर्याप्त बिजली, और भारी उद्योग के औद्योगिक आधार का विकास आरम्भ होने के साथ, एशिया और अफ्रीका में राजनीतिक स्थिरता बढ़ने की संभावना है, और तब निजी पूँजी का एक अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।

इस बीच, अन्य साधनो के अभाव में, एशिया और अफ्रीका के नए अ-साम्यवादी राष्ट्रों में, काफ़ी मात्रा मे पूँजो विनियोजन का साधन अमरीकी सरकार होगी। केवल प्रत्यक्ष शासकीय कार्यवाही से ही अमरीकी पूँजी और यांत्रिक प्रविधि, वर्तमान एशिया और अफ्रीका मे टिकाऊ लोकतांत्रिक शासन के अनुकूल न्यूनतम विकास लक्ष्यों और उपलब्ध स्थानीय साधनो के बीच की खाई को पाटने के योग्य बन सकती है।

अगले कुछ वर्षों के अन्दर, घटनाओ के दबाव के फलस्वरूप, लगभग निश्चित रूप में, अर्थनीति के प्रति एक नया विश्व दृष्टिकोण विकसित होगा। यह नया दृष्टिकोण हमारी वर्तमान दृष्टि से उतना ही भिन्न हो सकता है, जितना रूज़वेल्ट का आन्तरिक आर्थिक कार्यक्रम, काल्विन कूलिज के कार्यक्रम से भिन्न था।

चूँकि भविष्य मे हमारी सुरक्षा के लिए इसके निर्णायक महत्त्व को समझाने का कोई गंभीर प्रयत्न अब तक नही किया गया है, अतः अधिकांश अमरीकी अब भी असैनिक आर्थिक सहायता को एक अल्पकालीन, भलाई करने की योजना समझते हैं, जिसका मूल्य सन्देहास्पद है।

फलस्वरूप, सैन्य प्रतिरक्षा मे हमने जितना धन लगाया है, उसका एक प्रतिशत से भी कम इस कार्यक्रम को मिला है। इसके अतिरिक्त, असैनिक सहायता के लिए कांग्रेस ने जिस धन की व्यवस्था की है, उसे बहुधा गलत योजाओं मे, गलत स्थानों पर और गलत कारणो से खर्च किया गया है।

एशिया के देशों मे हम देखते है कि अमरीकी सहायता के द्वारा उत्पादन मे काफी वृद्धि होने पर भी, बहुधा राजनीतिक स्थिरता मे वैसी ही वृद्धि नही हुई। इसका कारण यह है कि हमारे सहायता कार्यक्रमों ने बहुत अधिक अवसरों पर पुरानी जीवन विधियों को सुरक्षा प्रदान की है, जिससे बढ़े हुए उत्पादन स्तरों पर भी, पुरानी व्यवस्थाओं मे निहित विषमताएँ कायम रही है।

अधिक धनोत्पादन के अतिरिक्त, हमारे सहायता कार्यक्रम को मज़दूरों और

किसानों के बीच अपनी राष्ट्रीय सरकारों को अपने समाजों के प्रति एक स्वस्थ सहयोगी दृष्टिकोण का विकास करने पर विशेष ज़ोर देना चाहिए।

इसके लिए आवश्यक है कि तीन आधारभूत लक्ष्यों की ओर निरन्तर प्रगति हो, जिसके बिना एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका में राजनीतिक स्थायित्व का विकास लगभग असभव होगा :

1. आर्थिक उत्पादन में प्रत्यक्ष वृद्धि।
2. यह वृद्धि लाने में निजी सहकार की व्यापक भावना।
3. यह सार्वजनिक विश्वास कि वृद्धि के फलों का समुचित बंटवारा हो रहा है, और अन्याय निरन्तर कम हो रहे हैं।

चूंकि एशिया और अफ्रीका में हमने अपने प्रयासों को अधिकाश पहले लक्ष्य-मात्र उत्पादन वृद्धियों—पर ही केन्द्रित किया है, और चूंकि कई क्षेत्रों में हमारी सहायता से उत्पन्न नए धन का बहुत बड़ा हुआ हिस्सा अल्पसख्यक शासन वर्ग के हाथ मे चला गया है, अतः दुनिया के बहुतेरे हिस्सों में हम अपने को तिरस्कृत यथास्थिति के साथ जुड़ा हुआ पाते हैं।

मध्य-पूर्व और दक्षिण एशिया के कुछ देशों के अमरीका मे शिक्षित छात्र बहुधा एक दुखद किन्तु सुपरिचित कहानी सुनाते हैं। वे अमरीका में अध्ययन करने के बाद स्वय अपने देश में लोकतांत्रिक विकास और अभिवृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए बड़े उत्सुक होकर लौटते हैं। किन्तु स्वदेश पहुँचकर वे देखते हैं कि अमरीकी सहायता ने अर्द्ध-सामन्ती शासनों को बल दे रखा है, या सत्तारूढ़ कर रखा है।

वे अपने यहाँ ऐसे शासन पाते हैं, जो धनिकों पर अमरीका की तुलना में भी बहुत कम कर लगाते हैं। वे देखते हैं कि उनके यहाँ नियम-कर बहुत ही कम हैं, और अल्प-विदेशी मुद्रा को आवश्यक वस्तुओं पर नहीं, वरन् अधिकाश विलास-सामग्री मंगाने पर खर्च किया जाता है।

दूसरे शब्दों में, वे बहुधा देखते हैं कि हमारी आर्थिक सहायता का उपयोग सुधारों में तेज़ी लाने के लिए नहीं, वरन् उनकी आवश्यकता को स्थगित करने के लिए और इस प्रकार अलोकतांत्रिक, दक्षिण-पंथी समूहों की शक्ति और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए होता है, जो अतीत के साथ बुरी तरह चिपके हुए हैं।

ऐसे संकीर्ण साधनों के द्वारा 'साम्यवाद को रोकने' के उद्देश्य से दिये गए आर्थिक सहायता अनुदानों का अन्ततः असफल होना अनिवार्य है। अलोकप्रिय, सामन्ती यथा-स्थिति को सुरक्षा प्रदान करके, जिनके स्वय अपने साधनों से जीवित रहने की कल्पना नहीं की जा सकती, यह भी संभव है कि अमरीकी सहायता कार्यक्रम बहुसंख्यक लोगों को हमारे विरुद्ध कर दे, और अन्ततः एक असह्नीय स्थिति को बदलने के एक मात्र उपाय के रूप में, साम्यवाद को उनके लिए स्वीकार्य बना दें।

× × ×

मैं संक्षेप में कुछ ऐसे विचार प्रस्तुत करूँगा, जिनके बारे में मुझे लगता है कि

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता के क्षेत्र में किसी ठोस कार्य-योजना के मर्म में इन बातों को होना चाहिए।

1. हमें आर्थिक सहायता के उद्देश्य को साफ तौर पर परिभाषित करना चाहिए। हमें जानना चाहिए कि उसके द्वारा क्या किया जा सकता है। साथ ही, यह जानना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि उसके द्वारा क्या नहीं किया जा सकता।

मनुष्य होने के कारण, हम आशा कर सकते हैं कि दूसरे लोग हमें पसन्द करेंगे और हमारे विचारों का समर्थन करेंगे। लेकिन मित्रों, सहयोगियों और समर्थन की इच्छा, सहायता देने के पीछे हमारी मुख्य प्रेरणा नहीं होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, यद्यपि साम्यवादी चुनौती के नतीजे साफ हैं, किन्तु आर्थिक सहायता को 'साम्यवादी खतरे की अवधि' से बाँध देने वाले तर्क उन समस्याओं को खतरनाक रीति से अति-सरल रूप प्रदान करते हैं, जो आज हमारे सामने हैं। जिस हद तक किसी देश में साम्यवादी खतरा मौजूद हो, उसी अनुपात में हम उस देश को सहायता प्रदान करें, ऐसे प्रस्तावों का भी यही नतीजा निकलता है।

हमारा लक्ष्य विश्व में किसी अल्प-कालीन लोकप्रियता की होड़ को जीतना नहीं है, वरन् आन्तरिक स्थिरता प्राप्त करने में अन्य राष्ट्रों की सहायता करना है, जिससे वे स्वयं अपने घरों के स्वतंत्र मालिक बने रहें, और सभी बाहरी अतिक्रमणों के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए दृढ़ हों।

2 विदेशी आर्थिक सहायता एक दीर्घ-कालीन योजना है। इसके नतीजे तात्कालिक नहीं हो सकते, और उचित समय के पहले ही आशाएँ करने पर हमें केवल निराशा और कटुता का ही अनुभव होगा।

हम एक ऐसी अवधि में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें यांत्रिक प्रविधि और संचार साधनों की नई उपलब्धियों पर आधारित, तीव्र गति से अन्तर्राष्ट्रीय विकास होने की संभावनाएँ बहुत हैं। फिर भी, ऐसे समाजों का निर्माण आसानी से, या अल्प मूल्य से नहीं होगा, जिनमें आर्थिक अभिवृद्धि, और मानवी अधिकारों में गंभीर आस्था का विकास, राजनीतिक स्थायित्व के लिए आवश्यक सन्तुलन के अन्तर्गत साथ-साथ हो।

निस्सन्देह, समय का यह प्रश्न एक व्यावहारिक विधायक समस्या उत्पन्न करता है। कांग्रेस एक विस्तृत पंच वर्षीय कार्यक्रम तैयार करके पहले ही से अपने-आपको बाँध नहीं सकती। फिर भी, मार्शल योजना, संयुक्त राष्ट्र संघ, आयात-निर्यात बैंक, कृषि समर्थक मूल्य कार्यक्रम, वस्तु ऋण प्रशासन, और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम आदि को प्रदान किये गए दीर्घ-कालीन समर्थन में हमें कुछ व्यावहारिक पूर्व-दृष्टान्त मिलते हैं।

किसी विशेष वर्ष में कांग्रेस विनियोजन को अस्वीकार कर सकती है। किन्तु एक बार किसी दीर्घ-कालीन कार्यक्रम की सामान्य रूपरेखा पर सहमति हो जाने के बाद, जब तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कोई बड़ा परिवर्तन न हो, तब तक ऐसी अस्वीकृति की संभावना बहुत ही कम होगी।

3. हमारी सहायता की मात्रा नयी विश्व स्थिति की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। सर्वाधिक तात्कालिक और महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितना धन वास्तव में आवश्यक है, अपने वादों को उससे कम करना बहुत बड़ी भूल होगी।

हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि लोकतन्त्र की ओर झुकाव रखने वाले अधिकांश नए राष्ट्र आन्तरिक विकास के लिए जितनी बचत और खर्च कर सकते हैं, और साम्यवादी राष्ट्र जितना बचा और खर्च कर सकते हैं, उसके बीच काफी बड़ी और खतरनाक रूप में विस्फोटक खाई है, और आगे भी रहेगी।

हमारी कुछ सहायता निस्सन्देह प्राविधिक सहायता, वस्तु अनुदान, और वस्तु ऋणों के रूप में होगी, जिनका स्वरूप अलग-अलग राष्ट्रों में बहुत-कुछ भिन्न होगा। भोजन और वस्त्र की मांग करने वाली दुनिया में हमारी खेती के अतिरिक्त उत्पादन को भी आर्थिक हित का एक बड़ा तत्व बनाया जा सकता है, और बनाना चाहिए। शायद एक विश्व वस्तु बैंक अन्ततः ऐसी व्यवस्था प्रदान करे, जिसमें उसके पूर्ण उपयोग की सुविधा हो।

4. कर्ज़ पाने वाले राष्ट्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे इन कर्जों के एक हिस्से को प्रबन्ध-प्रशिक्षण पर खर्च करें। अनुबन्ध करने वाला संस्थान कारखाने को नियोजित और निर्मित करने की, उसके कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने और उस समय तक उसे चलाने की जिम्मेदारी ले, जब तक कि उसके स्थानीय प्रबन्धक उसे अपने हाथ में लेने के योग्य न हो जाएँ।

ऐसे विदेशी विकास कार्यक्रम में अमरीकी व्यापार की मुख्य भूमिका का जल्दी से जल्दी अध्ययन होना चाहिए। आर्थिक सहायता की एक प्रमुख पद्धति यह होनी चाहिए कि प्रथम कोटि का अमरीकी और पश्चिम यूरोपीय प्राविधिक और प्रबन्ध ज्ञान एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका में पहुँचाया जाय। इससे अमरीकी व्यापार पर अनिवार्य ही एक जिम्मेदारी आती है।

अमरीकी संस्थानों को ऐसी शर्तों पर इस जिम्मेदारी के लिए राजी करना आसान नहीं होगा, जो सामान्यतः उनके सामने रखी जाएँगी। किन्तु अमरीकी उद्योग में ऐसे बहुतेरे नेता हैं, जो आज के लाभांश से आगे, कल की जीवन-रक्षा के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने को तैयार हैं।

5. हमें निरन्तर उन आधारभूत आर्थिक सुधारों से अपने को सम्बद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए, जो ऐसे स्वतन्त्र समाज के निर्माण की पूर्व-आवश्यकता हैं, जिस में लोकतान्त्रिक राजनीतिक प्रक्रियाएँ पनप सकें। अगर हम इसमें सफल होते हैं, तो अल्पविकसित महाद्वीपों में हम अपनी प्रतिष्ठा और प्रभाव को निरन्तर बढ़ता हुआ पाएँगे।

कार्य [illegible], सटीक नियम असंभव है। लेकिन मुझे विश्वास है कि [illegible] हर [illegible] होने वाले राष्ट्रों

की भूमि के समान पुनः वितरण, आर्थिक अन्यायों की समाप्ति, अधिक लोकतांत्रिक कर-व्यवस्था, और ऐसे ही अन्य कार्यों की ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। मैं फिर इस बात पर जोर दूँगा कि आवश्यक मानवीय प्रगति के अभाव में, केवल उत्पादन लाभों से जितनी समस्याएँ हल होंगी, लगभग निश्चय ही, उससे अधिक राजनीतिक परेशानियाँ उत्पन्न होंगी।

6. अन्त में, संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से दी गई आर्थिक सहायता का प्रश्न रह जाता है। इसके पक्ष में प्रभावशाली तर्क दिये गए हैं कि हमें अपनी आर्थिक सहायता का बड़ा हिस्सा संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से वितरित करना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक के अधीन एक अन्तर्राष्ट्रीय ऋण एजेन्सी स्थापित करके, ऐसी विकासनिधियों के लिए एक प्रभावकारी माध्यम की व्यवस्था कर सकता है। कोलम्बो योजना संगठन, एक अन्य संभाव्य वितरण एजेन्सी है।

एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के लिए एक सुसम्बद्ध और व्यापक आर्थिक विकास कार्यक्रम बनाने पर हमें विचार और क्रिया के नए क्षेत्रों में प्रवेश करना होगा। कार्यकारी स्तर पर यह हमारे शासन से गतिशील नेतृत्व की माँग करेगा। लोगों को शिक्षित करने का ऐसा व्यापक कार्यक्रम आवश्यक होगा, जिसे कांग्रेस के द्विदलीय समर्थन से केवल राष्ट्रपति ही चला सकता है।

बोस

विदेशी सहायता के वितरण में प्रतिमानों की आवश्यकता

पूर्वी कॉनेक्टिकट के नवनिर्वाचित कांग्रेस-सदस्य के रूप में श्री बॉल्स प्रतिनिधि-सभा में अपने सर्वप्रथम भाषणों में से एक में (20 अप्रैल, 1958) हमारे सैन्य सहायता कार्यक्रमों के पुनः परीक्षण की माँग करते हैं, और आर्थिक सहायता के प्रशासन के लिए नए और अब स्वीकृत, प्रतिमान प्रस्तावित करते हैं।

अध्यक्ष महोदय, अमरीकी लोगों के मन में, और कांग्रेस की कार्यसूची में, विदेशी सहायता जैसे महत्त्वपूर्ण विषय कम ही हैं। और शायद किसी भी विषय के सम्बन्ध में इतनी असहमति, भ्रान्तियाँ और निराशा नहीं है।

विदेशी सहायता के लिए पर्याप्त धन प्राप्त करने में इस समय हमारे सामने गंभीर कठिनाइयाँ हैं। इसके प्रमुख कारणों में से एक यह भी है कि प्रशासन ईमानदारी और सफाई के साथ यह बताने में असफल रहा है कि इस धन की इतनी तीव्र आवश्यकता क्यों है।

हमारी राष्ट्रीय बुद्धि के लिए इससे अधिक प्रशंसनीय बात मैं और कोई नहीं जानता, कि जनमत के सर्वेक्षणों में सत्तर प्रतिशत अमरीकियों ने विदेशी सहायता कार्यक्रम के लिए सबल समर्थन व्यक्त किया है, यद्यपि शासन उसके सच्चे, दीर्घकालीन लक्ष्यों को निरूपित करने में असफल रहा है।

विदेशी सहायता के जो अधिकृत उद्देश्य सबसे अधिक अवसरों पर बताए जाते हैं, वे कई कारणों से अपर्याप्त हैं।

वे विश्व सम्बन्धों में अमरीका के वास्तविक लक्ष्यों के साथ न्याय नहीं करते।

वे मनुष्य की प्रतिष्ठा के प्रति उस सामान्य रुचि को अपील नहीं करते, जिसमें हम सम्पूर्ण अ-साम्यवादी दुनिया के लोगों के सहयोगी हैं।

और वे स्वयं अमरीकी लोगों की बुद्धि और अच्छाई को ध्यान में नहीं रखते।

पारस्परिक सुरक्षा अधिनियम की भूमिका से अब ऐसा प्रतीत होता है कि 'संयुक्त राज्य अमरीका की नीति' सहायता कार्यक्रम को केवल 'तभी तक जारी रखने की है जब तक (साम्यवादी) खतरा······क़ायम है।

शीत-युद्ध के बाज़ार में, स्वयं हमारी कांग्रेस द्वारा की गई परिभाषा के अनुसार, शोरभरी साम्यवादी अल्पसंख्या का मूल्य अमरीकी डालरों के बराबर हो गया है।

विदेशी सहायता कार्यक्रम के पक्ष में, गुपचुप, अनौपचारिक वार्ताओं में शासन की ओर से दिया जाने वाला एक अन्य मिथ्या तर्क, संयुक्त राष्ट्र महा सभा में हमारी नीतियों के पक्ष में बहुमत का समर्थन खरीदने में इस कार्यक्रम की कथित उपयोगिता का है।

किन्तु, अध्यक्ष महोदय, क्या यह दूसरा तर्क पहले से अधिक वैध है? मान लीजिए कि कोई धनी व्यक्ति किसी सामान्य अमरीकी बस्ती में आकर रहता है, और बस्ती में कुछ सुधारों के लिए धन देकर चाहता है कि बदले में लोग उसके राजनीतिक मतों को स्वीकार कर लें। क्या अधिकांश सच्चे और नागरिक-भावना रखने वाले लोग उससे यह नहीं कहेंगे कि वह अपने परोपकार को अपने साथ ले जाय, और अन्यत्र कहीं जाकर रहे?

क्या हम आशा कर सकते हैं कि एशिया और अफ्रीका के गर्वीले नए राष्ट्रों की, और यूरोप व अमरीका के अधिक पुराने राष्ट्रों की प्रतिक्रिया इससे भिन्न होगी?

विदेशी सहायता के लिए तीसरा भ्रान्त तर्क यह है कि साम्यवाद केवल भूखे लोगों को आकर्षित करता है। हम कभी-कभी सुनते हैं कि, "हर किसी का पेट चावल से भर दो, इसीसे अल्प-विकसित विश्व में साम्यवाद का अन्त हो जाएगा।"

यह दृष्टिकोण साम्यवाद के आकर्षण, और वस्तुतः मानव प्रकृति की समझ का जबरदस्त अभाव प्रदर्शित करता है। अन्याय से और अपनेपन की भावना के अभाव से जो निराशा उत्पन्न होती है, वह मात्र भूख की अपेक्षा साम्यवाद की ओर खींचने वाली कहीं सबल प्रेरक शक्ति होती है।

अमरीकी सहायता के उद्देश्य हमेशा ऐसे नकारात्मक शब्दों में ही नहीं व्यक्त किये गए। उदाहरण के लिए, 1948 के विदेशी सहायता अधिनियम में, जो मार्शल योजना का आधार बना था, 80वीं कांग्रेस ने कहा था कि ऐसे कदम उठाये जाएँ, जो 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को, स्वतन्त्र संस्थाओं को, और सच्ची स्वतन्त्रता को' बल प्रदान करें 'जिसका आधार उत्पादन के लिए सबल प्रयत्न, विदेशी व्यापार का विस्तार, आन्तरिक वित्तीय स्थिरता उत्पन्न करना और कायम रखना, तथा आर्थिक सहयोग का विकास हो।'

अध्यक्ष महोदय, इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, 1954 का उद्देश्य वक्तव्य, जो इस वर्ष के विधेयक में भी कायम रखा गया है, हमारे योग्य नहीं प्रतीत होता। इसमें निहित उद्देश्य नकारात्मक, तात्कालिक आवश्यकताओं पर आधारित, और यथार्थ की उपेक्षा करने वाले हैं।

मेरा विश्वास है कि इतिहास की इस संकटमय अवधि में अमरीकी लोगों का मूल्यांकन वास्तविकता से कम करना हमें बन्द कर देना चाहिए। अब समय है कि हम-

व्यापारिक लटकों को छोड़ कर, जो कुछ आवश्यक है उसे सही कारण समझ कर करें।

अमरीका सचमुच क्या चाहता है ? एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के राष्ट्रों या साधनों पर नियन्त्रण करने की हमें कोई इच्छा नहीं है। हमें पिछलग्गुओं की तलाश नहीं। अपने ढंग दूसरों पर लादने की हमें कोई इच्छा नहीं।

वस्तुत, हमारे अपने राष्ट्र का जन्म क्रान्ति में हुआ था, और आरम्भ से ही हमने हर जगह अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने और कायम रखने के लिए, और स्वयं अपने ढंग से अपने भविष्य का निर्माण करने के लिए लोगों के प्रयत्नों के साथ अपने को सम्बद्ध किया है।

विश्व में हमारे लक्ष्य आज भी वही हैं जो जेफरसन के समय थे—एक शान्तिपूर्ण संसार; जिसमें सभी लोगों को स्वयं अपनी संस्कृतियों, धर्मों और राष्ट्रीय क्षमताओं के अनुसार मुक्त और स्वतन्त्र रूप में अपना विकास करने का अवसर मिले।

अब अमरीकी लोगों और दुनिया के सामने इसका प्रत्यक्ष संकेत प्रस्तुत करने का समय है कि हमारे पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम के लक्ष्य हमारे ऐतिहासिक राजनीतिक विश्वासों और हमारी लोकतान्त्रिक आस्थाओं के उपयुक्त हैं।

अध्यक्ष महोदय, मेरा पहला प्रस्ताव है कि हम इन लक्ष्यों को स्पष्ट निरूपित करें।

अब मैं दूसरे संशोधन के अपने प्रस्ताव को लूंगा। हमारी सैन्य सहायता के कुछ हिस्से के बटवारे की वर्तमान अपव्ययपूर्ण और बहुधा प्रभावहीन रीतियों से मैं ऊब गया हूँ, और मैं समझता हूँ, यहां और लोग भी ऊब गए हैं। कई मामलों में हमने अनजाने ही ऐसी स्थितियां उत्पन्न की हैं, जिनसे साम्यवादियों को लाभ हुआ है, और उनका प्रभाव बढ़ा है।

निस्सन्देह, मैं इस बात को समझता हूँ कि कुछ क्षेत्रों में जहां साम्यवादी आक्रमण का स्पष्ट खतरा है, स्थिति के सैनिक पहलुओं को, कम से कम कुछ समय तक, प्राथमिकता देनी होगी। पश्चिमी यूरोप, यूनान, तुर्की, युगोस्लाविया, कोरिया, फारमोसा, और वियतनाम, ये सारे ही इसके उदाहरण हैं। यहां काफी बड़ी मात्रा में अमरीकी सैन्य सहायता परम आवश्यक है।

लेकिन दो सम्पूर्ण महाद्वीपों, दक्षिण अमरीका और अफ्रीका में और एशिया के लेबनान से मनीला तक फैले क्षेत्र के बड़े हिस्से में, विश्व शान्ति को बड़ा खतरा सोवियत टैंकों और वायुयानों से नहीं, वरन् आर्थिक क्षय, अन्याय और मानवीय निराशा से है।

इन क्षेत्रों में अनियोजित ढंग से अमरीकी सैन्य उपकरणों का भेजना, कम ही अवसरों पर हमारे अपने दीर्घ-कालीन सुरक्षा हितों के पक्ष में होता है, और सम्बन्धित देशों के लोगों के हितों के साथ तो उसका मेल और भी कम होता है।

तात्कालिक आवश्यकता के आधार पर दी गई ऐसी सैन्य सहायता, लगभग

निरपवाद ही व्यर्थ होती है। इसमें आन्तरिक आर्थिक बोझ बढ़ता है। यह आन्तरिक प्रयत्नों को रचनात्मक विकास की दिशा से दूर हटाती है। कुछ मामलों में, वह हमारी प्रतिष्ठा और हमारे प्रभाव को ऐसी तानाशाहियों के साथ बाँध देती है, जिनकी जीवनावधि सन्देहास्पद होती है, और जल्दी या देर से जिनका विनाश निश्चित होता है।

इन उठते हुए महाद्वीपों में सैनिक सहायता अगर क्षेत्रीय राजनीतिक तत्वों की ओर उचित ध्यान दिये बिना दी गई, तो विशेषतः हानिप्रद हो सकती है। मनमाने ढंग से भेजे गए हथियार लाभान्वित होने वाले राष्ट्र और उसके अ-साम्यवादी पड़ोसियों के बीच शक्ति के नाज़ुक सन्तुलन को बिगाड़ कर, सम्पूर्ण क्षेत्र की सैनिक और राजनीतिक स्थिरता को ख़तरे में डाल देते हैं।

इन सभी कारणों से, मैं समझता हूँ कि एक-एक देश को लेकर हमारे सैन्य सहायता कार्यक्रम की प्रभावकारिता पर पुनर्विचार करना आवश्यक है।

मैं यह नहीं कहता कि हम बिना समझे-बूझे पुरानी व्यवस्थाओं को ख़तम कर दें। लेकिन मैं समझता हूँ कि हमें आग्रह करना चाहिए कि उन्हें नए लक्ष्यों के अनुरूप बनाया जाय, और यह कि कोई ऐसे नए समझौते न किये जाएँ जो इन प्रतिमानों के अनुरूप न हों।

× × ×

अध्यक्ष महोदय, आर्थिक सहायता के वितरण के सम्बन्ध में, एक अधिक यथार्थ दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर हम विचार करें।

ऐसा क्यों है कि कोई बाँध किसी एक देश में बड़ी सफलता से बनाया और चलाया जा सकता है, जबकि एक अन्य देश में वैसा ही बाँध बुरी तरह असफल होता है? ऐसा क्यों है कि आधुनिक उपकरण कुछ देशों में खेती और कारख़ानों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं, जबकि अन्य देशों को भेजी गई वैसी ही मशीनें बन्दरगाहों में पड़ी सड़ती रहती हैं?

अधिकांश मामलों में, इस स्थिति, में सम्बन्धित देशों और शासनों का मौलिक अन्तर परिलक्षित होता है—ऐसे अन्तर जिन्हें ध्यान में रखने में हम बहुधा खेदजनक रूप से असफल रहे हैं।

मेरा सुझाव है कि हर देश की हमारी दीर्घ-कालीन आर्थिक विकास सहायता का उपयोग करने की क्षमता को परखने के लिए, निम्नलिखित पाँच कसौटियाँ रखी जाएँ :

1. अमरीकी आर्थिक कर्ज़ और अन्य सहायता देने की सबसे बड़ी कसौटी आत्म-बलिदान की होनी चाहिए।

बड़ी मात्रा में दीर्घ-कालीन सहायता का पात्र उसी राष्ट्र को मानना चाहिए, जो यह प्रदर्शित करे कि स्वयं अपने साधनों से अपने राष्ट्रीय विकास के लिए धन की व्यवस्था करने का वह पर्याप्त प्रयास कर रहा है।

व्यापारिक लटकों को छोड कर, जो कुछ आवश्यक है उसे सही कारण समझ कर करें।

अमरीका सचमुच क्या चाहता है ? एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के राष्ट्रो या साधनो पर नियंत्रण करने की हमे कोई इच्छा नहीं है। हमे पिछलग्गुओं की तलाश नही। अपने ढग दूसरो पर लादने की हमे कोई इच्छा नही।

वस्तुत., हमारे अपने राष्ट्र का जन्म क्रान्ति मे हुआ था, और आरम्भ से ही हमने हर जगह अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने और कायम रखने के लिए, और स्वयं अपने ढग से अपने भविष्य का निर्माण करने के लिए लोगों के प्रयत्नो के साथ अपने को सम्बद्ध किया है।

विश्व मे हमारे लक्ष्य आज भी वही हैं जो जेफरसन के समय थे—एक शान्तिपूर्ण ससार, जिसमे सभी लोगो को स्वयं अपनी सस्कृतियों, धर्मों और राष्ट्रीय क्षमताओ के अनुसार मुक्त और स्वतन्त्र रूप मे अपना विकास करने का अवसर मिले।

अब अमरीकी लोगो और दुनिया के सामने इसका प्रत्यक्ष सकेत प्रस्तुत करने का समय है कि हमारे पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम के लक्ष्य हमारे ऐतिहासिक राजनीतिक विश्वासो और हमारी लोकतांत्रिक आस्थाओं के उपयुक्त हैं।

अध्यक्ष महोदय, मेरा पहला प्रस्ताव है कि हम इन लक्ष्यों को स्पष्ट निरूपित करें।

अब मैं दूसरे सशोधन के अपने प्रस्ताव को लूँगा। हमारी सैन्य सहायता के कुछ हिस्से के बटवारे की वर्तमान अपव्ययपूर्ण और बहुधा प्रभावहीन रीतियो से मैं ऊब गया हूँ, और मैं समझता हूँ, यहाँ और लोग भी ऊब गए हैं। कई मामलो मे हमने अनजाने ही ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न की हैं, जिनसे साम्यवादियो को लाभ हुआ है, और उनका प्रभाव बढ़ा है।

निस्सन्देह, मैं इस बात को समझता हूँ कि कुछ क्षेत्रो में जहाँ साम्यवादी आक्रमण का स्पष्ट खतरा है, स्थिति के सैनिक पहलुओ को, कम से कम कुछ समय तक, प्राथमिकता देनी होगी। पश्चिमी यूरोप, यूनान, तुर्की, युगोस्लाविया, कोरिया, फारमोसा, और विएतनाम, ये सारे ही इसके उदाहरण हैं। यहाँ काफी बडी मात्रा मे अमरीकी सैन्य सहायता परम आवश्यक है।

लेकिन दो सम्पूर्ण महाद्वीपों, दक्षिण अमरीका और अफ्रीका मे और एशिया के लेबनान से मनीला तक फैले क्षेत्र के बड़े हिस्से मे, विश्व शान्ति को बडा खतरा सोवियत टैंको और वायुयानो से नही, वरन् आर्थिक क्षय, अन्याय और मानवीय निराशा से है।

इन क्षेत्रो मे अनियोजित ढग से अमरीकी सैन्य उपकरणो का भेजना, कम ही अवसरों पर हमारे अपने दीर्घ-कालीन सुरक्षा हितों के पक्ष मे होता है, और सम्बन्धित देशों के लोगो के हितो के साथ तो उसका मेल और भी कम होता है।

तात्कालिक आवश्यकता के आधार पर दी गई ऐसी सैन्य सहायता, लगभग

निरपवाद ही व्यर्थ होती है। इससे आन्तरिक आर्थिक बोझ बढ़ता है। यह आन्तरिक प्रयत्नों को रचनात्मक विकास की दिशा से दूर हटाती है। कुछ मामलों में, वह हमारी प्रतिष्ठा और हमारे प्रभाव को ऐसी तानाशाहियों के साथ बाँध देती है, जिनकी जीवनावधि सन्देहास्पद होती है, और जल्दी या देर से जिनका विनाश निश्चित होता है।

इन उठते हुए महाद्वीपों में सैनिक सहायता अगर क्षेत्रीय राजनीतिक तत्वों की ओर उचित ध्यान दिये बिना दी गई, तो विशेषतः हानिप्रद हो सकती है। मनमाने ढंग से भेजे गए हथियार लाभान्वित होने वाले राष्ट्र और उसके अ-साम्यवादी पड़ोसियों के बीच शक्ति के नाजुक सन्तुलन को बिगाड़ कर, सम्पूर्ण क्षेत्र की सैनिक और राजनीतिक स्थिरता को खतरे में डाल देते हैं।

इन सभी कारणों से, मैं समझता हूँ कि एक-एक देश को लेकर हमारे सैन्य सहायता कार्यक्रम की प्रभावकारिता पर पुनर्विचार करना आवश्यक है।

मैं यह नहीं कहता कि हम बिना समझे-बूझे पुरानी व्यवस्थाओं को खतम कर दें। लेकिन मैं समझता हूँ कि हमें आग्रह करना चाहिए कि उन्हें नए लक्ष्यों के अनुरूप बनाया जाय, और यह कि कोई ऐसे नए समझौते न किये जाएँ जो इन प्रतिमानों के अनुरूप न हों।

× × ×

अध्यक्ष महोदय, आर्थिक सहायता के वितरण के सम्बन्ध में, एक अधिक यथार्थ दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर हम विचार करें।

ऐसा क्यों है कि कोई बाँध किसी एक देश में बड़ी सफलता से बनाया और चलाया जा सकता है, जबकि एक अन्य देश में वैसा ही बाँध बुरी तरह असफल होता है? ऐसा क्यों है कि आधुनिक उपकरण कुछ देशों में खेती और कारखानों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं, जबकि अन्य देशों को भेजी गई वैसी ही मशीनें बन्दरगाहों में पड़ी सड़ती रहती हैं?

अधिकांश मामलों में, इस स्थिति, में सम्बन्धित देशों और शासनों का मौलिक अन्तर परिलक्षित होता है—ऐसे अन्तर जिन्हें ध्यान में रखने में हम बहुधा खेदजनक रूप में असफल रहे हैं।

मेरा सुझाव है कि हर देश की हमारी दीर्घ-कालीन आर्थिक विकास सहायता का उपयोग करने की क्षमता को परखने के लिए, निम्नलिखित पाँच कसौटियाँ रखी जाएँ:

1. अमरीकी आर्थिक कर्ज और अन्य सहायता देने की सबसे बड़ी कसौटी आत्म-बलिदान की होनी चाहिए।

बड़ी मात्रा में दीर्घ-कालीन सहायता का पात्र उसी राष्ट्र को मानना चाहिए, जो यह प्रदर्शित करे कि स्वयं अपने साधनों से अपने राष्ट्रीय विकास के लिए धन की व्यवस्था करने का वह पर्याप्त प्रयास कर रहा है।

ऐसे प्रमाण में राष्ट्रीय करायान का एक उचित सीमा तक प्रभावी कार्यक्रम भी शामिल हो, जो व्यक्ति की कर देने की क्षमता पर आधारित हो। जिससे अन्यथा विदेशी मुद्रा का तेज़ी से क्षय हो जाएगा, ऐसी अनावश्यक और विलास की वस्तुओं के आयात पर नियन्त्रण, और अधिकतम संख्या में किसान परिवारों को उनकी भूमि का स्वामित्व दिलाने के लिए दृढ़ और निरन्तर प्रयत्न भी इन प्रमाणों में शामिल हों।

2. बड़ी मात्रा में अमरीकी पूंजी सहायता प्राप्त करने के लिए, अल्पविकसित राष्ट्र को चाहिए कि आर्थिक लक्ष्यों की एक व्यावहारिक और व्यापक सूची के साथ, उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सभी उपलब्ध साधनों के बंटवारे का ब्योरा तैयार करे।

इससे यह निश्चित हो जाता है कि महत्वपूर्ण कार्यों को प्राथमिकता मिलेगी, कि विकास कार्यक्रम का निजी और सार्वजनिक भाग के साथ प्रासंगिकता का सम्बन्ध होगा, और यह कि अन्तर्राष्ट्रीय सहायता की आवश्यकता अधिक सही-सही आंकी जाएगी।

अगर एक महत्वपूर्ण निजी व्यापार क्षेत्र पहले से ही मौजूद है, तो ऐसी योजना में राष्ट्रीय विकास का कार्यक्रम निरूपित करते समय, खेती, बिजली, और परिवहन की सरकारी योजनाओं के साथ-साथ निजी क्षेत्र को भी ध्यान में रखा जाय।

3. सहायता के लिए उपयुक्त देश में काफी बड़ी, सक्षम, और भ्रष्टाचार-मुक्त नागरिक सेवा होनी चाहिए। बिना योग्य इंजीनियरों, कलक्टरों, और प्रशासकों के, पूंजी विनियोजन की बड़ी रकमों का उपयोग आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद रूप में नहीं किया जा सकता।

4. दीर्घ-कालीन पूंजी सहायता के उपयुक्त होने के लिए, किसी देश में अपेक्षतया टिकाऊ शासन भी होना चाहिए, जिसकी जड़ें जनता में हों।

हमारी लोकतान्त्रिक परम्परा के फलस्वरूप, अधिकांश अमरीकियों को किसी भी विचारधारा की तानाशाही सरकारों से कोई सहानुभूति नहीं होती। किन्तु, अध्यक्ष महोदय, इसका यह अर्थ नहीं कि हमारी सहायता उन्हीं देशों तक सीमित रहे, जिनमें पश्चिमी नमूने पर संसदीय लोकतन्त्र कायम हो।

वस्तुतः, हमें इस तथ्य का सामना करना होगा कि एशिया और अफ्रीका के नए राष्ट्र, लम्बे अर्से में, शायद हमारी संस्थाओं को अपने लिए अनुपयुक्त समझें। हम केवल एक ही बात को पक्की मान सकते हैं—उन सरकारों के सफल होने की सम्भावना सबसे कम है, जिनकी शक्ति सामन्ती भूस्वामियों और सूदखोर महाजनों की बदलती हुई निष्ठा पर आधारित है।

मध्यम-वर्गीय मध्य-पक्ष और अ-साम्यवादी वामपक्ष, दोनों के ही समर्थन का परित्याग करके ऐसी सरकारें साम्यवादियों को पूरा मौका देती हैं कि वे सुधारकों का रूप धरकर संयुक्त मोर्चों के लिए कोशिश करें। जब हम ऐसी सरकारों का समर्थन करते हैं, और उनका पतन हो जाता है, तो हमारी प्रतिष्ठा और प्रभाव का भी उनके

साथ नष्ट हो जाना संभव है।

लगभग एक पीढ़ी तक तुर्की पर शासन करने वाले अतातुर्क, अ-साम्यवादी वामपक्ष के एक तानाशाह थे। हम हमेशा उनके तरीकों का समर्थन नहीं कर सकते थे। लेकिन चूंकि उनके शासन की जड़ें जनता के समर्थन में थीं, अतः वे अति आवश्यक सुधार कर सके, और बढ़ते हुए लोकतंत्र की नींव डाल कर, उसमें भाग लेने के लिए जनता को प्रोत्साहित कर सके। ऐसा शासन हमारी सहायता का पात्र है।

अन्त में, आर्थिक सहायता प्रदान करते समय, सम्बन्धित देश के राजनीतिक महत्त्व को भी ध्यान में रखना चाहिए। जनसंख्या, भूमिक्षेत्र, साधन, प्रभाव, और स्थिति इस महत्त्व को आंकने के पैमाने होंगे।

जो देश इन न्यूनतम विकास प्रतिमानों की पूर्ति नहीं करते, उन्हें बुद्धिकौशल के साथ यह समझा देना चाहिए कि वे उस समय तक हमसे पूंजी सहायता की आशा नहीं कर सकते, जब तक कि वे सफल विकास के लिए स्वयं अपना आन्तरिक आधार निर्मित नहीं कर लेते।

इसका बिलकुल भी यह अर्थ नहीं है कि हम उनकी ओर से मुंह मोड़ लें। इसके विपरीत, उनकी सहायता के लिए हम बहुत कुछ कर सकते हैं और हमें करते रहना चाहिए।

हमें एक व्यापक आर्थिक विकास योजना बनाने में उनकी सहायता करने का प्रस्ताव रखना चाहिए, जिससे वे स्वयं अपने साधनों का अधिकतम लाभप्रद रीति से उपभोग कर सकें।

हमें प्रशासन का एक कार्यात्मक आधार निर्मित करने के लिए कर-विशेषज्ञों, इंजीनियरी के सर्वेक्षण दलों, और अन्य प्राविधिक कर्मियों के द्वारा उनकी सहायता करनी चाहिए।

हमें उनको प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपने धनी उच्चवर्ग के लिए खरीदी गई विलास सामग्री के आयात पर नियन्त्रण लगाएँ ताकि अल्प विदेशी मुद्रा का उपयोग लोगों की जरूरी आवश्यकताओं के लिए हो सके।

हमें उनसे अनुरोध करना चाहिए कि वे भूमि सुधार आरम्भ करें, और उनकी सहायता के लिए विशेषज्ञ सलाहकारों के उपयोग का सुझाव देना चाहिए। जापान और फारमोसा में अमरीकी सरकारी विशेषज्ञों ने निजी भूस्वामित्व के एक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में पहल की, जिसने इन दोनों देशों में किसानों को कृषि-उत्पादकता के नए उच्च स्तर कायम करने में, और ग्रामीण लोकतंत्र के विस्तार में सहायता पहुँचाई है।

अधिक विशिष्ट और तात्कालिक रूप में, हम ऐसी विशिष्ट योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था करने में इन राष्ट्रों की सहायता कर सकते हैं, जो अपने-आप में लाभप्रद हों, जो सम्पूर्ण देश की अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर न हों, और जो स्पष्टतः जनता के हित में हों।

राष्ट्रीय राजधानी मे एक आधुनिक अस्पताल इसका एक उदाहरण हो सकता है जिसमे डाक्टरो और नर्सों के लिए प्रशिक्षण की सुविधाएँ हों, और गाँवों के लिए बिना भरती किए उपचार की व्यवस्था हो। या किसी विश्वविद्यालय का विस्तार और सुधार या कोई कृषि प्रयोग विद्यालय भी हो सकता है।

मैं इस तथ्य को स्वीकार करता हूँ कि किसी प्रकार की आर्थिक सहायता—जिसे सरकारी तौर पर 'प्रतिरक्षा समर्थन' या 'विशेष सहायता' कहा जाता है—प्रत्यक्ष राजनीतिक उद्देश्यो के लिए, विशेष आर्थिक कारणों से, सैन्य सहायता की पुष्टि के रूप मे, या किसी सैनिक अड्डे के उपयोग के बदले मे दिये गए किराए के रूप मे, आवश्यक होती है। पिछले कुछ वर्षों मे ऐसी सहायता की मात्रा बहुत अधिक बढा दी गई है।

पारस्परिक सुरक्षा मे साझेदारी निहित है। प्रभावी होने के लिए, इसमे दोतरफा सम्बन्ध होना चाहिए। विदेश स्थित अमरीकी प्रतिनिधियो को इसके लिए अधिक दृढ प्रयत्न करना चाहिए कि सैन्य क्षेत्र मे पारस्परिक सुरक्षा सम्बन्धी हमारे प्रयत्न सचमुच साझेदारी के आधार पर चलें।

× × ×

हमारे कई विदेशी सहायता कार्यक्रमो के नियोजन और प्रशासन के सम्बन्ध में मेरी आलोचनाएँ सैन्य सहायता और आर्थिक सहायता, दोनों के बारे में हैं। इराक एक उदाहरण है। वहाँ के घटनाक्रम के संक्षिप्त पुनरावलोकन से ऐसे दृष्टिकोण की आवश्यकता प्रकट हो जाती है जो सैन्य-अभिमुख कम हो, और यथार्थ के अधिक अनुकूल हो।

1953 और 1954 मे मिस्र ने कई अवसरों पर अमरीका से हथियार देने का अनुरोध किया। ये अनुरोध बुद्धिमत्तापूर्वक अस्वीकार कर दिये गए। इसका मुख्य कारण था कि यह सहायता मिस्र और इजराएल के बीच शक्ति-संतुलन को बिगाड देती, और इन पड़ोसी देशों के बीच संघर्ष का खतरा बढ जाता।

किन्तु 1954 की वसन्त मे प्रशासन ने ईराक को सैन्य सहायता देना स्वीकार कर लिया, जिससे न केवल इजराएल के अस्तित्व को खतरा था, वरन् जो अरब देशों के नेतृत्व के लिए मिस्र का प्रत्यक्ष विरोधी था।

मिस्र ने इस आधार पर विरोध किया कि इस सहायता के द्वारा अमरीका जान-बूझ कर अरब जगत को विभाजित करते का प्रयत्न कर रहा था, और उसने मिस्र के हितो की उपेक्षा की थी। इस विरोध की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

फ़रवरी 1955 मे तुर्की के साथ ईराक, ईरान और पाकिस्तान की सैन्य शक्ति को जोड़ने के लिए बगदाद संधि की स्थापना की गई। ईरान की खाड़ी की ओर रूस के सैनिक अतिक्रमण को रोकना इसका घोषित उद्देश्य था।

काहिरा मे अन्य अरब नेताओ ने इस बात को समझा कि बगदाद संधि के फल-स्वरूप ईराक को कहीं अधिक मात्रा मे अमरीकी हथियार दिये जाएँगे। इसके सम्बन्ध

मे नासिर के विरोधों के फिर अस्वीकार किए जाने के बाद, नासिर ने नवम्बर में घोषणा की कि मिस्र ने सोवियत रूस के साथ सैन्य समझौता कर लिया है।

इस कारण-कार्य सम्बन्ध में, निश्चय ही मात्र यही तत्त्व नहीं थे। किन्तु ये घटनाएँ एक घटनाक्रम का अंग थी, जिसका अन्त मिस्र पर इंगलिस्तान-फ्रांस-इज़राएल के आक्रमण से हुआ।

इस अवधि में, ईराक को काफ़ी बड़ी मात्रा में आर्थिक और प्राविधिक सहायता भी दी जाती रही। इस कार्यक्रम के प्रशासन की जिम्मेदारी जिन लोगों पर थी, उन्होंने काग्रेस को सूचित किया कि ईराकी सरकार को तेल से होने वाली आय के साथ यह सहायता प्राप्त हो जाने से ईराक की आर्थिक सफलता निश्चित प्रतीत होती थी।

किन्तु इस बात की कोशिश बहुत कम की गई कि हमारे संयुक्त प्रयत्नों से ईराक के लोगों को प्रत्यक्ष लाभ हो। इस प्रकार, नए सिंचाई कार्यक्रमों से भूस्वामियों की आमदनी तो बहुत बढ़ गई, लेकिन किसानों को बहुत कम लाभ हुआ।

ईराक का कुल राष्ट्रीय उत्पादन तेज़ी से बढ़ा। लेकिन विलास-सामग्री के आयात पर रोक नहीं लगाई गई, प्रगतिशील कराधान व्यवस्थाएँ आरम्भ नहीं की गईं, और भूमि-सुधार स्थगित कर दिये गए। फलस्वरूप आय में वृद्धि होने से केवल अमीर और ग़रीब के बीच की विस्फोटक खाई और भी अधिक बढ गई। जैसी हममें से बहुतों ने भविष्यवाणी की थी, 1958 की गर्मियों मे विस्फोट हुआ, और कर्नल कासिम की सरकार सत्तारूढ़ हुई तथा साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ा।

अस्पष्ट सैनिक सुरक्षा की तलाश मे जब हम राजनीतिक, आर्थिक और स्थानीय यथार्थों की उपेक्षा करते हैं, तो हमारे हितों का क्या हाल होता है, इसका यह एक उदाहरण है।

ईराक के उदाहरण और अन्य उदाहरणों से एक और भी सवाल उठता है। जो प्रतिमान मैंने सुझाए हैं, उनका प्रभाव ऐसे देशों के नेताओं पर क्या पड़ेगा, जो अभी उनके अनुरूप तैयार नहीं हैं, किन्तु जिनकी सद्भावना हमारे लिए आवश्यक है? जो राष्ट्र उपयुक्त नहीं सिद्ध होते, क्या वे मेरे द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था को राजनीतिक हस्तक्षेप मानकर उससे रुष्ट होंगे?

अगर हम अपनी सहायता का उपयोग इन राष्ट्रों पर दबाव डालने के लिए करेंगे, कि वे शीत-युद्ध में हमारा अनुसरण करें, तो अनिवार्य ही रोष उत्पन्न होगा। लेकिन स्वयं भारी कर अदा करने वाले अमरीकी लोगों की यह माँग क्या अनुचित है कि उनकी सहायता का ईमानदारी और कौशल के साथ उपयोग किया जाय?

एशिया और अफ्रीका में स्वयं अपने व्यावहारिक अनुभव के फलस्वरूप मेरा विश्वास है कि जो सिद्धान्त मैंने प्रस्तुत किए हैं, उन्हें सरलता से स्वीकार कर लिया जाएगा, अगर उन्हें कुशल अमरीकी वार्ताकार प्रस्तुत करें, और उनके पीछे कांग्रेस के दृढ़ आदेश का बल हो।

राष्ट्रीय राजधानी मे एक आधुनिक अस्पताल इसका एक उदाहरण हो सकता है जिसमे डाक्टरो और नर्सो के लिए प्रशिक्षण की सुविधाएँ हों, और रोगों के लिए बिना भरती किए उपचार की व्यवस्था हो। या किसी विश्वविद्यालय का विस्तार और सुधार या कोई कृषि प्रयोग विद्यालय भी हो सकता है।

मैं इस तथ्य को स्वीकार करता हूँ कि किसी प्रकार की आर्थिक सहायता—जिसे सरकारी तौर पर 'प्रतिरक्षा समर्थन' या 'विशेष सहायता' कहा जाता है—प्रत्यक्ष राजनीतिक उद्देश्यो के लिए, विशेष आर्थिक कारणों से, सैन्य सहायता की पुष्टि के रूप मे, या किसी सैनिक अड्डे के उपयोग के बदले में दिये गए किराए के रूप मे, आवश्यक होती है। पिछले कुछ वर्षों मे ऐसी सहायता की मात्रा बहुत अधिक बढ़ा दी गई है।

पारस्परिक सुरक्षा मे साझेदारी निहित है। प्रभावी होने के लिए, इसमे दोतरफा सम्बन्ध होना चाहिए। विदेश स्थित अमरीकी प्रतिनिधियो को इसके लिए अधिक दृढ़ प्रयत्न करना चाहिए कि सैन्य क्षेत्र मे पारस्परिक सुरक्षा सम्बन्धी हमारे प्रयत्न सचमुच साझेदारी के आधार पर चलें।

× × ×

हमारे कई विदेशी सहायता कार्यक्रमो के नियोजन और प्रशासन के सम्बन्ध में मेरी आलोचनाएँ सैन्य सहायता और आर्थिक सहायता, दोनों के बारे में हैं। इराक एक उदाहरण है। वहाँ के घटनाक्रम के संक्षिप्त पुनरावलोकन से ऐसे दृष्टिकोण की आवश्यकता प्रकट हो जाती है जो सैन्य-अभिमुख कम हो, और यथार्थ के अधिक अनुकूल हो।

1953 और 1954 मे मिस्र ने कई अवसरो पर अमरीका से हथियार देने का अनुरोध किया। ये अनुरोध बुद्धिमत्तापूर्वक अस्वीकार कर दिये गए। इसका मुख्य कारण था कि यह सहायता मिस्र और इजराएल के बीच शक्ति-सतुलन को बिगाड देती, और इन पड़ोसी देशों के बीच संघर्ष का खतरा बढ़ जाता।

किन्तु 1954 की वसन्त मे प्रशासन ने ईराक को सैन्य सहायता देना स्वीकार कर लिया, जिससे न केवल इजराएल के अस्तित्व को खतरा था, वरन् जो अरब देशों के नेतृत्व के लिए मिस्र का प्रत्यक्ष विरोधी था।

मिस्र ने इस आधार पर विरोध किया कि इस सहायता के द्वारा अमरीका जान-बूझ कर अरब जगत को विभाजित करने का प्रयत्न कर रहा था, और उसने मिस्र के हितो की उपेक्षा की थी। इस विरोध की ओर ध्यान नही दिया गया।

फरवरी 1955 मे तुर्की के साथ ईराक, ईरान और पाकिस्तान की सैन्य शक्ति को जोडने के लिए बगदाद सधि की स्थापना की गई। ईरान की खाडी की ओर रूस के सैनिक अतिक्रमण को रोकना इसका घोषित उद्देश्य था।

काहिरा मे अन्य अरब नेताओ ने इस बात को समझा कि बगदाद सधि के फल-स्वरूप ईराक को कही अधिक मात्रा मे अमरीकी हथियार दिये जाएँगे। इसके सम्बन्ध

मे नासिर के विरोधों के फिर अस्वीकार किए जाने के बाद, नासिर ने नवम्बर में घोषणा की कि मिस्र ने सोवियत रूस के साथ सैन्य समझौता कर लिया है।

इस कारण-कार्य सम्बन्ध में, निश्चय ही मात्र यही तत्त्व नहीं थे। किन्तु ये घटनाएँ एक घटनाक्रम का अंग थी, जिसका अन्त मिस्र पर इंगलिस्तान-फ्रांस-इजराएल के आक्रमण से हुआ।

इस अवधि में, ईराक को काफी बड़ी मात्रा में आर्थिक और प्राविधिक सहायता भी दी जाती रही। इस कार्यक्रम के प्रशासन की जिम्मेदारी जिन लोगों पर थी, उन्होंने कांग्रेस को सूचित किया कि ईराकी सरकार को तेल से होने वाली आय के साथ यह सहायता प्राप्त हो जाने से ईराक की आर्थिक सफलता निश्चित प्रतीत होती थी।

किन्तु इस बात की कोशिश बहुत कम की गई कि हमारे संयुक्त प्रयत्नों से ईराक के लोगों को प्रत्यक्ष लाभ हो। इस प्रकार, नए सिंचाई कार्यक्रमों से भूस्वामियों की आमदनी तो बहुत बढ़ गई, लेकिन किसानों को बहुत कम लाभ हुआ।

ईराक का कुल राष्ट्रीय उत्पादन तेजी से बढ़ा। लेकिन विलास-सामग्री के आयात पर रोक नहीं लगाई गई, प्रगतिशील कराधार व्यवस्थाएँ आरम्भ नहीं की गईं, और भूमि-सुधार स्थगित कर दिये गए। फलस्वरूप आय में वृद्धि होने से केवल अमीर और गरीब के बीच की विस्फोटक खाई और भी अधिक बढ़ गई। जैसी हममें से बहुतों ने भविष्यवाणी की थी, 1958 की गर्मियों में विस्फोट हुआ, और कर्नल कासिम की सरकार सत्तारूढ़ हुई तथा साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ा।

अस्पष्ट सैनिक सुरक्षा की तलाश में जब हम राजनीतिक, आर्थिक और स्थानीय यथार्थों की उपेक्षा करते हैं, तो हमारे हितों का क्या हाल होता है, इसका यह एक उदाहरण है।

ईराक के उदाहरण और अन्य उदाहरणों से एक और भी सवाल उठता है। जो प्रतिमान मैंने सुझाए हैं, उनका प्रभाव ऐसे देशों के नेताओं पर क्या पड़ेगा, जो अभी उनके अनुरूप तैयार नहीं हैं, किन्तु जिनकी सद्भावना हमारे लिए आवश्यक है? जो राष्ट्र उपयुक्त नहीं सिद्ध होते, क्या वे मेरे द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था को राजनीतिक हस्तक्षेप मानकर उससे रुष्ट होंगे?

अगर हम अपनी सहायता का उपयोग इन राष्ट्रों पर दबाव डालने के लिए करेंगे, कि वे शीत-युद्ध में हमारा अनुसरण करें, तो अनिवार्य ही रोष उत्पन्न होगा। लेकिन स्वयं भारी कर अदा करने वाले अमरीकी लोगों की यह माँग क्या अनुचित है कि उनकी सहायता का ईमानदारी और कौशल के साथ उपयोग किया जाय?

एशिया और अफ्रीका में स्वयं अपने व्यावहारिक अनुभव के फलस्वरूप मेरा विश्वास है कि जो सिद्धान्त मैंने प्रस्तुत किए हैं, उन्हें सरलता से स्वीकार कर लिया जाएगा, अगर उन्हें कुशल अमरीकी वार्ताकार प्रस्तुत करें, और उनके पीछे कांग्रेस के दृढ़ आदेश का बल हो।

चतुर्थ, मुझे विश्वास है कि अधिकांश सरकारों को यह बात समझाई जा सकती है कि ये कसौटियाँ स्वयं उनके दीर्घ-कालीन हित में आवश्यक हैं। उनमें से कई सरकारें ऐसे प्रतिमानों का स्वागत करती हैं, क्योंकि वे स्वयं अपने देश में प्रतिक्रियावादी तत्वों को समझाने के लिए उनका उपयोग कर सकती हैं, कि वे रचनात्मक सुधारों में बाधाएँ डालना बन्द करें।

पंचम, मेरा सुझाव है कि अपनी आर्थिक सहायता और विकास कर्जों को हम जिस आधार पर निर्धारित करना चाहते हैं, उसे पारस्परिक सुरक्षा विधेयक में स्पष्ट निर्दिष्ट किया जाय।

जो नई दिशा और आग्रह मैंने प्रस्तुत किया है, कांग्रेस अगर उसे स्वीकार कर लेती है, तो हम दुनिया को दिखा देंगे कि हमारा पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम केवल शीत-युद्ध की एक अस्थायी चाल नहीं है, और यह कि हमने एक दृढ़, दीर्घ-कालीन कार्यक्रम आरम्भ किया है, जिसका उद्देश्य मनुष्यों को स्वतंत्र, बढ़ती हुई समृद्धि और शान्ति की दुनिया में, स्वयं अपनी चुनी हुई सरकारों के अन्तर्गत रहने का अवसर प्रदान करना है।

इक्कीस

विदेशों में भोजन बैंकों की स्थापना का प्रस्ताव

सीनेट की वैदेशिक सम्बन्ध समिति की एक सुनवाई का विषय यह था कि अमरीकी खेती के अतिरिक्त उत्पादन का उपयोग दुनिया के भूखे लोगों को भोजन देने के लिए कैसे किया जा सकता है। 8 जुलाई, 1959 को श्री बोल्स ने उसमें यह सुझाव रखा कि विकासशील राष्ट्रों में बहुसंख्यक 'भोजन बैंक' स्थापित किये जाएँ।

भविष्य के इतिहासकार जब मुड़कर हमारी पीढ़ी पर नजर डालेंगे तो उन्हें बहुतेरे आश्चर्यजनक तथ्य दिखाई देंगे, किन्तु इससे अधिक विरोधाभासपूर्ण बात कोई और नहीं होगी कि संयुक्त राज्य अमरीका के पास तथाकथित 'फालतू' कृषि उत्पादनों का विशाल भंडार है, जिसका मूल्य लगभग दस अरब डालर है, जबकि दुनिया में भूख और राजनीतिक संकट व्याप्त है, और शान्ति के लिए ठीक प्रयत्न करने की बड़ी जरूरत है।

मध्य बीसवीं सदी के इस बिन्दु पर, हममें अपनी निधियों को 'बोझ' कहने की प्रवृत्ति है, जबकि दुनिया के अधिकांश मनुष्यों के पास भोजन की कमी है, और लगभग हर देश को या तो आयात करने पड़ते हैं, या भूखे रहना पड़ता है।

भोजन और वस्त्र, सोवियत रूस की सबसे बड़ी अकेली आर्थिक समस्या रही है। आज जो समस्या शायद चीन के साम्यवादी शासन को तोड़ सकती है, वह भोजन की समस्या है—प्रति परिवार के लिए 1·7 एकड़ भूमि के आधार पर वे अपनी आबादी को भोजन प्रदान करने की कोशिश कर रहे हैं। और हम हैं कि अपनी विशाल क्षमता को लेकर सोच रहे हैं कि आखिर अपने सारे भोजन का करें क्या ?

एक अर्थ में आज हमारे सामने विश्व स्तर पर बहुत कुछ वही स्थिति है जो 1933 के अमरीका में थी, जब एक करोड़ साठ लाख बेकार मजदूर जिनमें से बहुतेरे भोजन के अभाव से पीड़ित थे, रोज ऐसी दूकानों के सामने से गुजरते थे, जिनमें भोजन सामग्री भरी हुई सड़ रही थी, लेकिन वे उस सामग्री को खा नहीं सकते थे, क्योंकि, अर्थशास्त्रियों के शब्दों में, 'अर्थशास्त्र के लौह नियम' इसमें बाधक थे।

अन्ततः, हमने एक ऐसा शासन चुना जिसने इस स्थिति की अनैतिकता, और अयथार्थता को समझा। बिना सचमुच यह जाने हुए कि क्या करना चाहिए, कल्पना-

शील रीति से हलों की तलाश करते हुए, कभी एक और कभी दूसरा कदम उठाकर हमने प्रयोग करना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे हमने 'अर्थशास्त्र के लौह-नियमों' को पुनः निरूपित करना, और बाहुल्य के साथ आवश्यकता का मेल बिठाना सीख लिया।

आज हमारे सामने दुनिया के पैमाने पर वैसी ही समस्या है, जिसमें दो तिहाई मानव-जाति के पास पर्याप्त भोजन नहीं है, जबकि हम भोजन के भंडारों को लेकर चिन्तित है, जिनके लिए 'कोई बाजार नहीं' है। फिर भी मुझे लगता है कि अगले कुछ वर्षों में शायद हम विभ्रम की इस स्थिति की ओर वैसी ही आश्चर्य भरी दृष्टि से देखें, जैसे आज हम 1933 की स्थिति की ओर से देखते हैं, जब बहुलता के बीच अमरीकी लोग भूखे रहते थे।

किसी भी दशा में, अब समय आ गया है कि हम अपने कथित बोझों को अपने लिए हितकारी बनाना प्रारम्भ करें। आपकी समिति के समक्ष जो विधेयक है, उसका यही गुण है कि हमें ऐसा करने के योग्य बनाने में यह बड़ा सहायक होगा।

विधेयक[1] के शीर्षक 5 की रचनात्मक, निर्माणात्मक संभावनाओं ने विशेष रूप से मेरा ध्यान आकर्षित किया है। राष्ट्रीय 'भोजन बैंकों' का यह विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

विभिन्न देशों में भोजन के आरक्षित भंडार बनाने के विचार पर कई वर्षों से हमारे अपने शासन में संयुक्त राष्ट्रों में और अन्यत्र चर्चा होती रही है। किन्तु काफी बड़े पैमाने पर अभी तक इस समस्या का सामना नहीं किया गया है।

आज हम जानते हैं कि न केवल नैतिक दृष्टि से, वरन् आर्थिक दृष्टि से भी, हमारे पास समय सीमित है। हमारी संचित वस्तुओं का अगर उपयोग नहीं होता तो वे व्यर्थ जाती हैं। वस्तुएँ खराब न होने पाएँ, यह एक स्थायी और बढ़ती हुई समस्या है। इस वर्ष भी फसल अच्छी होने की संभावना से, शीघ्र ही हमारे सामने भण्डार करने की नई समस्या खड़ी होगी।

नाटकीय स्थितियों में नाटकीय हलों की आवश्यकता पड़ती है। अब कार्यवाही करने का समय आ गया है।

मेरा सुझाव है कि हम अपने सारे फ़ालतू अनाज का आधा भाग लेकर उसे विदेशों में पूर्वनिश्चित भंडारों में रख दें। करोड़ों लोगों के लिए यह अकाल और रोग के विरुद्ध प्रत्यक्ष और विश्वसनीय सुरक्षा होगी और हमारे इस दृढ़निश्चय का गंभीर प्रदर्शन होगा कि जब हमारे पास इतना फ़ालतू भोजन है, तो कोई व्यक्ति भूखा न मरे।

ऐसे तीस या चालीस भंडार अकेले भारत में ही रखे जा सकते हैं, और दस अन्य पाकिस्तान में। अन्य भंडार मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका, इंडोनेशिया, और दक्षिण अमरीका के कुछ हिस्सों में रखे जा सकते हैं।

---

1. 1959 का हम्फ्री अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए भोजन विधेयक।

हमारी ओर से ऐसे रचनात्मक प्रयत्न से हमे धन की भी बचत हो सकती है। जो सारे आंकड़े मैंने देखे हैं, उसके अनुसार फालतू वस्तुओं को किसी भी मात्रा मे विदेश भेजने पर जो खर्च आएगा, वह उन वस्तुओं को इस देश में तीन वर्ष तक संचित करके रखने के खर्च से काफी कम होगा। इस पद्धति से होने वाली बचत, दूसरे वर्ष के बाद बहुगुणित होने लगेगी।

अत: हम अपना आधा अनाज इन विदेशस्थित 'भोजन वैंकों' में रख दें। हम इस बात का ध्यान रखें कि ये वैंक अच्छी तरह निर्मित किए जाते हैं, ताकि अनाज खराब न होने पाए जैसे वह इस देश में सुरक्षित रखा जाता है। फिर हम सम्बन्धित सरकारों के साथ समझौते करें जिसमें दोनो पक्षों द्वारा स्वीकृत शर्तों के अनुसार स्थानीय उपयोग के लिए यह अनाज निकाला जा सके।

फसल का सचमुच खराब हो जाना, एक स्वाभाविक शर्त होगी। दूसरी शर्त होनी चाहिए अभाव के फलस्वरूप भोजन के मूल्यों का बहुत बढ़ जाना, जिसके फलस्वरूप भोजन के सम्बन्ध में संकटपूर्ण मँहगाई की स्थिति उत्पन्न हो जाय। तीसरी एक शर्त अपर्याप्त पोषण की विशिष्ट मात्राओं से सम्बन्धित हो सकती है।

सारी दुनिया में स्थापित, अमरीका द्वारा चलाये गए 'भोजन वैंकों' की पूरी शृंखला, वस्तुतः अमरीका के विशाल भोजन भंडारों को भूखे लोगों तक पहुँचाने वाली धारा बन जाएगी। अगर इस भंडार को उन तक पहुँचाने के लिए, अधिक अमरीकी जहाजों का इस्तेमाल करना पड़ता है, जो अभी वेकार पड़े हैं, तो हमें इस अवसर का स्वागत करना चाहिए।

इस विधेयक के शीर्षक 5 में प्रस्तुत विचार का उपयोग करके और मेरे प्रस्ताव के अनुसार उसका विस्तार करके, हम करोड़ो व्यक्तियों को यह ठोस आश्वासन प्रदान करेंगे कि वे और उनके बच्चे भुखमरी, अकाल, और रोग के भय से हमेशा के लिए मुक्त हो जाएँगे, जिससे मनुष्य इतिहास के आरम्भ से अब तक हमेशा ग्रस्त होते रहे हैं।

हमारे लिए संभव ऐसे कार्य बहुत कम हैं, जो अमरीकी विदेश-नीति को एक नया विध्यात्मक रूप प्रदान करने में इससे अधिक उपयोगी हों।

वाईस

लोकतांत्रिक विकास का मर्म : ग्राम विकास

श्री बौल्स का कथन है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली मनुष्य जाति की ग़रीब और उपेक्षित बहुसंख्या तक बीसवीं सदी के लाभों को पहुँचाना आर्थिक विकास सहायता का एक प्राथमिक लक्ष्य बन जाना चाहिए। भूमि रक्षण सम्बन्धी व्हाइट हाउस सम्मेलन के समक्ष एक भाषण से, वाशिंगटन, 24 मई, 1962।

अमरीकी इतिहास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों में से दो की शताब्दी इस वर्ष पड़ती है, ऐसे दस्तावेज जिनके फलस्वरूप यह निश्चित हो गया कि अमरीकी भूमि का उपयोग सामान्य भलाई के लिए होगा—20 मई, 1862 का होमस्टेड अधिनियम, और 2 जुलाई, 1862 का मॉरिल लैण्ड ग्राण्ट कालेज अधिनियम।

यद्यपि भौतिक प्रगति के सन्दर्भ में, हमारे राष्ट्रीय विकास में इन कानूनों का नाटकीय महत्त्व है, किन्तु इनका सर्वाधिक महत्त्व शायद इसमें है कि इन्होंने हमारे राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किया, और व्यक्ति की गरिमा में हमारे विश्वास को गभीरता प्रदान की।

स्वय अपनी भूमि का स्वामी होने का मनुष्य का अधिकार, और अपने नागरिकों को उपयोगी और उत्पादक मनुष्यों के रूप में शिक्षित करने की शासन की जिम्मेदारी, अमरीका की सुदीर्घ परम्परा का अग रहे हैं।

परिवार का अपना खेत, काउण्टी का एजेण्ट, गाँव का स्कूल, अपनी सहायता-आप का सामुदायिक सगठन, अधिकतम सख्या की अधिकतम भलाई के लिए साधनों का उपयोग, और लोगों की सेवा करने वाले विश्वविद्यालय, इन सबका जन्म ऐसे लोकतांत्रिक मूल्यों से हुआ है, जिनकी जड़ें बड़ी गहरी और व्यापक हैं, और जो कई अर्थों में औपनिवेशिक काल से हमारे बीच रहे हैं।

जिसे वे उचित समझते हैं, उसके लिए लड़ने में अमरीकी किसानों ने कभी हिचक भी नहीं दिखाई। शासन के अन्याय, अथवा बैंकरों या रेलों के शोषण में विरोध की एक मौलिक धारा हमेशा हमारी ग्रामीण परम्परा की एक विशेषता रही है।

सौ वर्ष पहले हमारे राष्ट्रीय कानूनों में, और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने में अमरीकी किसान की तत्परता में जिन सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति मिली थी, क्या

एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के अधीर, विकासशील राष्ट्रों के लिए भी उनकी कोई सार्थकता है ?

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी सार्थकता है। सचमुच, मैं समझता हूँ कि एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका में सफल अमरीकी नीति की कुंजी शायद उन्हीं में हो। इस पृष्ठभूमि में हम उस चुनौती पर नजर डालें जो हमारे सामने है।

अधिकांश अमरीकियों के लिए, असंयमित, चिल्लाते हुए छात्रों और विरोध प्रकट करते हुए औद्योगिक मजदूरों के चित्र, एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका की अशान्ति को व्यक्त करने वाले प्रतीक होते हैं। लेकिन इन विकासशील महाद्वीपों के भविष्य का निर्णय, दूरस्थ, मिट्टी के बने गाँवों में होने की सम्भावना अधिक है, जहाँ 80 प्रतिशत लोग रहते हैं।

एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका की किसान बहुसंख्या दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है—प्रथम, अपनी संभाव्य राजनीतिक शक्ति के कारण, और दूसरे उत्पादकों और उपभोक्ताओं के रूप में अपनी आर्थिक भूमिका के कारण।

जब तक किसी विकासशील देश में तीन चौथाई जनसंख्या को राजनीति में कोई सक्रिय भाग लेने से, और निजी प्रतिष्ठा से वंचित रखा जाता है, तब तक वे विध्वंसक कार्यवाही और अशांति के लिए उर्वर भूमि बने रहेंगे। जब तक उनमें मात्र अति आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त, और कुछ भी खरीदने की क्षमता का अभाव रहेगा, तब तक शहरी केन्द्रों में औद्योगिक उत्पादन के स्वस्थ विकास की आशा भी नहीं की जा सकती।

बहुतेरे नए उठते हुए देशों में ग्रामीण क्षेत्रों पर सदियों से जमींदारों और महाजनों का आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व रहा है। अब भी भूमि के लगान में फ़सल का तीन बटा पाँच ($\frac{3}{5}$) हिस्सा तक चला जाता है। कर्जों पर सूद बहुधा 30 प्रतिशत वार्षिक से अधिक होता है।

किन्तु अब हर जगह इन स्थितियों को सबल चुनौतियाँ दी जा रही हैं। यह बात फैल रही है कि गरीबी और निरक्षरता, अभागे लोगों के लिए ईश्वर का विधान नहीं है, बल्कि ऐसी बुराइयाँ हैं जिनका सामना करके उन्हें समाप्त करना है।

किन्तु प्रगति की रफ़्तार को और कम करने में, तथा चुनौती का प्रत्यक्ष सामना करने से नए शासनों को रोकने में, कई तत्व मिल जाते हैं। इनमें तेज़ी से औद्योगीकरण करने के पक्ष में असंतुलित आग्रह, और लोगों तथा उनकी संस्थाओं का पर्याप्त ध्यान न रखना भी एक है।

निस्सन्देह, आधुनिक समाजों के विकास के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है, और ऐसे विकास को आगे बढ़ाना हमारे आर्थिक सहायता कार्यक्रम का एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। लेकिन हमारे अपने इतिहास पर नजर डालने से स्पष्ट हो जाएगा कि औद्योगिक विकास अपने आप में पर्याप्त नहीं होता। राजनीतिक स्थायित्व वाले समाज के लिए एक ठोस ग्रामीण आधार की आवश्यकता होती है, जो

किसान बहुसख्या को राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा का अंग बनाता है।

अत. हमारे सहायता कार्यक्रम का एक प्रमुख लक्ष्य शहरी और ग्रामीण विकास के बीच एक प्रभावी कार्य-सन्तुलन की स्थापना करना है। अन्यथा औद्योगीकरण, बिजलीघर, बन्दरगाह और सडको पर चाहे जितने अरब डालर खर्च किये जाएँ, हम अपने लक्ष्य मे असफल रहेंगे।

यद्यपि विकास की विभिन्न स्थितियों वाले राष्ट्रो की विशिष्ट समस्याओं के बारे मे कोई सामान्य निरूपण करना खतरनाक होता है, फिर भी, हमारे अनुभव के अलावा जापान और अन्य देशो के अनुभव से सन्तुलित ग्रामीण विकास के बारे मे कुछ नतीजे निकाले जा सकते है। इन नतीजों को सात शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :

1. किसी पुराने समाज का आधुनिकीकरण, सर्वोत्तम रूप मे भी, एक तोड़ने वाली प्रक्रिया होती है। अतः तेजी से औद्योगिक विकास करने पर इकहरुलिस आग्रह से शहरो और ग्रामीण क्षेत्रो दोनो मे ही राजनीतिक अशान्ति के घटने के बजाए बढने की सभावना अधिक होती है।

सचमुच, इसका कोई प्रमाण नही है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से अपने-आप राजनीतिक स्थायित्व मे भी वृद्धि होती है। लातिन अमरीका मे हमे इसका नाटकीय प्रमाण मिलता है। वहाँ प्रति व्यक्ति कुछ राष्ट्रीय उत्पादन, वेनेज़ुला मे 1000 डालर के उच्च स्तर से लेकर बोलिविया मे 55 डालर के निम्न स्तर तक है। किन्तु इन पराकाष्ठाओं के बीच राजनीतिक स्थायित्व का कोई रूप सामने नही आता बैटिस्टा के अधीन क्यूबा मे प्रति व्यक्ति औसत आय लातिन अमरीका मे दूसरे नम्बर पर थी।

नतीजा साफ है—व्यवस्थित राजनीतिक विकास के लिए केवल आर्थिक प्रगति ही नही, वरन् सामाजिक प्रगति और राजनीतिक सुधार भी आवश्यक हैं।

2. *अतः भूमि सुधार का एक व्यापक कार्यक्रम, एक राजनीतिक और आर्थिक* आवश्यकता है। जो किसान स्वय अपनी भूमि के मालिक नही होते, उनके सामने कोई प्रेरणा नही होती कि वे बुद्धिमत्तापूर्वक किसानी करें, और अधिक समय तक व कड़ी मेहनत करें, जो उत्पादन बढाने के लिए आवश्यक है। दूसरो की जमीन पर खेती करने वाला आमतौर पर अस्थिर और उदासीन रहता है, बिना भविष्य का विचार किए अपनी जमीन का उपयोग करता है, और जमीन की सभावनाओ को व्यर्थ जाने देता है। उसका अविश्वास और असन्तोष आमतौर पर आसानी से प्रकट हो जाते हैं।

अत. जहाँ अब भी विशाल सामन्ती भूसम्पत्तियाँ हैं, वहाँ उनको समाप्त करना होगा, और पुराने मालिको को मुआवजा देते हुए जमीन का, उसे जोतने वालों के बीच, बँटवारा करना होगा।

3. यद्यपि भूमि के स्वामित्व का बहुत-से लोगो मे फैला होना, ग्रामीण समाज मे स्थिरता लाने के लिए आवश्यक है, किन्तु यह उस प्रक्रिया का केवल एक अंग

है। सामुदायिक विकास की एक व्यापक योजना का भी वैसा ही प्राथमिक स्थान है। इसमें एक कृषि विस्तार सेवा भी शामिल होनी चाहिए, जो सुधरे हुए बीज, औज़ार, उर्वरक, कीटाणुनाशक दवाएँ आदि का प्रयोग आरम्भ करने में, और सिंचाई के जल का अधिक प्रभावकारी उपयोग कराने में सहायक हो।

अगर भूमि सुधार के साथ-साथ इस प्रकार का सामुदायिक विस्तार कार्यक्रम नहीं चलाया जाता, तो लगभग निश्चित रूप से उत्पादन का स्तर गिरेगा। ऐसा कार्यक्रम चलाने पर, जापान की भाँति, प्रति एकड़ उत्पादन लगभग निश्चित ही बढ़ेगा।

बिना मूल्य दिये गए स्थानीय श्रम की सहायता से सड़कों और स्कूलों का निर्माण करने के लिए, स्वास्थ्य के स्तर को सुधारने के लिए, और गाँव स्वशासन को विकसित करने के लिए आगे बढ़ने में सामुदायिक विकास प्रयत्नों में स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में, वास्तविक विकास की अपेक्षा उसकी उपलब्धि के साधन और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, स्वयं गाँव वालों द्वारा बनाई गई स्कूल की कच्ची इमारत, या स्थानीय सड़क, हर सम्बन्धित व्यक्ति को समुदाय के निर्माण में भाग लेने की एक नई प्रेरणाप्रद भावना प्रदान करती है। हमारे अपने ग्रामीण विकास की भी यही परम्परा है।

अत., बिना स्थानीय सहयोग के सरकार द्वारा बनाई गई सड़क या स्कूल में ज्यादा अच्छे होने पर भी, उनकी अपेक्षा गाँव के व्यवस्थित राजनीतिक विकास में ऐसी स्थानीय योजनाओं का योग कहीं अधिक होगा।

4. ग्रामीण सामुदायिक विकास में ब्याज की नीची दरों वाली ग्रामीण ऋण व्यवस्था एक और महत्त्वपूर्ण तत्व है। इसके फलस्वरूप किसान सूदखोर महाजनों से पीछा छुड़ा सकते हैं, और ऊर्वरक या खेती के मामूली औज़ार खरीदने के लिए उचित शर्तों पर धन प्राप्त कर सकते हैं।

5. लोकतान्त्रिक आधार पर क्रय-विक्रय सहकारिताओं का भी सगठन होना चाहिए। ऐसी सहकारिताएँ बिचवैयों के मुनाफों को कम करने में सहायक होंगी, और उपभोक्ता मूल्य का ज्यादा बड़ा हिस्सा किसान-उत्पादक को मिल सकेगा। जापान में ऐसी उन्नीस हज़ार सहकारी संस्थाएँ संगठित की गई हैं।

6. विकासशील देशों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे हमारे संयुक्तराज्य सेना इंजीनियर दल के नमूने पर इंजीनियरों के दस्ते संगठित करने में अपने सैन्य बजट का कुछ हिस्सा लगायें।

ये दस्ते पुलों, सड़कों, स्कूलों और अस्पतालों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण विकास कार्य कर सकते हैं, और साथ ही उन ग्रामीणों के साथ निकट सम्बन्ध भी स्थापित कर सकते हैं, जिनकी स्वाधीनता की वे रक्षा करना चाहते हैं।

7. स्वस्थ ग्राम समाजों का निर्माण करने में विकासशील राष्ट्रों की सहायता

करते हुए इन मशीनरियों को याद रखना चाहिए कि ऐसी मशीनरी हमारे सारे ही काम या प्रत्येक उत्पाद के लिए आवश्यक नहीं है।

उदाहरण के लिए, अधिकांश अमरीकी खेतों में लगी हुई कोयली और पेट्रोल मशीनों का उद्देश्य मनुष्य श्रम की लागत घटाना है, प्रति एकड़ उत्पादन को बढ़ाना नहीं।

अपेक्षाकृत कम आबादी वाले देशों में, जैसे दक्षिण अमरीका और अफ्रीका के कुछ नए राष्ट्र, खेती की मशीनों का योग महत्वपूर्ण होगा। लेकिन हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, श्री लंका, और अधिकांश अन्य विकासशील राष्ट्रों में, जहाँ ग्रामीण श्रम की मात्रा आवश्यकता से अधिक है, खेती का काम सादे औजारों से, और बैल या भैंसे की मदद से, ज्यादा कम खर्चे में किया जा सकता है।

गेहूँ, चावल, और सब्जियों का अधिकतम उत्पादन जापान और मिस्र के दो या चार एकड़ के खेतों में होता है, जहाँ हर पौधा वैसे ही उगाया जाता है जैसे किसी निजी बगीचे में।

× × ×

यद्यपि हमने कुछ सुधार सुझाये भी है, किन्तु और भी बहुत कुछ करना है। एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन की मांग आवश्यक है, और उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

यह स्थिति हर विचारशील अमरीकी के सामने एक निर्णायक प्रश्न रखती है—क्या हम अपने युग के अभूतपूर्व क्रान्तिकारी परिवर्तनों में रचनात्मक सहयोगी बन सकते हैं, ऐसे परिवर्तन जिनका अधिकांश विशेषाधिकार युक्त लोग भरसक विरोध करेंगे, लेकिन जो अधिकांश मनुष्य-जाति को कुछ अधिक भोजन, कुछ अधिक अवसर, बीमार बच्चे के लिए डाक्टर, और निजी प्रतिष्ठा की भावना की आशाएँ प्रदान करते हैं?

सारी दुनिया में जागते हुए किसानों की मनःस्थिति, बहुत पहले लिखी गई एडविन मार्कहैम की एक कविता में व्यक्त हुई है, जो उन्होंने मिलेट के प्रसिद्ध चित्र 'कुदाल लिए मनुष्य' को देखकर लिखी थी।

"सदियों के बोझ से दबा वह झुकता है
"अपने कुदाल पर और देखता है भूमि को,
"युगों का शून्य उसके चेहरे पर,
"और उसकी पीठ पर दुनिया का बोझ।
"किसने उसे आनन्द और निराशा के प्रति जड़ बनाया,
"जो शोक नही करता और कभी आशा नहीं···?
"ओ, सभी देशों के मालिको, स्वामियो और शासको,
"भविष्य इस व्यक्ति का सामना कैसे करेगा?
"उस घड़ी इसके निर्मम प्रश्न का उत्तर कैसे देगा
"जब विद्रोह की आँधियाँ सभी देशों को हिला देंगी?

"तब राज्यों और राजाओं का क्या होगा—
"उनका जिन्होंने उसे आज जैसा बनाया है—
"जब उसका मौन आतंक दुनिया का फैसला करने को उठेगा
"सदियों की खामोशी के बाद ?"

हम भर-पेट खाने वाले अमरीकियों को इस मनुष्य से क्या कहना है ? क्या हममे उसे समझने की, और उसकी चुनौती का प्रभावशाली उत्तर देने की क्षमता है ? हमारी शताब्दी के अगले दशक का रूप बहुत कुछ इन प्रश्नों को दिये गए हमारे उत्तरों से निर्मित हो सकता है ।

तीसरा भाग

विकासशील महाद्वीप

एशिया और अफ्रीका की भांति, लातिन अमरीका में असली चुनाव नागरिकता और दासता के बीच, आशा और निराशा के बीच, व्यवस्थित राजनीतिक विकास और रक्तमय उथल-पुथल के बीच है। इस चुनाव को समझने में, या नेतृत्व स्थापित करने की चेष्टा कर रहे सशक्त नए तत्वों का समर्थन करने में हमारी असफलता के परिणाम भयंकर होंगे।

22 नवम्बर, 1959

तेइस

एक साम्यवादी सह-यात्री को उत्तर

जुलाई, 1952 में हिन्दुस्तान के वामपक्षी साप्ताहिक 'ब्लिट्ज़' को दी गई एक अनोखी भेंट में राजदूत बौल्स ऐसे प्रश्नों के उत्तर देते हैं, जिनमें तात्कालिक अमरीका-विरोधी साम्यवादी दल-नीति, और अमरीकी 'हस्तक्षेप' के सम्बन्ध में एशिया की कुछ गंभीरतम आशंकाएँ परिलक्षित होती है।

ब्लिट्ज़ सवाददाता : भारत के लिए जो अमरीकी आर्थिक सहायता आपने आरम्भ कराई है, उसका उद्देश्य क्या है ? क्या यह परोपकार है, या कि इसका उद्देश्य अमरीकी विदेश-नीति के लक्ष्यों को आगे बढाना है ?

श्री बौल्स : आपके प्रश्न का उत्तर देने के पहले मैं एक बात कह दूँ : अगर हिन्दुस्तान का हर साम्यवादी कल अपनी सदस्यता छोड़ दे, तो भी हिन्दुस्तान की समस्याएँ बनी रहेंगी। साम्यवादियों ने इन समस्याओं को जन्म नहीं दिया, यद्यपि वे अब उनसे लाभ उठाने के लिए जो कुछ भी कर सकते है, कर रहे है।

यहाँ या अन्यत्र कही भी साम्यवाद का सवाल उठने के बहुत पहले से अमरीकी लोग चर्चों, धर्मादा संस्थाओं और अन्य निजी साधनो से हिन्दुस्तान को सहायता भेजते रहे हैं। अस्पतालों और स्कूलो का निर्माण करने के लिए, और हिन्दुस्तानी लोगों के लिए भोजन और दवाओं का मूल्य चुकाने के लिए, करोड़ों डालर यहाँ अमरीकियों द्वारा निजी तौर पर भेंट के रूप मे यहाँ भेजे गए है।

लगभग दस लाख डालर मूल्य का भोजन और दवाएँ इस वर्ष भेंट के रूप मे आई हैं। निजी साधनों से, हिन्दुस्तानी अस्पतालो के लिए भेंट के रूप मे सत्रह अस-ताली गाड़ियाँ भेजी गईं। इनके बारे में कोई दिखावा या प्रचार नही किया गया, और सहायता करने के अतिरिक्त इनके पीछे कोई मंशा नही रही।

जहाँ तक अमरीकी सरकार की सहायता का सम्बन्ध है, हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दुस्तान अगले कुछ वर्षो मे एक ऐसी बात प्रमाणित कर सकेगा जो अभी तक कभी भी साफ तौर पर प्रमाणित नहीं हुई—कि एक अल्पविकसित देश में लोकतांत्रिक शासन न केवल व्यक्तिगत स्वतत्रता, स्वतत्र वोट का अधिकार, बोली की स्वतन्त्रता और सभी लोगों के लिए धर्म की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकता है, वरन् जीवन-

स्तरों को, और खेती के उत्पादन को बढ़ा भी सकता है, और इस्पात, बिजली रसायन, और अन्य उद्योगों के विस्तार की नींव भी रख सकता है।

अगर एशिया में लोकतंत्र परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता, तो अन्ततः एशिया में लोकतंत्र असफल हो जाएगा। परीक्षण का मुख्य स्थान यहाँ हिन्दुस्तान में है। अतः अगर हिन्दुस्तानी लोगों के महान् प्रयत्नों की सफलता के लिए हम अमरीकी लोग कुछ कर सकते हैं, तो उसे अवश्य करेंगे यही हमारा उद्देश्य है

हिन्दू संवाददाता . क्या आप सचमुच विश्वास करते हैं कि प्राविधिक सहयोग प्रशासन और चतु:सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत जो अत्यल्प रकमें प्रदान की गई हैं, उनसे भारत ■ आर्थिक विकास को कोई सारभूत सहायता मिलेगी ? क्या यह कहना ग़लत होगा कि यह थोड़ी-सी आर्थिक सहायता अधिक से अधिक एक प्रचार खर्च है ?

श्री बोल्स इस पिछले वर्ष जनवरी से 30 जून तक के बीच में खर्च करने के लिए पिछली जनवरी में हमने जो रकम स्वीकार की थी, वह अत्यल्प नहीं है—यह रकम 5 करोड़ 40 लाख डालर है। इस धन से अब एक लाख टन उर्वरक की व्यवस्था हो रही है, इसकी सहायता से 2,000 नलकूप खोदे जा रहे हैं, जिनसे लगभग आठ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी, जो इतिहास में नलकूपों का सबसे बड़ा कार्यक्रम है, और इसके द्वारा हिन्दुस्तान में मलेरिया को खतम करने की ओर बड़ा कदम उठाने के लिए डी० डी० टी० की व्यवस्था हो रही है।

हमारा अमरीकी सहायता कार्यक्रम छोटे औज़ारों के विनिर्माण के लिए लगभग चालीस-पचास हज़ार टन इस्पात की भी व्यवस्था करेगा। यह हिन्दुस्तान में मछली पकड़ने के धन्धे का आधुनिकीकरण करने में सहायता के लिए काफ़ी बड़ी शुरूआत करेगा। यह आपको पहली बड़ी नदी घाटी विकास योजनाओं के लिए मिट्टी हटाने के औज़ार और बुलडोज़र प्रदान करेगा, और अन्य कई योजनाओं में सहायक होगा।

कुछ उर्वरक आ गया है, डी० डी० टी० आ गया है, भारतीय ग्राम कार्यकर्ताओं के लिए जीप गाड़ियाँ इस शरद में आने लगेंगी। इन सभी योजनाओं में, निस्सन्देह, हमारे धन के मुक़ाबले पर रुपयों में किया गया आपका अपना खर्च भी है। विदेश में खरीदी गई वस्तुओं की अदायगी हम डालरों में करते हैं। आप स्थानीय सामग्री, श्रम, आदि की व्यवस्था करते हैं।

नहीं, मैं इसे 'अत्यल्प' प्रयास नहीं कह सकता, और यह समाचार कि हिन्दुस्तान लोकतान्त्रिक पद्धति में, सतर्क और गतिशील रीति से अपनी जनता की समस्याएँ हल करने के लिए कदम उठा रहा है, प्रचार नहीं है। यह एक कठोर तथ्य है, जिसे साम्यवादी मिटा नहीं सकते।

हिन्दू संवाददाता : ऐसा क्यों है कि अमरीकी सहायता कार्यक्रम का सारा ज़ोर एक कृषि-प्रधान देश के रूप में हिन्दुस्तान के विकास पर है ? भारत के औद्योगिक [illegible] पर और क्यों नहीं दिया जा रहा ?

श्री वौल्स : यह एक उचित प्रश्न है। अमरीका में मेरे बहुतेरे मित्र भी यही सवाल उठाते हैं। स्थिति यह है।

1947 में विभाजन के फलस्वरूप, भोजन और कपास पैदा करने वाली कुछ सर्वोत्तम भूमि हिन्दुस्तान से छिन गई। फलस्वरूप, अब उसे लोगों को पर्याप्त भोजन देने के लिए प्रति वर्ष तीस से पचास लाख टन तक अनाज खरीदना पड़ता है, और अपनी कपड़ा मिलों की जरूरत पूरी करने के लिए प्रति वर्ष पन्द्रह लाख से अधिक कपास की गाँठें खरीदनी पड़ती हैं।

हिन्दुस्तान का योजना कमीशन, जिसने पंच वर्षीय योजना तैयार की है, अनुभव करता है कि गेहूँ, अन्य भोजन सामग्री, और कपास में आत्म निर्भर होना हिन्दुस्तान की पहली समस्या है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था के अन्य अध्येता भी इससे सहमत हैं।

पिछले वर्ष केवल अमरीका से ही तीस लाख टन अनाज आया था। इस अनाज का मूल्य चुकाने के लिए हिन्दुस्तान को 60 करोड़ डालर के बराबर विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी। इस बड़ी रक़म का लगभग एक तिहाई हिन्दुस्तान को अमरीका से कर्ज लेना पड़ा, जिसकी अदायगी 1957 से आरम्भ करके तीस वर्षों में करनी होगी।

इस प्रकार, रेलों, इस्पात के कारखानों, रसायन उद्योगों का निर्माण करने में खर्च होने के बजाए, भारत की विदेशी मुद्रा के बड़े भाग को भोजन का आयात करने के लिए खर्च करना पड़ता है, जो लोगों को जीवित रखने के लिए, और वह भी अपेक्षतया निम्न स्तरों पर जीवित रखने के लिए आवश्यक है। अगर हिन्दुस्तान अगले कुछ वर्षों में पर्याप्त भोजन और कपास पैदा कर सके, तो इस विदेशी मुद्रा का उपयोग इस्पात के कारखाने, छोटे विद्युत-यंत्रों के कारखाने, और नई परिवहन व्यवस्थाओं का निर्माण करने के लिए, और देश की अन्य मौलिक विकास आवश्यकताओं के लिए किया जा सकता है।

यही कारण है कि आपके भारतीय आर्थिक नियोजन करने वालों का विश्वास है कि खेती में सुधार पहला आवश्यक कदम है, और यह कि औद्योगिक विकास दूसरा क़दम होना चाहिए। और मैं समझता हूँ कि वे सही हैं।

ब्लिट्ज़ संवाददाता : क्या ऐसा हो सकता है कि हिन्दुस्तान की सहायता के लिए ज्यादा बड़ी रकमें स्वीकार हो सकें, इसके पहले अमरीकी कांग्रेस इस बात का अधिक स्पष्ट प्रमाण चाहती है कि जल्दी या देर से हिन्दुस्तान अमरीकी विदेश-नीति की आशाएँ पूरी करेगा ?

श्री वौल्स : अगर हम कोशिश करें, तो भी हिन्दुस्तान जैसे लोकतांत्रिक देश को खरीद नहीं सकते, और हमें इसकी कोशिश भी नहीं करनी। हम एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में हिन्दुस्तान की सहायता करना चाहते हैं। इसके बदले में हम हिन्दुस्तान से यह नहीं कहते हैं कि वह हमसे सहमत हो या हमारे साथ मतदान करे। कभी वह करेगा, कभी नहीं करेगा।

मतभेद होंगे, और इनमें से कुछ मतभेद हम दोनों के लिए अच्छे भी हो सकते

है। हमारी मुख्य रुचि इसमें है कि भारतीय लोग एक ऐसे समाज में विकास और समृद्धि प्राप्त करें, जिसमें व्यक्तिगत और मानवी स्वतन्त्रता पूरी तरह सुरक्षित रहे। हमारा विचार है कि हिन्दुस्तान इसमें सफल होगा।

निट्ज संवाददाता : आपने पिछले वर्षों में एशिया में अरबों डालर लगाए हैं। फिर भी, सारे एशिया में एक भी देश ऐसा नहीं है जिसमें अमरीका के प्रति कृतज्ञता की भावना हो। इस अन्तर्विरोध, या उलटे असर का क्या कारण है?

श्री बोल्स : मैं फिर कह दूँ कि हम हिन्दुस्तान में या अन्यत्र कहीं कृतज्ञता की अपेक्षा नहीं करते। किन्तु, अगर आपका मतलब यह है कि एशिया के लोग सामान्यतः अमरीका के प्रति मित्रता का भाव नहीं रखते, तो आपको अपनी सूचना का क्षेत्र अधिक व्यापक बनाना चाहिए। मैंने भारतीय लोगों को भावपूर्ण, मिलनसार और मित्रतापूर्ण पाया है। मैंने हर जगह इस मित्रता का अनुभव किया है, जिसमें वे तीस विश्वविद्यालय भी शामिल हैं, जहाँ मैं बोला हूँ।

मैं दूर-दूर के इलाकों में, ग्रामीणों के घरों में भी बातचीत करने और चाय पीने के लिए गया हूँ, जहाँ कम ही विदेशी जाते हैं। हर जगह लोगों ने मेरा अधिकतम भावपूर्ण और हार्दिक स्वागत किया। इनमें से कुछ लोग शिक्षित थे, लेकिन अधिकांश लोग नहीं, और वे हिन्दुस्तान के लिए, और अपने लिए ठीक वही कुछ चाहते हैं, जो अमरीका में हम लोग अपने लिए चाहते हैं—एक सर्व समर्थ, शान्तिपूर्ण विश्व, जिसमें लोग आत्म-सम्मानपूर्वक मिलकर काम करें।

हम इस बात को समझते हैं कि कितनी ही पीढ़ियों तक पश्चिम ने पुराने औपनिवेशिक एशिया के साथ उचित व्यवहार नहीं किया। अगर मैं एशियावासी होता तो जिस औपनिवेशिक शासन के अधीन अधिकांश एशियावासियों को रहना और काम करना पड़ा था, उस पर मुझे रोष होता। लेकिन यह दृष्टिकोण अब हमारे वर्तमान सम्बन्धों पर लागू नहीं होता। कभी मेरे साथ यात्रा कीजिए तो आप स्वयं ही देखलेंगे।

निट्ज संवाददाता : क्या आप बता सकते हैं कि अमरीका को निरपवाद बाओ दाइ जैसे सर्वथा अलोकप्रिय प्रतिक्रियावादियों में ही अपने मित्र क्यों मिलते हैं, जिनकी स्वयं अपने लोगों के बीच कोई जड़ें नहीं होतीं? क्या आप सहमत नहीं हैं, कि एशिया में अमरीकी अलोकप्रियता का यही मूल कारण रहा है?

श्री बोल्स : हम दूसरे देशों के नेताओं को नहीं चुनते। वे कई रीतियों से चुने जाते हैं, कुछ अच्छी, कुछ बुरी, कुछ लोकतान्त्रिक, और कुछ बिलकुल अलोकतान्त्रिक।

लेकिन मैं इतना और कह दूँ—मैं नहीं समझता कि जिस क्रान्तिकारी विश्व में हम रह रहे हैं, उसमें प्रतिक्रियावादी अपने को कायम रख सकते हैं, चाहे वे फासिस्ट दक्षिणपक्ष में हों, या साम्यवादी वामपक्ष में। दक्षिणपक्षी प्रतिक्रिया का विनाश निश्चित है, और यह उचित ही है। वामपक्ष की साम्यवादी प्रतिक्रिया या तो अपनी नीतियों को संशोधित करेगी, या वह भी स्वयं अपने बोझ से और अपने अन्तर्विरोधों के फलस्वरूप टूट जाएगी।

कभी-कभी शीत युद्ध के इस दुर्भाग्यपूर्ण संघर्ष के कारण हम अपने को कठिन स्थितियों में पाते हैं, जिनमें ऐसे समझौते की आवश्यकता पड़ती है, जो हमें पसन्द नहीं होते किन्तु दीर्घ कालीन दृष्टि से हम जिन बातों में विश्वास करते हैं उनका जीवित रहना एक गतिशील उदारवादी आन्दोलन मे ही संभव है, जो वाम और दक्षिण दोनो प्रकार के प्रतिक्रियावादियों को अस्वीकार करे, और जो भूमि सुधार, न्यूनतम वेतन, अधिक ऊँचे जीवन स्तर अधिक व्यापक सामाजिक सुरक्षा, और अधिक व्यापक सार्वजनिक स्वास्थ्य की व्यवस्था के प्रति, और बिना जाति, धर्म, वर्ण या रंग का भेदभाव किए, सभी लोगों को अधिक अवसर प्रदान करने के प्रति समर्पित हो।

यही उस प्रकार का राजनीतिक आन्दोलन है, जिसमें अधिकांश अमरीकी गभीरता से विश्वास करते हैं, और जिसका हम यहाँ हिन्दुस्तान मे, और सारे एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका में समर्थन करेंगे। और अन्ततः इसकी जीत होगी।

चौबीस

एशिया और अमरीकी सपना

हिन्दुस्तान में अमरीकी राजदूत के रूप में काम करने के बाद 1953 के आरम्भ में वापस लौटकर श्री बोल्स ने इकतालीस राज्यों में एक नई अमरीकी नीति के पक्ष में भाषण दिए, जो कि नए जागते हुए एशिया की नई आवश्यकताओं के अनुकूल हो। यहाँ न्यूयार्क के कम्युनिटी चर्च में मई, 1953 में दिये गए भाषण में वे एक अधिक रचनात्मक एशिया नीति के आठ मूल सूत्र प्रस्तुत करते हैं।

पिछले दशक में, हमने मेहनत के साथ यूरोप के लिए एक अमरीकी नीति निश्चित की है, एक तर्कसंगत, व्यावहारिक नीति जिसका आज हमारी विशाल बहुसंख्या समर्थन करती है। यह नीति उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र के राष्ट्रों के निकट सम्बन्ध को, और इस तथ्य को स्वीकार करती है, कि हम किसी बाहरी शक्ति को यूरोप पर अधिकार या नियन्त्रण नहीं करने दे सकते।

लेकिन हम इस कठोर तथ्य को स्वीकार करें कि युद्ध के आठ वर्ष बाद भी एशिया में अमरीका की कोई स्पष्ट नीति नहीं है। इस पर बहस करना व्यर्थ है कि इसमें दोष किसका है। ऐसा बहुतेरा दोष है जो दोनों राजनीतिक दलों पर व्यापक रूप में आरोपित किया जा सकता है। अब महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस सम्बन्ध में हम करने क्या जा रहे हैं।

मैं आठ मूल सूत्र निरूपित करना चाहूँगा, जिन पर मैं समझता हूँ अमरीका की एक रचनात्मक एशिया नीति आधारित होनी चाहिए।

प्रथम, हमें यह समझना होगा कि एक एशियाई दृष्टिकोण है।

मैंने इस दृष्टिकोण को लेबनान, श्रीलंका, भारत, ब्रह्मा, इण्डोनेशिया, वियतनाम, फिलीपीन, और जापान में, ऐसे व्यक्तियों को व्यक्त करते सुना, जो भिन्न भाषाएँ बोलते हैं और एक-दूसरे से हजारों मील दूर रहते हैं।

इसमें कोई 'अगम' बात नहीं है। एशिया के सन्दर्भ में यह एक सरल साफ और समझ में आने वाली बात है।

दूसरे, एशिया के भविष्य का निर्णय अन्ततः एशियावासियों द्वारा होगा।

हम विध्यात्मक तत्वों को प्रोत्साहित कर सकते हैं, और नकारात्मक तथा विध्वंसक तत्वों को निरुत्साहित कर सकते हैं, और यह महत्त्वपूर्ण है। लेकिन अच्छा या बुरा, एशिया के भविष्य का निर्णय वाशिंगटन में अमरीकियों द्वारा नहीं, वरन् तोकियों

की घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी करने में बहुत अधिक बार गलत न साबित हुआ हो। विनम्रता की भावना रखने वाला कोई व्यक्ति इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने का प्रयास नहीं करेगा कि आज से दस वर्ष बाद एशिया में या अन्यत्र कहीं क्या स्थिति होगी।

फिर भी, कुछ तथ्य अभी भी स्पष्ट हैं। उदाहरण के लिए, हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि सोवियत रूस के सामने जो अकेली सबसे बड़ी स्थिति आ सकती है, वह एक अधिक स्वतन्त्र चीन का विकास है। आज चीन सोवियत रूस के साथ अति निकट से बंधा हुआ प्रतीत होता है, लेकिन जो अमरीकी विदेश नीति यह मान लेती है कि ऐसे सम्बन्ध स्थायी हैं, वह लगभग निश्चय ही गलत साबित होगी।

सातवें, संयुक्त राष्ट्र संघ को सहमति और असहमति दोनों के मंच के रूप में कायम रखना चाहिए।

अतः हम उसे गोरे, पश्चिमी देशों का एक क्लब बना देने का लोभ का संवरण करें। जेफरसन की परम्परा में, हम संयुक्त राष्ट्र संघ के कक्षों को उपनिवेशवाद, आर्थिक शोषण, और जाति धर्म या रंग पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध स्पष्ट अमरीकी वक्तव्यों से गुंजाएँ।

आठवें, हम विदेशों में लोकतन्त्र को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा नहीं सकते, जब तक कि हम देश में अधिक पूर्ण रूप में उस पर अमल न करें।

इतिहास की इस निर्णायक घड़ी में अपनी सैन्य प्रतिरक्षा को कमजोर करना हमारे लिए बहुत बड़ी भूल होगी। दुर्बल अमरीका, अधिकतम प्रतिकूल स्थितियों में होने वाले तीसरे महायुद्ध को पूर्णतः निश्चित बना देगा।

लेकिन हमारे सामने केवल एक सैनिक खतरा ही नहीं है, वरन् निर्मम, साहसी और दृढ़ व्यक्तियों के हाथ में एक विस्फोटक, गतिशील विचार का भी खतरा है। ऐसे विचारों को बमों से नष्ट नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की बाँझ धारणाओं का मुकाबला, व्यक्तिगत अधिकारों, लोकतन्त्र, और व्यक्ति मनुष्य में गतिशील आस्था की विपरीत धारणा से करके उन पर विजय पानी होगी।

स्वतन्त्रता की घोषणा के एक सौ सतहत्तर वर्ष बाद भी, अमरीकी सपना दुनिया का सबसे सशक्त विचार है। केवल हम ही उस विचार को नष्ट कर सकते हैं, और केवल हम ही उसे क्रियान्वित कर सकते हैं।

पचीस

एशिया के लिए एक 'मार्शल योजना'

विदेशी सहायता देने के प्रभावकारी साधनों की खोज के फलस्वरूप, अक्टूबर, 1953 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट्स एण्ड साइन्सेज़ में एशिया के लिए एक 'मार्शल योजना' का यह विचारोत्तेजक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया।

ऐसा कहना बिल्कुल गलत और बहुत ही अपमानजनक है कि एशियावासी एक कटोरा चावल के लिए अपनी आत्मा बेच देंगे। औपनिवेशिक शासन से अपनी स्वतन्त्रता के लिए वे वीरतापूर्वक लड़े हैं, और अपनी सीमाओं के अन्दर साम्यवादी आक्रमणों के विरुद्ध उस स्वतन्त्रता की उन्होंने सफलतापूर्वक रक्षा की है।

अब वे रोटी और आज़ादी दोनों के ही लिए आग्रह कर रहे हैं। एशिया में लोकतन्त्र को प्रमाणित करना होगा कि वह दोनों प्रदान कर सकता है, अन्यथा एशिया में लोकतन्त्र समाप्त हो जायेगा।

मुख्यतः इस निर्णायक प्रयत्न के लिए नेतृत्व और साधन एशियावासियों को ही प्रदान करने होंगे, एशिया की स्वतन्त्र सरकारों को भूमि सुधार करने होंगे, कराधान की उचित व्यवस्थाएँ करनी होंगी, और सभी उपलब्ध साधनों के उपयोग के लिए राष्ट्रीय योजनाएँ बनानी होंगी। इस समय जहाँ भी वे ऐसा कर रही हैं, लोग उत्साहपूर्वक एकजुट हो रहे हैं।

लोकतान्त्रिक एशिया तानाशाही निर्ममता के साथ अपने लोगों को दबा नहीं सकता। अतः उसे सहायता के लिए पश्चिम की ओर देखना पड़ेगा। चतुः सूत्री कार्यक्रम सही दिशा में एक बड़ा कदम है। लेकिन हमारी सहायता में प्राविधिक सहायता के साथ-साथ पूँजी भी शामिल होनी चाहिए, और समस्या का सामना टुकड़ों में करने के बजाए, यूरोप की भाँति क्षेत्रीय आधार पर करना चाहिए। इसका सर्वोत्तम तरीका यही होगा कि एक संयुक्त योजना के द्वारा सारे स्वतन्त्र एशियाई क्षेत्र के साधन इसमें लगाये जाएँ।

एशिया के स्वतन्त्र देश कई तरीकों से एक-दूसरे की सहायता कर सकते हैं। जापान, जहाँ चावल का प्रति एकड़ उत्पादन अमरीका से काफी अधिक है, और भारत का चार गुना है, सघन खेती के लिए प्राविधिक सहायता प्रदान कर सकता है।

इण्डोनीशिया भी, जिसने धान की सिंचाई के पानी में बड़ी मात्रा में मछलियाँ

पैदा करने की पद्धति का सफल प्रयोग किया है, एशिया के धान उगाने वाले राष्ट्रों को कुछ दे सकता है। हिन्दुस्तान को मलेरिया नियंत्रण का अनुभव है, और वह इण्डोनेशिया जैसे मलेरिया ग्रस्त देशों को कार्यकर्ताओं के दल भेज सकता है। ग्राम विकास और कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण में भी, हिन्दुस्तान अपने बहुल और सफल अनुभव से बहुत कुछ दे सकता है।

इसी प्रकार, एशिया के राष्ट्रों में पारस्परिक व्यापार उन सभी की अर्थ-व्यवस्थाओं को बल दे सकता है। दक्षिण एशिया जापान के लिए एक बड़ा बाजार, और कुछ ऐसे कच्चे माल का स्रोत बन सकता है, जो पहले कभी जापान को चीन से प्राप्त होता था। जापान के छोटे उद्योग दक्षिण एशिया में विकेन्द्रित उद्योग के लिए नमूने का काम दे सकते हैं।

एक समेकित क्षेत्रीय कार्यक्रम के माध्यम से चलाए जाने पर, हमारे अपने सहायता कार्यक्रम अधिक प्रभावकारी होंगे। इस समय अमरीकी शासन का चतु सूत्री कार्यक्रम है, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की कोलम्बो योजना है, संयुक्त राष्ट्रों का प्राविधिक सहायता कार्यक्रम के अलावा विश्व स्वास्थ्य संगठन, भोजन तथा खेती संगठन, और बाल-निधि जैसी आधा दर्जन अन्य संयुक्त राष्ट्र एजेन्सियों के काम है; नार्वे, स्विट्जरलैंड और स्वीडेन की, तथा निजी संस्थाओं और धार्मिक समूहों की सहायता योजनाएँ है। इन सभी के द्वारा महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान काम हो रहा है। लेकिन उनमें समन्वय अधिक होने से सभी को लाभ होगा।

शायद एशिया और सुदूर पूर्व के लिए संयुक्त राष्ट्रों का आर्थिक कमीशन ऐसे क्षेत्रीय प्रयास के लिए नाभि-केन्द्र का काम कर सकता है। अगर कोई व्यावहारिक, व्यापक योजना विकसित हो, तो उसे अपना विश्वास और समर्थन देने के लिए हमको तैयार रहना चाहिए।

क्या अब समय नहीं है कि अमरीका स्वतन्त्र एशियाई राष्ट्रों को ऐसी पहल करने के लिए निमंत्रित करे, जैसे विदेश सचिव मार्शल ने 1947 में यूरोपीय लोगों को प्रोत्साहित किया था। शेष एशिया को साम्यवादी चीन के रास्ते पर जाने से रोकने में सहायक होने का यह भी एक मार्ग है।

अगर हम समय रहते कल्पनापूर्ण रीति से पर्याप्त कार्यवाही नहीं करते, तो सारे दक्षिण एशिया में हमारी असफलता के सम्मुख चीन में हमारी असफलता गौण हो जायेगी। च्यागकाई-शेक के चीन को हमने जितनी सहायता दी थी, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया और ब्रह्मा को मिलाकर, जिनकी आबादी मनुष्य जाति की लगभग एक चौथाई है, अब तक हमने उसकी आधी से भी कम सहायता दी है। इन देशों को सब मिलाकर हमने जितनी सहायता दी है, उससे अधिक सहायता हमने अकेले यूनान को दी थी।

सदियों से पश्चिमी जगत एशिया से लाभ उठाता रहा है। अपने एशियाई और

अफ्रीकी उपनिवेशों से यूरोपीय राष्ट्रों ने वह धन प्राप्त किया, जिसने पश्चिमी औद्योगीकरण को आसान बनाया।

अपने खुले सीमान्त के फलस्वरूप, अमरीका एशियाई उपनिवेशों पर निर्भर नहीं रहा, लेकिन पहले महायुद्ध के पूर्व हमें काफी बड़ी मात्रा में अंग्रेजी पूंजी की आवश्यकता पड़ती थी—जो आंशिक रूप में एशिया और अफ्रीका में लगी औपनिवेशिक पूंजी से अर्जित की गई थी।

वस्तुतः, येल विश्वविद्यालय को, जिसका मैं स्नातक हूँ, पहला बड़ा दान ब्रिटिश भारत में मद्रास प्रान्त के अंग्रेज गवर्नर एलिहू येल ने कपड़ों से लदे हुए पाँच जहाजों के रूप में दिया था। इन शानदार वस्त्रों को बनाने में जो शक्तिहीन भारतीय स्त्री-पुरुष लगाये गए थे, उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी करने में समृद्ध अमरीकी परिवारों के पुत्रों की सहायता करने के लिए स्वेच्छा से अपना वक्त और अपनी मेहनत लगाई होगी, इसमें मुझे सन्देह है।

इतिहास का यह कैसा आश्चर्यजनक और शानदार मोड़ होगा, अगर पश्चिम ने एशिया से जो धन प्राप्त किया है, उसका कुछ हिस्सा अब वह ब्याज सहित वापस करे, ताकि एशिया का विकास कुछ अधिक आसान हो सके, और एशिया की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो सके। हम अमरीकियों से अब इतिहास की माँग है कि हम एक नए प्रकार की दुनिया में कल्पना और संवेदनशीलता के साथ काम करें।

छब्बीस

ब्रह्मा और वियतनाम : अन्तर और नतीजे

दक्षिण-पूर्वी एशिया सम्बन्धी इस लेख में, जिसकी भविष्यवाणियाँ सच निकली हैं, श्री बौल्स का कथन है कि पूर्णतः स्वतंत्र राष्ट्रों से ही यह आशा की जा सकती है कि वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा सफलतापूर्वक कर सकेंगे। यह लेख 13 जून, 1954 को न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन में प्रकाशित हुआ था।

1946 के दिसम्बर मास के आरम्भ में, एशिया में औपनिवेशिक नीति के सम्बन्ध में मेरे एक प्रश्न के उत्तर में, ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के एक सदस्य ने भविष्यवाणी की थी : "आप अमरीकियों ने फिलीपीन को पहले ही स्वतन्त्र कर दिया है। एक वर्ष के अन्दर हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, श्रीलंका, ब्रह्मा, हिन्द चीन, मलय, और इंडोनेशिया भी स्वतन्त्र हो जाएंगे।

'लेकिन यह नई स्वतन्त्रता ज्यादा दिन नहीं चल सकती। नई सरकारें कमजोर और अकुशल होंगी। उनकी सैन्य शक्ति लगभग शून्य होगी। बिना पश्चिमी निर्देशन के, उनकी शासकीय सेवाएँ शीघ्र ही बिखर जाएंगी। अत, और दो या तीन वर्ष के अन्दर, साम्यवादी चीन पर अधिकार कर लेंगे, और यह एशिया में स्वतन्त्रता का अन्त और पश्चिम के सन्ताप की शुरुआत होगी।"

इस गम्भीर भविष्यवाणी का पहला हिस्सा सच निकला है। 1949 में साम्यवादियों ने सारे चीन में अपनी सत्ता स्थापित कर ली। लेकिन एक अन्य महत्त्वपूर्ण मामले में अंग्रेज़ी पार्लियामेण्ट का यह सदस्य गलती पर था। 1947 और 1948 में अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, और श्रीलंका को छोड़ दिया था, और हालैण्ड वाले इण्डोनेशिया को छोड़ने लगे थे।

नज़र डालें, तो मैं समझता हूँ कि हम देख लेंगे कि यह मात्र संयोग क्यों नहीं है। पिछले दिनों ब्रह्मा और विएतनाम के इतिहास से कुछ विशेषत. प्रासंगिक नतीजे निकलते हैं।

ऊपरी दृष्टि से, दक्षिण-पूर्व एशिया के इन दो देशों में बड़ी समानता है। दोनों ही प्राकृतिक साधनों में समृद्ध हैं, खूब वर्षा होती है, जमीन अच्छी है, और निर्यात के लिए चावल खूब होता है। दोनों ही देशों में आबादी बहुत ज्यादा नहीं है। ब्रह्मा का क्षेत्र फ्रांस, बेल्जियम, और हालैण्ड के मिले-जुले क्षेत्र से अधिक है, और उसकी आबादी एक करोड़ नब्बे लाख है। विएतनाम का क्षेत्र लगभग इटली के बराबर है, और आबादी दो करोड़ चालीस लाख।

लेकिन समानताएँ केवल भौतिक ही नहीं हैं। दोनों देशों का औपनिवेशिक शासन का लम्बा इतिहास है। मध्य उन्नीसवीं सदी में विएतनाम में फ्रांस की सत्ता पूरी तरह स्थापित हो गई थी। ब्रह्मा में स्वतन्त्रता के अन्तिम अवशेष अंग्रेजों ने 1886 में समाप्त कर दिए। दूसरे महायुद्ध के समय, दोनों देशों पर जापानियों का अधिकार रहा।

युद्ध-काल में, दोनों ही देशों में अंग्रेज और अमरीकी समर्थन से छापामार आन्दोलन विकसित हुए। छापामारों में साम्यवादी नेता प्रमुख थे। जब जापानियों को अन्तत हटा दिया गया, तो दोनों ही देशों में पूर्ण स्वतन्त्रता की एक जैसी और व्यापक माँग उठी। 1946 में, जब अंग्रेज वाइसराय लार्ड लुई माउण्टबैटेन हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के बारे में गांधी और नेहरू से वार्ता कर रहे थे, उसी समय ब्रह्मा के वर्तमान प्रधान मंत्री ऊ नू भी अंग्रेजों के साथ वैसी ही वार्ता चला रहे थे, और विएतनामी नेता फ्रांसीसियों से बातचीत कर रहे थे।

लेकिन यहाँ दोनों देशों के बीच समानताएँ अचानक समाप्त हो जाती हैं। भारत, पाकिस्तान, और श्रीलंका की भाँति ब्रह्मा में भी अंग्रेजों ने पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग स्वीकार कर ली। विएतनाम, और कम्बोडिया तथा लाओस के दो सम्बद्ध राज्यों में, फ्रांसीसी हिचकते और टालमटोल करते रहे। फल हुआ है एक शक्तिनाशक आठ वर्षीय गृह युद्ध।

आज फ्रांस की एक लाख चालीस हजार सेना बुरी तरह फँसी हुई है, और उसके साथ फ्रांस द्वारा प्रशिक्षित और सज्जित, और फ्रांसीसी अफसरों के नीचे लड़ने वाले डेढ़ लाख विएतनामी सैनिक हैं। फ्रांसीसी सेना के 38,000 व्यक्ति मारे गए हैं, जिनमें 11,000 फ्रांसीसी सैनिक भी थे, जिनमें अनुभवी युवा अफसरों की संख्या काफी बड़ी थी।

इस फ्रांसीसी प्रयास के समर्थन में अमरीकी सैन्य सहायता अब दो अरब डालर के निकट पहुँच गई है—पिछले पाँच वर्षों में सारी दुनिया में चतुसूत्री विकास कार्यक्रम के कुल खर्च का दो या तीन गुना। स्वयं फ्रांस को पूरी मार्शल योजना में अमरीका से जितना धन मिला था, उससे अधिक वह हिन्द चीन के युद्ध पर खर्च

चुका है। फिर भी, इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय, इसमें गंभीर सन्देह है कि उत्तरी वियतनाम में लाल नदी के मुहाने के समृद्ध इलाके में फ्रांसीसी सेनाएँ अपने पाँव टिकाए भी रख सकती हैं या नहीं।

यह सैनिक पराजय इस कारण हुई है कि फ्रांस और अमरीका दोनों ने ही उपनिवेशवाद के विरुद्ध एशिया की क्रांति की वास्तविकता को समझने से लगातार इन्कार किया है। दूसरे महायुद्ध में पराजित, और अपने भविष्य के बारे में शकालु फ्रांस को भय रहा है कि एशिया में औपनिवेशिक वापसी से मोरक्को, ट्यूनिसिया और अफ्रीका के अन्य फ्रांसीसी क्षेत्रों में उसकी स्थिति कमजोर हो जाएगी। अमरीकी लोग यूरोप में फ्रांस के सैन्य समर्थन की आवश्यकता को जानते हैं, और इस कारण वियतनाम, कम्बोडिया और लाओस को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए दबाव डालने से हिचकते रहे हैं, जो साम्यवाद-विरोधी कार्यवाही के लिए प्रभावकारी आधार निर्मित करने का एकमात्र ढंग था।

फलस्वरूप, एक घोषित साम्यवादी, हो-ची-मिन वियतनामी राष्ट्रवाद के देशभक्त नेता होने का दम भर सके हैं, जबकि वियतनाम के साम्यवाद-विरोधी नेता, जिनमें कई योग्य और निष्ठावान व्यक्ति हैं, अपने देशवासियों को फ्रांस के एजेण्ट प्रतीत होते रहे हैं।

यद्यपि फ्रांस ने वियतनाम को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करने की दिशा में, विशेषतः पिछले कुछ महीनों में, काफी बड़ी रियायतें दी है, लेकिन ये रियायतें निरपवाद ही फ्रांसीसी सेनाओं पर साम्यवादियों की विजयों के बाद दी गई हैं, और इस कारण नया समर्थन प्राप्त करने के अपने लक्ष्य में असफल रही हैं।

जन-समर्थन प्राप्त करने में फ्रांसीसियों की असफलता का एक और कारण यह है कि वे गाँवों में मामूली से मामूली सुधारों का भी समर्थन करने से हिचकते रहे हैं। 1952 में वियतनाम के साम्यवाद-विरोधी प्रधान मंत्री वान ताम ने मुझसे बताया कि जब साम्यवादी किसी गाँव पर अधिकार करते हैं तो वे घोषणा करते हैं कि सारे कर्ज़ रद्द कर दिये गए, और अब सारी जमीन जोतने वालों की होगी।

जब फ्रांसीसी सेनाएँ उस क्षेत्र पर फिर से अधिकार करतीं, तो जमींदारों और महाजनों की पुरानी शक्ति को तत्काल पुनः प्रतिष्ठित कर देतीं। 'ऐसी लड़ाई में हम साम्यवादियों को कैसे हरा सकते हैं?" उन्होंने थके हुए स्वर में पूछा।

सात महीने बाद सायगोन में अपने दफ्तर में वान ताम ने मुझे बताया कि इस बीच 'बड़ी प्रगति' हुई है। उन्होंने व्यंग्य भरे स्वर में कहा, "अब फ्रांसीसी जब किसी गाँव पर फिर से अधिकार करते हैं, तो जमीन किसानों के पास ही रहने देते हैं। इसलिए अब किसान आशा करता है कि साम्यवादी उसके यहाँ अधिकार करेंगे और उसे जमीन देंगे, और तब वह प्रार्थना करता है कि फ्रांसीसी आकर उसे मुक्त करेंगे, ताकि जमीन उसके पास बनी रहे।"

नासमझी और ग़लतफ़हमी की, और स्वतन्त्र होने की एशियावासियों में बढ़ती

हुई दृढ़ आकांक्षा की, हठपूर्ण उपेक्षा की, यह दुखद विएतनामी कहानी, ब्रह्मा के युद्धोत्तर कालीन इतिहास के बिलकुल विपरीत है।

जब 1946 में हिन्दी चीन मे फ्रांसीसियो का सशस्त्र विरोध आरम्भ हो रहा था, उस समय ब्रह्मा भी गृह-युद्ध के निकट था, और अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाहियाँ तेजी से बढ़ रही थी। लेकिन हिन्दचीन के विपरीत, 1947 में ब्रह्मा स्वतन्त्र हो गया।

साम्यवादियों को निराशा हुई कि अंग्रेजों के चले जाने से वे 'उपनिवेशवाद का नाश हो' के नारे से वंचित हो गए, जो फ्रांसीसियो ने विएतनाम में उन्हें प्रदान किया था, और 1948 मे उन्होंने नई सरकार के विरुद्ध सुना, सशस्त्र विद्रोह कर दिया। 1949 मे पूर्वी ब्रह्मा के कठोर, युद्ध-प्रिय कॅरेन लोगों ने भी, जो एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहते थे, ऐसा ही किया। 1951 तक लड़ाई सारे ब्रह्मा में फैल गई, और इस गणतन्त्र का भविष्य निश्चय ही अंधकारमय प्रतीत होता था।

1951 का वर्ष समाप्त होते-होते, अमरीकी सरकार ने लगभग तय कर लिया था कि ब्रह्मा की नई सरकार का विनाश निश्चित था। इसी समय, चीन की साम्यवादी सरकार ने, एशिया मे शक्ति के वास्तविक स्रोतों को ज्यादा अच्छी तरह समझते हुए, ब्रह्मा के साम्यवादियों से आशा छोड़ दी थी।

इस समय विएतनाम मे साम्यवादी सेनाओं को चीनी सहायता तेजी से बढ़ाई जा रही थी। लेकिन ब्रह्मा के नए गणराज्य की दुर्बल स्थिति के बावजूद, जहाँ तक ज्ञात है, ब्रह्मा के साम्यवादियों की सहायता के लिए कोई चीनी हथियार या लड़ाई का सामान नही भेजा गया। पीकिंग की सरकार जानती थी कि ऐसा हस्तक्षेप होने पर स्वतन्त्र ब्रह्मा यह दावा कर सकेगा कि साम्यवादी विद्रोहियों को चीन से धन मिल रहा था, और इस प्रकार विदेशी प्रभुत्व की पुरानी आशंकाओं को उनके विरुद्ध जगा सकेगा।

धीरे-धीरे प्रधान मन्त्री ऊ नू और उनके सहयोगियों को सारे ब्रह्मा में अपेक्षतया ठोस आधार पर शासन स्थापित करने मे सफलता मिली। सामयिक और सच्चे आर्थिक और राजनीतिक सुधारों का समर्थन करके उन्होंने साम्यवादियों के समर्थन का आधार ही खतम कर दिया। इस वर्ष अप्रैल के आरम्भ मे आत्म-समर्पण करने वाले अंतिम साम्यवादी नेता ने शिकायत भरे स्वर में कहा . "लोगों से हम साम्यवादी जिसका वादा करते रहे थे, उस गाँव-कार्यक्रम को ऊ नू ने *कार्यान्वित कर दिया, और* हमारे पास लोगों का समर्थन प्राप्त करने का कोई तरीका नही रहा।"

यद्यपि उसकी निष्ठा स्पष्टतः लोकतांत्रिक सिद्धान्तो मे है, किन्तु हिन्दुस्तान की भाँति ब्रह्मा ने भी दुनिया के मामलों मे दृढ़तापूर्वक 'तटस्थता' की नीति अपनाई है। जनवरी, 1950 मे, साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान करने वाला पहला असाम्यवादी राष्ट्र ब्रह्मा था। 1953 मे, जब शासन को यह विश्वास हो गया कि उत्तर ब्रह्मा में चीनी राष्ट्रवादी सेनाओ को फ़ारमोसा ने अमरीका की जानकारी और सहमति से हथियार और सामान पहुँचाया है, तो उसने शिष्टता से किन्तु कुछ दृढ़ता के साथ, यह

अभी भी बन्दूकों और बमों से या संयुक्त राष्ट्र संघ के मतदानों से भी कहीं अधिक उलझी हुई है। फ्रांसीसियों ने कठिन मार्ग से हिन्दचीन में यह सबक सीखा है, रूस ने पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड और बाल्कन प्रदेश में, और चीनियों ने कोरिया में।

निश्चय ही शक्ति के कई पैमाने होते हैं। लेकिन लोग, और उन्हें प्रभावित करने वाले विचार ही आखिरी पैमाना होते हैं।

सत्ताइस

'भूरे व्यक्ति के भार' का विश्लेषण

नए स्वतंत्र राष्ट्रों, और पश्चिम के बीच पारस्परिक सद्भावना की आवश्यकता का निर्णायक महत्त्व होने पर, श्री बोल्स ने एशिया और अफ्रीका के लोगों से आग्रह किया कि वे पश्चिम-विरोधी पूर्वाग्रह और पूर्वमान्यताओं के सम्बन्ध में अपना दिमाग साफ करें। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन 5 सितम्बर, 1954।

'गोरे व्यक्ति का भार' सम्बन्धी पुरानी धारणा का खण्डन केवल एशियावासी बल्कि प्रतिभावान विचारशील पश्चिमी लोग भी समझते हैं। लेकिन जब पश्चिम बड़ी देर से सहयोग के एक नए आधार की तलाश में निकला है तो उसके सामने एक और बाधा आ रही है—एक एशियाई मन स्थिति जिसे 'भूरे व्यक्ति का भार' कहा जा सकता है।

एशिया के नए राष्ट्रों की उपलब्धियों के प्रति मेरे मन में प्रशंसा का गंभीर भाव है। एशिया के प्रति परम्परागत पश्चिमी दृष्टिकोण से मेरी असहमति सुविदित है। किन्तु जो एशियावासी हर समय पश्चिम की आलोचना करते रहते हैं उनसे मैं कहना चाहूँगा कि उनकी अपनी स्थिति भी सर्वथा दोषरहित नहीं है। शायद एशिया की दुर्बलताओं पर मित्रतापूर्ण दृष्टि डालने से हमें उचित परिप्रेक्ष्य की प्राप्ति में कुछ सहायता मिले, जिसकी बड़ी आवश्यकता है।

हम सर्वाधिक मूल प्रश्न, उपनिवेशवाद, से प्रारम्भ करें। पिछले दिनों पश्चिमी उपनिवेशवाद का जो कटु अनुभव एशिया को हुआ है, उसके फलस्वरूप एशिया में एशियावासियों का साम्राज्यवाद बहुधा विस्मृत हो जाता है जिसका आधुनिक उदाहरण हमें 1931 और 1945 के बीच किये गए जापानी आक्रमणों में मिलता है।

स्वयं अपने इतिहास का सावधानी से पुनरावलोकन करने पर वस्तुनिष्ठ एशियावासियों को और भी प्रमाण मिलेंगे कि उपनिवेशवाद केवल एक पश्चिमी रोग नहीं है, वरन किसी भी गतिशील समाज के विकास में एक सम्भव स्थिति है, चाहे उसका शिकार होने वालों के लिए यह स्थिति कितनी भी दुखद क्यों न हो।

उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान को केवल अपनी प्राचीनता पर गर्व है, बल्कि वह दक्षिण एशिया में अपने प्राचीन उपनिवेशों पर भी खुल कर गर्व करता है। अशोक के काल से लेकर पश्चिमी खोजियों के पूर्वी समुद्रों में आने तक, हिन्दुस्तान संस्कृति,

व्यापार और विजय अभियानों का प्रसारण केन्द्र था।

नई दिल्ली के पब्लिक स्कूलों में मेरे बच्चों ने इतिहास की जो पुस्तक पढ़ी उसका एक अध्याय था 'महत्तर भारत'। उसके नक्शों में श्री लंका, ब्रह्मा, मलय, जावा सुमात्रा, बोर्नियो, बाली और कम्बोडिया के हिन्दू उपनिवेश दिखाये गए थे। लेखकों का कथन है कि "इस उपनिवेशीकरण का उद्देश्य शोषण करना, या केवल फैलते हुए व्यापार के लिए बाजार प्राप्त करना ही नहीं था।"

इसके विपरीत, हिन्दुस्तान के स्कूली बच्चों को सिखाया जाता है कि हिन्दू उपनिवेशवादी अधिक पिछड़े हुए इलाकों में सभ्यता की ज्योति को, और उससे उत्पन्न होने वाले लाभों को, ले गए। यह सब सच हो सकता है, लेकिन यूरोपीय उपनिवेशवाद के पुराने समर्थक रुडयार्ड किपलिंग क्या इससे ज्यादा अच्छे ढंग से अपनी बात कह सकते थे?

अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में नेहरू ने भारत की इस ऐतिहासिक भूमिका को स्पष्टतः उपनिवेशवाद के यथार्थवादी सन्दर्भ में रखा है। वे लिखते हैं कि श्री लंका, दक्षिण ब्रह्मा, और इण्डोनेशिया के कुछ हिस्सों को दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य ने जीत कर अपने में मिला लिया था। वे कहते हैं कि उस समय भी, टीन की खानें मलय में प्राप्त होने वाला सबसे बड़ा लाभ थी।

आज भी पड़ोस की राजधानियों में, विशेषतः नेपाल और श्रीलंका में, नए भारतीय 'साम्राज्यवाद' का भय है। हिन्दुस्तानियों को ये भय उतने ही निराधार प्रतीत होते हैं, जितने अमरीका के पड़ोसियों के सम्बन्ध में उसकी महत्वाकांक्षाओं के आरोप हमें निराधार प्रतीत होते हैं। लेकिन ये आरोप बहुधा लगाए जाते हैं, और बहुत-से लोग उन पर विश्वास करते हैं, इस तथ्य से संकेत मिलता है कि हिन्दुस्तान की शक्ति और प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ, वह अधिकाधिक सन्देह और आलोचना का लक्ष्य भी बनेगा।

नेपाल के साथ, जो उसकी उत्तरी सीमा पर पाँच सौ मील तक फैला है, भारतीय सम्बन्धों के उतार-चढ़ाव, अपने कुछ मित्रों और सहयोगियों के साथ अमरीका के अनुभव में बहुत कुछ मिलते हैं।

जब 1951 में लाल चीन तिब्बत में सड़कें बनाने लगा, तो हिन्दुस्तान ने चिन्तित होकर अपनी उत्तरी सीमाओं को देखा। 1952 में नेपाली सेना का पुनः संगठन और आधुनिकीकरण आरम्भ करने के लिए एक भारतीय सैन्य दल नेपाल की राजधानी काठमाण्डू को भेजा गया। नेपाल-तिब्बत सीमा के साथ हिमालय के दर्रों में गश्त करने के लिए नेपाली गुरखा दस्तों के साथ-साथ भारतीय सेना की टुकड़ियाँ भी लगाई गई।

शीघ्र बाद ही नेपाल सरकार को आर्थिक विकास के लिए एक काफी बड़ा कर्ज दिया गया। फिर आर्थिक और राजनीतिक सुधारों के एक सिलसिले की सिफ़ारिश की गई, और उसके साथ ही, नेपाल की कर व्यवस्था को आधुनिक बनाने, सड़क-

काश्मीर की तात्कालिक, साहसपूर्ण, सैन्यरक्षा से गांधी के लाखों हिंसा से घृणा करने वाले समर्थकों को प्रसन्नता हुई थी, और महात्मा गांधी ने स्वयं भी उदास होकर उसके लिए सशर्त अनुमति प्रदान कर दी थी।

अत. बुद्ध, अशोक और गांधी की मिसालों के बाद भी, हिंसा और युद्ध के मार्ग का परित्याग करने की असमर्थता में एशिया बहुत कुछ बाकी दुनिया जैसा ही है। जब पाकिस्तान अपने सीमा-रक्षकों की संख्या बढ़ाता है, तो हिन्दुस्तान को बदले में अपनी सीमा-रक्षा मजबूत करने के अलावा और कोई उपाय नहीं सूझता। हिन्दुस्तान के कार्य की ऐसी ही प्रतिक्रिया पाकिस्तान पर होती है। भय से उत्पन्न भय के फलस्वरूप चलने वाली शस्त्रीकरण की होड़, किसी भी समय केवल पश्चिम की ही विशेषता नहीं रही।

भौतिक प्रगति के लिए विकासशील नए एशिया की स्पष्ट भूख भी हर जगह दिखाई देती है। साम्यवादी चीन में मानवी ऊर्जा के विशाल भंडारों को हिंसा, बल, और क्रूरता भरे उपायों से सगठित किया जा रहा है। लोकतांत्रिक भारत के नेता, जिन्होंने अहिंसक उपायों से अपने 36 करोड़ लोगों के लिए स्वतंत्रता प्राप्त की, अपनी शक्तियों को एक पंचवर्षीय विकास योजना में लगा रहे हैं, जिसका उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि बिना तानाशाही के गरीबी को मिटाया जा सकता है।

अच्छा हो या बुरा, और अपनी अध्यात्मिक परम्पराओं के बावजूद, एशिया के लोग आज जल्दी में हैं। पश्चिमी विधियों के अध्यात्मिक परित्याग से कहीं अधिक यह जल्दी भौतिक विकास के लिए है। जो अब लोगों और उनकी संसदों की सामान्य रुचि का विषय बन गया प्रतीत होता है।

एक अन्य प्रश्न जो पश्चिम के बहुतेरे लोगों को सचमुच परेशान करता है, उस दोहरी नीति से उत्पन्न होता है, जो स्वतंत्र एशिया के प्रवक्ता बहुधा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के सम्बन्ध में अपनाते प्रतीत होते हैं। आरम्भ से ही, एशिया के महान् धार्मिक नेताओं ने बहुत ध्यान देकर यह सिखाया है कि अधिकतम प्रशंसनीय लक्ष्यों के लिए भी बुरे साधनों का प्रयोग उचित नहीं है। गांधी की शिक्षा का यही मर्म है।

किन्तु स्वतंत्र एशिया के नेता बहुधा बुरे साधनों की निन्दा करने में चुनाव करते प्रतीत होते हैं। पश्चिम को उसकी हर गलती के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए, वे बहुधा साम्यवादी देशों में खुलेआम बेईमानी और क्रूरता के प्रति उदासीन प्रतीत होते रहे हैं।

एशियावासियों को पश्चिमी लोगों से यह कहने का अधिकार है, कि वे अपने पुराने अहंकार को छोड़ें, दूसरों के विचारों का आदर करें, और राजनीतिक शर्तों के बिना ही सहायता प्रदान करें। एशियावासियों को पश्चिम से यह माँग करने का भी अधिकार है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में वह नैतिक व्यवहार का अधिक ऊँचा स्तर अपनाए, समझौता-वार्ताओं में अधिक लचीलापन दिखाए, बमों और बल पर कम जोर दे, और उन राजनीतिक व आर्थिक शक्तियों को अधिक गंभीरता से समझे,

जो इतिहास की दिशा निर्धारित कर रही है।

लेकिन अमरीकियों और अन्य पश्चिमी लोगों को भी एशिया के अ-साम्यवादियों से यह आशा करने का उतना ही अधिकार है कि वे हमारी कठिनाइयों को कुछ ज्यादा अच्छी तरह समझें, इस बात को समझें कि शांति एक दुस्तर सम्बन्ध है, और जब तक साम्यवादी लोग विश्व प्रभुत्व के अपने बहुधा घोषित लक्ष्य का परित्याग नहीं करते, तब तक शांति स्थापित नहीं हो सकती।

'गोरे व्यक्ति के भार' के नाम में, सारे पाखंड के बावजूद, बहुतेरे पश्चिमी लोगों ने न्यूनाधिक सफलता के साथ अपनी सभ्यता के सर्वोत्तम अंश को एशिया तक पहुँचाने की चेष्टा की थी। आज जब भूरा व्यक्ति दुनिया में अपनी बढ़ती हुई जिम्मेदारियाँ ओढ़ रहा है, तो पश्चिम के लिए, जिसने अपने सबक सीख लिए हैं, शायद यह उचित होगा कि वह एशिया से पश्चिम की गलतियाँ न दोहराने का अनुरोध करे।

एशिया की भूमिका विभ्रमपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में केवल झगड़े और विवाद के कुछ और कारण जोड़ने की ही नहीं है। हम आशा करते हैं कि वह दुनिया को अपना सर्वोत्तम अंश प्रदान करेगा, जिसे शक्ति और आशा की बड़ी जरूरत है।

अपने अनुयायियों को सम्बोधित करके कहे गए गांधी के निम्नलिखित वाक्य का, मैं समझता हूँ यही अर्थ है: "सारी दुनिया के लिए एशिया के पास एक सन्देश है।......लेकिन एशिया केवल एशिया के लिए न होकर सारी दुनिया के लिए हो, इसके लिए उसे बुद्ध के सन्देश को फिर से सीख कर सारी दुनिया में पहुँचाना होगा।"

स्वतंत्र एशिया का भविष्य ?

एशिया नीति के सम्बन्ध में नए विचारों और प्रस्तावों की आवश्यकता को समझ कर, श्री बौल्स एशिया में कार्यरत क्रान्तिकारी शक्तियों पर एक पैनी और दूरगामी दृष्टि डालते हैं, और एक एशियाई मुनरो सिद्धान्त की संभावना का सुझाव रखते हैं। फारेन एफेयर्स, अक्टूबर, 1954।

ऐतिहासिक तुलनाओं के आधार बहुधा बड़े दुर्बल होते हैं। किन्तु 'तटस्थ' एशिया के वर्तमान दृष्टिकोण, और पिछली शताब्दी में हमारी विदेश-नीति का निर्धारण करने वाले दृष्टिकोणों की समानता तत्काल ध्यान खींचती है।

एशिया के नए स्वतंत्र राष्ट्रों की भाँति अमरीका का भी जन्म क्रान्तिकारी उथल-पुथल के युग में हुआ था, जब फ्रांस की राज्य-क्रान्ति और नेपोलियन-कालीन युद्ध पूरी तेजी पर थे। इसी पृष्ठभूमि में राष्ट्रपति वाशिंगटन ने तटस्थता और गतिशील स्वतंत्रता की अमरीकी नीति का सुझाव रखा था।

वाटरलू में नेपोलियन की सेनाओं की पराजय के बाद, 1814 में अमरीकी नीति-निर्धारकों के सामने एक बिलकुल नयी और अप्रत्याशित समस्या आ खड़ी हुई। इस समय अमरीका के पास सबल सेना का अभाव था, और उसकी नौसेना बहुत छोटी थी। किन्तु सारी दुनिया में उसका नैतिक प्रभाव बहुत था, कुछ वैसे ही जैसे आज हिन्दुस्तान का है। और जैसे शीत-युद्ध में दोनों गुट आज हिन्दुस्तान की मित्रता चाहते हैं, उसी प्रकार 1820-23 में रूस के नेतृत्व में बना हुआ 'पवित्र-संघ' और अंग्रेजी सरकार, दोनों ही अमरीका की सहमति और समर्थन चाहते थे।

किन्तु लोकतंत्र के अमरीकी समर्थकों को 1823 में ज़ार की सरकार उतनी ही अप्रिय थी, जितना उसका उत्तराधिकारी साम्यवादी शासन आज अधिकांश स्वतंत्र एशिया को अप्रिय है। उसका प्रस्ताव शिष्टतापूर्वक, लेकिन दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया गया, जैसे एशिया के स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अब तक साम्यवाद के साथ जुड़ना स्वीकार नहीं... न को सुदृढ़ करने, तब...

...स्तान और एशिया के अन्य स्वतंत्र... सीधे प्रयास किए कि दक्षिण अमरीका में 'पवि... स्थाएं ठीक करने का अवसर मिल जाएगा, ...करें।

...ने एकपक्षीय घोषणा करने

का निर्णय किया। 2 दिसम्बर, 1823 को, कांग्रेस के नाम अपने सातवें वार्षिक सन्देश के एक अंग के रूप में मुनरो ने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

इस प्रकार, अपने इतिहास के प्रारम्भ में अमरीका ने विश्व राजनीति के एक मूल-सूत्र के अनुसार कार्य किया, जिसकी बाद में हमने बहुधा उपेक्षा की—कि तटस्थता और गड़बड़ी इच्छा करने मात्र से ही प्राप्त नहीं होते। और यह कि समय रहते थोड़ी-सी, रचनात्मक, शान्तिपूर्ण कार्यवाही के द्वारा बाद में कई गुनी, दुखद और रक्तमय कार्यवाही की आवश्यकता से बचा जा सकता है।

हिन्दुस्तान की वर्तमान स्थिति और 1823 में अमरीका की स्थिति में बहुतेरे स्पष्ट अन्तर हैं। साथ ही, बहुतेरी महत्त्वपूर्ण समानताएँ भी हैं।

जैसा आज मध्य-पूर्व में और दक्षिण-पूर्व एशिया में है, उसी तरह 1823 में दक्षिण अमरीका में एक शक्ति-शून्य था, जो चुम्बक की भांति शक्तियों की महत्वकांक्षाओं को आकर्षित करता था। हिन्दुस्तान और स्वतंत्र एशिया के लिए आज मूल प्रश्न वही है, जो 1823 में अमरीका के लिए था—शक्ति-संघर्ष को अपने पड़ोस में ही विश्व युद्ध का रूप लेने से कैसे रोकें, जिसमें शामिल होना उसके लिए अनिवार्य हो जाता है।

जैसा 1823 में अमरीका के साथ था, आज हिन्दुस्तान अपने को भौगोलिक दृष्टि से, संघर्ष के मुख्य केन्द्रों से दूर समझता है, और उसे अपनी विशाल आर्थिक समस्याओं की, तथा विकास और प्रगति के स्वयं अपने अवसरों की गंभीर चिन्ता है।

उपनिवेशवाद के प्रति वह अधिकतम शंकालु है, और उन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का समर्थन करने को उत्सुक है, जो औपनिवेशिक प्रभुत्व से मुक्त होना चाहते हैं। उसे विश्वास है कि शक्ति और बढ़ती हुई समृद्धि की सर्वोत्तम आशा इसी में है कि सभी शक्तियों के साथ उचित सम्बन्ध बनाए रखे, और अपनी जनता को भावनात्मक दृष्टि से वर्तमान संघर्षों में फंस जाने से बचाए।

यह तुलना कहाँ तक चल सकती है? 1823 के अमरीका की भांति, क्या आज के हिन्दुस्तान में यह चेतना है कि स्वतन्त्र स्थिति को ठोस, कल्पनापूर्ण कार्यवाही के द्वारा, और कुछ स्पष्ट जिम्मेदारियाँ उठाकर ही कायम रखा जा सकता है?

जब तक मध्य-पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया में वर्तमान शक्ति शून्य बने रहते हैं, साम्यवाद को उनमें प्रवेश करने का लोभ होता रहेगा, और मास्को-पीकिंग गुट द्वारा किसी भी प्रत्यक्ष सैन्य आक्रमण का अमरीका सीधे मुकाबला करेगा, चाहे उसमें तीसरा महायुद्ध शुरू होने का भी खतरा हो।

क्या हिन्दुस्तान समझता है कि ऐसे संघर्ष में, जिसमें उसके आवश्यक सामुद्रिक संचार साधन टूट जाएँगे, और जो उसकी सीमाओं के बहुत निकट होगा, उसके लिए अपनी तटस्थता को, जो उसकी विदेश नीति का आधार है [illegible] असम्भव होगा?

एशिया में ऐसी कोई प्रतिरक्षा व्यवस्था [illegible] कि-स्तान, ब्रह्मा, श्रीलंका, इंडोनेशि[illegible] [illegible]ता

वाली ही होगी, और उससे होने वाली राजनीतिक हानियाँ स्पष्ट हैं।

आने वाले वर्षों में, पाँचों कोलम्बो शक्तियों के सामने एक ऐसा विकल्प है जो वर्तमान उलझी हुई स्थिति में एशिया को स्थायित्व की सम्भावना सर्वाधिक व्यावहारिक रूप में प्रदान करता है, और जो असम्भव नहीं है।

पश्चिम-समर्थित सैन्य संधि में शामिल होने से इन्कार करते हुए, वे चीनी दबाव की भावी सम्भावना को समझ सकते हैं, और अपने इस दृढ़ निश्चय की घोषणा कर सकते हैं कि भविष्य में दक्षिण एशिया पर किसी भी ओर से आक्रमण होने पर वे उसका सबल विरोध करेंगे।

इस प्रसंग में, मैं समझता हूँ कि नई दिल्ली में हुए भारत-चीन समझौते को पूरी तरह साम्यवाद की जीत मान लेना बहुत बड़ी गलती होगी। जुलाई में प्रकाशित चाउ-एन-लाई-नेहरू वक्तव्य में कहा गया है कि तिब्बत के सम्बन्ध में भारत-चीन संधि को सारे एशिया के लिए एक नमूना समझा जाय। इस संधि की भूमिका में मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के लिए पाँच सिद्धान्त निरूपित किये गए हैं—एक दूसरे की क्षेत्रीय अखण्डता और प्रभुता का पारस्परिक आदर, पारस्परिक अनाक्रमण, एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।

हिन्दुस्तानी लोग इस बात को अवश्य ही समझते होंगे कि 1951 में तिब्बत पर अधिकार करके चीन ने इन पाँचों सिद्धान्तों का उलंघन किया था। किसी ने अब तक ऐसा नहीं कहा कि चीन के प्रति अपने व्यवहार में हिन्दुस्तान ने कभी उनका पालन नहीं किया। अब चाउ और नेहरू द्वारा इन सिद्धान्तों के दोहराए जाने का यही अर्थ है कि चीनियों ने उन आदर्शों के अनुसार आचरण आरम्भ करने का वादा किया है, जिनका उन्होंने हाल ही में और खुले आम उलंघन किया था।

जाहिर है कि हिन्दुस्तानी लोग उम्मीद कर रहे है, जैसे हमने युद्ध के बाद के वर्षों में व्यर्थ ही आशा की थी, कि भूख मिट जाने पर साम्यवादी शेर शांति और समरसता का जीवन स्वीकार कर लेगा।

शंकालु एशियावासियों को समझाने में, कि वे असंभव की प्राप्ति की आशा कर रहे हैं, पश्चिमी दलीलों का असर कम ही होगा, चाहे ये दलीलें कितनी भी तर्कसंगत क्यों न हों। साम्यवादियों द्वारा वादे तोड़ने का कठोर, कटु अनुभव ही संभवतः उनका भ्रम निवारण कर सकेगा।

इस कारण नेहरू और चाउ-एन-लाई के समझौते से भारत और चीन में अधिक निकट सम्बन्ध स्थापित होने के बजाए, शायद उल्टा ही परिणाम निकले। किसी भी दशा में चीनी इरादों को परखने के लिए एक पक्की कसौटी मिल जाती है। अगर चीन 1920 के बाद दो दशकों तक की रूसी नीति का अनुसरण करता है, और अपनी क्रान्ति को सुदृढ़ करने, तथा अपने दबाव को ढीला करने का निर्णय करता है, तो हिन्दुस्तान और एशिया के अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों को अपनी आर्थिक और राजनीतिक अवस्थाएँ ठीक करने का अवसर मिल जाएगा, जिसकी उन्हें बड़ी जरूरत है।

अगर चीन अपने नए वादों की उपेक्षा करता है, और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में और अधिक विस्तार के लिए कार्यवाही करता है, जिसकी संभावना अधिक है, तो चीनी साम्यवाद का असली स्वरूप बहुतेरे एशियावासियों के लिए पहली बार स्पष्ट हो जाएगा।

नई दिल्ली और रंगून मे चाउ द्वारा हाल ही में किये गए वादो के बाद ऐसा होने पर स्वतंत्र एशिया को शायद वैसा ही प्रारम्भिक, मानसिक धक्का लगे, जैसा चेकोस्लोवाकिया पर साम्यवादियो के बलात् अधिकार और जान मसारिक की मृत्यु से 1948 मे पश्चिम को लगा था।

इस स्थिति में हिन्दुस्तान की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है। एशिया मे साम्यवादी चीन के प्रसारवाद का विरोध करने मे हिन्दुस्तान सचमुच किस हद तक जाएगा? आज जैसी स्थिति है, उसमे कोई भी इसे नही जानता, शायद स्वयं हिन्दुस्तानी लोग भी नहीं। हिन्दुस्तान और उसके पड़ोसियो द्वारा एशिया के लिए एक मुनरो सिद्धान्त की घोषणा सार्थक हो, इसके लिए इस सन्देह को दूर करना जरूरी होगा।

अप्रैल, 1954 के श्रीलंका सम्मेलन से एक बात साफ हो गई। राष्ट्रपति मुनरो एकपक्षीय कार्यवाही कर सकते थे, और दक्षिण अमरीका के अपने दुर्बल पड़ोसियों की भावनाओ के बारे मे उन्हें विशेष चिन्ता करने की आवश्यकता नही थी। लेकिन नेहरू किसी एकपक्षीय 'नेहरू सिद्धान्त' की घोषणा नही कर सकते, क्योंकि इससे दक्षिण एशिया मे उनके गर्वभरे पड़ोसियो के नाराज हो जाने का खतरा है। एशिया के स्थानीय मुनरो सिद्धान्त के प्रभावकारी होने के लिए, उसे बहुपक्षीय आधार पर निश्चित करना होगा, और इसके साथ अन्य कई प्रश्न भी जुड़े हुए हैं।

हमारा अंतिम लक्ष्य भूमध्य सागर और दक्षिण चीन सागर के बीच स्वतन्त्र, आत्म-विश्वासपूर्ण, और गतिशील नए राष्ट्रों का विकास है। स्वतंत्र, एशिया के बहुतेरे नेता जैसा सोचते प्रतीत होते हैं, उसके बावजूद, साम्यवादी कार्यक्रम ऐसे विकास का मौका देगा या नहीं, इसमे सन्देह है।

लेकिन एशिया में, या अन्यत्र कहीं, सयुक्त राज्य ऐसी स्थितियाँ नहीं उत्पन्न कर सकता। इनका विकास अपने आप, स्वय अपने प्रयास से ही हो सकता है। हम अधिक इतना ही कर सकते हैं कि मित्रतापूर्ण और हस्तक्षेपरहित प्रोत्साहन और समर्थन के द्वारा उनके विकास मे सहायक हों।

उन्तीस

एशियावासी कठोर प्रश्न पूछ रहे हैं

एशियाई आलोचकों के साथ असंख्य अवसरों पर हुई बातचीत से, श्री बौल्स के दिमाग में दुतरफा वार्त्तालाप प्रस्तुत करने की बात आई। यहाँ वे एशिया के प्रति अमरीकी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में बह्मा के एक प्रोफेसर के साथ एक अमरीकी राजदूत की बहस प्रस्तुत करते हैं।
पॉकेट मैगज़ीन, नवम्बर, 1954।

अगर हमे एशियावासियो के साथ पारस्परिक समझ का कोई पुल बनाना है, तो हमें बात कम करनी चाहिए, और सुनना अधिक चाहिए। कभी-कभी जो कुछ हम सुनेंगे, वह हमे अप्रिय लगेगा। फिर भी हमे सुनना होगा।

ब्रह्मा मे विज्ञान के एक तीक्ष्णबुद्धि और लगन पूर्ण प्रोफेसर से हाल ही मे हुई एक भेंट (जो उतने ही साम्यवाद-विरोधी थे, जितने वे प-तर्क-संगत रूप मे अमरीका-विरोध प्रतीत होते हैं) निम्नलिखित वार्त्तालाप का आधार है। इसमें स्वतंत्र पश्चिम और स्वतंत्र एशिया के महत्वपूर्ण और असंतोषप्रद सम्बन्ध मे निहित कुछ कटु आवेग सामने आते हैं।

बर्मी प्रोफेसर : आप अमरीकियो ने एशिया मे जो गलतियाँ की हैं, उन्हे देखकर दुख होता है। जब दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ, तो हमे आपसे बड़ी आशाएँ थी। लेकिन अब हम निराश और निरुत्साहित हो गए हैं।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : शायद आप बहुत अधिक आशा रखते थे। आखिरकार, हम भी आपकी तरह मनुष्य हैं, और हमारी बहुतेरी सीमाएँ हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे हस्तक्षेप करना हमारा स्वभाव नही है। 1941 तक हम दूसरे महायुद्ध से बचते रहे, जब पर्ल हार्बर के विस्फोट ने हमे अपने अकेलेपन से बाहर निकाला। युद्ध समाप्त होते ही हमने अपनी सेना विघटित कर दी, लेकिन देखा की सोवियत संघ ने अपनी सेना कायम रखी और उसके आधुनिकीकरण मे अरबो खर्च किए।

हमारी आज जो स्थिति है, उसके लिए हमने स्वयं चेष्टा नही की, और हम अपने लिये किसी प्रकार का लाभ नही चाहते। न हम एकान्तवादी हैं न साम्राज्यवादी। हम सचमुच केवल शान्ति और सुरक्षा के लिए और किसी उपाय से साम्यवाद को रोकने के लिए प्रयास कर रहे हैं।

बर्मी प्रोफेसर : साम्यवाद मुझे उतना ही अप्रिय है जितना आपको। वस्तुतः,

मेरे भतीजे को साम्यवादी छापामारों ने अगस्त, 1951 में मार डाला। हमारी सरकार सालों से साम्यवादियों से लड़ती रही है, और पिछले दिनों ही अन्तत: उन्हें परास्त करने में सफल हुई है। लेकिन आप अमरीकी लोग साम्यवाद के भय से इस तरह ग्रस्त हो गए हैं कि एशिया के यथार्थों से आपका सम्पर्क नहीं रहा।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : हम उससे अत्यधिक ग्रस्त कैसे हो सकते हैं? आप भूलते हैं कि साम्यवादी सारी दुनिया पर अधिकार करने की चेष्टा कर रहे हैं। लेनिन ने तीस वर्ष पहले साम्यवादी दल के लक्ष्य निर्धारित कर दिये थे, और उसके बाद हर महत्वपूर्ण साम्यवादी नेता ने उन्हें दोहराया है।

बर्मी प्रोफेसर : यह सच है। लेकिन आप अमरीकी लोग ऐसा सोचते प्रतीत होते है कि आप साम्यवाद पर बम गिराकर उसे रोक सकते हैं। साम्यवाद केवल कोई सेना या स्थान नहीं है। यह एक विचार है।

हम हमेशा मानते रहे है कि आप अमरीकियों के पास उससे ज्यादा अच्छा विचार है। हम शिक्षित एशियावासियों में से अधिकांश ने आपका स्वतन्त्रता का घोषणापत्र पढ़ा है। हममें से कुछ को वह कंठस्थ है। एशिया में हम जो लोकतंत्र निर्मित करने की चेष्टा कर रहे हैं, उनके लिए आपका संविधान एक आदर्श रहा है।

हमें चिन्ता इस बात से है कि आप अमरीकी लोग अब स्वयं अपनी स्वतंत्रता की लम्बी परम्परा से, और मानवता में अपने विश्वास से मुँह मोड़ते प्रतीत होते हैं। स्वयं अपने देश में साम्यवाद का विनाश करने की चेष्टा में आप साम्यवाद के तरीकों को अपनाने के लिए तैयार प्रतीत होते हैं।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : आप कैसे कह सकते हैं कि हमने अपनी लोकतान्त्रिक परम्परा को छोड़ दिया है? दूसरे महायुद्ध के बाद एशिया में हमारे कार्यों को देखिए। युद्ध-काल में कई लाख युवा अमरीकी एशिया को जापानी साम्राज्यवाद से मुक्त कराने के लिए मारे गए।

राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने आग्रह किया कि नए संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को पाँच बड़ी शक्तियों में से एक के रूप में सुरक्षा परिषद् में स्थान दिया जाय। जैसा हमने कहा था, युद्ध समाप्त होते ही हमने फ़िलीपीन को स्वतंत्रता प्रदान कर दी।

हमने भारत और इंडोनीशिया की स्वतंत्रता का समर्थन किया, और हमने जापान को जितनी सहायता और प्रोत्साहन दिया, उतना किसी विजेता ने कभी भी अपने पुराने शत्रु को नहीं दिया।

बर्मी प्रोफेसर : मैं जानता हूँ। लेकिन हम यह नहीं भूल सकते कि आप पश्चिम के ही अंग हैं, जो अपने नगरों, विश्वविद्यालयों, और ऊँचे जीवन-स्तरों का निर्माण करने के लिए प्रति वर्ष एशिया से करोड़ों डालर का धन पीढ़ियों तक ले जाता रहा, और जिसने हमें गरीबी, अशिक्षित, और भुखमरी के निकट लाकर छोड़ा।

एशिया से पश्चिम जो धन ले गया, उससे भी बुरा वह अपमान था, जिसका हमें अनुभव कराया गया। चूँकि हमारी चमड़ी रंगीन है, इसलिए हमारे साथ दूसरे दर्जे

के मनुष्यों जैसा व्यवहार किया गया।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ . लेकिन मैं फिर पूछता हूँ कि आप इसमें अमरीकियों को क्यों शामिल करते हैं ? हमारी एशिया में ऐसी औपनिवेशिक स्थिति कभी नही रही। और हमारा देश स्वयं यूरोप के औपनिवेशिक प्रभुत्व से लड़ करके स्वतन्त्र होने वाला पहला राष्ट्र था।

बर्मी प्रोफेसर . लेकिन पिछले कुछ वर्षों में आप क्या करते रहे हैं ? एक तो आप करोड़ो डालर की सैन्य सामग्री के द्वारा हिन्दचीन में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद को पुष्ट करते रहे हैं। अगर 1946 में आपने सशक्त नीति अपनाई होती, तो फ्रांसीसी भी छोड़कर चले जाते, जैसा अंग्रेजो ने भारत, पाकिस्तान, ब्रह्मा और श्री लंका में किया, और वियतनाम, कम्बोडिया और लाओस भी बिना किसी रक्तपात के स्वतन्त्र हो जाते।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : हाँ, लेकिन हो-ची-मिन साम्यवादी थे, और वे केवल इन तीनो देशों को साम्यवादी चीन को सौंप देते।

बर्मी प्रोफेसर : मैं स्वीकार करता हूँ कि हो-ची-मिन साम्यवादी हैं। लेकिन अगर वे वियतनाम की नई प्राप्त स्वतन्त्रता को साम्यवादी चीन या रूस या अन्य किसी विदेशी शक्ति के हाथ बेचने की कोशिश करते, तो उनके देश के लोग, जो हमेशा चीनियों को शंका की दृष्टि से देखते रहे हैं, उन्हें हटा देते।

फ्रांसीसियों ने मूर्खतापूर्वक उन्हें सैन्य शक्ति के द्वारा नष्ट करने की चेष्टा की। आपने कितने ही जहाज भरकर मशीनगनों, टैंको, वायुयानों और अन्य सामान से उनका समर्थन किया। अतः आप ईमानदारी के साथ कैसे कह सकते हैं कि आपने एशिया में साम्राज्यवाद का समर्थन नही किया ?

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : यूरोपीय उपनिवेशवाद आपकी तरह हमें भी अप्रिय है, और हम भी मानते हैं कि हिन्दचीन में फ्रांसीसियों ने गलतियाँ की हैं। लेकिन जिस तरह के उपनिवेशवाद की बात आप कर रहे है, एशिया में वह तो लगभग समाप्त हो चुका है।

आप नए साम्यवादी साम्राज्यवाद की उपेक्षा करते प्रतीत होते हैं, जिसके पीछे रूस और चीन का समर्थन है, और जो कहीं अधिक खतरनाक है। आप एशियावासी यूरोप के जीर्ण उपनिवेशवाद की बात करते रहेंगे, और बीसवीं सदी का नया साम्यवादी उपनिवेशवाद आपको खा जाएगा।

बर्मी प्रोफेसर . अगर आप हमें अकेला छोड़ दें, तो हम एशियावासी साम्यवाद के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा, आप जैसा सोचते हैं उसमें कहीं ज्यादा अच्छी तरह कर सकते है। आप जरा घटनाओं को देखिए। चीन के युद्ध के अलावा, दूसरे महायुद्ध के बाद से एशिया में छह गृह-युद्ध हुए हैं, और सभी साम्यवादियों ने संगठित करके चलाए।

इनमें से चार ऐसे देशों में हुए जिन्होंने हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी— फिलीपीन, इंडोनीशिया, ब्रह्मा, और हिन्दुस्तान—और इन चारो ही देशों में, किसी

बाहरी सहायता के साम्यवादियों को दबा दिया गया। दो अन्य देशों—मलय और हिन्दचीन—में साम्यवादियों को बड़े पैमाने पर झगड़े उत्पन्न करने में सफलता मिली। हिन्दचीन में फ्रांस और अमरीका के संयुक्त सैन्य प्रयासों के बावजूद, उन्हें जबरदस्त सफलता मिली है।

क्यों ? केवल इसलिए कि हिन्दचीन और मलय में वे लोगों से कह सके कि वे विदेशी गोरे उपनिवेशवादियों को बाहर निकालने के लिए साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध चला रहे हैं। लेकिन जहाँ भी उन्हें एशियाई राष्ट्रवाद का सामना करना पड़ा, वहाँ उन्हें असफलता मिली।

इसके अलावा, आप अमरीकियों ने केवल एशिया में ही उपनिवेशवाद का समर्थन किया हो, ऐसा नहीं है। अफ्रीका में भी आपके काम लगभग उतने ही गलत रहे हैं। सभी लोगों के स्वतंत्र होने के अधिकार के बारे में जो बढ़िया बातें आप लोग करते हैं, उसके बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ में आपने लगातार ट्यूनीसिया और मोरक्को के स्वाधीनता आन्दोलनों के विरुद्ध मतदान किया है।

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : फ्रांसीसी अफ्रीका के बारे में हमें समझौता करना पड़ा क्योंकि यूरोप की प्रतिरक्षा के लिए फ्रांसीसी सेना आवश्यक है। अतः हमें फ्रांसीसियों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखने पड़े, जो अल्जीरिया, ट्यूनिसिया, और मोरक्को की स्वतंत्रता के सख्त खिलाफ थे। इससे कभी-कभी हमें अपने मन के विरुद्ध मतदान करना पड़ा।

बर्मी प्रोफेसर : लेकिन ऐसे समझौतों से आपको लाभ क्या होता है ? आपने न केवल एशिया के अधिकांश लोगों का, बल्कि सारे अफ्रीका के लोगों का विश्वास खो दिया।

आप अमरीकियों के साथ दिक्कत यह है कि आप हर चीज को सैन्य शक्ति के सन्दर्भ में देखते हैं, जबकि यह तथ्य स्पष्ट है कि दुनिया के बड़े हिस्से में सैन्य शक्ति निर्णायक तत्व नहीं है।

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान क्यों छोड़ा ? क्या इसलिए कि उनमें सैन्य शक्ति की कमी थी ? नहीं। उनकी सैन्य शक्ति दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी थी। लेकिन गांधी के नेतृत्व में जनता के संयुक्त संकल्प के विरुद्ध वे कुछ ही वर्षों तक हिन्दुस्तान को अपने अधिकार में रख सकते थे। अब हिन्दचीन में फ्रांसीसियों ने वही सबक कहीं अधिक-मूल्य देकर सीखा है।

आप अमरीकी लोग कब सीखेंगे कि एशिया की समस्याएँ मूलतः राजनीतिक और आर्थिक हैं, और सैन्य आवश्यकताएँ अपेक्षतया गौण हैं ?

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : लेकिन हमने तो इसे मान लिया है। अपने चतु:सूत्री कार्यक्रम के द्वारा हमने एशियाई राष्ट्रों की सहायता करनी चाही है कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें, और गरीबी, रोग और निरक्षरता को कम कर सकें।

बर्मी प्रोफेसर : मैं स्वीकार करता हूँ कि चतु:सूत्री कार्यक्रम दुनिया के अधिकतम

वादी चीन द्वारा मारे जाने के बाद हम उसे मान्यता कैसे दे सकते हैं ? पर जरूरी है कि आप तथ्यों को देखें। साम्यवादी चीन एक आक्रान्ता राष्ट्र है।

बर्मी प्रोफेसर : लेकिन आप रूसियों को भी आक्रान्ता कहते हैं, और रूसी कम से कम उतने ही साम्यवादी हैं, जितने चीनी। फिर भी आपने साम्यवादी रूस को बीस वर्ष पहले मान्यता दे दी थी, और युद्धकाल में आप मित्रों के रूप में उनके साथ कन्धा मिलाकर लड़े भी थे।

हममें से बहुतेरे एशियावासियों को यह विश्वास हो गया है कि आप चीन को इस कारण मान्यता नहीं देते कि चीनी रंगीन हैं, और आप लोग गोरे हैं। क्या आप अमरीकी लोग स्वयं अपने देश में भी रंगीन लोगों को दूसरे दर्जे का नागरिक नहीं मानते ? अगर आप रंगीन लोगों को गोरे के समान ही समझते हैं, तो आप ने दूसरे महायुद्ध में अणुबम जापानियों पर ही क्यों गिराया, जर्मनों पर क्यों नहीं ?

अमरीकी कूटनीतिज्ञ : यह बिलकुल फिजूल बात है। जर्मनी के साथ युद्ध समाप्त होने तक अणु बम तैयार भी नहीं हुआ था।

बर्मी प्रोफेसर : कोई एशियावासी बड़ी मुश्किल से ही आपकी इस बात पर विश्वास कर सकेगा।

(रात में देर तक इसी तरह बातचीत चलती रही।)

× × ×

यह रोषपूर्ण एशियावासी ऐसे तर्क प्रस्तुत करता है, जिन पर तेहरान और तोक्यो के बीच रहने वाले करोड़ों अन्य एशियावासी विश्वास करते हैं।

साम्यवाद में उसे कोई रुचि नहीं। वह सचमुच चाहता है कि लोकतन्त्र चले। वह अमरीका में विश्वास करना चाहता है। वह चाहता है कि उसका देश स्थायित्व, समृद्धि और शांति के नए क्षितिजों की ओर बढ़े और विकसित हो।

लेकिन उसे ऐसे अमरीका से चिंता होती है, जो विभ्रमित, और दुनिया के ऐसे लोगों से कटा हुआ प्रतीत होता है, जिन्हें उसका मित्र होना चाहिए। वह उद्विग्न और उसे बड़ा डर भी है।

उसके गंभीर और बहुधा पक्षपातपूर्ण विश्वासों का इतिहास में बड़ा महत्त्व होगा, और उनके सामने युद्ध के हमारे हथियारों का पल्ला भी किसी दिन शायद हल्का पड़ जाय। हमें उसकी बात सुननी होगी। जब हम समझें कि वह गलती पर है तो उससे असहमति व्यक्त करें, लेकिन सुनें जरूर।

तीस

तटस्थ राष्ट्र और भारतीय सफलता की कहानी

क्या हम अपने यूरोपीय मित्रों के मूल्य पर, विकासशील राष्ट्रों की ओर बहुत ज्यादा ध्यान देते रहे हैं ? श्री बौल्स का मत इसके विपरीत है, और वे उन सभी राष्ट्रों की सहायता करने का आग्रह करते है, जो हमारी सहायता का उचित उपयोग करें, चाहे वे मित्र हों या तटस्थ।
विस मथ पत्रिका, जुलाई, 1962।

कथित अफ्रो-एशियाई गुट की ओर अधिकांश अमरीकियों का ध्यान अभी हाल ही मे गया है। यह स्वाभाविक है, क्योकि जिन अफ्रीकी और एशियाई राष्ट्रो का आज विश्व मे प्रमुख स्थान है, उनमे से कइयो को पिछले कुछ वर्षो मे ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है।

सयुक्त राष्ट्र सघ मे इस समय जो 104 राष्ट्र हैं, उनमे से आधे एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्र है। इन नए राष्ट्रो को विश्व सगठन मे अभिव्यक्ति का एक अन्तर्राष्ट्रीय मच मिला है, और उन्होने उसका पूरा उपयोग किया है।

सयुक्त राष्ट्र सघ मे अफ्रीका और एशिया के देशों द्वारा व्यक्त दृष्टिकोण, सोवियत रूस की नीति की अपेक्षा अमरीकी नीति से कही अधिक अवसरो पर मेल खाते हैं। फिर भी, इतने काफी मतभेद बने हुए हैं, कि बहुतेरे अमरीकियों को चिंता होती है।

पिछले कुछ महीनो मे ये मतभेद और भी अधिक गभीर प्रतीत हुए हैं, क्योकि महत्वपूर्ण अफ्रीकी और एशियाई नेताओं ने, रूस के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने की कोशिश करते हुए, अमरीका की तीखी आलोचना की है।

इसके साथ ही, वैदेशिक मामलो की बढती हुई पेचीदगी, उलझे हुए प्रश्नो के शीघ्र और सरल उत्तरों का अभाव, और अणुशक्ति के बारे मे कोई गलती हो जाने के निरन्तर बने हुए खतरे के फलस्वरूप बहुतेरे अमरीकियो मे निराशा और विभ्रम की भावना आ गई है।

यह निराशा बहुधा तटस्थ या अजुड राष्ट्रो की धैर्यहीन आलोचना मे व्यक्त होती है। हमारे कुछ अधिक परात्पराकाष्ठावादी आलोचकों का आरोप है कि अमरीका अफ्रोएशियाई राष्ट्रों की ओर उचित से अधिक ध्यान देता रहा है, हम उनकी अनावश्यक 'खुशामद' करते हैं, और हमारी नीतियां 'व्यावहारिक' नहीं हैं।

बहुधा ये मत ऐसे लोगो द्वारा व्यक्त किए जाते हैं, जो अपने को 'कठोर यथार्थ-

वादी' कहते हैं। जिन लोगों का दृष्टिकोण दुनिया के मामलों में अधिक संयमपूर्ण है, उन्हें ये लोग 'कल्पनाशील आदर्शवादी' कहते हैं।

अपने को यथार्थवादी कहने वाले ये लोग, विदेश-नीति के निर्धारण में एक पुरानी और सुपरिचित विचारधारा के प्रतिनिधि हैं। मैं समझता हूँ कि तथ्यों से यह पता चल जाएगा कि विश्व शक्तियों के प्रति अपनी जड़ता और दूरंदेशीनता में वे गलत ही अधिक होते हैं, सही कम।

उदाहरण के लिए, पहले महायुद्ध के तत्काल बाद, वुडरो विल्सन और 'लीग ऑफ नेशन्स' की उनकी 'कल्पनाशील' धारणा के विरुद्ध इन 'यथार्थवादियों' के आक्रमणों के फलस्वरूप हम एक पीढ़ी तक दुनिया से कटे रहे, और दुनिया को 'युद्धों का अन्त करने वाले युद्ध' का भयंकर अनुभव फिर से करना पड़ा।

एशियाई और अफ्रीकी प्रश्नों के प्रति उनमें दृष्टि का जो अभाव रहा है, उसकी क़ीमत भी बहुत अधिक देनी पड़ी है। विश्व के मामलों में 'कठोर यथार्थवादी' विचार धारा के अंग्रेज समर्थकों को विश्वास था कि एक बार हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, श्री लंका, और ब्रह्मा से उनके हट जाने के बाद, और अपना काम खुद चलाने का भार 'ग़ैर जिम्मेदार देशी' लोगों के हाथ में आ जाने पर, ये देश शीघ्र ही टूट जाएँगे। और हाल में, उनका कहना था कि उन्हें सिखाने वाले 'अनुभवी यूरोपीय' लोगों के बिना, मिस्री लोगों के लिए स्वेज नहर को चलाना सम्भव नहीं होगा।

लेकिन नतीजे बिलकुल भिन्न निकले। आम तौर पर ये राष्ट्र अपना शासन करने में बहुत ही सक्षम प्रमाणित हुए हैं, और वे दृढ़ता के साथ अपनी विशाल समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

दूसरे महायुद्ध के बाद, 'कठोर यथार्थवादी' सेना के फ्रांसीसी दस्ते ने हिन्द चीन में एक अति मूर्खतापूर्ण नीति अपनाने के लिए फ्रांस की सरकार को राज़ी कर लिया। असंभव भौगोलिक-राजनीतिक स्थितियों में, एशिया में एक औपनिवेशिक चौकी क़ायम रखने का प्रयास करके उन्होंने उपनिवेशवाद के सभी एशियाई विरोधियों को राष्ट्र वादियों और साम्यवादियों को, फ्रांस के विरुद्ध 'राष्ट्रीय मुक्ति' का एक सफल युद्ध चलाने के लिए हो-ची-मिन के अधीन एक संयुक्त मोर्चे में ढकेल दिया।

किन्तु हिन्द-चीन के विनाशकारी अनुभव से भी 'यथार्थवादियों' ने कुछ नहीं सीखा। उन्होंने ही कई वर्षों तक इस बात को असंभव बना रखा कि फ्रांस की सरकार अल-जीरिया वासियों के साथ कोई उचित समझौता करे। अभी पिछले दिनों ही, 'कठोर' विचारक अल्जीरिया के निराश औपनिवेशिकों को फिर ऐसे रास्ते पर ले जाने का खतरा उत्पन्न कर रहे हैं, जिसका परिणाम विनाशकारी ही हो सकता है।

'हम एशिया और अफ्रीका की चिन्ता न करें,' इस नीति के वर्तमान जड़ और बहुधा भयंकर गलतियाँ करने वाले समर्थकों में से बहुतेरे जाने-अनजाने, एक लम्बी और अहंकारपूर्ण परम्परा के अधिकृत सदस्य हैं, जो गोरों को दुनिया की जातियों में श्रेष्ठ मानती है। कुछ पीढ़ियाँ पहले उनके वैचारिक पूर्वज, कहीं भी 'देशी' लोगों के

नियन्त्रण के बाहर जाते प्रतीत होने पर, 'थोड़ी गोलाबारी' की माँग किया करते थे।

अगर उन दिनों धैर्य और दूरदर्शिता कुछ अधिक रही होती, और 'कठोर यथार्थवाद' कुछ कम रहा होता, तो आज एशिया और अफ्रीका की नई सरकारों के सामने जो दुर्गम कठिनाइयाँ हैं, उनकी कठोरता कुछ कम होती। इस युग में, जब अभिजात वर्ग तेजी से समाप्त हो रहा है, गोरों की श्रेष्ठता की यह धारणा घातक हो सकती है।

पिछले सोलह वर्षों में, पुराने यूरोपीय औपनिवेशिक साम्राज्यों में से चौवालीस नए देशों का निर्माण हुआ है, जिनकी आबादी दुनिया की आबादी की लगभग एक तिहाई है। चूँकि ये नये देश अपनी आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के बारे में बड़े सावधान हैं, अत वे ऐसी किन्हीं भी नीतियों पर नहीं चलना चाहते, चाहे वे अपने-आप में कितनी भी बुद्धिमतापूर्ण क्यों न हों, जिनके बारे में उन्हें लगता है कि वे उन पर विदेशियों द्वारा लादी जा रही हैं। रूस और अमरीका दोनों के साथ इनके व्यवहार में यह दृष्टिकोण एक मौन बल के साथ लागू होता है।

अत हमारा लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध में आश्वस्त होना कि इन नए देशों में से हर एक, अपने सांस्कृतिक सन्दर्भ के अन्दर, स्वयं अपनी रीति से अपने भविष्य का निर्माण कर सकने की स्थिति में हो।

साम्यवाद को रोकने की क्षमता इस पर निर्भर नहीं है कि नए राष्ट्रों में अमरीकी तरीकों को अपनाने की तत्परता कितनी है, या उनके नागरिकों में अमरीकी बन्दूकें चलाने की योग्यता कितनी है। यह हर नए राष्ट्र की योग्यता पर निर्भर है कि वह अपने प्राकृतिक और मानवी साधनों का विकास कहाँ तक करता है, और अपनी शासकीय संस्थाओं को कहाँ तक राष्ट्रीय उद्देश्य की असली भावना के अनुरूप बनाता है।

अमरीका के वर्तमान रूप के निर्माण में कई पीढ़ियाँ लगी थीं, बड़ी मेहनत, बड़े बलिदान और काफी मात्रा में पूँजी की सहायता की आवश्यकता पड़ी थी। रूसी लोगों ने भी तीन या चार दशकों में एक आधुनिक औद्योगिक राज्य का निर्माण कर लिया, लेकिन उनके तरीके स्वतन्त्रता की हमारी धारणाओं के बिलकुल विपरीत हैं।

अब मध्य के मध्य में एशिया और अफ्रीका के अल्प-विकसित राष्ट्र हैं। यहाँ हम अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिये करोड़ों व्यक्तियों में एक जबरदस्त दृढ़ता देखते हैं। पीढ़ियों की गरीबी और उपनिवेशवाद ने उन्हें तात्कालिकता की एक जबरदस्त भावना, और स्वतन्त्र रहने की दृढ़ता प्रदान की है।

फिर भी, स्वतन्त्रता के द्वारा समृद्धि का लक्ष्य एशिया और अफ्रीका उसी हालत में प्राप्त कर सकते हैं, जब अधिक सुविधा प्राप्त स्वतन्त्र राष्ट्र इंगलिस्तान, अमरीका फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करें।

अगर हम यह सहायता नहीं प्रदान करते, तो हम पूर्ण विश्वास रखें कि ये नए

राष्ट्र अतीत की निष्क्रियता और निराशा में चुपचाप वापस नहीं जाएँगे। उन्होंने भविष्य की संभावनाओं को देखा है, और किसी न किसी प्रकार उनमें अपना हिस्सा प्राप्त करने को वे दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।

इस स्थिति में घन के साथ-साथ बड़े धैर्य और साहस की, विवेक, समझ और संवेदनशीलता की आवश्यकता है। लेकिन अगर हम एशिया और अफ्रीका में हो रही जबर्दस्त राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल को आत्म-विकास की शान्तिपूर्ण धाराओं में संगठित कर सकें, तो इससे हमको और नए राष्ट्रों को सचमुच बड़ा लाभ होगा।

दूसरा रास्ता सिर्फ यही है कि हम खड़े-खड़े अन्य-बड़े राष्ट्रों को लाल चीन के रास्ते पर जाते हुए देखें, जिनमें शायद उतनी ही भूख रहेगी लेकिन जो उतने ही स्पष्ट रूप में हमारे विनाश को अपना लक्ष्य बनाएँगे।

क्या यह लक्ष्य हमारी पहुँच के बाहर है? मैं ऐसा नहीं समझता। प्रमाण के रूप में, हम देखें कि एक ही अल्प-विकसित देश में एक पीढ़ी से कम समय के अन्दर क्या कुछ हुआ है।

हिन्दुस्तान पैंतालीस करोड़ लोगों का राष्ट्र है, लगभग उतने ही जितनी अफ्रीका और लातिन अमरीका की कुल आबादी है। 15 अगस्त, 1962 को स्वतंत्र, आधुनिक हिन्दुस्तान अपने पन्द्रह वर्ष पूरे करेगा। गांधी की प्रतिभा और अंग्रेजों की असाधारण समझदारी के फलस्वरूप, हिन्दुस्तान अपनी स्वतंत्रता का उत्सव अपने पुराने औपनिवेशिक शासकों के प्रति बड़ी सद्भावना के साथ मनाता है।

पिछले दस वर्षों में हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय आय 42 प्रतिशत बढ़ी है, और अनाज की पैदावार 52 प्रतिशत बढ़ी है। 1947 में अनुमान था कि प्रति वर्ष लगभग 10 करोड़ लोग मलेरिया से पीड़ित होते थे। अब यह क्षीण करने वाला रोग लगभग लुप्त हो गया है। औसत जीवनावधि हिन्दुस्तान में 1947 में सत्ताइस वर्ष थी, अब बयालिस वर्ष है।

ऐसे देश में जहाँ दस वर्ष पहले केवल 10 प्रतिशत लोग साक्षर थे, आज 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों में 60 प्रतिशत स्कूल जाते हैं। हिन्दुस्तान में औद्योगिक उत्पादन प्रति वर्ष 14 प्रतिशत बढ़ रहा है। यह रफ्तार दुनिया की सबसे ऊँची रफ्तारों में से एक है।

स्वतन्त्रता के पहले वर्षों में हिन्दुस्तान ने एक संविधान बनाया, जिसमें अमरीका और इंगलिस्तान दोनों देशों के शासनों की विशेषताएँ हैं। तब से वह तीन राष्ट्रीय चुनाव करा चुका है, जो दुनिया में लोकतांत्रिक अधिकार का सबसे विशाल प्रयोग होता है, और उनमें मतदान का अनुपात अमरीका से अधिक था।

हिन्दुस्तान में भाषण की स्वतंत्रता है, धर्म की स्वतन्त्रता है, अखबारों की स्वतंत्रता है, और निजी उद्यम में सरकारी 'हस्तक्षेप' शायद हमारे समाज से भी कम है।

हिन्दुस्तान की सफलता बहुत कुछ स्वयं उसके अपने प्रयत्नों का फल है। हिन्दुस्तानी लोगों ने बड़ी मेहनत की है, योग्य नेतृत्व का विकास किया है, अपने को

शिक्षित किया है, और ठोस अंग्रेजी प्रशिक्षण पर आधारित एक स्वस्थ शासकीय सेवा निर्मित की है। लेकिन अमरीका की उदार सहायता के बिना भारतीय लोकतन्त्र की सफलता की संभावना शायद इतनी अधिक न होती। पिछले पन्द्रह वर्षों में हमने हिन्दुस्तान को आर्थिक सहायता के रूप में 3 अरब 80 करोड़ डालर प्रदान किए हैं।

इस सहायता का लगभग 55 प्रतिशत 'अतिरिक्त' वस्तुओं—गेहूँ, कपास, मक्का आदि के रूप में था। अन्य 42 प्रतिशत डालरों में सामग्री खरीदने के लिए था—इस्पात, रेलें और मशीनें, अधिकांश अमरीका में, अमरीकी मजदूरों द्वारा बनाई गई। शेष सहायता प्राविधिक परामर्श और प्रशिक्षण के लिए थी।

बड़े पैमाने पर हमारी सहायता, और लोकतंत्रिक सिद्धान्तों में हिन्दुस्तान की निष्ठा के बावजूद, हिन्दुस्तान हमेशा हमसे सहमत नहीं होता। रूस और चीन की भौगोलिक निकटता, और हिन्दुस्तान का अपना पुराना इतिहास बहुधा दुनिया के मामलों में हिन्दुस्तान को एक भिन्न परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है, उसी तरह जैसे दो महासागरों के बीच हमारी सुरक्षित स्थिति ने हमें एक शताब्दी से अधिक समय तक तटस्थ और अलगाववादी बना रहने दिया, जबकि अंग्रेजी कूटनीति और अंग्रेजी नौ सेना शांति कायम रखती थी।

फिर भी, इस एशियाई देश की असाधारण सफलता का हमारी अपनी सुरक्षा के लिए गंभीर महत्त्व है। बढ़ती हुई शक्ति और विश्वास से पूर्ण हिन्दुस्तान, एशिया में लाल चीन के विरुद्ध सन्तुलन प्रदान करता है, जिसका सर्वाधिक महत्त्व है। हिन्दुस्तान प्रमाणित करता है कि लोकतन्त्र केवल एक सुखद पश्चिमी सिद्धान्त ही नहीं है। व्यवहार में भी वह बड़ी अच्छी तरह काम करता है।

अतः जब हम एशिया और अफ्रीका के प्रवक्ताओं की आलोचनाओं से चिढ़ते और परेशान होते हैं, जो विश्व के मामलों में पूरी तरह हमारा दृष्टिकोण स्वीकार नहीं करते, तो हम इस पर भी विचार करें कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, फिलीपीन, और अन्य नए राष्ट्रों की सफलता से अ-साम्यवादी जगत को कितना बल मिला है, और अगर उनके प्रयत्नों को सफलता न मिलती, तो परिणाम कितना विनाशकारी होता।

दीर्घ कालीन दृष्टि से, हमारा राष्ट्रीय हित ऐसे राज्यों के एक विश्व समुदाय के निर्माण पर निर्भर है, ऐसा समुदाय जो मानवीय समस्याओं के सम्बन्ध में एक अधिकाधिक सामान्य दृष्टिकोण में हिस्सेदार हो। ऐसे विश्व समुदाय का साम्यवाद के पास कोई प्रभावकारी उत्तर नहीं है।

इकतीस

मध्यपूर्व में नई प्रवृत्तियाँ

मध्य-पूर्व के जीवन्त निवासियों का ध्यान अपने राष्ट्रीय साधनों के विकास में केन्द्रित होने पर, क्या इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में तनाव कम होंगे? श्री बौल्स अमरीकी यहूदी कांग्रेस के समक्ष न्यूयार्क में 12 अप्रैल, 1962 को दिये गए भाषण में ज्यादा अच्छे वातावरण के लिए सीमित आशा प्रकट करते हैं।

मध्य पूर्व के सम्बन्ध में अमरीकी मत पिछले दशक में ऊँची आशाओं, और गंभीर आशंकाओं के बीच झूलता रहा है। अब, कम से कम फिलहाल, वह बीच के किसी बिन्दु पर रुका हुआ प्रतीत होता है।

अपने वर्त्तमान अनुमान में, हम किसी हद तक मान सकते हैं कि इस क्षेत्र के शीघ्र आर्थिक विकास और बढ़ती हुई राजनीतिक एकता के सम्बन्ध में हमारी ऊँची आशाओं में कमी हुई है। एक अन्य अर्थ में, वर्तमान स्थिति में हमारे शासन द्वारा, रूस द्वारा, और स्वयं मध्य पूर्व के राष्ट्रों द्वारा एक बहुत ही उलझी हुई और कठिन स्थिति के प्रति यथार्थवादी समंजन परिलक्षित होता है।

सैकड़ों वर्षों तक इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के लोग युद्धों की और शोषण की ठोकरें खाते रहे। पहले महायुद्ध ने स्वतन्त्रता, समृद्धि और बढ़ती हुई एकता की ऊँची आशाएँ उत्पन्न कीं।

किन्तु तुर्की साम्राज्य के पतन से उत्पन्न राजनीतिक शून्य को शीघ्र ही अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने भर दिया, और पुराने संघर्षों के स्थान पर नए संघर्ष आ गए। दूसरे महायुद्ध के बाद अरब जगत में यूरोपीय उपनिवेशवाद अन्ततः समाप्त हो गया, और एक स्वतन्त्र नए राष्ट्र के रूप में इजराएल की स्थापना हुई।

तीव्र कटुता की इस अवधि में बहुतेरे अमरीकी हठपूर्वक इस आशा को अपनाए रहे कि अन्यत्र की भांति मध्य-पूर्व में भी किसी प्रकार बुद्धिमत्ता से काम लिया जाएगा, तेल से होने वाली तेजी से बढ़ती हुई आय का सारे क्षेत्र में अधिक प्रभावकारी उपयोग किया जाएगा, अरब और इजराएली लोग एक साथ रहना और काम सीखेंगे, और पानी की तथा शरणार्थियों की सी समस्याओं के सम्बन्ध में सहयोग बढ़ेगा।

कुछ वर्ष पहले, जब यह बात साफ होने लगी कि ये आशाएँ जल्दी ...

वाली नहीं, तो हमारा दृष्टिकोण अधिक निराशावादी हो गया ।

आज जब हम मध्यपूर्व की ओर देखते हैं तो यह स्पष्ट लगता है कि तीन महत्व-पूर्ण मामलों में स्थिति सुधरी है, यद्यपि इसका प्रचार नहीं हुआ है ·

1. साम्यवाद का आकर्षण धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। जारशाही का एक आधुनिक संस्करण होने के अतिरिक्त, सोवियत रूस तेल क्षेत्र में कम कीमत पर बिक्री करने वाले एक प्रमुख प्रतियोगी के रूप में भी सामने आ रहा है ।

2. मध्य-पूर्व के राष्ट्रों के साथ अमरीका के सम्बन्धों में अब तनाव कम है, और युगों पुराने झगड़ों के तात्कालिक हलों की आशा अब अमरीका में कम की जाती है ।

3 स्वयं मध्य-पूर्व के राष्ट्रों का ध्यान अब पड़ौसियों के साथ अपने झगड़ों पर कम है, और अपने आंतरिक विकास में उनकी रुचि बढ़ रही है।

इन तीन परिवर्तनों से मिलकर एक खामोश राजनीतिक और आर्थिक स्थिरता आई है, और अगर भाग्य ने साथ दिया, तो इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे सभी सम्बन्धित लोगों के बीच तनाव कम हो सकते हैं, और उन्हें विकास के अधिक अवसर प्राप्त हो सकते हैं । हमारे संकटग्रस्त विश्व में ऐसी राहतें समाचारों में प्रमुख स्थान नहीं पाती, लेकिन इनसे इतिहास का निर्माण हो सकता है ।

कुछ वर्ष पहले, बहुतेरे अमरीकियों को चिन्ता थी कि अरब राष्ट्रवाद साम्यवाद के पंजे में फंस जाएगा । लेकिन पिछले वर्षों में हमने देखा कि ये राजनीतिक शक्तियाँ सचमुच एक-दूसरे के कितनी विरुद्ध हैं, और किसी विकासशील नए देश के क्रिया-शील प्रयत्न विदेशी घुसपैठ के मार्ग में कितनी बड़ी बाधा हो सकते हैं ।

केवल मिस्र को देखना ही पर्याप्त होगा, जहाँ राष्ट्रपति नासिर आसवान बाँध के लिए बड़े पैमाने पर रूसी सहायता स्वीकार कर रहे हैं, लेकिन अपने देश का विकास स्वयं अपनी व्यावहारिक नीतियों के अनुसार कर रहे हैं । संयुक्त अरब गणराज्य का नियन्त्रण करना तो दूर रहा, ख्रुश्चोव नासिर को स्थानीय साम्यवादी दल की कार्य-वाहियाँ सहन करने के लिए भी राजी नहीं कर सकते ।

साथ ही, हमारे अपने शासन ने मध्य-पूर्व में हमारे प्रभाव की सीमाओं को समझ लिया है, और प्रयोगों की सफलता असफलता के द्वारा इस विस्फोटक क्षेत्र के बारे में जीवन के कुछ मूल तथ्य सीख लिए हैं । हमने विशेष रूप से यह सीख लिया है कि मध्य-पूर्व में हम जितना समझते थे, हमारी आवश्यकताएँ उसमें कम हैं, और यह कि राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए, अधिकतम सैन्य सुरक्षा के कार्यक्रम पर जोर देना, आवश्यक रूप से सर्वोत्तम उपाय नहीं है ।

हमें सचमुच जरूरत इतने पर्याप्त संचय की है, कि सीमा-संघर्ष और विरोधी महत्वाकांक्षाएँ कोई विश्व-व्यापी संकट न उत्पन्न करने पाएँ, और इतनी काफी स्थिरता की है, जिसमें आर्थिक और राजनीतिक विकास व्यवस्थित रीति से हो सके। सबसे अधिक, हम चाहते हैं कि मध्य-पूर्व के राष्ट्रों का विकास एक स्वतंत्र विश्व समाज के स्वाधीन और आत्म-सम्मानपूर्ण सदस्यों के रूप में हो, जो स्वयं अपने राष्ट्रीय

आदर्शों के अनुसार अपनी अर्थ-व्यवस्थाओं और नियतियों का विकास करें।

मध्य-पूर्व में अपनी शिक्षा की प्रक्रिया में हमने, अन्यत्र की भाँति, तटस्थता के साथ, और विभिन्न प्रकार की सम्बद्धता के साथ रहना सीखा है।

इस क्षेत्र की आवश्यकताएँ बहुत ही अधिक हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी, आक्रमण महामारियों, हत्याकांडों, और क्रान्तियों ने इस क्षेत्र के मानवी और प्राकृतिक साधनों को नष्ट किया है। अधिकांश रेगिस्तानों में सिंचाई की महान् योजनाओं के खंडहर मिलते हैं। जिस भूमि पर से एक बार नमक साफ कर दिया गया, उसे फिर से खराब हो जाने दिया गया। पानी की निकासी के रास्ते भर गए हैं। सिंचाई के लिए बनाई गई सतहें नष्ट हो गई हैं। जहाँ हर चीज प्रकृति से लड़ कर छीननी पड़ती है, वहाँ अतीत के आर्थिक आधारों को फिर से क़ायम करना भी बहुत बड़ा काम है।

पिछले वर्षों में मध्य-पूर्व के नेताओं की अधिकाधिक संख्या इस बात को समझने लगी है कि उनकी जैसी ज़बरदस्त आन्तरिक समस्याएँ शब्दाडम्बर से हल नहीं की जा सकतीं। भूमि का ग़लत बंटवारा, शिक्षा, और आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, और दीर्घकाल से उपेक्षित सामाजिक सुधार, आन्तरिक विकास की ऐसी नित्य प्रति की समस्याओं की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है।

इस बीच अमरीका ने, जिसे मध्य-पूर्व में बहुत बड़ी सफलताएँ और असफलताएँ मिलीं, यह सीख लिया है कि वह एक समूचे उप-महाद्वीप के राजनीतिक और आर्थिक निर्णयों का निर्देशन नहीं कर सकता, और यह कि केवल डालरों से कोई समाज सुखी नहीं हो जाता। अधिक विशिष्ट रूप में, हम यह सीख रहे हैं कि अन्यत्र की भाँति मध्य-पूर्व में भी, प्रभावकारी अमरीकी विदेश-नीति की एक अनिवार्य आवश्यकता यह है कि हम लोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हों—जीवन में अधिक सक्रिय भाग लेने की, अपनत्व की भावना में वृद्धि के लिए, और व्यक्तिगत न्याय तथा प्रतिष्ठा की बढ़ती हुई मात्रा के लिए उनकी तीव्र आकांक्षा को ज्यादा अच्छी तरह समझें।

अनुभव ने हमें सिखाया है कि जब इन मानवीय तत्वों की उपेक्षा की जाती है, तो तेज़ी से होने वाला आर्थिक विकास बहुधा निराशा का कारण बन जाता है, क्योंकि एक ओर पुराने सामाजिक सम्बन्ध टूट जाते हैं, दूसरी ओर लोग जितना पा सकते हैं, उससे अधिक पाने की आशा हम उनमें जगा देते हैं। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता।

चुनौती दोहरी है—आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधन खोजना, और यह काम ऐसी रीति से करना जिसमें व्यक्ति को अधिकाधिक मात्रा में निजी सन्तोष प्राप्त हो।

आम तौर पर, मध्य-पूर्व की वर्तमान मन स्थिति विध्यात्मक है, और कुछ हद तक ऐसा विश्वास करने का कारण है कि यह मन-स्थिति कायम रहेगी और विकसित होगी। अगर ऐसा हुआ तो विध्वंस, नगरों के विनाश, बदलती हुई निष्ठाओं, और गहरे जमे हुए संघर्षों की लम्बी परम्परा टूटेगी, जो इतने लम्बे समय से मध्य-पूर्व की विशेषता रही है। यह एक स्वागत-योग्य घटना होगी।

लेकिन हमे खतरे की निरन्तर चल रही अन्तर्धारा को उपेक्षनीय नही समझना चाहिए। कोई एक विस्फोटक दुर्घटना ही इस समय धीरे-धीरे हो रही प्रगति के क्रम को उलट सकती है, और सारे क्षेत्र को रक्तमय अव्यवस्था मे ढकेल सकती है। इस बीच सबसे बड़ी क्षेत्रीय समस्याएँ बहुत-कुछ अछूती ही बनी रहती हैं, और उनके सरल हलों की आशा करना भूल होगी।

मिसाल के लिए, जार्डन नदी और अरब शरणार्थियो की समस्याओ को हल करने की दिशा मे आगे बढ़ने के लिए, जिन्होंने मध्य-पूर्व को स्थायी सकट की स्थिति मे रखने मे योग दिया है, सभी पक्षो की ओर से हार्दिक प्रयत्नों की आवश्यकता होगी।

अन्ततोगत्वा, सभव है कि मध्य-पूर्व मे किसी एक प्रभावी विचार का उदय हो, जिसके लाभ सभी सम्बन्धित पक्षो के लिए इतने महत्त्वपूर्ण हो कि परम्परागत मतभेद भुला दिये जाएँ, जैसे यूरोप में उस समय 'सामान्य बाजार' ऐसे ही मतभेदो को मिटा रहा है। जब तक इस आवश्यक नयी मन स्थिति का विकास नही होता, तब तक हमे आर्थिक और राजनीतिक समजन की नित्य प्रति की समस्याओ के सम्बन्ध मे यथार्थ के अनुरूप व्यवहार करना होगा।

यहाँ इजराएल की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। एक पीढी से कम समय मे, इजराएल ने दुनिया मे विकास की सर्वाधिक तीव्र गतियो मे से एक प्राप्त कर ली है—आठ प्रतिशत वार्षिक। उसका प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पादन 1,000 डालर प्रति वर्ष से अधिक है, जो उसके मध्य-पूर्वी पडोसियो से कही ज्यादा है, और हालैण्ड, इटली, स्पेन, आस्ट्रिया, यूनान, या पुर्तगाल से भी ज्यादा है।

इजराएल की औद्योगिक विकास की गति 1961 मे 14 प्रतिशत थी, दुनिया की उच्चतम गतियो मे से एक। पिछले वर्ष की अपेक्षा उसका निर्यात 25 प्रतिशत अधिक था, और विदेशी मुद्रा की बचत 65 प्रतिशत अधिक थी।

इसके साथ ही, अरब बहिष्कार ने इजराएल को मध्य-पूर्व के बाहर मित्रो और बाजारो की खोज करने को मजबूर किया। इसका एक फल यह भी हुआ कि इजराएल ने अन्य देशो को प्राविधिक सहायता पहुँचाने का एक बडा कार्यक्रम बनाया, जो इस समय अफ्रीका, एशिया और लातिन अमरीका के बीस से अधिक राष्ट्रो मे चल रहा है। पिछले वर्ष बावन देशो के एक हजार छात्र इजराएल मे अध्ययन कर रहे थे, और दो सौ से अधिक इजराइएली विशेषज्ञ अल्पविकसित देशो मे सलाहकारो का काम कर रहे थे।

इजराएल के पडोसी अभी इन प्रयत्नो को समझने और उनकी तारीफ करने की मन.स्थिति मे नही हैं। इजराएल की सफलता ही अभी एक तर्कहीन विरोध-भावना उत्पन्न करती है। लेकिन जब मध्य-पूर्व के राष्ट्र स्वय अपनी राष्ट्रीय विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने मे सफल होगे, और उनमे नया विश्वास आने से सहिष्णुता और समझ का विकास होगा, तो यह स्थिति भी बदल सकती है।

इस प्रसंग में मध्य-पूर्व के लिए यथार्थ के अनुकूल अमरीकी नीति की मूल आवश्यकताएँ क्या हैं ?

प्रथम, अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखने में इस क्षेत्र के सभी राष्ट्रों को सहायता करने को हमें तैयार रहना चाहिए। इनके लिए, किसी भी ओर से आक्रमण होने पर, पर्याप्त और तत्काल उपलब्ध अमरीकी रोक की आवश्यकता है।

दूसरे, हमें विशिष्ट तनावों को कम करने के लिए, और अरब-इजराएली झगड़े को खुले संघर्ष का रूप ग्रहण करने से रोकने के लिए, जो तेजी से फैल सकता है, संयुक्त राष्ट्र संघ के उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए।

तीसरे, हमें सभी मध्य-पूर्वी देशों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपने पड़ोसियों के साथ क्रुद्ध प्रचारात्मक बहसों में कम समय लगाएँ, और स्वयं अपने आन्तरिक विकास की समस्याओं को हल करने में ज्यादा। हम उन देशों को विशेष अग्रता-सहायता दे सकते हैं, जो केवल कुछ धनी लोगों की ही नहीं, वरन् अपने सभी नागरिकों की हालत सुधारने के लिए सचमुच चिन्तित हैं।

चौथे, मध्य-पूर्व के पड़ोसी राष्ट्रों के बीच सहयोग का कोई आधार प्राप्त करने के लिए हमें लगातार प्रयत्न करना चाहिए, चाहे सहयोग के क्षेत्र कितने भी अस्थायी या सीमित क्यों न हों।

मध्य-पूर्व में या अन्यत्र कहीं, स्थायित्व के लिए कोई मन्त्र नहीं है। अपनी विशाल सैन्य और औद्योगिक शक्ति के बावजूद, अन्यत्र की भाँति वहाँ भी घटनाओं को निर्देशित करने की हमारी क्षमता बिलकुल गौण है।

फिर भी, धैर्यपूर्ण कूटनीति, आक्रमण की धमकियों का सामना करने की दृढ़ तत्परता, दूसरे लोगों के उद्देश्यों की संवेदनशील समझ, और आर्थिक विकास में सहायक होने में अपने साधनों का बुद्धिपूर्ण उपयोग, इनसे ही शायद हम अव्यवस्था को रोक कर, राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व में अभिवृद्धि कर सकते हैं।

कम से कम एक बात निश्चित है—केवल न्यायपूर्ण समाजों के निर्माण से ही, जिनके नागरिकों को वास्तविक स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, और भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हों, स्थायी विश्वशान्ति की स्थापना की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में मध्य-पूर्व का भावी घटनाक्रम अनिश्चित है। लेकिन आशाहीन नहीं है।

बत्तीस

अफ्रीका में एक यात्री

सहारा के दक्षिण में, श्रीमती बोल्स के साथ 1955 की सर्दियों में छह सप्ताह की अफ्रीका-यात्रा सम्बन्धी ये टिप्पणियाँ, जिनमें लेखक की पैनी दृष्टि परिलक्षित होती है, अपने परिवार को लिखे गए उनके अनौपचारिक पत्रों से ली गई हैं।

अफ्रीका आने के पहले हम से बहुतेरे लोगों ने कहा था कि अफ्रीका एक नहीं है, वरन् उसके कम से कम आधे दर्जन रूप हैं। अफ्रीकी महाद्वीप में केवल दो सप्ताह के अन्दर ही हमने ऐसा बहुत कुछ देखा है, जो इस पूर्व-सूचना की पुष्टि करता है।

एक पराकाष्ठा पर मुस्लिम उत्तरी अफ्रीका है, जिसमें लगभग 25 लाख फ्रांसीसी और इतालवी लोग निवास करते हैं। दूसरी पराकाष्ठा पर दक्षिण अफ्रीका है, जहाँ हठी गोरों की उतनी ही बड़ी संख्या है। पुर्तगाली पूर्व और पश्चिम अफ्रीका, और अंग्रेजी पूर्व अफ्रीका भी इसी कारण और ऐसे ही विस्फोटक हैं—गोरे औपनिवेशिक, जो आए, देखा, खुश हुए, और जम गए।

अंग्रेजी पश्चिम अफ्रीका इसके विपरीत है, जहाँ यूरोपीय लोग कम हैं, और जहाँ स्वतन्त्रता का, जिम्मेदारी से मुक्त होने को उत्सुक अंग्रेज स्वागत करेंगे। सहारा के दक्षिण में फ्रांसीसी अफ्रीका और बेल्जियन कांगो की स्थिति भी भिन्न है, जहाँ ईमानदार औपनिवेशिक प्रशासकों की स्पष्ट योजनाएँ भी इन क्षेत्रों के भविष्य पर लगे हुए विशाल प्रश्न-चिन्ह को नहीं मिटा पातीं। और अन्त में स्वतन्त्र अफ्रीका है—लाइबेरिया, इथियोपिया, मिस्र, लीबिया, और शीघ्र ही सूडान—जिनमें से हर एक के सामने अपनी विशिष्ट समस्याएँ हैं, जिनके लिए अब उपनिवेशवाद को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

अफ्रीकी दृश्य की इन विभिन्नताओं में से कुछ इन टिप्पणियों में और बाद की टिप्पणियों में व्यक्त होंगी। ये टिप्पणियाँ मैंने इच्छानुसार, अनियोजित ढंग से लिख डाली हैं और इनमें उस परिप्रेक्ष्य का अभाव है जो बाद में विमर्श और दूरी शायद प्रदान करें।

× × ×

अफ्रीका का प्रभाव मुझ पर एक खाली महाद्वीप होने का पड़ता है। एशिया के बाद इस पर विशेषतः ध्यान जाता है, और दोनों का अन्तर मुझे निरन्तर प्रभावित

करता है। अफ्रीका में लोगों की सापेक्षिक अल्पसंख्या का क्या आर्थिक विकास की समस्या पर जबरदस्त प्रभाव नहीं पड़ेगा ?

मिसाल के लिए, बेल्जियन कांगो प्रसाधनों में उतना ही समृद्ध है जितना हिन्दुस्तान, और लगभग उतना ही बड़ा है। लेकिन हिन्दुस्तान के छत्तीस करोड़ लोगों की तुलना में, उसकी आबादी केवल एक करोड़ बीस लाख है। उसके गवर्नर ने मुझसे कहा—"अगर हमारी आबादी पांच गुनी होती, तो हमारा विकास दुगुनी तेज़ी से होता।"

एशिया में सरकारें आधुनिक मशीनों को प्रोत्साहित करने में हिचकती हैं। इतने अधिक लोगों को काम की जरूरत होने के कारण, वेतन और क्रय शक्ति में बड़ी धीमी गति से वृद्धि होती है। अफ्रीका में अभी भी श्रम की बचत करने वाले हर ढंग का प्रयोग करने की मांग है। अतः अफ्रीका में कौशलों का विकास होने पर, कहीं अधिक वेतनों और ऊँचे जीवन-स्तरों के अवसर उपलब्ध होंगे। इसके राजनीतिक परिणाम उलझे हुए और अप्रत्याशित हो सकते हैं।

आज कांगो के कारखाने हिन्दुस्तान के कारखानों से कहीं ज्यादा आधुनिक हैं। कपड़ा मिल के मज़दूर को दो डालर रोज के अलावा एक मकान, अपने और अपने परिवार के लिए चिकित्सा का पूरा खर्च, और भोजन भत्ता मिलता है।

× × ×

एक अंग्रेज जिला अधिकारी से, जो 1938 में गोल्ड कोस्ट आया था, मैंने उस समय की उसकी जिम्मेदारियों के बारे में पूछा। उसने कहा, "प्रथम, क़ानून और व्यवस्था, और फिर संचार सुविधाएँ, और छूत के रोग। (छूत के रोग वे होते हैं, जिनके यूरोपीय लोगों को लगने की संभावना सबसे अधिक होती है।)

मैंने उससे पूछा कि अब उसका काम क्या है। उसके ढंग से ऐसा नहीं लगता था कि जो परिवर्तन हो गया है उसके महत्त्व को वह समझता है, किन्तु उसका उत्तर था, "प्रथम, गाँव की सड़कें और पानी। फिर स्कूल, मलेरिया नियन्त्रण, गाँव के अस्पताल, और खेती के उत्पादन में सुधार।"

यह कहना अनुचित न होगा कि औपनिवेशिक सरकारों ने युद्ध के बाद से ही अफ्रीका के लोगों में रुचि लेनी आरम्भ की है। युद्ध के पहले ये सरकारें अफ्रीकियों के प्रति काम करती थीं। अब वे अफ्रीकियों के लिए काम करती हैं। यह ठोस प्रगति है। लेकिन जब तक वे उनके साथ काम नहीं करतीं, तब तक क्या आवश्यक साझेदारियाँ बन सकती हैं ?

× × ×

एक कटु अफ्रीकी ने मुझ से आकरा में कहा—"गोरे लोग ईसा के नाम पर अफ्रीका में गुलामी लाए।"

ग़लतियों में धर्म-प्रचारकों का भी हिस्सा रहा है, लेकिन झाड़ियों के इलाक़े में सफर करते हुए, मुझे उनकी स्फूर्ति, साहस और उद्देश्य भावना पर लगातार आश्चर्य

होता रहा। इसके अतिरिक्त, सामाजिक न्याय के लिए काले मनुष्य की मांग के सम्बन्ध में धीरज खोने से पहले हम याद कर लें, कि हमारी ईसाई शिक्षाओं से ही उनमें उन आकांक्षाओं और आस्था का विकास हुआ है, जिन्होंने अब उसका 'उपयोग' कठिन बना दिया है।

× × ×

गोल्ड कोस्ट में सम्भवतः अंग्रेज वही असमंजस शिक्षा-व्यवस्था निर्मित करने जा रहे हैं, जो हिन्दुस्तान में इतनी अधिक संख्या में हताश बुद्धि-जीवियों को जन्म दे रही है।

जब मैंने एक अत्यन्त बुद्धिपूर्ण अंग्रेज से यह बात कही, उन्होंने उत्तर दिया, "हिन्दुस्तान में व्यवस्था कमजोर है, क्योंकि वहाँ शिक्षा का स्तर गिर जाने दिया गया। यहाँ गोल्ड कोस्ट में हम ध्यान रखेंगे कि ऑक्सफोर्ड वाला स्तर कायम रहे।"

मैंने कहा, "क्या यह सम्भव नहीं कि आक्सफोर्ड-कैम्ब्रिज या हार्वर्ड-येल वाली शिक्षा सभी योग्य अफ्रीकियों के लिए सर्वोत्तम शिक्षा न हो, जिनके नए समाज को प्राविधिक कौशल प्राप्त करने की जल्दी है?

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, अफ्रीका के लिए आशा का सर्वोत्तम मार्ग आक्सफोर्ड जैसी शिक्षा ही है।" इसमें बहस की कोई गुंजाइश नहीं थी, और हमने बातचीत का विषय बदल दिया।

यद्यपि अफ्रीकी नेताओं के लिए उदार शिक्षा की आवश्यकता को कम समझना भूल होगी, किन्तु मेरा विचार है कि अंग्रेजों का एकांगी दृष्टिकोण अनुपयुक्त है। इस समय अगर किसी चीज पर बहुत अधिक जोर देने की जरूरत है, तो वह विशेषज्ञों का प्रशिक्षण है।

अफ्रीका को योग्य राजनीतिक नेतृत्व के अलावा इंजीनियरों, डाक्टरों और कृषि विशेषज्ञों की भी जरूरत है। जिसने भी एशिया और अफ्रीका को देखा है, वह इस सम्बन्ध में विवाद नहीं करेगा कि दोनों को ही वकीलों की जरूरत कम है और खेत में या जैसा यहाँ कहते हैं, 'फाड़ी' में काम करने वाले विशेषज्ञों की जरूरत ज्यादा है।

शिक्षा के सम्बन्ध में विरोधी औपनिवेशिक दृष्टिकोण बड़े दिलचस्प हैं। अंग्रेज लोग विश्वासपूर्वक अच्छी शिक्षा के लाभों पर भरोसा करते हैं, विशेषतः ऑक्सफोर्ड स्तर की शिक्षा पर, और उनका ख्याल है कि जितने अधिक स्नातक हों, उतना ही अच्छा। गोल्ड कोस्ट के तीन हजार भावी नागरिक इस समय विदेशों में अंग्रेजी भाषी संस्थाओं में शिक्षा पा रहे हैं और एक हजार छात्रों के लिए ऑक्सफोर्ड के नमूने पर एक विश्वविद्यालय आक्रा में बन रहा है।

दूसरी ओर बेल्जियन अधिकारी शिक्षित अफ्रीकी के ख्याल से ही भड़कते हैं। कांगो के ग्यारह छात्र इस समय बेल्जियम में पढ़ रहे हैं। अन्य किसी देश में एक भी नहीं। और लियोपोल्डविले के बाहर जिस विश्वविद्यालय की अभी शुरूआत भर हुई है, उसके बारे में ख्याल है कि जहाँ तक अनुमान लगाया जा सकता है, उसमें स्नातकों

की संख्या प्रतिवर्ष 'छह या सात से अधिक नहीं' होगी।

फ्रांसीसी लोग इन दोनों पराकाष्ठाओं के बीच कहीं अपना मार्ग तलाश कर रहे हैं। फ्रांसीसी भूमध्य-क्षेत्रीय अफ्रीका के (जिसका क्षेत्र अमरीका का आधा है, लेकिन आबादी केवल चालीस लाख है) तीन सौ छात्र फांस में पढ़ रहे हैं। उनमें से अधिकांश को उदार कलाओं से दूर, विशेष व्यवसायों की शिक्षा दी जा रही है।

सब मिलाकर शिक्षा की सुविधाएँ सभी औपनिवेशिक देशों में तेज़ी से बढ़ रही हैं। सामान्य अनुमान है कि छह वर्ष के बच्चों में से आधे स्कूल जाते हैं, जो अगर सही है, तो हिन्दुस्तान से अधिक है।

फ्रांसीसी भूमध्य क्षेत्रीय अफ्रीका और बेल्जियन कांगो में सारे समय में केवल चार अफ्रीकियों से मेरा परिचय नाम लेकर कराया गया। वे सभी दब्बू थे, और उन्होंने अपनी कोई राय व्यक्त नहीं की। फिर भी लियोपोल्डविले में मैंने उनमें से तीन से पूछा "वर्तमान व्यवस्था में आपके लोग सबसे अधिक आलोचना किस बात की करते हैं?" एक क्षण की हिचक के बाद उत्तर मिला, "राजनीतिक भेदभाव की उतनी नहीं जितनी सामाजिक भेदभाव की। एक काला शहर है, और एक गोरा शहर है, और अँधेरा होने के बाद एक का आदमी दूसरे में नहीं जा सकता।"

× × ×

मध्य अफ्रीका में हमारे अमरीकी सूचना कार्य का लक्ष्य विशाल अफ्रीकी बहुसंख्या नहीं है, जो भविष्य का निर्माण करेगी, वरन् बहुत ही थोड़े-से यूरोपीय लोग हैं। लियोपोल्डविले के हमारे पुस्तकालय में पुस्तकें लेने के लिए 680 लोगों ने नाम दर्ज कराए हैं। उनमें केवल बारह अफ्रीकी हैं।

कुल 4,300 पुस्तकें हैं जिनमें से केवल 280 फ्रांसीसी भाषा में हैं। मैंने पूछा कि लियोपोल्डविले में कितने लोग अंग्रेज़ी बोल या पढ़ सकते हैं। उत्तर मिला, "शायद अठारह सौ, जिनमें से कुछ को छोड़कर शेष सब बेल्जियन हैं।"

हमारे थोड़े-से धन को अधिक बुद्धिपूर्ण रीतियों से खर्च करने के तरीके अवश्य ही होंगे। अगर हम अफ्रीकी बहुसंख्या के समक्ष अपनी बात सफाई से नहीं कह सकते तो हमें अपने प्रयत्नों को कहीं और केन्द्रित करना चाहिए।

यद्यपि लियोपोल्डविले में दो प्रमुख दैनिक पत्र हैं, किन्तु तीन लाख अफ्रीकियों में उनकी केवल 1,600 प्रतियाँ बिकती हैं। शंकालु यूरोपीय लोगों को इन आंकड़ों से बड़ी सान्त्वना मिलती है, क्योंकि उनसे पता चलता है कि खतरनाक विचारों को कम से कम किया जा सकता है।

× × ×

उत्तरी रोडेशिया की जिस खान में हम गए, वहाँ 9,000 अफ्रीकी श्रमिक हैं, और 1,500 यूरोपीय हैं। दोनों के अपने अलग संगठन हैं।

यूरोपीय श्रमिकों का औसत मासिक वेतन 294 डालर है। इसके अलावा उन्हें 60 प्रतिशत 'तांबा बोनस' मिलता है, और मामूली मासिक चन्दे पर एक प्रति आयु-

निक मकान मिलता है, और मामूली मासिक चन्दे पर एक अति आधुनिक क्लब की सदस्यता मिलती है। उनका वेतन अमरीकी तांबा खनिकों से काफी अधिक है, यद्यपि जीवन-निर्वाह का खर्च अमरीका का लगभग आधा है।

ज़मीन के नीचे काम करने वाले अफ्रीकी खनिक का औसत मासिक वेतन 18 डालर है, जिसके अलावा उसे एक छोटा, लेकिन उसकी ज़रूरतों के लिए पर्याप्त मकान मिलता है, दैनिक भोजन का राशन मिलता है, और मुफ्त चिकित्सा मिलती है। सभी सुविधाओं को ध्यान में रखें, तो अनुपात लगभग 20 और 1 का है। ये आंकड़े संघ शासन द्वारा प्रकाशित 'मथली डाइजेस्ट ऑफ स्टैटिस्टिक्स' (मासिक सांख्यिकी सार) के दिसम्बर, 1954 संस्करण से लिये गए हैं।

निस्सन्देह, अफ्रीकियों की अपेक्षा यूरोपीय ऐसा काम अधिक करते हैं जिसमें अधिक कौशल की आवश्यकता होती है। ऐसे कामों के लिए किसी अमरीकी खान में वेतनों का अनुपात तीन और दो का, या अधिक से अधिक दो और एक का होगा।

दक्षिणी रोडेशिया में औसत वेतन उत्तरी रोडेशिया से लगभग 30 प्रतिशत कम है। कानूनी न्यूनतम वेतन 15 डालर मासिक है, और सत्तर प्रतिशत अफ्रीकी न्यूनतम स्तर पर हैं। मुझे बताया गया कि सारे संघ में, कम से कम वेतन पाने वाले यूरोपीय से अधिक वेतन पाने वाले अफ्रीकी 'दो दर्जन से अधिक नहीं' हैं।

मैंने पूछा कि अफ्रीकी श्रमिक क्या वेतन मांगते हैं। उत्तर मिला, "अठारह पाउण्ड (48 डालर) मासिक, जो स्पष्टतः राजनीतिक उद्देश्यों से की गई, उग्र तत्वों की मांग है।"

× × ×

मैंने एक उच्च अधिकारी से कहा, "मैं कुछ उलझन में हूँ। मुझे बताया गया है कि गोल्ड कोस्ट के अफ्रीकी, और दक्षिणी रोडेशिया के अफ्रीकी एक ही बान्टू जाति के हैं। लेकिन गोल्ड कोस्ट के चार हज़ार छात्र देश-विदेश के कालेजों में पढ़ने जाते हैं, जब कि यहां सारे संघ में केवल पचास अफ्रीकी स्नातक हैं। इसके अतिरिक्त, गोल्ड कोस्ट के शासन में बहुसंख्यक बड़े ही योग्य अफ्रीकी हैं, जबकि यहां कोई नहीं हैं। इसका कारण क्या है?"

अधिकारी थोड़ा परेशान नज़र आया। उन्होंने स्वीकार किया कि बात अजीब ज़रूर थी, लेकिन उन्होंने कभी इस पर सचमुच विचार नहीं किया था।

उत्तर सरल है। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन अफ्रीकियों की प्रगति के लिए हर तरह के प्रयत्न कर रहा है। यहां मध्य अफ्रीकी संघ में, उपनिवेश विभाग का दखल कम होने के कारण, दो लाख विशेषाधिकारयुक्त यूरोपीय लोग साठ लाख अफ्रीकियों की आशाओं और आकांक्षाओं के मार्ग में चट्टान बनकर अड़े हुए हैं। ये टूटी हुई आशाएं किस दिन फूट पड़ेंगी।

× × ×

पुनरावलोकन करते हुए, मैं कांगो के सम्बन्ध में कुछ बातें और जोड़ दूँ। बेल्जियम लोग, अपने दृष्टिकोण के अनुसार, इस विशाल क्षेत्र के विकास का एक सुनियोजित, सुसंगठित, और तर्कसंगत कार्यक्रम चला रहे हैं।

इस कार्यक्रम की दुर्बलता यह प्रतीत होती है कि वे अफ्रीकियों को किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा—प्राविधिक शिक्षा भी—प्राप्त नहीं करने देना चाहते, क्योंकि उन्हें डर है कि तब अफ्रीकी लोग अपने भविष्य का निर्माण करने की जिम्मेदारी में अधिकाधिक हिस्से की माँग करने लगेंगे।

खतरा इस संभावना में नहीं है कि बेल्जियन लोग अन्ततोगत्वा राष्ट्रवाद की शक्ति से समझौता नहीं करेंगे, बल्कि इसमें है कि जब वे दबाव में आकर समझौता करेंगे, तो अफ्रीकी लोग उन जिम्मेदारियों को निभाने में लगभग पूर्णतः अनुभवहीन होंगे, जिनकी वे निश्चित रूप से माँग करेंगे, और अन्ततः प्राप्त करेंगे।

यद्यपि अंग्रेजी उपनिवेशों में राजनीतिक शान्ति कांगो की तुलना में बहुत कम प्रतीत होती है, किन्तु इसका कारण यह है कि दक्षिणी रोडेशिया के अतिरिक्त, अंग्रेज लोग सचमुच अफ्रीकियों को यथासंभव अधिक से अधिक शासकीय अनुभव प्रदान करने की चेष्टा कर रहे हैं। फलस्वरूप, जब राष्ट्रवादी शक्तियाँ वहाँ अन्ततः सत्तारूढ़ होंगी, तो अपेक्षतया शान्तिपूर्ण संक्रमण की संभावना, वहाँ मुझे अधिक प्रतीत होती है।

× × ×

दक्षिणी रोडेशिया में जो यूरोपीय लोग हमें मिले, उन्होंने हमारा बड़ा सत्कार किया और बड़ी मित्रता का व्यवहार किया। इस कारण उनकी नीतियों और दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में अपनी परेशानी को कठोरता से व्यक्त करने में मुझे कुछ दु:ख होता है। एक अंतिम उदाहरण से संकेत मिलेगा कि वे जिन्दगी की असलियतों से कितनी दूर हैं, और वहाँ जातीय भेदभाव से अपेक्षतया मुक्त यूगाण्डा की तुलना में स्थिति कितनी भिन्न है।

सैलिसबरी में हमारे सम्मान में तीन भोज हुए, सभी में औपचारिक पोशाक आवश्यक थी। अन्तिम भोज गवर्नर-जनरल ने दिया, जिसमें हमारे अलावा सोलह व्यक्ति और थे। सोलह में केवल दो ही उपाधिहीन थे—दो युवा सैनिक सहायक, जो हमारा मार्ग-दर्शन कर रहे थे। दो 'लार्ड' थे, पाँच 'सर' थे, और उनकी पत्नियाँ थीं। इन तीनों ही पार्टियों में किसी 'देशी' आदमी का वैसे ही कोई स्थान नहीं था, जैसे किसी भेड़िए का।

यूगाण्डा में स्थिति प्रसन्नतादायक रूप में भिन्न थी। पहली रात, खूबसूरत विक्टोरिया झील के किनारे गवर्नर के भवन में भोज के समय कम्पाला के भारतीय मेयर उपस्थित थे, कई अफ्रीकी अधिकारी थे, और दो अमरीकी समाज शास्त्री व उनकी पत्नियाँ थीं। दूसरी रात कम्पाला में हमारे सम्मान में एक भोज दिया गया, जिसमें भारतीयों और अफ्रीकियों की संख्या यूरोपीय लोगों से कहीं अधिक थी। एक

निक मकान मिलता है, और मामूली मासिक चन्दे पर एक अति आधुनिक क्लब की सदस्यता मिलती है। उनका वेतन अमरीकी तांबा खनिकों से काफी अधिक है, यद्यपि जीवन-निर्वाह का खर्च अमरीका का लगभग आधा है।

ज़मीन के नीचे काम करने वाले अफ्रीकी खनिक का औसत मासिक वेतन 18 डालर है, जिसके अलावा उसे एक छोटा, लेकिन उसकी ज़रूरतों के लिए पर्याप्त मकान मिलता है, दैनिक भोजन का राशन मिलता है, और मुफ्त चिकित्सा मिलती है। सभी सुविधाओं को ध्यान में रखें, तो अनुपात लगभग 20 और 1 का है। ये आँकड़े संघ शासन द्वारा प्रकाशित 'मंथली डाइजेस्ट ऑफ स्टैटिस्टिक्स' (मासिक सांख्यिकी सार) के दिसम्बर, 1955 संस्करण से लिये गए हैं।

निस्सन्देह, अफ्रीकियों की अपेक्षा यूरोपीय ऐसा काम अधिक करते हैं जिसमें अधिक कौशल की आवश्यकता होती है। ऐसे कामों के लिए किसी अमरीकी खान में वेतनों का अनुपात तीन और दो का, या अधिक से अधिक दो और एक का होगा।

दक्षिणी रोडेशिया में औसत वेतन उत्तरी रोडेशिया से लगभग 30 प्रतिशत कम है। कानूनी न्यूनतम वेतन 15 डालर मासिक है, और सत्तर प्रतिशत अफ्रीकी न्यूनतम स्तर पर हैं। मुझे बताया गया कि सारे संघ में, कम से कम वेतन पाने वाले यूरोपीय से अधिक वेतन पाने वाले अफ्रीकी 'दो दर्जन से अधिक नहीं' हैं।

मैंने पूछा कि अफ्रीकी खनिक क्या वेतन मांगते हैं। उत्तर मिला, "अठारह पाउण्ड (48 डालर) मासिक, जो स्पष्टतः राजनीतिक उद्देश्यों से की गई, उग्र तत्वों की मांग है।"

× × ×

मैंने एक उच्च अधिकारी से कहा, "मैं कुछ उलझन में हूं। मुझे बताया गया है कि गोल्ड कोस्ट के अफ्रीकी, और दक्षिणी रोडेशिया के अफ्रीकी एक ही बान्तू जाति के हैं। लेकिन गोल्ड कोस्ट के चार हज़ार छात्र देश-विदेश के कालेजों में पढ़ने जाते हैं, जब कि यहां सारे संघ में केवल पचास अफ्रीकी स्नातक हैं। इसके अतिरिक्त, गोल्ड कोस्ट के शासन में बहुसंख्यक बड़े ही योग्य अफ्रीकी हैं, जबकि यहां कोई नहीं है। इसका कारण क्या है?"

अधिकारी थोड़ा परेशान नज़र आया। उन्होंने स्वीकार किया कि बात अजीब ज़रूर थी, लेकिन उन्होंने कभी इस पर सचमुच विचार नहीं किया था।

उत्तर सरल है। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन अफ्रीकियों की प्रगति के लिए हर तरह के प्रयत्न कर रहा है। यहां मध्य अफ्रीकी संघ में, उपनिवेश विभाग का दखल कम होने के कारण, दो लाख विशेषाधिकारयुक्त यूरोपीय लोग साठ लाख अफ्रीकियों की आशाओं और आकांक्षाओं के मार्ग में चट्टान बनकर खड़े हुए हैं। ये टूटी हुई आशाएँ किस दिन फूट पड़ेंगी।

× × ×

पुनरावलोकन करते हुए, मैं कांगो के सम्बन्ध में कुछ बातें और जोड़ दूँ। बेल्जियम लोग, अपने दृष्टिकोण के अनुसार, इस विशाल क्षेत्र के विकास का एक सुनियोजित, सुसंगठित, और तर्कसंगत कार्यक्रम चला रहे हैं।

इस कार्यक्रम की दुर्बलता यह प्रतीत होती है कि वे अफ्रीकियों को किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा—प्राविधिक शिक्षा भी—प्राप्त नहीं करने देना चाहते, क्योंकि उन्हें डर है कि तब अफ्रीकी लोग अपने भविष्य का निर्माण करने की जिम्मेदारी में अधिकाधिक हिस्से की माँग करने लगेंगे।

खतरा इस संभावना में नहीं है कि बेल्जियन लोग अन्ततोगत्वा राष्ट्रवाद की शक्ति से समझौता नहीं करेंगे, बल्कि इसमें है कि जब वे दबाव में आकर समझौता करेंगे, तो अफ्रीकी लोग उन जिम्मेदारियों को निभाने में लगभग पूर्णतः अनुभवहीन होंगे, जिनकी वे निश्चित रूप में माँग करेंगे, और अन्ततः प्राप्त करेंगे।

यद्यपि अंग्रेजी उपनिवेशों में राजनीतिक शान्ति कांगो की तुलना में बहुत कम प्रतीत होती है, किन्तु इसका कारण यह है कि दक्षिणी रोडेशिया के अतिरिक्त, अंग्रेज लोग सचमुच अफ्रीकियों को यथासंभव अधिक से अधिक शासकीय अनुभव प्रदान करने की चेष्टा कर रहे हैं। फलस्वरूप, जब राष्ट्रवादी शक्तियाँ वहाँ अन्ततः सत्तारूढ़ होंगी, तो अपेक्षतया शान्तिपूर्ण संक्रमण की संभावना, वहाँ मुझे अधिक प्रतीत होती है।

× × ×

दक्षिणी रोडेशिया में जो यूरोपीय लोग हमें मिले, उन्होंने हमारा बड़ा सत्कार किया और बड़ी मित्रता का व्यवहार किया। इस कारण उनकी नीतियों और दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में अपनी परेशानी को कठोरता से व्यक्त करने में मुझे कुछ दुःख होता है। एक अंतिम उदाहरण से संकेत मिलेगा कि वे जिन्दगी की असलियतों से कितनी दूर हैं, और वहाँ जातीय भेदभाव से अपेक्षतया मुक्त युगाण्डा की तुलना में स्थिति कितनी भिन्न है।

सैलिसबरी में हमारे सम्मान में तीन भोज हुए, सभी में औपचारिक पोशाक आवश्यक थी। अन्तिम भोज गवर्नर-जनरल ने दिया, जिसमें हमारे अलावा सोलह व्यक्ति और थे। सोलह में केवल दो ही उपाधिहीन थे—दो युवा सैनिक सहायक, जो हमारा मार्ग-दर्शन कर रहे थे। दो 'लार्ड' थे, पाँच 'सर' थे, और उनकी पत्नियाँ थीं। इन तीनों ही पार्टियों में किसी 'देशी' आदमी का वैसे ही कोई स्थान नहीं था, जैसे किसी भेड़िए का।

युगाण्डा में स्थिति प्रसन्नतादायक रूप में भिन्न थी। पहली रात, खूबसूरत विक्टोरिया झील के किनारे गवर्नर के भवन में भोज के समय कम्पाला के भारतीय मेयर उपस्थित थे, कई अफ्रीकी अधिकारी थे, और दो अमरीकी समाज शास्त्री व उनकी पत्नियाँ थीं। दूसरी रात कम्पाला में हमारे सम्मान में एक भोज दिया गया, जिसमें भारतीयों और अफ्रीकियों की संख्या यूरोपीय लोगों से कहीं अधिक थी। एक

निक मकान मिलता है, और मामूली मासिक चन्दे पर एक अति आधुनिक क्लब की सदस्यता मिलती है। उनका वेतन अमरीकी तांबा खनिकों से काफी अधिक है, यद्यपि जीवन-निर्वाह का खर्च अमरीका का लगभग आधा है।

जमीन के नीचे काम करने वाले अफ्रीकी खनिक का औसत मासिक वेतन 18 डालर है, जिसके अलावा उसे एक छोटा, लेकिन उसकी जरूरतों के लिए पर्याप्त मकान मिलता है, दैनिक भोजन का राशन मिलता है, और मुफ्त चिकित्सा मिलती है। सभी सुविधाओं को ध्यान में रखें, तो अनुपात लगभग 20 और 1 का है। ये आंकड़े सघ शासन द्वारा प्रकाशित 'मथली डाइजेस्ट ऑफ स्टैटिस्टिक्स' (मासिक सांख्यिकी सार) के दिसम्बर, 1954 सस्करण से लिये गए हैं।

निस्सन्देह, अफ्रीकियों की अपेक्षा यूरोपीय ऐसा काम अधिक करते हैं जिसमें अधिक कौशल की आवश्यकता होती है। ऐसे कामों के लिए किसी अमरीकी खान में वेतनों का अनुपात तीन और दो का, या अधिक से अधिक दो और एक का होगा।

दक्षिणी रोडेशिया मे औसत वेतन उत्तरी रोडेशिया मे लगभग 30 प्रतिशत कम है। कानूनी न्यूनतम वेतन 15 डालर मासिक है, और सत्तर प्रतिशत अफ्रीकी न्यूनतम स्तर पर हैं। मुझे बताया गया कि सारे सघ मे, कम से कम वेतन पाने वाले यूरोपीय से अधिक वेतन पाने वाले अफ्रीकी 'दो दर्जन से अधिक नहीं' है।

मैंने पूछा कि अफ्रीकी खनिक क्या वेतन मांगते हैं। उत्तर मिला, "अठारह पाउण्ड (48 डालर) मासिक, जो स्पष्टतः राजनीतिक उद्देश्यों से की गई, उग्र तत्वों की मांग है।"

× × ×

मैंने एक उच्च अधिकारी से कहा, "मैं कुछ उलझन मे हूँ। मुझे बताया गया है कि गोल्ड कोस्ट के अफ्रीकी, और दक्षिणी रोडेशिया के अफ्रीकी एक ही बान्टू जाति के हैं। लेकिन गोल्ड कोस्ट के चार हजार छात्र देश-विदेश के कालेजों मे पढने जाते हैं, जब कि यहाँ सारे सघ मे केवल पचास अफ्रीकी स्नातक है। इसके अतिरिक्त, गोल्ड कोस्ट के शासन में बहुसख्यक बड़े ही योग्य अफ्रीकी हैं, जबकि यहाँ कोई नहीं हैं। इसका कारण क्या है?"

अधिकारी थोड़ा परेशान नजर आया। उन्होने स्वीकार किया कि बात अजीब जरूर थी, लेकिन उन्होंने कभी इस पर सचमुच विचार नहीं किया था।

उत्तर सरल है। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका मे औपनिवेशिक शासन अफ्रीकियों की प्रगति के लिए हर तरह के प्रयत्न कर रहा है। यहाँ मध्य अफ्रीकी सघ मे, उपनिवेश विभाग का दखल कम होने के कारण, दो लाख विशेषाधिकारयुक्त यूरोपीय लोग साठ लाख अफ्रीकियों की आशाओ और आकांक्षाओं के मार्ग मे चट्टान बनकर अड़े हुए हैं। ये टूटी हुई आशाएँ किस दिन फूट पडेंगी।

× × ×

पुनरावलोकन करते हुए, मैं कांगो के सम्बन्ध में कुछ बातें और जोड़ दूं। वेल्जियम लोग, अपने दृष्टिकोण के अनुसार, इस विशाल क्षेत्र के विकास का एक सुनियोजित, सुसंगठित, और तर्कसंगत कार्यक्रम चला रहे हैं।

इस कार्यक्रम की दुर्बलता यह प्रतीत होती है कि वे अफ्रीकियों को किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा—प्राविधिक शिक्षा भी—प्राप्त नहीं करने देना चाहते, क्योंकि उन्हें डर है कि तब अफ्रीकी लोग अपने भविष्य का निर्माण करने की जिम्मेदारी में अधिकाधिक हिस्से की मांग करने लगेंगे।

खतरा इस सम्भावना में नहीं है कि वेल्जियन लोग अन्ततोगत्वा राष्ट्रवाद की शक्ति से समझौता नहीं करेंगे, बल्कि इसमें है कि जब वे दबाव में आकर समझौता करेंगे, तो अफ्रीकी लोग उन जिम्मेदारियों को निभाने में लगभग पूर्णतः अनुभवहीन होंगे, जिनकी वे निश्चित रूप से मांग करेंगे, और अन्ततः प्राप्त करेंगे।

यद्यपि अंग्रेजी उपनिवेशों में राजनीतिक शान्ति कांगो की तुलना में बहुत कम प्रतीत होती है, किन्तु इसका कारण यह है कि दक्षिणी रोडेशिया के अतिरिक्त, अंग्रेज लोग सचमुच अफ्रीकियों को यथासंभव अधिक से अधिक शासकीय अनुभव प्रदान करने की चेष्टा कर रहे हैं। फलस्वरूप, जब राष्ट्रवादी शक्तियां वहां अन्ततः सत्तारूढ़ होंगी, तो अपेक्षतया शान्तिपूर्ण संक्रमण की संभावना, वहां मुझे अधिक प्रतीत होती है।

× × ×

दक्षिणी रोडेशिया में जो यूरोपीय लोग हमें मिले, उन्होंने हमारा बड़ा सत्कार किया और बड़ी मित्रता का व्यवहार किया। इस कारण उनकी नीतियों और दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में अपनी परेशानी को कठोरता से व्यक्त करने में मुझे कुछ दु:ख होता है। एक अंतिम उदाहरण से संकेत मिलेगा कि वे जिन्दगी की असलियतों से कितनी दूर हैं, और वहां जातीय भेदभाव से अपेक्षतया मुक्त युगाण्डा की तुलना में स्थिति कितनी भिन्न है।

सैलिसबरी में हमारे सम्मान में तीन भोज हुए, सभी में औपचारिक पोशाक आवश्यक थी। अन्तिम भोज गवर्नर-जनरल ने दिया, जिसमें हमारे अलावा सोलह व्यक्ति और थे। सोलह में केवल दो ही उपाधिहीन थे—दो युवा सैनिक सहायक, जो हमारा मार्ग-दर्शन कर रहे थे। दो 'लार्ड' थे, पांच 'सर' थे, और उनकी पत्नियां थीं। इन तीनों ही पार्टियों में किसी 'देशी' आदमी का वैसे ही कोई स्थान नहीं था, जैसे किसी भेड़िए का।

युगाण्डा में स्थिति प्रसन्नतादायक रूप में भिन्न थी। पहली रात, खूबसूरत विक्टोरिया झील के किनारे गवर्नर के भवन में भोज के समय कम्पाला के भारतीय मेयर उपस्थित थे, कई अफ्रीकी अधिकारी थे, और दो अमरीकी समाज शास्त्री व उनकी पत्नियां थीं। दूसरी रात कम्पाला में हमारे सम्मान में एक भोज दिया गया, जिसमें भारतीयों और अफ्रीकियों की संख्या यूरोपीय लोगों से कहीं अधिक थी। एक

तैंतीस

अफ्रीका में अमरीका की भूमिका

श्री बौल्स का कथन है कि 1955 में अमरीका की कोई अफ्रीकी नीति नहीं थी। वे कुछ मूल सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जिन पर एक वस्तुपरक नीति को आधारित होना चाहिए, और जिन्हें अब व्यापक रूप में स्वीकार किया जाता है। कोलियर्स पत्रिका, 10 जून, 1955।

अपनी अन्य सारी चिन्ताओं का बोझ लिए हुए, अधिकांश अमरीकियों की प्रवृत्ति यह पूछने की है—"मैं आखिर अफ्रीका के बारे में चिन्ता क्यों करूँ ? मेरे लिए अफ्रीका का क्या मतलब हो सकता है ?"

अफ्रीका उनके लिए कई कारणों से महत्वपूर्ण है। एशिया के बाद यह दुनिया का सबसे बड़ा महाद्वीप है, जिसका क्षेत्रफल दुनिया का पाँचवाँ हिस्सा है। उसके प्रसाधनों के बारे में पूरी तरह कोई नहीं बता सकता, लेकिन हम जानते हैं, कि ये प्रसाधन बहुत अधिक हैं।

अभी भी, हम रणनीतिक महत्त्व के यूरेनियम, रबड, कोबाल्ट, मैंगनीज, औद्योगिक हीरे, क्रोमियम, सीसा, जस्ता, कच्चा लोहा, और बाक्साइट के लिए अफ्रीका की ओर देखते हैं—और अफ्रीका की खनिज सम्पत्ति को अभी तो मुश्किल से खरोंचा भर गया है। अब अकेले फ्रांसीसी भूमध्य-क्षेत्रीय अफ्रीका में ही सत्तर भूवैज्ञानिक दल काम कर रहे हैं, और बेल्जियम कांगो व ब्रिटिश अफ्रीका में भी कम से कम उतना ही व्यापक सर्वेक्षण किया जा रहा है।

लेकिन आज अफ्रीका में सबसे महत्त्वपूर्ण विकास शायद उसके 20 करोड़ या अधिक लोगों का जागरण है। एक लम्बी रात के बाद अफ्रीकी दैत्य अँगड़ाइयाँ ले रहा है, अपना आलस दूर करके हाथ-पाँव फैला रहा है, जिसमें यौवन के निकट आ रहे कैशोर्य की सारी उत्सुक, अधीर भावनाएँ हैं। अगले कुछ वर्षों में अफ्रीका पर विस्फोटक समस्याएँ, संघर्ष, और समाचार छा जाएँगे। हम अमरीकी लोग चाहें या न चाहें, हमें उनकी चिन्ता करनी पड़ेगी।

इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि नए जागरण का गंभीर राजनीतिक महत्त्व है। अफ्रीकियों द्वारा चुपचाप दूसरे दर्जे की नागरिकता स्वीकार कर लेने के दिन तेजी से बीत रहे हैं। हो सकता है कि वे अनिच्छापूर्वक कुछ और विलम्ब स्वीकार

कर लें, लेकिन आधारभूत प्रश्नों पर कोई समझौता नहीं हो सकता।

हर जगह अफ्रीकी लोग पश्चिम से कठोर प्रश्न पूछ रहे हैं। बहुतेरे प्रश्नों के जातीय लाक्षणिक अर्थ भी हैं—"जब गोरे यूरोपीय लोग अफ्रीका से इतना अधिक धन ले जा रहे हैं, तो हम काले अफ्रीकी लोग इतने गरीब क्यों हैं ?" "जब ईसाई धर्म सभी मनुष्यों को भाई मानता है, तो अधिकांश यूरोपीय और अमरीकी लोग अब भी हमारे साथ आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक भेदभाव क्यों बरतते हैं ?"

विशेषत: अमरीकियों से अफ्रीकी लोग पूछते हैं—"उपनिवेशवाद का विरोध करने के अपने लम्बे इतिहास के बावजूद, आपका शासन अब अफ्रीकी स्वतन्त्रता के प्रश्न पर खामोश क्यों रहता है ? संयुक्त राष्ट्र संघ में आप निरन्तर इस समस्या को टालते क्यों हैं ?"

हमारी अफ्रीकी नीति क्या है ? ऐसा कहना उचित होगा कि इस समय हमारी कोई नीति नहीं है। इसलिए नहीं है, कि वर्षों से हम मानते आए हैं कि अफ्रीका केवल इंगलिस्तान, फ्रांस, पुर्तगाल, और बेल्जियम का एक प्रसार है, और यह कि एक यूरोपीय नीति से अफ्रीका का भी काम चल सकता है। इसी प्रकार के विनाशकारी दृष्टिकोण के फलस्वरूप हमने हिन्दचीन को एशियाई समस्या न मानकर फ्रांसीसी समस्या माना। अफ्रीका में हमें ऐसे दृष्टिकोण की क़ीमत और भी अधिक देनी पड़ सकती है।

कोई जिम्मेदार आदमी ऐसा नहीं कहेगा कि अफ्रीका के सम्बन्ध में तर्कसंगत नीति का विकास कोई आसान काम है। यह एक ऐसा विषय है, जिसपर यूरोपीय जनमत बड़ी आसानी से जागता और प्रभावित होता है। यह बड़ा ही उलझा हुआ प्रश्न है, जिसमें विवेकहीन, जातीय आडम्बर की बड़ी संभावना है। अपने प्रयत्नों के लिए दिशा-संकेत के रूप में मेरे सुझाव निम्नलिखित हैं :

1. हम सबसे पहले यहां से प्रस्थान करें कि अफ्रीका पर हमारा नियन्त्रण नहीं है, उस पर नियन्त्रण स्थापित करने की हमें कोई इच्छा नहीं है, और जो कुछ हम यहां कर सकते हैं, उसकी कठोर सीमायें हैं।

2. अपने यूरोपीय मित्रों को औपनिवेशिक नीतियों के सम्बन्ध में दंभपूर्ण उपदेश देने, या अफ्रीकी लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए सस्ती लोक-प्रियता की नीति अपनाने के बजाए, हम सार्वजनिक रूप में ही नहीं, कमरों में होने वाली बैठकों में भी, स्वतंत्रता की ओर बढ़ने वाले हर व्यवस्थित और जिम्मेदार प्रस्ताव का समर्थन करें।

3. अन्ततः स्वयं अफ्रीकी लोग ही स्वतंत्रता की गति निर्धारित करेंगे। किन्तु अगर हम अफ्रीकियों को यह विश्वास दिला सकें कि जितनी जल्दी वे इसकी व्यवस्था कर सकें, उतनी जल्दी उनके स्वतंत्र होने का हम ईमानदारी से समर्थन करते हैं, तो हम इस स्थिति में होंगे कि उन अफ्रीकियों की मांगों को संशोधित कराने में सहायक हो सकें, जो अपनी योग्यता से अधिक अधिकार चाहते हैं। समय के पूर्व स्व-शासन

-से केवल असफलताएँ हाथ आएँगी, जिससे उग्रतावादी लाभ उठाएँगे।

4. अगर हिन्दुस्तान की भाँति गोल्ड कोस्ट और नाइजीरिया, व्यवस्थित, लोकतान्त्रिक रीति से, स्वतन्त्र राष्ट्रों के रूप में विकसित होते हैं, तो उन लोगों को अपनी राय बदलनी पडेगी, जो सचमुच ऐसा मानते हैं कि भविष्य मे भी जहाँ तक देखा जा सकता है, अफ्रीकी अपना शासन स्वय नही चला सकेंगे।

इन नए उभरते हुए, स्वतन्त्र पश्चिम-अफ्रीकी शासनो की सफलता के हित मे अमरीका जो भी कुछ कर सकता है, उसे इस रचनात्मक लक्ष्य की प्राप्ति मे सहायता मिलेगी। इसका मतलब केवल हमारे शासन द्वारा आर्थिक सहायता ही नही वरन् कर्यादा सस्थाओ और धर्म-संगठनो आदि निजी सस्थाओं द्वारा सक्रिय, कल्पनाशील सहायता कार्य भी है।

5. इसी कारण हमें उदारता से और बुद्धिपूर्वक उन अफ्रीकी राष्ट्रो को भी सहायता करनी चाहिए, जो पहले से ही स्वतन्त्र हैं—मिस्र लीबिया, इथियोपिया, लाइबेरिया, और इनमे शीघ्र ही शामिल होने वाला सूडान। उनकी प्रगति, दूसरो की गति निर्धारित करने मे सहायक होगी।

6 अफ्रीका मे किसी आर्थिक कार्यक्रम का समर्थन करने के लिए तैयार होने के पहले, हमे ध्यानपूर्वक उसकी जाँच कर लेनी चाहिए कि वह सभी जातियो के लोगो को पूरा अवसर प्रदान करता है। अगर हम अप्रत्यक्ष रूप में भी, अपने को अफ्रीका मे विदेशी प्रभुत्व के जारी रहने के साथ सम्बद्ध कर लेते हैं, तो हमारा प्रभाव भ्रष्ट हो जायेगा।

7. विदेश विभाग को अफ्रीका की ओर पहले से कही अधिक ध्यान देना चाहिए। आज अफ्रीका मे हमारे कूटनीतिक कार्यालय बहुत कम हैं। यद्यपि कर्मचारियो की योग्यता और ईमानदारी ने मुझे सामान्यत काफी प्रभावित किया, किन्तु उनमे से अधिकाश के पास उचित से बहुत अधिक काम है, और इतने बड़े क्षेत्रो की ज़िम्मेदारियाँ हैं, जो उनकी शारीरिक क्षमता से बहुत अधिक हैं।

8. हमे अपने लक्ष्यो को भी अधिक स्पष्ट रूप मे परिभाषित करना चाहिए। विदेश विभाग, और अमरीकी सूचना एजेन्सी के लोगो को आदेश दे देना चाहिए कि उनके कार्य का प्राथमिक उद्देश्य अफ्रीकियो के साथ कार्यात्मक सम्बन्ध और निकट सद्भावना का विकास करना है, केवल चोटी के मुट्ठी भर यूरोपीय शासको के साथ सम्बन्ध बनाना ही नही। अफ्रीका मे हमारे सूचना कार्यक्रम मे काफी अधिक वृद्धि करनी चाहिए, और उसे गोरो के बजाए अफ्रीकियो के साथ सम्पर्क स्थापित करने की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

9. स्वयं अमरीका मे अब अफ्रीकियो के वशज एक करोड साठ लाख अमरीकी है, जिनमे से बहुतेरे हमारे अपने लोकतन्त्र के विकास मे सक्रिय योग दे रहे हैं। निजी और अधिकृत, दोनो ही रूपो मे, उन अमरीकियो से ज्यादा अच्छे राजदूत अफ्रीका मे और नहीं हो सकते, जो स्वयं अफ्रीका के वंशज हैं।

यात्री-अध्यापकों, शिक्षकों, शासकीय कर्मचारियों और धर्म-प्रचारकों के रूप में योग्य अमरीकी नीग्रो लोगों की अफ्रीका में उपस्थिति मात्र से भी सभी सम्बन्धित लोगों को बड़ा लाभ होगा।

10. अमरीकी विश्व-विद्यालयों में अफ्रीका की ओर पहले से कहीं अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। अमरीका में अफ्रीका सम्बन्धी अध्ययन के जो दो केन्द्र इस समय भी चल रहे हैं, इन्हें निजी संस्थाओं और अन्य साधनों की सहायता से पुष्ट करना और उनका विस्तार करना चाहिए, और उनकी संख्या बढ़ानी चाहिए।

11. कूटनीतिक साधनों से हमें अपने यूरोपीय मित्रों को सुझाव देना चाहिए कि एक अफ्रीका सम्मेलन बुलाया जाय, और एक अफ्रीकी घोषणा-पत्र तैयार किया जाय। यह घोषणा-पत्र स्व-शासन के प्रतिमान निर्धारित कर सकता है, और यूरोपीय शक्तियों के इस इरादे को सशक्त रीति से पुनः प्रस्तुत कर सकता है, कि वे निरन्तर और सोद्देश्य रीति से स्व-शासन की ओर कदम उठाएँगे।

अगर यूरोप की पूँजी और वैज्ञानिक कौशल, तथा अफ्रीका के मानव और प्राकृतिक साधनों के बीच एक साझेदारी क़ायम हो सके, तो अफ्रीका और यूरोप दोनों के ही लिए भविष्य अधिक समृद्ध और सन्तोषजनक हो सकता है।

एक अंग्रेज़ अधिकारी ने मुझ से कहा—"हमें अफ्रीकियों की माँगों के आगे चलना होगा, अन्यथा हम समाप्त हो जाएँगे। अगर हम बहुत धीरे-धीरे चलते हैं, तो वे इतने ज़बरदस्त विस्फोटक दबाव उत्पन्न करेंगे कि हम अव्यवस्था में फंस जाएँगे। बुद्धिमानी का काम यही है कि हम उनकी माँगों को पहले से ही समझें, और दबाव उत्पन्न होने के पहले ही व्यवस्थित रीति से उन माँगों को स्वीकार कर लें।"

इस स्थिति में अमरीका को एक ऐतिहासिक भूमिका अदा करनी है। कुशल, बुद्धिपूर्ण, और ईमानदार नीतियों के द्वारा हम यूरोप और अफ्रीका के सर्वोत्तम अंशों को प्रवीन कर सकते हैं। हम उन आवश्यक साझेदारी की स्थापना में सहायता कर सकते हैं, जो स्वतन्त्रता के क्षेत्रों का विस्तार करने में और सभी मनुष्यों की भौतिक प्रगति में सहायक होगी।

चौंतीस

संयुक्त राष्ट्रों को अफ्रीका की चुनौती

जब 1960 की गर्मियों में नए स्वतंत्र कॉंगो में विस्फोट हुआ, तो अफ्रीका में एक नए और खतरनाक रणक्षेत्र की सम्भावना ने इस अपूर्व प्रस्ताव को प्रेरित किया कि संयुक्त राष्ट्र संघ सभी गैर-अफ्रीकी शक्तियों के लिए एक 'आचार-संहिता' के विकास के लिए कदम उठाए। न्यू-मार्क टाइम्स मैगज़ीन, 21 अगस्त, 1960।

अँधेरे आकाश में किसी ज्वाला के चमक उठने की तरह, कांगो में हाल ही में हुआ विस्फोट दिखाता है कि अफ्रीका की समस्याएँ कितनी व्यापक और गहरी हैं, और उस महाद्वीप के साथ नया सम्बन्ध स्थापित करने मे साहसपूर्ण अमरीकी नेतृत्व की आवश्यकता कितनी अधिक है।

मैं समझता हूँ कि समस्या की कुंजी इसमे है कि अफ्रीका के आर्थिक और राजनीतिक शून्य को भरने मे नेतृत्व करने की क्षमता सयुक्त राष्ट्र संघ मे है, और अधिकांश अफ्रीकी संयुक्त राष्ट्र सघ को इस रूप में स्वीकार करने के लिए असाधारण रूप में तत्पर हैं।

अतः अफ्रीका मे एक विध्यात्मक नई अमरीकी नीति का प्रस्थान-बिन्दु, संयुक्त राष्ट्र संघ के योगदान की एक नाटकीय रूप मे विस्तृत धारणा होनी चाहिए—ऐसा योगदान जिसमे न केवल आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा शामिल हो; बल्कि आर्थिक प्रगति और व्यवस्थित राजनीतिक संक्रमण भी शामिल हो।

महासभा के शरदकालीन सत्र में, अफ्रीका मे सभी गैर-अफ्रीकी शक्तियों के व्यवहार के सम्बन्ध मे एक आचार-सहिता के लिए एक अमरीकी प्रस्ताव पेश करके इस नए दृष्टिकोण को पर्याप्त नाटकीयता प्रदान की जा सकती है।

इस घोषणा-पत्र में, बड़ी शक्तियाँ अफ्रीका मे क्या नहीं करने को सहमत हैं, केवल इसका एक नकारात्मक वक्तव्य ही नही होना चाहिए। घोषणा-पत्र को प्रस्तावित करना चाहिए कि सयुक्त राष्ट्रसघ के सभी सदस्य रचनात्मक, आर्थिक और राजनीतिक कार्यवाही के एक व्यापक कार्यक्रम पर सहमत हों, जो नए अफ्रीकी राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का आश्वासन दे, उनके व्यवस्थित राजनीतिक और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन दे, और शीत-युद्ध की खींच-तान से उन्हें बड़ी हद तक मुक्त करे।

इस प्रकार की प्रतिबद्धता से अधिक विकसित राष्ट्र इस योग्य हो सकेंगे कि शक्ति-गुटों की खतरनाक रूप में स्थिर प्रतिद्वन्द्विता के बजाए, जिसने मध्य-पूर्व और दक्षिण-पूर्वी एशिया में दुनिया को युद्ध के कगार पर खड़ा कर रखा है, वे संयुक्त राष्ट्र संघ के 'तटस्थ' माध्यम के द्वारा अफ्रीका की विकास और विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सकें।

हम कुछ अधिक विस्तार से विचार करें कि इन प्रतिबद्धताओं में से कुछ क्या हो सकती हैं।

1. सभी राष्ट्रों द्वारा इस बात की शपथ कि वे अफ्रीका में आन्दोलनात्मक प्रचार नहीं करेंगे, और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विध्वंसात्मक कार्यवाही को समाप्त करेंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिकार हो कि उल्लंघन के सभी आरोपों की जाँच करे और महासभा को सूचित करे।

2. अफ्रीका में हथियारों की होड़ को बढ़ावा न देने के लिए ऐसा ही समझौता वर्तमान परिस्थितियों में नए अफ्रीकी राष्ट्रों की वास्तविक सैन्य आवश्यकताएँ बहुत कम हैं। ये आवश्यकताएँ कम ही रहें, इसमें हमारा भी लाभ है, और अफ्रीकियों का भी।

3. बड़ी शक्तियों के बीच एक समझौता कि अफ्रीका के लिए अधिकांश आर्थिक, प्राविधिक और शैक्षिक सहायता संयुक्त संघ के माध्यम से दी जाय। संयुक्त राष्ट्रों की विशेष एजेन्सियों, प्राविधिक सहायता प्रशासन, विशेषनिधि, विश्व बैंक, और नए अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ में इस कार्य के लिए आवश्यक प्रशासन-यंत्र पहले से ही मौजूद है।

अब आवश्यकता है, अनिवार्य ही शीत-युद्ध की प्रतिद्वन्द्विता को प्रविष्ट कराने वाले द्विपक्षीय समझौते के पुराने मार्ग के स्थान पर, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यम का उपयोग करने के संकल्प की।

4. संयुक्त राष्ट्रों की एक नई प्रशासन सेवा संगठित करके, अनुभवी प्रशासकों, इंजीनियरों, प्राविधिक विशेषज्ञों, अध्यापकों, और हर प्रकार के व्यावसायिक लोगों के लिए अफ्रीका की तात्कालिक आवश्यकता को शीत-युद्ध के घेरे के बाहर पूरा करने का एक व्यापक और कल्पनाशील प्रयत्न किया जाय।

तेजी से अफ्रीकी राष्ट्रों के आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए, एक पीढ़ी या और अधिक समय तक, अफ्रीकी नीति-निर्माताओं के अधीन गैर-अफ्रीकी प्रशासकीय अधिकारियों की आवश्यकता होगी। मूल प्रश्न यह है—ये गैर अफ्रीकी कहाँ से लिए जाएँगे? इनकी प्रथम निष्ठा किनके प्रति होगी? क्या वे शीत-युद्ध को अफ्रीका में लाने के उपकरण बनेंगे? अथवा, क्या वे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के उद्देश्य में सहायक होंगे?

5. कांगो में आज जिस प्रकार काम हो रहा है, उसके आधार पर अफ्रीका में और अन्यत्र प्रयोग करने के लिए एक स्थायी पुलिस बल की स्थापना। कांगो राष्ट्र

की आन्तरिक सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता की आशा अब मुख्यतः ऐसे बल से ही है। न केवल यूरोपीय नियंत्रण हटने के परिणामस्वरूप, वरन् स्वयं नए अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच संघर्ष उत्पन्न होने पर, अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे तनावों का उत्पन्न होना निश्चित है।

वर्तमान अफ्रीकी निष्ठाओं के साथ अगर राष्ट्रीय सीमाओं का मेल करना चाहें, तो एक दूसरे को पुष्ट करने और काटने वाले हितों का एक विचित्र नक्शा उभरता है। इस स्थिति में कई संघ प्रस्तावित हुए, घोषित हुए, और खत्म हो गए, जिससे अब तक भी काफी टकराव पैदा हुआ है।

इन मामलों में परिणाम का निर्णय करना, यथास्थिति को बनाए रखना या परिवर्तनों को प्रोत्साहित करना, संयुक्त राष्ट्र संघ का काम नहीं है, चाहे इस तरह के काम कितने भी बुद्धिमत्तापूर्ण क्यों न प्रतीत हों। यह मामला सिर्फ स्वयं अफ्रीकियों के निर्णय करने का है।

लेकिन यह उचित और आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ऐसी स्थितियों को हिंसात्मक रूप लेने से रोके, और विशेषतः बड़ी शक्तियों को किसी पक्ष की ओर से हस्तक्षेप करने से रोके। अगर मुख्यतः अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा ही भर्ती किया गया पर्याप्त पुलिस बल मौजूद हो, तो वह बाहर से प्रत्यक्ष, एक पक्षीय, सैन्य हस्तक्षेप के लोभ को संयमित करने में बड़ा उपयोगी हो सकता है।

6. प्रस्तावित अफ्रीकी घोषणा-पत्र एक विशेष अफ्रीकी न्यायालय की स्थापना की भी व्यवस्था कर सकता है जो सम्भवतः विश्व न्यायालय से सम्बद्ध हो, और जिसे विशिष्ट रूप से अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच, और अफ्रीकी राज्यों तथा बाहरी राष्ट्रों के बीच विवादों का निपटारा करने का अधिकार हो।

ऐसा न्यायालय, जिसके सदस्य अधिकांश अफ्रीकी राष्ट्रों से लिये गए हों, लेकिन केवल उन्हीं से नहीं, बाहरी हस्तक्षेप के विरुद्ध एक अन्य बाधा का काम करेगा—बशर्ते कि अफ्रीकी राज्यों को इसके लिये राजी किया जा सके कि वे बिना बहुसंख्यक शर्तें लगाए, उसके अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार कर लें।

मेरा यह मतलब नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संघ अशान्त नए अफ्रीका की सारी समस्याओं का बोझ तत्परतापूर्वक उठा सकता है। किन्तु मैं समझता हूँ कि इन समस्याओं को शीत-युद्ध के विस्फोटक विरोधों से अलग करके उन्हें हल करने की चेष्टा करने का सबसे प्रभावकारी माध्यम संयुक्त राष्ट्र संघ प्रदान कर सकता है।

क्या हमारा अपना शासन इसके लिए तैयार है कि अफ्रीका के प्रति हमारे वर्तमान अपर्याप्त और विफल दृष्टिकोण का परित्याग करके, वहाँ विध्यात्मक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक नया साहसपूर्ण प्रयत्न आरम्भ करे?

अगर हम भीरू बनकर इस अवसर का उपयोग नहीं करते, तो एक बात निश्चित है—अफ्रीका तेजी से शीत-युद्ध का एक खतरनाक नया रणक्षेत्र बन जायेगा, और इसके विस्फोटक रूप में अनिश्चित परिणाम होंगे।

पैंतीस

अफ्रीका में आशा की लहर

अदिस अबाबा, इथियोपिया में, अफ्रीका के लिए संयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक कमीशन की एक बैठक में, मुख्यतः अफ्रीकी श्रोताओं के समक्ष फ़रवरी, 1962 में श्री चैल्स अफ्रीकी, एशियाई, और लातिन अमरीकी मामलों में राष्ट्रपति के विशेष प्रतिनिधि और सलाहकार के रूप में, अफ्रीका के प्रति प्रशासन का नया दृष्टि कोण निरूपित करते हैं।

हम यहाँ इस विशाल, गतिशील अफ्रीकी महाद्वीप की तात्कालिक चुनौती पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं, जिसके 22 करोड़ लोग अपनी भूमि और अपने भविष्य की असीमित संभावनाओं के प्रति जागरूक हो रहे हैं।

आशा की लहर कहीं भी इतनी तेज़ या इतनी गहरी नहीं है, जितनी यहाँ अफ्रीका में। कहीं भी ऐसे आधुनिक समाजों का निर्माण करने के लिए आधुनिक प्राविधिक ज्ञान का उपयोग करने का दृढ़ निश्चय यहाँ से अधिक नहीं है, जिनमें ग़रीबी, रोग और दमन का स्थान समृद्धि, प्रगति और न्याय ले लेंगे।

पन्द्रह वर्ष पहले कितने लोग कल्पना कर सकते थे कि अट्ठाइस स्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों की यह बैठक अपने लोगों के आर्थिक और सामाजिक भविष्य पर विचार करने के लिए यहाँ अदिस अबाबा में होगी?

अमरीका अपने को अफ्रीका के साथ, और विशेषतः अफ्रीका के भविष्य के साथ किस रूप में सम्बद्ध करता है? यहाँ हमारे लक्ष्य क्या हैं?

हम विनम्रता की भावना के साथ आरम्भ कर रहे हैं। अफ्रीका के सम्बन्ध में अपने लम्बे अज्ञान पर, और आपके लोगों के साथ अतीत में सम्पर्क के अभाव पर हम बहुत ही लज्जित हैं। इन वर्षों में आपके बारे में ज्यादा अच्छी जानकारी प्राप्त करने में हमारी असफलता में, हमारे अपने देश के विकास पर हमारे ध्यान का बहुत अधिक केन्द्रित रहना परिलक्षित होता है।

यह एक विरोधाभास है, कि जिस सक्रियता के साथ हमने स्वयं अपनी समस्याओं का सामना किया, उसके कारण हमें अन्य लोगों के संघर्षों का ज्ञान ही बहुत कुछ नहीं हो सका, जो उन्हीं अधिकारों को प्राप्त करना चाहते हैं, जिनके लिए हम अपनी उप-निवेश-विरोधी क्रान्ति में लड़े थे।

जिन जातीय संघर्षों ने हमारे अपने देश में कठिनाइयाँ उत्पन्न की थीं, उनके कारण भी हम अफ्रीका में विनम्रता की भावना लेकर आते हैं। हमारे लोगों में से 10 प्रतिशत से अधिक के पूर्वज अफ्रीकी थे। सौ वर्ष पहले, हमारे महान् गृह-युद्ध में, इन्सानी गुलामी को अमरीका से खतम करने के लिए दस लाख गोरे अमरीकी मरे थे।

तब से दोनों जातियाँ निरन्तर स्थिर गति से सहयोग और पारस्परिक आदर का आधार निर्मित करती रही हैं। विशेषत: पिछले कुछ वर्षों में, भेदभाव के सभी रूपों को समाप्त करने में बहुत अधिक प्रगति हुई है।

यद्यपि मेरे देश में अब भी कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने मनुष्य की समानता के महान् नैतिक यथार्थ को अभी भी स्वीकार नहीं किया है, किन्तु भेदभाव की समाप्ति अब स्पष्ट दिखाई दे रही है।

सभी जातियों के विचारशील अमरीकी इस समय अफ्रीका में जो गंभीर रुचि प्रदर्शित कर रहे हैं, उसमें हम अपने सामान्य सदयों की अभिव्यक्ति देखते हैं। अफ्रीका और अफ्रीकियों के सम्बन्ध में पुस्तकों, फिल्मों, और पत्र-पत्रिकाओं में लेखों की तेजी से बढ़ती हुई संख्या इस रुचि का प्रमाण है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में, हमारे प्राथमिक उद्देश्यों में से एक यह भी है कि शीत युद्ध को अफ्रीका के बाहर रखा जाय। इसमें हमारा भी हित है, और आपका भी, कि इस दुखद संघर्ष की कटुता, विभाजकता, और आर्थिक अपव्यय से यथासंभव आप लोगों को मुक्त रखा जाय।

हमारा विश्वास है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति की सर्वाधिक आशा एक सबल संयुक्त राष्ट्र संघ में है। यही कारण है कि कांगो में संयुक्त राष्ट्रों के खर्च का लगभग 50 प्रतिशत अमरीका वहन करता है, और हर जगह संयुक्त राष्ट्रों के कार्यक्रमों का सक्रिय समर्थन करता है।

आर्थिक क्षेत्र में, अफ्रीका के बहुतेरे नए राष्ट्रों के साथ प्रभावकारी कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हम कार्यवाही कर रहे हैं। हम जानते हैं कि जिससे आपके समाजों को सबल बनाने में सहायता मिलेगी, उससे हमारे अपने समाज को भी सबल बनाने में सहायता मिलेगी।

आर्थिक विकास के सम्बन्ध में अधिकांश अफ्रीकी राष्ट्र जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, उससे हमें उत्साह मिला है। नीचे लिखी बातें विशेषत: महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं:

प्रथम, यद्यपि आप औद्योगिक योजनाओं की तीव्र आवश्यकताओं को समझते हैं, किन्तु आपने खेती और ग्राम-विकास के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की है। एशिया और लातिन अमरीका की भाँति, आपके तीन-चौथाई लोग गाँवों में रहते हैं। वही लोग भोजन उत्पन्न करते हैं, और अन्तत: नगरों में बनी निर्मित वस्तुओं को खरीदने की अधिकांश क्रय-शक्ति भी उन्हीं को प्रदान करनी होगी।

बिना गाँवों में बढ़ती हुई समृद्धि, शिक्षा, और न्याय के, उन ठोस आर्थिक, राजनीतिक, और सामाजिक आधारों का निर्माण नहीं किया जा सकता, जिन पर कोई

विकसित अर्थ-व्यवस्था टिकी होती है।

दूसरे, मानव मूल्यों और मानवीय सम्बन्धो के महत्व के सम्बन्ध मे आपके आग्रह की हम प्रशंसा करते हैं। यद्यपि आर्थिक प्रगति आवश्यक है, किन्तु अगर वह प्रगति व्यक्तियो के रूप में लोगो की प्रतिष्ठा और कल्याण के प्रति आदर रखते हुए नही होती, तो राष्ट्र के राजनीतिक स्थायित्व पर इसका प्रभाव कम ही पडता है।

तीसरे, हम शिक्षा के महत्व पर आपके आग्रह के प्रशंसक हैं। आपकी प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल व्यवस्था के तेजी से विकास में, और दीर्घ-कालीन दृष्टि से उच्च शिक्षा की संस्थाओं के निर्माण मे, किसी आधुनिक समाज का निर्माण करने मे शिक्षा के प्रमुख योग के प्रति अफ्रीका का आदर और समझ परिलक्षित होती है।

चौथे, हमे खुशी है कि आप में से बहुतेरे, शासकीय धन के अतिरिक्त निजी पूँजी की ओर ध्यान देने को भी तैयार हो रहे हैं, जो बहुतेरे अधिक विकसित देशों मे उपलब्ध है। हमारे धन का सबसे बडा भाग निजी पूँजी के रूप में है, जिसमे हमारे लोगों की संचित बचत लगी हुई है।

किन्तु अमरीकी शासन, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय, दोनों ही आधारों पर, अफ्रीका को दी जाने वाली सहायता को निरन्तर बढा रहा है। 1962 मे अफ्रीका में हमारे कुल ऋणों, अनुदानो, प्राविधिक सहायता, खेतिहर उत्पादन की बिक्री और अनुदानो का, और संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रमो मे हमारे योग का जोड संभवत. 52 करोड डॉलर से अधिक होगा।

गैर-सरकारी स्तर पर जन सहयोग के हमारे कार्यक्रम भी बढ रहे है। शांति-सेना के माध्यम से, सैकडो अमरीकी माध्यमिक स्कूल शिक्षक आपके कई देशो मे पढा रहे है, और अन्य सैकडो आ रहे है।

जितना वे सिखाते हैं, इस अनुभव से वे उतना ही सीखेंगे भी। इस समय लगभग तीन हजार अफ्रीकी छात्र अमरीका मे पढ रहे हैं और सीखने के साथ-साथ सिखा रहे हैं।

हमारे युवा लोग विशेषत: अफ्रीका मे एक ऐसा महाद्वीप देखते हैं, जिसमे बडी-बडी नई बातें हो रही हैं, जहाँ नई आशाएँ, नए अवसर और नई सीमाएँ खुल रही हैं। युवा अमरीकियो के इस आकर्षण को मैं प्रत्यक्ष अनुभव से जानता हूँ, क्योंकि पिछले डेढ़ साल से मेरा पुत्र और मेरी पुत्रवधु नाइजीरिया सरकार के कर्मचारियों के रूप मे नाइजीरिया के एक माध्यमिक स्कूल मे पढाते रहे हैं। उनके पत्रो से मुझे भविष्य के युवा अफ्रीकी नेताओं के मन की कुछ झलक मिली है।

और अन्त मे, अफ्रीका के आर्थिक एकीकरण मे आपकी बढ़ती हुई रुचि की मैं प्रशंसा करता हूँ।

एकता के कई भिन्न मार्ग हैं। जो मार्ग आपको सर्वाधिक उपयुक्त लगे, उसे चुनना आपके हाथ मे है। किन्तु एक बात साफ है—औद्योगिक दृष्टि से अविकसित 'मातृ' देशों, और उनके कृत्रिम रीति से कायम रखे गए औपनिवेशिक बाजारों का युग हमेशा

के लिए खतम हो चुका। इस परिवर्तन ने कुछ बिलकुल नए आर्थिक यथार्थों को जन्म दिया है। क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के विकास में ये यथार्थ परिलक्षित होते हैं।

किन्तु अफ्रीकी क्षेत्रीय सहयोग और एकीकरण के मार्ग में अब भी बहुत बड़ी बाधाएं हैं। उदाहरण के लिए, किसी महाद्वीप में स्वतंत्र प्रभुसत्ताओं की संख्या इतनी अधिक नहीं है, जितनी अफ्रीका में। इनमें से अधिकांश का निर्माण दूरस्थ औपनिवेशिक राजधानियों में वर्षों पहले विदेशियों में हुए समझौतों के फलस्वरूप हुआ था।

आज ये शासकीय इकाइयां राष्ट्रीय यथार्थ बन गई हैं, जिनमें करोड़ों लोग तेज़ी से और सगर्व अपने राष्ट्रीय भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। लेकिन स्वतंत्रता का उमड़ता हुआ नया गर्व, और अधिक तेज़ी से आर्थिक विकास के लिए आवश्यक क्षेत्रीय सहयोग, इनमें किसी प्रकार समझौता करना होगा। मैं किसी ऐसे अफ्रीकी देश को नहीं जानता जो अगर किसी अधिक बड़े समूह का सक्रिय सदस्य बने, तो उसके विकास की गति तेज़ न होगी।

एक महान् साहसिक कार्य को आपने अच्छी तरह शुरू किया है—जो शायद विश्व का सबसे समृद्ध और संभावनाओं से पूर्ण महाद्वीप है, उसका पुनर्जन्म। मैं आपकी पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

छत्तीस

लातिन अमरीका में ज़मीन की भूख

लातिन अमरीका की यात्रा पर गए एक अमरीकी उप-राष्ट्रपति के अशांतिपूर्ण स्वागत से इस क्षेत्र के सम्बन्ध में अमरीकी नीति के बारे में काफ़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। यहाँ जन असंतोष के पीछे जो प्रमुख सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उस समय थीं, और आज भी हैं, नवम्बर 1959 में न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन में प्रकाशित यह लेख उनमें से एक को रेखांकित करता है।

लातिन अमरीका के राष्ट्रवादी नेता, जो अधिकांश साम्यवाद के तीव्र विरोधी हैं, उस ग़रीबी, अशिक्षा, स्थायी कर्जदारी और भय को समाप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, जिन्होंने कुछ मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर, अन्य सभी को अपने देशों के स्वस्थ विकास में भाग लेने से रोक रखा है।

अनिवार्य ही उनके मुख्य हथियारों में भूमि सुधार भी होगा, ताकि अधिकांश किसान परिवार स्वयं अपनी ज़मीन के मालिक बन सकें। यह भी अनिवार्य है कि लातिन अमरीका के साम्यवादी इस आन्दोलन के साथ अपने को सम्बद्ध करने का अधिकाधिक प्रयत्न करेंगे।

भूमि सुधार का साम्यवादी रूप केवल समूहीकरण की व्यवस्था की ओर पहला क़दम होता है, जिसमें हर किसान राज्य का क़ैदी बन जाता है। फिर भी, भोले-भाले भूमिहीन किसानों के लिए उसमें बड़ा आकर्षण है, जो उसमें केवल स्वतन्त्रता की संभावना देखते हैं।

सम्बन्धित प्रश्न क्या हैं? लोकतांत्रिक साधनों से उनको हल करने की संभावनाएं क्या हैं?

आज लातिन अमरीका में 1.5 प्रतिशत लोग, जिनमें से हर एक के पास पन्द्रह हज़ार एकड़ या और ज्यादा ज़मीन है, खेती की कुल भूमि में से आधी के मालिक हैं, और सर्वोत्तम भूमि पर उनके अधिकार का अनुपात और भी अधिक है। लातिन अमरीकियों में बड़ा हिस्सा ग़रीब काश्तकारों का है, जो अपने ज़मींदारों के कर्ज़ों के नीचे दबे हुए हैं।

यह भूमि व्यवस्था स्पेनी और पुर्तगाली विजेताओं द्वारा किये गए बन्दोबस्तों के

वक्त से चली आ रही है, जो अपने साथ अपनी सामन्ती व्यवस्थाएँ भी लाए थे। जब उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में औपनिवेशिक बन्धन टूटे, तो बड़े जमींदारों का प्रभुत्व आम तौर पर बिना किसी चुनौती के ही स्थापित हो गया।

अगर यह पुरानी व्यवस्था उचित मूल्यों पर भोजन और वस्त्र का उत्पादन करती तो आर्थिक और सामाजिक अन्याय उतने स्पष्ट न होते। किन्तु भूमि का बड़ा हिस्सा कॉफी और चीनी जैसी नकद फसलों के लिए सुरक्षित रहता है, जिनसे बहुत थोड़े लोगों को लाभ होता है, और खेती के तरीके बहुत पुराने हैं। इस कारण अधिकांश लातिन अमरीकियों को अब भी पर्याप्त भोजन नहीं मिलता।

इस बीच 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ती हुई जनसंख्या—वृद्धि की यह रफ्तार दुनिया की सबसे तेज रफ्तारों में से है— उपलब्ध भोजन सामग्री पर अधिकाधिक दबाव डालती है, जिसकी मात्रा कम होती जाती है।

सारे लातिन अमरीका में, जो सचमुच लोकतान्त्रिक तत्व हैं, वे स्वीकार करते हैं कि इस क्षेत्र में शान्ति और स्थायित्व के लिए भूमि व्यवस्था में परिवर्तन अनिवार्य है। फिर भी, लोकतान्त्रिक साधनों से शान्तिपूर्ण संक्रमण हो सके, इसमें किसानों की सहायता करने में स्वयं उनका कितना बड़ा हित है, इसे समझने में भूस्वामी वर्ग असमर्थ प्रतीत होते हैं।

एक या दो पीढ़ी पहले मेक्सिको की क्रांति से, या रूस और चीन की क्रांतियों के अधिक भयंकर नतीजों से भी, ऐसा लगता है कि उन्होंने कोई सबक नहीं सीखा।

लातिन अमरीकी भूमि विशेषज्ञ इस बात पर जोर देते हैं कि जब्ती या राष्ट्रीयकरण, चाहे जितना भी साम्य-नीति पर आधारित हो समस्या के हल का एकमात्र उपाय नहीं है। हर देश की अपनी अलग किस्म की चुनौती है।

किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि लातिन अमरीका की भूमि-व्यवस्थाओं में व्यापक परिवर्तन अनिवार्य है। केवल एक ही प्रश्न रह जाता है—ये परिवर्तन कैसे होंगे, रक्तमय क्रान्ति के द्वारा या दीर्घ-कालीन लोकतान्त्रिक नियोजन के द्वारा? हम अतीत के कुछ अनुभवों के नतीजों को देखें.

मेक्सिको में 1916 और 1934 के बीच लगभग दो करोड़ पचास लाख एकड़ सामन्ती भूमिजब्त करके किसानों में बाँट दी गई। व्यवस्था के प्रारम्भिक सोपान में दो लाख से अधिक खेत-मजदूरों को उनके छोटे-छोटे खेत मिले। राष्ट्रपति कार्डेनास के अधीन, जो 1934 में पदासीन हुए, और पाँच करोड़ एकड़ भूमि को जब्त करके अस्सी लाख भूमिहीनों में बाँट दी गई।

मेक्सिको के भूमि सुधार के प्रारम्भिक सोपानों की कुछ कमजोरियाँ बाद में सामने आईं। नए भूस्वामी आदिवासी के पास, काम करने के अपने सारे संकल्प के बावजूद न अच्छे बीज थे, न खेती के पशु और औजार। उसे कहीं से कर्ज नहीं मिल सकता था। वह नियोजन पद्धतियों से, और अपनी फसलों को लाभदायक रीति से बेचने के तरीकों से अपरिचित था। फल यह हुआ कि खेती की पैदावार गिरी, और मक्का व फलियों

जैसी मेक्सिको की मुख्य फसलों में कमी आई।

उसके बाद से, निजी और सार्वजनिक अमरीकी सहायता की मदद से, मेक्सिको के शासन ने एक ग्राम प्रसार व्यवस्था के द्वारा इन कमजोरियों को दूर करने की चेष्टा की है, जो खेती के नए तरीकों को सीधे किसानों तक पहुँचाती है, और अब उत्पादन स्थिर गति से बढ़ रहा है।

वेनेजुला में, राष्ट्रपति रोमुलो बेटनकोर्ट ने पिछली जुलाई में अपनी कांग्रेस के समक्ष एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसमें देश की जीर्ण कृषि व्यवस्था की समस्या को सशक्त रीति से हल करने का प्रयास किया गया है। मेक्सिको के जैसे अनुभवों से लाभ उठाकर, वेनेजुला का कार्यक्रम औजारों, बीज, और उर्वरकों के लिए उदार सरकारी कर्जों की, और नए भूस्वामियों को सलाह देने के लिए कि वे क्या, कहाँ, और कब बोएँ, एक कृषि प्रसार सेवा की व्यवस्था करता है।

यह बेटनकोर्ट का दूसरा प्रयास है। 1948 में, वेनेजुला के इतिहास में पहली बार हुए स्वतंत्र चुनावों में उनकी 'एक्शन डेमोक्रेटिका पार्टी' पहली बार सत्तारूढ़ हुई थी, और उसने एक कृषि सुधार कानून बनाया था, जिसमें मुआवजा देकर भूमि पर अधिकार करने, और भूमिहीनों में फिर से उसका बँटवारा करने की व्यवस्था थी। छत्तीस दिन बाद, सेना ने सुधारक सरकार का तख्ता पलट दिया।

बोलिविया में, 1952 में क्रांतिकारी शासन के सर्वप्रथम कार्यों में से भूमि सुधार भी एक था। बोलिविया के सामन्त अर्द्ध-दासता की व्यवस्था के लिए बदनाम रहे थे, जो उन्हें खेत-मजदूरों से निजी सेवा लेने का अधिकार देती थी।

क्रान्तिकारी सरकार की योजना हर किसान को, भूमि की उत्पादन शक्ति के आधार पर, पचीस एकड़ से दो हजार एकड़ तक जमीन देने की थी। लेकिन बोलिविया में कभी कोई भूमि सर्वेक्षण नहीं किया गया था, और उपलब्ध कृषि-भूमि के पर्याप्त नक्शे भी नहीं थे।

अन्त में, मशीन-गन लेकर चलने वाले अधीर किसानों ने मामला अपने हाथ में ले लिया। आज भी बोलिविया के भूमि सुधारों में अव्यवस्था व्याप्त है। लेकिन एक बात निश्चित है—बोलिविया का खेत मजदूर अब कभी भी सामन्ती दासता को चुपचाप सहन नहीं करेगा।

यद्यपि लातिन अमरीका के जिम्मेदार नेता इस बात के इच्छुक हैं कि उनके यहाँ लोगों की बेचैनी इस तरह का बिगड़ा हुआ रूप धारण करे, इसके पहले ही वे भूमि के बँटवारे के सुनियोजित कार्यक्रम को कानून द्वारा कार्यान्वित कर दें, किन्तु यथास्थिति के पक्ष में अब भी बड़ी शक्ति है।

इतिहास कब तक प्रतीक्षा करेगा? इस शताब्दी में लोकतान्त्रिक सरकारों द्वारा केवल चार अवसरों पर भूमिसुधार के व्यापक कार्यक्रम अपनाये गए हैं—1926 में जेकोस्लोवाकिया में, क्रांति के बाद मेक्सिको में, हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में, और प्युर्टोरिको में, जिसके लिए सन् 1900 में कांग्रेस ने कानून द्वारा व्यवस्था की थी कि

वहाँ निगमित संस्थाएँ पाँच सौ एकड़ से अधिक भूमि पर स्वामित्व नहीं रख सकती।

यह स्थिति सारे लातिन अमरीका में अमरीकी कूटनीति के लिए चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है। इस क्षेत्र में अमरीकी नागरिकों द्वारा लगाई गई निजी पूँजी नौ अरब डालर से अधिक है। यह दुनिया के और किसी भी हिस्से से अधिक है, और इसका एक हिस्सा ऐसा भी है जो पूर्णत: कानूनी व्यवस्थाओं पर आधारित नहीं है। यद्यपि इस पूँजी का केवल एक हिस्सा ही भूमि में लगा है, फिर भी, बड़ी भू सम्पत्तियों को तोड़ने के लिए बनाये गए कानूनों से कुछ अमरीकी वित्तीय हितों को निश्चय ही गंभीर क्षति होगी।

फलस्वरूप, इसकी सम्भावना है कि लातिन अमरीका की जीर्ण कृषि-व्यवस्थाओं को सुधारने के किसी भी प्रयत्न को, चाहे वह जितना भी आवश्यक, लोकतांत्रिक या तर्कसंगत क्यों न हो, साम्यवादी जब्ती के रूप में बदनाम किया जाएगा। इस सम्बन्ध में कांग्रेस और विदेश विभाग पर बड़ा दबाव पड़ने की सम्भावना है। जल्दी या देर से, व्यक्तिगत भूस्वामित्व की लम्बी परम्परा वाले अमरीका को ये दबाव ऐसी स्थिति में ले जा सकते हैं, कि वह एक ऐसे क्षेत्र के विकास को रोकने वाले हितों का समर्थन करे, जिस पर हमारी अपनी सुरक्षा निर्भर है।

आधुनिक इतिहास में सर्वाधिक उग्र भूमि सुधार, युद्ध के तत्काल बाद अमरीकी तत्वावधान में जनरल डगलस मैकार्थर द्वारा जापान में किया गया। युद्ध के पहले, दो तिहाई जापानी किसान दूसरों की जमीन पर खेती करते थे। आज 92 प्रतिशत जापानी ग्रामीण परिवारों के पास अपनी जमीन है, और प्रति एकड़ उत्पादन अभूतपूर्व ऊँचे स्तरों पर पहुँच रहा है।

अमरीकी प्रभाव ने ताइवान में भूस्वामित्व की एक लोकतांत्रिक व्यवस्था को कार्यान्वित करने में च्यांग-काई-शेक की भी सहायता की, जो अगर चीन की मुख्य भूमि पर दस वर्ष पहले लागू की गई होती, तो लगभग निश्चित रूप से किसानों को उनके पक्ष में कर देती।

च्यांग-काई-शेक के कार्यक्रम के अन्तर्गत, कोई किसान दस एकड़ से अधिक भूमि का मालिक नहीं रह सकता, और किसी को ऐसी जमीन का मालिक होने का भी अधिकार नहीं, जिस पर वह स्वयं खेती न करता हो। सरकारी अधिकारियों की राय में ताइवान में चावल के प्रति एकड़ उत्पादन में जो असाधारण वृद्धि हुई है, उसका श्रेय बहुत कुछ इन सुधारों को है।

इन युद्धोत्तर कालीन सुधारों का विरोध करने वालों की शक्ति इतनी थी, कि समादेश द्वारा ही इन्हें कार्यान्वित किया जा सका। जनरल मैकार्थर के सैन्य शासन ने विशेष रूप से जापानी जमींदारों के विरोध की पूर्ण उपेक्षा की।

क्या अमरीकी कूटनीति इतनी चतुराई, अनुकूलन-शक्ति, और प्रसार-शक्ति प्राप्त कर सकती है कि इस क्षेत्र में शांतिपूर्ण क्रान्ति करने के लिए वह लातिन अमरीका की सर्वोत्तम सरकारों के साथ मिलकर काम करे?

यद्यपि हमारा शासन घटना-क्रम को नियंत्रित नहीं कर सकता, किन्तु वह बहुधा रचनात्मक प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के रूप में :

हम भूमि के व्यापक स्वामित्व के लिए, उचित उपायों के अपने परम्परागत समर्थन को पुन: व्यक्त कर सकते हैं। हम अपने विश्व-व्यापी अनुभव के आधार पर मुआवजे की योजनाएँ तैयार करने मे लातिन अमरीकी सरकारों की सहायता कर सकते हैं, जिससे जमींदारों को उचित मूल्य मिल जाए और मालिकों पर अनुचित बोझ भी न पड़े।

हम पहले से ही यह मानकर चल सकते हैं कि हमेशा तर्क की ही जीत नहीं होगी, लगभग निश्चित रूप में अन्याय होंगे, और दीर्घ कालीन स्थायित्व के लिए दिया गया अल्प कालीन मूल्य बहुधा उचित से बहुत अधिक प्रतीत होगा।

सबसे बड़ी बात है कि हम मूल प्रश्न को दृष्टि से ओझल न होने दें। एशिया और अफ्रीका की भांति लातिन अमरीका मे भी असली चुनाव *नागरिकता और दासता* के बीच, आशा और निराशा के बीच, व्यवस्थित राजनीतिक विकास और रक्तमय उथल-पुथल के बीच है। इस चुनाव को समझने में, या नेतृत्व स्थापित करने की चेष्टा कर रहे नए जीवन्त तत्वों का समर्थन करने मे हमारी असफलता के भयंकर परिणाम होंगे।

सैंतीस

'प्रगति के लिए मित्रता' क्या है?

अक्टूबर, 1961 में मेक्सिको सिटी में, मेक्सिकी उत्तर अमरीकी सांस्कृतिक संस्थान के समक्ष भाषण देते हुए, अवर विदेश सचिव बौल्स अमरीकी और लातिन अमरीकी लोगों के इस कार्यक्रम के, जिसकी आवश्यकता बहुत दिनों से थी, ऐतिहासिक महत्त्व की ओर संकेत करते हैं, और स्पष्ट शब्दों में साहसपूर्ण आन्तरिक सुधारों की आवश्यकता बताते हैं।

'प्रगति के लिए मित्रता' का उद्देश्य सारे लातिन अमरीका में गरीबी और अन्याय की जड़ों पर प्रहार करना है, और हमारे इक्कीस राष्ट्रों के लोगों और शासनों को इस योग्य बनाना है, कि शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक साधनों से अपनी स्वतंत्र संस्थाओं को मजबूत बनाएँ।

जब हम इस चुनौती भरी नई साझेदारी की संभावनाओं और खतरों पर विचार करते हैं, तो मैं समझता हूँ कि हमें कुछ कठोर तथ्यों को सामने रखना चाहिए।

उदाहरण के लिए, हमने अनुभव से सीखा है कि कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के लिए क्या कर सकता है, इसकी कुछ कठोर सीमाएँ होती हैं, चाहे उसके साधन कितने भी व्यापक हों, और सद्भावना कितनी भी अधिक हो। कोई एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को न तो समृद्धि दे सकता है, न स्वतंत्रता। इन्हें स्वतः स्फूर्ति, कड़ी मेहनत, और बहुधा बलिदानों के द्वारा प्राप्त करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, स्वतंत्र समाजों के निर्माण के सामान्य प्रयास में, लातिन अमरीका के विशेषाधिकारयुक्त अल्पसंख्यकों को कुछ तात्कालिक लाभों का परित्याग करने में अधिक तत्परता दिखानी चाहिए। ऐसे समाजों में ही शांतिपूर्ण साधनों से राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास हो सकता है।

बहुतेरे लातिन अमरीकी राष्ट्रों में महान् मुक्तिदाताओं के हाथों औपनिवेशिक बन्धनों के टूट जाने के बाद, क्रांतिकारी प्रक्रिया मुर्झा गई। उन प्रारम्भिक दिनों से ही कई लोकतांत्रिक नेताओं के साहस और निष्ठापूर्ण प्रयासों के बावजूद जिन आर्थिक और सामाजिक सुधारों के द्वारा ही कोई समाज गंभीरता और गरिमा प्राप्त कर सकता है, वे दब गए या भटक गए।

और, आवश्यक आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन न होने के कारण, विशाल धन

का अस्तित्व बहुधा दीन ग़रीबी के साथ-साथ है।

'प्रगति के लिए मित्रता' राष्ट्रों की एक ऐसी सामेदारी के लिए आधार प्रदान करती है, जिसका उद्देश्य समूचे अमरीकी महाद्वीप की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति एक नया और लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण प्रदान करना है। ऐसी साझेदारी का विकास सर्वोत्तम रूप में किस प्रकार हो सकता है ? हर साझीदार की भूमिका कैसे समझी और परिभाषित की जाय ?

सितम्बर 1960 में, बोगोटा के अधिनियम ने इस बात पर ज़ोर दिया कि दोतरफा सम्बन्धों के द्वारा ही आर्थिक और सामाजिक विकास सफल हो सकता है।

उसमें कहा गया, "आर्थिक और सामाजिक प्रगति के सहयोगी कार्यक्रम की सफलता के लिए आवश्यक होगा कि अमरीकी गणराज्य अपनी सहायता स्वयं करने के अधिकतम प्रयत्न करें, और बहुतेरे मामलों में यह भी जरूरी होगा कि वर्तमान संस्थाओं और चलनों को, विशेषतः कराधान, भूमि के स्वामित्व और उपयोग, शिक्षा और प्रशिक्षण, स्वास्थ्य और आवास के क्षेत्रों में सुधारा जाय।"

अगस्त, 1961 में, पुन्टा डेल एस्टे में 'अमरीकी लोगों की घोषणा' और भी स्पष्ट थी। इसने 'भूमि के स्वामित्व और उपयोग के अन्यायपूर्ण ढाँचों और व्यवस्थाओं' की निन्दा की, और 'इसलिए कि भूमि, उस पर काम करने वाले के लिए अधिकाधिक कल्याण का आधार बने, और उसकी स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा की सुरक्षा बने'''हर देश की विशिष्टताओं के अनुसार, कृषि सुधार के समेकित कार्यक्रमों' का सशक्त समर्थन किया।

घोषणा ने ऐसी कर-व्यवस्था की माँग की 'जो उन लोगों से अधिक ले, जिनके पास सबसे अधिक है, करों की चोरी को कठोरता से दंडित करे, राष्ट्रीय आय का फिर से इस प्रकार बँटवारा करे कि जिनकी आवश्यकता सबसे अधिक है, उनको लाभ पहुँचे, और इसके साथ ही, बचत को और पूंजी के विनियोजन और पुनर्विनियोजन को प्रोत्साहित करे।'

घोषणा ने अन्त में यह विश्वास प्रकट किया कि 'ये गंभीर आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक परिवर्तन केवल हर देश के आत्म-सहायक प्रयत्नों के द्वारा ही फलीभूत हो सकते हैं।'

सितम्बर के आरम्भ में संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस ने आर्थिक सहायता सम्बन्धी विधेयक पारित किया, जिसमें इन सिद्धान्तों का समावेश किया गया, और जिस धन की व्यवस्था की गई, उसका बँटवारा करने में राष्ट्रपति केनेडी की जिम्मेदारी निरूपित की गई।

उदाहरण के लिए, इस नए कानून में कहा गया है कि विकासशील राष्ट्रों को कर्ज और अनुदान देते समय, राष्ट्रपति 'ध्यान रखें कि लाभन्वित होने वाला देश किस हद तक अपनी जनता के मार्मिक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हितों को ध्यान में रखता है, और किस हद तक स्वयं अपनी सहायता करने के लए

उपायों को अपनाने की स्पष्ट दृढ़ता प्रदर्शित करता है।"

इस कानून में व्यापक, सुविचारित योजनाओं की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया है, जिससे अपव्यय और भ्रष्टाचार को रोका जाय। इसमें समेकित ग्राम समाजों को विशेष प्रोत्साहन देने की बात कही गई है, ताकि ज़मीन जोतने वालों को अधिक अवसर और न्याय मिले।

लातिन अमरीका के विशिष्ट सन्दर्भ में, नए आर्थिक सहायता कार्यक्रम में बात पर ज़ोर दिया गया है कि सहायता 'बोगोटा के अधिनियम के सिद्धान्तों के अनुसार' दी जाय।

इस प्रकार, ये हमारे स्पष्टतः निरूपित लक्ष्य हैं। स्वयं कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्या स्थिति है? यद्यपि पद्धतियाँ, प्रतिमान, और विशिष्ट कार्यक्रम अभी बनाए जा रहे हैं, फिर भी, कुछ सामान्य बातों पर विचार किया जा सकता है।

एक चुनौती, जिस पर हमें विचार करना होगा, ग्रामीण क्षेत्रों की है, जहाँ इस समय लातिन अमरीका के 70 प्रतिशत लोग रहते हैं।

इस प्रश्न का सामना करते समय, हमें अस्पष्ट रूप में 'भूमि सुधार' की माँग करने वाले लोकप्रिय नारों के आगे जाकर देखना होगा। यद्यपि गतिशील ग्राम समाजों का निर्माण करने के लिए भूमि का व्यक्तिगत अथवा सहकारी स्वामित्व आवश्यक है, किन्तु यह अपने आप पर्याप्त नहीं है।

अगर ग्रामीण परिवारों को अधिकाधिक प्रतिष्ठा और अवसर प्राप्त करने हैं, जिसकी उन्हें इतनी अधिक तलाश है, तो शासकीय प्रसार सेवाओं का निर्माण करना होगा, जो खेती की आधुनिक पद्धतियों को और साधनों के अधिक कुशल उपयोग को बढ़ावा दें। ऐसी प्रसार सेवाओं में अस्पतालों, स्कूलों, और सड़कों के विचारपूर्वक समेकित कार्यक्रमों को भी शामिल करना चाहिए।

कम ब्याज पर कर्ज़ की भी व्यवस्था होनी चाहिए, और सहकारिता का विकास होना चाहिए ताकि समूचे समुदाय स्वयं अपने प्रयत्नों के द्वारा अपने विकास के लिए काम करना सीखें जहाँ संभव हो, सिंचाई के पानी की व्यवस्था करने के लिए नदी-नालों पर बाँध बनाये जाएँ, और नलकूप खोदे जाएँ।

समुदाय के सभी स्वस्थ लोगों को इन सुविधाओं का निर्माण करने में श्रमदान के लिए प्रोत्साहित करके, प्रसार कार्यकर्त्ता उनमें निजी गर्व और सक्रिय सहयोग की भावना को और अधिक बढ़ा सकता है।

ग्रामीण समाजों के साथ काम करने का पिछले दिनों हमारा जो अनुभव रहा है, उसका सबसे महत्त्वपूर्ण नतीजा यही निकलता है—जब ग्राम सुधार के कार्यक्रम विचारपूर्वक समेकित होते हैं, तभी मानवीय शक्तियाँ पूर्णतः मुक्त होती हैं।

मैं विशेष आग्रह के साथ यह बात कहना चाहता हूँ कि आर्थिक विकास की आकांक्षा रखने वाला कोई भी देश ऐसा नहीं कह सकता कि वह अपने बच्चों को शिक्षा

देने की स्थिति में नहीं है। अपने बच्चों को शिक्षा दिए बिना उसका काम नहीं चल सकता। और न अपने लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा किए बिना चल सकता है।

बोगोटा के अधिनियम, और पुन्टा डेल एस्टे में हाल ही में हुए सम्मेलन, दोनों में ही इस बात पर जोर दिया गया कि आय के साथ बढ़ने वाला आय कर, अपनी सहायता आप करने का एक आवश्यक रूप है। नए उत्पादक उद्यमों में पूंजी के विनियोजन को गतिशील प्रोत्साहन देते हुए, अनुपयुक्त मुनाफों को समेटने के लिए ऐसी कर-व्यवस्थाएं आवश्यक होती हैं।

यद्यपि हमारी इच्छा दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करने की बिल्कुल नहीं है, किन्तु हम कठोर अनुभव से जानते हैं कि अमीर और गरीब के बीच बहुत अधिक और दिखाई पड़ने वाले अन्तरों से उन लोगों में कटु अशांति और निराशा उत्पन्न होती है, जिन्हें कम सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

देशी पूंजी के विनियोजन को बढ़ाने के लिए, और सफल विकास के लिए एक अन्य आवश्यक शर्त यह है कि विकासशील राष्ट्र की मुद्रा का, उन देशों की मुद्राओं के साथ तर्क संगत सम्बन्ध हो, जिसके साथ उसके व्यापारिक सम्बन्ध हों।

मैं यह बात साफ कह देना चाहता हूं कि जो पूंजी किसी देश के बाहर चली जाती है, उसकी जगह भरने के लिए मेरे देश का शासन, या अन्य कोई पूंजी विनियोजन कर्ज या अनुदान क्यों दे, यह मैं नहीं समझ पाता, जबकि उस प्रकार की रोकें लगाकर ऐसी पूंजी को देश में रखा जा सकता है, जिनका प्रयोग युद्ध के बाद इंगलिस्तान ने अपनी अर्थ-व्यवस्था को पुन. स्वस्थ बनाने के लिए किया था।

मैं यह भी नहीं समझ पाता कि ऐसे राष्ट्रों की सहायता करने के लिए अपने ऊपर कर लगाने की उम्मीद हमसे क्यों की जाय, जो स्वय अपने समृद्ध लोगों पर, उनकी कर देने की क्षमता के अनुसार कर नहीं लगाते, या करों की चोरी की ओर ध्यान नहीं देते। अमरीका में हम लोग पचास साल से आय कर दे रहे हैं।

अब, जो राष्ट्र बोगोटा के अधिनियम की भावना के अनुसार, अपनी सहायता आप करने के लिए आवश्यक कदम उठा रहे हैं, उनकी सहायता करने के लिए अमरीका वस्तुतः क्या करने को तैयार है ?

हर राष्ट्र अपनी विशेष आवश्यकताएं और संभावनाएं प्रस्तुत करेगा। किन्तु विकास कार्यक्रमों के लिए कर्ज और अनुदान देने के लिए, विभिन्न प्रकार की एजेन्सियों से काफी मात्रा में धन उपलब्ध है। इसके साथ ही नियोजन, अमला कार्य और विकास के लिए प्राविधिक विशेषज्ञ, गेहूं, मक्का, सूखा दूध और चिकनाई आदि कृषि उत्पादन, और अध्यापन, सर्वेक्षण, और अन्य योजनाओं में सहायता करने के लिए, मुख्यत. हमारे विश्व-विद्यालयों से भर्ती किये गए शांति सेना के स्वयं सेवक भी उपलब्ध हैं।

ऐसे सुझावों का भी अध्ययन किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप हम आशा करते हैं कि ऐसे समझौते हो सकेंगे, जिनसे लातिन अमरीकी देशों की समृद्धि के लिए

अड़तीस

अगर मार्क्स वापस आ सकते

1952 में मार्क्सवाद भारतीय विश्वविद्यालयों में अ-साम्यवादी छात्रों के बीच भी, एक व्यापक रूप में स्वीकृत आर्थिक सिद्धान्त था। उस वर्ष अक्टूबर में, नई दिल्ली में राजनीति के भारतीय छात्रों के समक्ष, राजदूत बोल्स ने भारतीय आर्थिक और राजनीतिक विकास सन्दर्भ में, मार्क्स के पुराने पड़ चुके विचारों के मूल तर्कदोष की ओर संकेत किया।

कार्ल मार्क्स ने जिस काल मे अपना जीवन बिताया और लिखा, उसकी पृष्ठ-भूमि में ही उनकी शिक्षाओं का मूल्यांकन होना चाहिए। 1848 में, जब 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' (साम्यवादी घोषणा-पत्र) लिखा गया था, यूरोप मे औद्योगिक क्रांति चल रही थी, और वहां के औसत नागरिक के लिए दुनिया निश्चय ही दुःख भरी थी।

हर तरफ गरीबी थी। आठ, दस, या बारह बरस के बच्चे, कुछ आने प्रति सप्ताह के लिए कारखानों मे बड़ी देर तक काम करते। जो कुछ लोग धनी थे, और निरन्तर अधिक धनी होते जाते थे, जबकि ग़रीबों को अपनी ग़रीबी से मुक्ति पाने की कोई आशा दिखाई नही देती थी।

युवा किसानो की एक अंतहीन धारा काम की तालाश मे शहरों में आती, उससे वेतन और नीचे गिर जाते, और इस प्रकार नई पीड़ाओं और कटुता का जन्म होता। उपनिवेशो में लोगों का निर्मम शोषण होता था, और कच्चे माल के लिए बड़े यूरोपीय राष्ट्रों के संघर्ष बहुतेरे तनावों को जन्म देते थे।

यह एक ऐसी दुनिया थी, जिसमें कुछ थोड़े-से लोगो को लाभ होता था, और अधिकांश लोगों को कष्ट होते थे। उन्नीसवी सदी के साथ हम जिस कला, संस्कृति और शिक्षा को जोड़ते हैं, वह केवल एक सीमित अल्पसंख्या को उपलब्ध थी।

मध्य-उन्नीसवी सदी में लोभ और शोषण की इस बड़ी दुःखपूर्ण दुनिया को देख कर, मार्क्स कुछ ऐसे नतीजों पर पहुँचे, जो उन्हें स्पष्ट और अनिवार्य प्रतीत हुए।

उन्होंने सोचा कि पूंजीवादी व्यवस्था का अन्ततः विनाश होगा, 'शासक वर्ग' से सत्ता छिन जायगी, और तब जनता 'सर्वहारा की अधिनायक शाही' संगठित करेगी। मार्क्स के अनुसार, अपना कार्य समाप्त हो जाने पर यह क्रान्तिकारी शासन 'मुर्झाने'

लगेगा, समाज के विभिन्न वर्ग विघटित हो जाएँगे, और दुनिया के लोग, सभी लोगों के लिए अधिक स्वतन्त्रता और अधिक अवसरों की फैलती हुई सीमाओं की आशा कर सकेंगे।

गरीबी और शोषण की जिस पृष्ठभूमि मे कार्ल मार्क्स ने लिखा था, उसे देखते हुए इन कठोर निष्कर्षों को समझा जा सकता है। किन्तु मार्क्स अगर आज हमारे अब भी दोषपूर्ण ससार मे वापस आ सकते, तो कुछ बातों से उन्हें बड़ा आश्चर्य होता।

उदाहरण के लिए, निजी स्वामित्व की हमारी अमरीकी व्यवस्था के अन्तर्गत सभी लोगो को जो अधिकाधिक बढ़ते हुए अवसर प्राप्त हुए हैं, क्रयशक्ति मे निरन्तर जो वृद्धि हुई है, और जो औद्योगिक विकास, और गतिमय अभिवृद्धि हुई है, मार्क्स उसकी कल्पना नही कर सकते थे। न हमारी अमरीकी शिक्षा व्यवस्था की वे कल्पना कर सकते थे, जो अठारह वर्ष तक के सभी लडके-लडकियो को मुफ्त शिक्षा देती है, न हमारे उन कानूनो की जो सोलह वर्ष की आयु के पहले किसी व्यक्ति को कारखानों मे काम करने से रोकते हैं, न उत्तराधिकार करो और पैंसठ वर्ष की आयु के बाद मिलने वाली वृद्धो की पेंशन की, न चिकित्सा-बीमा, बेकारी का बीमा, सार्वजनिक आवास व्यवस्था, और स्कूल मे बच्चो के लिए मुफ्त भोजन की।

ये नई और सचमुच क्रांतिकारी धाराएँ हैं। कोई व्यक्ति उनकी पूर्व-कल्पना नही कर सकता था, मार्क्स जैसी बुद्धि का व्यक्ति भी नही। एक शताब्दी से अधिक समय तक अमरीकी मे एक नए प्रकार की अहिंसक क्रांति चलती रही, और अब भी जनसाधारण के लाभ के लिए चल रही है।

इसके अतिरिक्त, बीसवी सदी की यह महान् प्रगति अमरीका तक ही सीमित नही रही। स्वीडेन, फिनलैण्ड, डेनमार्क और नार्वे की सहकारी सस्थाओ की कल्पना मार्क्स कैसे कर सकते थे, जहाँ बड़े-बड़े उद्योगो के उत्पादनो के खरीदार ही सचमुच उन उद्योगो के मालिक हैं? वे इन वितरण-सहकारिताओं की कल्पना कैसे कर सकते थे, जिन्होने उपभोक्ता के लिए वस्तुओ के मूल्य को और अधिक घटा दिया है।

मार्क्स ऐसे शासकीय स्वामित्व की कल्पना कैसे कर सकते थे, जो निजी स्वामित्व के साथ-साथ, उससे प्रतियोगिता करता हुआ, शान्तिपूर्ण रीति से काम करता है? वे तीन भिन्न प्रकारो की उत्पादन व्यवस्थाओ—सहकारी, निजी पूँजीवाद, और समाजवादी—के मिश्रण की कल्पना कैसे कर सकते थे, जो लगभग एक-दूसरे की प्रतियोगिता बनकर काम करती हैं, कि कौन व्यवस्था सर्वोत्तम वस्तुएँ सबसे सस्ते मूल्यो पर पैदा कर सकती है, कौन मजदूरो को सबसे अच्छा वेतन दे सकती है, कौन लोगों को सर्वोत्तम भविष्य प्रदान कर सकती है?

वे इगलिस्तान मे मजदूर दल की सरकार की कल्पना कैसे कर सकते थे, जो इस्पात के कारखानों और कोयले की खानों के सार्वजनिक स्वामित्व का समर्थन करने के साथ-साथ, अधिकतम व्यावहारिक सीमा तक निजी स्वामित्व को कायम

रखने के लिए वचनबद्ध हो ?

अगर वे इंगलिस्तान के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' (लोक सभा) में बैठकर सदस्यों को हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, ब्रह्मा, और श्रीलंका के 50 करोड लोगों की स्वतंत्रता के लिए मतदान करते देखते, तो क्या सोचते ? गांधी की महान रक्तहीन, अहिंसक क्रान्ति की कल्पना मार्क्स कैसे कर सकते थे ?

और वे इसकी कल्पना कैसे कर सकते थे कि दुनिया के राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ में एकत्रित हो जाएँगे, जो अपनी सारी अपूर्णताओं के बावजूद दुनिया को पहला विश्व-व्यापी मंच प्रदान करेगा ? विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन की पूर्व-कल्पना वे कैसे कर सकते थे ?

कार्ल मार्क्स इन घटनाओं की कल्पना नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में जो अर्थ-व्यवस्था मजबूती से प्रतिष्ठित प्रतीत होती थी, और जिसकी उन्होंने सर्वथा उचित आलोचना की थी, वह अपने रोग दूर नहीं कर सकेगी, और विश्व में निश्चय ही रक्तमय अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला विस्फोट होगा।

मार्क्स आर्थिक अनिवार्यता में विश्वास करते थे। मनुष्यों की इस क्षमता को उन्होंने नहीं समझा कि वे लोकतान्त्रिक साधनों के माध्यम से कार्य करते हुए अपना जीवन संगठित कर सकते हैं, ताकि आर्थिक शक्तियों का उपयोग सबकी भलाई के लिए किया जा सके।

माल्थस के सिद्धान्त यांत्रिक प्रविधियों के विकास की कल्पना नहीं कर सके थे। मार्क्स के सिद्धान्तों ने उन मानवीय तत्वों की उपेक्षा की, जिनमें गांधी की आस्था थी।

कार्ल मार्क्स के प्रसंग में सोवियत रूस की क्या स्थिति है ? आज विश्व का साम्यवादी आन्दोलन जिस रूप में है, उसकी प्रतिक्रिया मार्क्स पर क्या होती ?

मुझे शक है कि कार्ल मार्क्स अगर इस समय धरती पर वापस आते, तो उन्हें लौह आवरण के पार जाने में भी सफलता मिलती या नहीं। लेकिन अगर उन्हें सोवियत रूस और अन्य पिछलग्गू देशों में जाने के लिए पारपत्र मिल भी जाते, तो वहाँ की स्थिति देखकर उन्हें निश्चय ही आश्चर्य होता। मार्क्स ने जिस साम्यवाद के लिए काम किया था, और आशा की थी, वह उस साम्यवाद से बहुत भिन्न था, जिसका आजकल बड़ा शोर है।

सबसे पहले उनका ध्यान निजी स्वतंत्रता के पूर्ण अभाव पर जाता। अपने लेखन के अनुसार वे कहते, "यह साम्यवादी शासन पैंतीस वर्षों से सत्तारूढ़ रहा है। निश्चय ही अब इसे 'मुर्झाना' चाहिए। सर्वहारा को अपना कामकाज खुद ही चलाना चाहिए जिसमें राजकीय प्रतिबन्ध अधिकाधिक कम हों, और हर व्यक्ति को अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।"

अगर मार्क्स मास्को रेडियो की आवाज सुनते, तो कुछ समय के लिए शायद आश्वस्त हो जाते, क्योंकि उन्हें बहुतेरी परिचित शब्दावली सुनने को मिलती। वे

सोवियत नेताओं की भविष्यवाणी सुनते कि 'पूंजीवाद' आखिरकार अपने-आप नष्ट होने वाला है। वे सुनते कि 'पूंजीवादी' देश (साम्यवादी शब्दावली में जिसका अर्थ है हर ऐसा देश जो सोवियत प्रसारवाद और आक्रामक नीति के विरुद्ध हो) शीघ्र ही 'पूंजीवादी जगत' को विभाजित करने वाले एक युद्ध में अपना विनाश कर लेंगे। लेकिन जब मार्क्स कठोर तथ्यों का अध्ययन करते, तो पुरानी परिचित शब्दावली उन्हें खोखली प्रतीत होती।

निश्चय ही, दुनिया उस तरह विभाजित है, जैसी उन्होंने भविष्यवाणी की थी। लेकिन वे देखते कि संघर्ष 'पूंजीवाद' और 'साम्यवाद' के बीच नहीं है, वरन् जो देश स्वतंत्र रहने को दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, चाहे उनके यहां किसी भी प्रकार का शासन हो, और जो देश बल प्रयोग द्वारा दूसरों पर आक्रमण करने को तत्पर प्रतीत होते हैं, उनके बीच है।

इस बुलंद आधुनिक संघर्ष में वे देखते कि स्कैंडिनेविया (नार्वे, स्वीडेन, डेनमार्क) और इंगलिस्तान के लोकतांत्रिक समाजवादी, अमरीकी निजी स्वामित्व की व्यवस्था, और युगोस्लाविया का स्वतंत्र साम्यवादी शासन, ये एक-दूसरे से कन्धा मिलाए खड़े हैं।

कार्ल मार्क्स देखते कि इस आधुनिक जगत में 'पूंजीवाद बनाम समाजवाद' का पुराना संघर्ष झूठा पड़ चुका है, और असली संघर्ष स्वतंत्रता और स्वाधीनता की शक्तियों तथा दमन और आक्रमण की शक्तियों के बीच है।

उन्तालीस

सोवियत संघ को सबसे अधिक किसका भय है

1953 में समाप्त होने वाला कोरिया युद्ध अन्य सशस्त्र साम्यवादी आक्रमणों की कटु आशंका छोड़ गया। उसी वर्ष अक्टूबर में हार्ट फोर्ड कानेक्टिकट में वाइ. एम. सी. ए. में भाषण देते हुए श्री बौल्स इन आशंकाओं को उचित परिप्रेक्ष्य में रखने की चेष्टा करते हैं।

एक क्षण के लिए, इस बात को छोड़कर कि हम अमरीकी किस बात से डरते हैं, हम देखें कि जिस क्रांतिकारी विश्व में हम रह रहे हैं, उसमें सोवियत रूस के नेताओं को सबसे अधिक डर किस बात का है।

मैं समझता हूँ कि सबसे अधिक उन्हें इस बात का डर है कि लोकतांत्रिक राष्ट्र लोकतंत्र के ऐसे सफल उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, और दुनिया की समस्याओं का सामना इतनी सफलता के साथ करेंगे कि लोकतंत्र का विचार, किसी दिन स्वयं सोवियत रूस के अन्दर भी अजेय हो जायगा।

उन्हें डर है कि हमारे ठोस कार्यों से लोकतांत्रिक जगत इतना सबल हो जाएगा कि आतंरिक साम्यवादी क्रान्ति असम्भव हो जाएगी।

उन्हें डर है कि चतुःसूत्री कार्यक्रम को विस्तृत किया जाएगा, और आर्थिक विकास के लिए साहसपूर्वक उसका उपयोग किया जाएगा, जिससे अमरीकी सहायता के फलस्वरूप एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के स्वतंत्र राष्ट्र बिना तानाशाही की क्रूरता के अपना विकास कर सकेंगे।

उन्हें डर है कि आर्थिक असफलता के फलस्वरूप अव्यवस्था और उसके निकट सम्बन्धी साम्यवाद के आने का इन्तजार करने के बजाए, हम इन राष्ट्रों के लोकतांत्रिक प्रयासों की सफलता के लिए उन्हें कर्ज या अनुदान के रूप में पूंजी और प्राविधिक सहायता प्रदान करेंगे।

उन्हें डर है कि हम इस तथ्य को अच्छी तरह समझ जाएंगे कि एशिया में सर्वाधिक निर्णायक प्रतियोगिता साम्यवादी चीन और लोकतान्त्रिक हिन्दुस्तान के बीच है, जो अल्प-विकसित जगत के दो ध्रुव हैं, और यह कि चीन को जितनी सहायता रूस से मिलती है, हम हिन्दुस्तान को उससे अधिक प्रभावकारी समर्थन प्रदान करेंगे।

उन्हें डर है कि हम स्वतंत्र एशियाई देशों के इस निश्चय को स्वीकार कर लेंगे और उसका आदर करेंगे, कि वे सैन्य सन्धियों से असम्बद्ध स्वतंत्र विदेश नीतियां अपनाएंगे।

वे जानते हैं कि अगर पश्चिमी देश एशियाई राष्ट्रवाद का इस प्रकार आदर करें, तो केवल साम्यवादी ही 'विदेशी शक्ति के एजेण्ट' कहे जा सकेंगे।

उन्हें डर है कि हम अपना यह वर्तमान विफल दृष्टिकोण छोड़ देंगे कि जो हमारे पक्ष में नहीं है, वह हमारे विरुद्ध है, जिसने बहुतेरे गर्वीले और मित्रतापूर्ण राष्ट्रों को हमसे रुष्ट किया है, और जो उस 'तटस्थता' के बिलकुल विपरीत है, जिस पर प्रथम महायुद्ध के पूर्व पूरी एक शताब्दी तक हम स्वयं आग्रह करते रहे थे।

उन्हें डर है कि अफ्रीका में, और एशिया के शेष औपनिवेशिक क्षेत्रों में अमरीकी विदेश नीति राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का समर्थन करने लगेगी, जिससे एकमात्र 'साम्राज्यवाद विरोधी' होने के रूसी दावे का खोखलापन स्पष्ट हो जाएगा।

उन्हें डर है कि अमरीका अलोकतान्त्रिक और अलोकप्रिय सरकारों का समर्थन करना बन्द कर देगा, जो साम्यवादियों को अपने आक्रमणों के लिए बड़े आसान लक्ष्य प्रदान करती है।

उन्हें डर है कि हम ऐसी सरकारों को विशेष समर्थन प्रदान करने लगेंगे, जो आवश्यक भूमि सुधारों और सामाजिक सुधारों को कार्यान्वित करती है, और कराधान की उचित व्यवस्था कायम करती है।

उन्हें डर है कि हम ऐसे सुधारों को अपनी आर्थिक सहायता की एक शर्त बना सकते हैं, जिससे दुनिया के लोग यह देख सकेंगे कि हम उनके पक्ष में हैं।

उन्हें डर है कि हम न केवल आक्रमण के सामूहिक प्रतिरोध के लिए, वरन् अधिक मात्रा में विश्व की आर्थिक समस्याओं का सामना करने के लिए भी संयुक्त राष्ट्र संघ को समर्थन और बल प्रदान करेंगे।

उन्हें डर है कि अपने बुद्धि-कौशल और संवेदनशीलता के द्वारा हम संयुक्त राष्ट्र संघ को लोकतान्त्रिक राष्ट्रों की निष्ठा का केन्द्र बनाने में सहायक हो सकते हैं।

उन्हें डर है कि यहाँ अमरीका में हम अपनी अर्थ-व्यवस्था को बिना मन्दी के चला सकने में समर्थ होंगे।

उन्हें डर है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विकास के नए कार्यक्रम पूर्ण उत्पादन, और पूर्ण रोजगार के स्तर पर चलते रहेंगे और इस प्रकार उनकी सारी मार्क्सवादी भविष्यवाणियों को झूठा सिद्ध करेंगे।

उन्हें डर है कि पिछले बीस वर्षों में जातीय सम्बन्धों में हुई प्रगति को हम न केवल क़ायम रखेंगे, बल्कि अपने सारे ही नागरिकों की पूर्ण प्रतिष्ठा और समान अधिकारों की दिशा में नाटकीय नए कदम भी उठाएँगे।

उन्हें डर है कि साम्यवादियों के भय के फलस्वरूप बहुतेरे स्थूल व्यवस्था मण्डलों और बहुतेरे इलाकों में विभाजित होने के बजाए, अमरीकी लोग स्वयं अपने स्वतन्त्र सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था में एक हो जाएँगे।

उन्हें डर है कि साम्यवाद से लड़ते हुए भी, हम अपनी नागरिक स्वतंत्रताओं को पूरी तरह बनाए रखेंगे, जिससे लोकतान्त्रिक पद्धति दुनिया के सामने सगर्व एक

उदाहरण बन कर खड़ी रहेगी।

संक्षेप में, उन्हें डर है कि थॉमस जेफरसन, अब्राहम लिंकन, और फ्रैंकलिन रूज-वेल्ट के विचारों के प्रति पुनः समर्पित, जागरूक अमरीका के नेतृत्व में, उन स्थितियों को समाप्त करके, जो साम्यवाद के प्रसार को संभव बनाती हैं, लोकतांत्रिक जगत साम्यवाद की विश्व विजय की आशाओं को विफल कर देगा।

चालीस

संकट प्रतीक्षा नहीं करेगा

1955 में सोवियत रणनीति ने खुले आक्रमण का मार्ग छोड़ कर, आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक पैंतरेबाज़ी का रास्ता अपनाया। इसने अमरीका के समक्ष एक नया संकट और नयी चुनौती रखी, जिसका वर्णन श्री डॉल्स ने इस लेख में किया है। न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन, 27 नवम्बर, 1955।

जुलाई, 1955 में हुए शिखर सम्मेलन में, यथार्थ के अनुकूल इस बात पर सहमति हुई कि वर्तमान स्थितियों में आण्विक युद्ध लगभग निश्चित रूप में दोनों ही पक्षों को नष्ट कर देगा, और इस कारण इस प्रकार का युद्ध व्यवहारतः असम्भव हो गया था। किन्तु उसमें इस बात का संकेत नहीं मिला कि सोवियत संघ ने अपने दीर्घकालीन जागतिक लक्ष्यों का परित्याग कर दिया है।

ख्रुश्चोव और बुलगानिन ने इसके पहले एक बात समझ ली थी, जिसकी अधिक मताग्रही स्टालिन ने हठपूर्वक उपेक्षा की थी—कि सैनिक गतिरोध की पृष्ठभूमि में, सैनिक आक्रमण, या आक्रमण की धमकी विश्व साम्यवाद के लिए व्यर्थ हो गई थी।

शिखर सम्मेलन के पहले भी, और उसके बाद बढ़ती हुई गति से साथ, सोवियत नेताओं ने नए आण्विक शक्ति सन्तुलन के नतीजों को साहसपूर्वक स्वीकार किया, और तदनुसार काम करना आरम्भ किया। पिछले कुछ महीनों में वे सोवियत विदेश नीति की मुख्य दिशा को चतुराई के साथ बदल कर उसे संघर्ष के एक बिलकुल नए क्षेत्र में ले गए हैं—राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक, और कूटनीतिक पैंतरेबाज़ी का क्षेत्र।

इस बीच अमरीकी नीति उसी रणनीति से बँधी हुई प्रतीत होती है, जो शीत युद्ध के समय भी अत्यधिक संकीर्ण प्रमाणित हुई थी, और जो नए प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता के सन्दर्भ में और भी अपर्याप्त प्रतीत होती है। दुनिया के बड़े हिस्से में हमारी नीतियां अभी भी बहुत कुछ शक्ति की सैन्य-अभिमुख धारणाओं पर आधारित हैं। एशिया के कई हिस्सों में, और अफ्रीका में एक अपरिवर्तनीय कूटनीति ने हमें अब भी

यथास्थिति के साथ बांध रखा है, जो अनुपयोगी है, तिरस्कृत है, और जिसका विनाश निश्चित है।

अगर हम यह मानें कि अणु-युद्ध की संभावना अधिक है, तो दीर्घ-कालीन आर्थिक, वैचारिक, और राजनीतिक तत्वों का महत्त्व गौण होगा। लेकिन अगर जेनेवा के शिखर सम्मेलन का कोई अर्थ है तो यह कि जब तक हम सैन्य क्षेत्र में वर्तमान आण्विक सन्तुलन को बनाए रखते हैं, तब तक आधुनिक हथियारों की भयंकरता ने ही विश्व-युद्ध को बेमतलब बना दिया है।

अगर ऐसा है तो रणनीति और कार्यनीति की हर स्थिति में जो विदेश-नीति अपने-आप ही सैनिक तत्वों को अधिक महत्त्व देती है, और उन राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक शक्तियों की ओर कम-से-कम ध्यान देती है, जो इस समय इतिहास का निर्माण कर रही हैं, वह लगभग निश्चित रूप में अपर्याप्त रहेगी।

नई सोवियत कार्यनीतियों से डरने के बजाए हमें उनका स्वागत करना चाहिए। आर्थिक विकास, राजनीति, और विचार, हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। हमारे विरोधी ने प्रतिद्वन्द्विता के लिए ऐसा अखाड़ा चुना है, जिसमें हमारा बल प्रमाणित हो चुका है। हम आत्म-विश्वास के साथ नई चुनौती को स्वीकार कर सकते हैं।

अमरीका के सामने इस समय जो कहीं अधिक व्यापक चुनौती है, उस पर कांग्रेस का और जनमत का ध्यान केन्द्रित करने के लिए, अधिक साहसपूर्ण, और अधिक आत्म-विश्वासपूर्ण नेतृत्व की, और एक प्रबुद्ध, रचनात्मक द्विदलीय भावना की आवश्यकता होगी। वर्तमान दिशा को बदलने के लिए 1956 में और उसके बाद जो कदम उठाने की आवश्यकता पड़ेगी, वे वैचारिक दृष्टि से उन कदमों से कम मौलिक और दूर-दर्शिता पूर्ण नहीं होंगे, जो दस वर्ष पूर्व यूरोप को स्वतन्त्र रखने में सहायक होने के लिए दोनों दलों की मिली जुली शक्ति ने उठाए थे।

जिन दिशाओं में प्रयत्न करने की आवश्यकता है, उनमें से कुछ की सूची बनाने से चुनौती की व्यापकता का कुछ संकेत मिलेगा :

1. एक सैन्य प्रतिरक्षा कार्यक्रम, जो मास्को से आने वाले किसी भी सैन्य खतरे का सामना करने के लिए पर्याप्त हो।

2. एक आर्थिक विकास कार्यक्रम, जो इतना काफी बड़ा हो कि एशिया, अफ्रीका, और दक्षिण अमरीका में वही कुछ कर सके, जो मार्शल योजना ने यूरोप के लिए किया था।

3. एक जर्मन नीति का विकास, जो वास्तविक समस्या पर ध्यान केन्द्रित करे— लाल सेना को स्वयं अपनी सीमाओं के पीछे आने के लिए कैसे राजी किया जाए।

4. एक यूरोपीय समुदाय के निर्माण को प्रोत्साहन, जो उसकी सम्मिलित शक्ति के अन्तर्गत ठोस आर्थिक और राजनैतिक आधारों को निर्मित करे और पूर्वी यूरोप के पिछलग्गू राष्ट्रों को बराबर पश्चिम की ओर आकर्षित करे।

5. *एक औपनिवेशिक नीति, जो हमें अपरिवर्तनीय रीति से स्वतन्त्रता के पक्ष में* खड़ा करदे, एशिया और अफ्रीका में बसी मनुष्यजाति की बहुसंख्या का विश्वास प्राप्त करे, और इसके साथ ही शेष औपनिवेशिक लोगों द्वारा क्रमिक और जिम्मेदार कार्यवाही को प्रोत्साहित करे।

6. *एक मध्य-पूर्वी नीति जो अपने आवश्यक लक्ष्य के लिए पर्याप्त हो*—रचनात्मक स्थानीय शक्तियों को प्रोत्साहन देना, और इस निर्णायक महत्त्व के क्षेत्र में सोवियत प्रवेश को रोकना।

7. सुदूर पूर्व में वस्तुस्थिति के अनुकूल समझौते के लिए एक नया प्रयास, जिसमें *हिन्द-चीन, या कम से कम सत्रहवें अक्षांश के दक्षिण के भाग की स्वतन्त्रता सुरक्षित* हो, फारमोसा स्वतन्त्र और सुरक्षित हो, जापान आर्थिक दृष्टि से पुष्ट हो, और साम्यवादी चीन के साथ अधिक सामान्य सम्बन्धों की सम्भावना हो।

8. एशिया में हिन्दुस्तान और जापान के निर्णायक रणनीतिक महत्त्व की *स्वीकृति। अगले दस वर्षों में हिन्दुस्तान क्या करता है, या नहीं करता*, और जापान में क्या होता है, इसी से सम्भवतः अ-साम्यवादी एशिया के भविष्य का निर्णय होगा। हमें हिन्दुस्तान की तटस्थता के सम्बन्ध में अपनी निराशा का परित्याग करके, एक ठोस, सुविचारित, यथार्थ के अनुरूप कार्यक्रम बनाना चाहिए।

इनमें से पहली दो बातों *का निर्णायक महत्त्व है। हमें अपनी सैन्य-शक्ति क़ायम* रखनी चाहिए, लेकिन इसके साथ ही हमें दूर-दूर तक फैले आर्थिक और राजनीतिक मोर्चों पर भी साम्यवादी कार्यवाही का प्रतिकार करना चाहिए।

कुछ लोग अब भी ऐसा कहते हैं कि हम इस नयी आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक प्रतियोगिता की चुनौती का सामना कर सकने की स्थिति में नहीं हैं। लेकिन इसका वार्षिक खर्च चाहे जितना भी हो, अकेले 1955 में ही हमारी कुल राष्ट्रीय आय में हो रही बारह अरब डालर की वृद्धि का केवल एक हिस्सा होगा।

दक्षिण कोरिया से साम्यवादियों को बाहर रखने के लिए अमरीका और उसके मित्र देशों को हज़ारों लोगों की जिन्दगी और पचास अरब डालर के सामान की कीमत देनी पड़ी। अगर हम इस समय हिचकते हैं, तो हमें यूरोप, मध्य-पूर्व, दक्षिण एशिया, और अफ्रीका से उन्हें बाहर रखने के लिए कहीं ज्यादा कीमत देनी पड़ सकती है। नई सोवियत चुनौती के लिए हमारी कार्यवाही का पर्याप्त होना, उस कार्यवाही की कसौटी होनी चाहिए।

भविष्य के इतिहासकार कहीं ऐसा न कहें कि दूसरे महायुद्ध के बाद के दूसरे दशक में, अमरीका के नेतृत्व में सारी दुनिया में स्वतन्त्रता, इसलिए समाप्त हो गई कि हम अपने बजट को असंतुलित नहीं करना चाहते थे।

इकतालीस

एक प्रतियोगिता जिसमें हम हार नहीं सकते

1957 में सोवियत रूस की यात्रा करने पर, रूसी युवा लोगों में अमरीका के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता ने श्री बौल्स को प्रभावित किया। इसका एक परिणाम यह लेख हुआ, जिसमें उन्होंने अमरीकी-रूसी सांस्कृतिक विनिमयों पर रोक लगाने की वर्तमान नीति का विरोध किया है। सैटरडे रिव्यू, 24 अगस्त, 1957।

हाल ही में सोवियत संघ की एक यात्रा में मैंने रूसी युवा लोगों में नई हलचल के कई चिन्ह देखे। व्यवस्था से विरुद्ध प्रभावी विद्रोह की सभावना का संकेत करने वाली कोई चीज नही थी, लेकिन ऐसा बहुत था, जिससे दृष्टिकोण की कठोरता कम होने का, पुराने मताग्रहो के सम्बन्ध मे शकाओं का सकेत मिलता था। हर जगह जिज्ञासु, मित्रतापूर्ण युवा लोगों ने स्नेह, और प्रश्नों के साथ हमारा स्वागत किया।

वापस आने पर, सबसे अधिक मुझे यह प्रश्न उद्विग्न करता रहा कि स्टालिन के बाद रूसी शासन की खुले-सम्बन्धो वाली परीक्षणात्मक नीति का क्या हम सही उपयोग कर रहे हैं ? या, अधिक व्यापक रूप में, सारे साम्यवादी जगत मे परिवर्तन और हलचल की जो नई प्रक्रिया निश्चित रूप में इस समय आरम्भ हो रही है, उसे प्रोत्साहित करने के लिए, क्या हम अपना काम कर रहे हैं ?

सोवियत संघ में मैंने मास्को में होने वाले छठे विश्व युवक समारोह की बड़ी चर्चा सुनी, जिसके लिए सारी दुनिया से हजारो युवा लोगो को निमंत्रित किया गया था। मार्च मे यहाँ वापस आने के बाद मैंने सुना कि इस वर्ष के समारोह मे अपने गम्भीर रूप में लोकतांत्रिक अमरीकी विचारों को प्रस्तुत करने का एक अवसर देख कर, विशेषतः योग्य अमरीकी युवा छात्रों के कई समूह वहाँ जाने के प्रस्ताव पर विचार कर रहे थे। यह खेद की बात है कि अधिकारियों द्वारा उन्हें इसमे निरुत्साहित किया गया।

जिन लोगो ने पूछताछ की, उन्हें भेजे गए पत्रों में हमारे शासन की भीरु स्थिति निम्नलिखित शब्दो में व्यक्त हुई—आपका शासन आपको पारपत्र देने से इन्कार नही करेगा, लेकिन इस सिलसिले की व्यवस्था सोवियत सरकार द्वारा स्वयं अपने राजनीतिक उद्देश्यो के लिए की गई है, और उसमे भाग लेने वाले अमरीकी, साम्य-

वादी लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होंगे।

फलस्वरूप, अमरीकी प्रतिनिधि मंडल की संख्या घट कर एक सौ से भी कम रह गई है। उनमें कई योग्य, लोकतांत्रिक प्रवक्ता हैं, जो किसी बहस में अपने पक्ष का भलीभांति समर्थन कर सकते हैं। लेकिन जो लोग अब भी जाने की सोच रहे हैं, उनमें से अधिकांश या तो राजनीतिक दृष्टि से नासमझ हैं, या फिर स्पष्ट रूप से साम्यवादियों के सहयात्री हैं। कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़कर, ऐसे युवा स्त्री और पुरुष, जो सर्वाधिक सक्षम रूप में अमरीकी लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व कर सकते थे, उन्होंने सरकारी रोष से डर कर न जाने का फैसला कर लिया।

समारोह की प्रारम्भिक सूचनाओं से पता चलता है कि अपनी भीरुता के कारण हमने व्यक्तिगत सम्पर्कों का, जिनमें युवा अमरीकी अपने सर्वोत्तम रूप को व्यक्त करता है, एक असाधारण अवसर खो दिया। कुल 102 देशों से लगभग 2,20,000 युवा स्त्री-पुरुषों ने समरोह में भाग लिया था। और ऐसा प्रतीत होता है कि स्थिति ऐसे मुखर युवा अमरीकियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी, जो स्वतन्त्रता का अर्थ समझते हैं।

अपने पिछले अंक में लाइफ पत्रिका ने समाचार दिया है : "समारोह में खुले मेल-जोल की अनुमति ने, रूसियों को भूली हुई स्वतंत्रता के नए अनुभव से चौंका कर छोड़ दिया।" सरल सामाजिक सम्पर्कों और खुली राजनीतिक बहसों को देखकर, संवाददाता फ्लोरा ल्यूइस को याद आया कि 1955 में वार्सा समारोह के बाद "बेचैनी की दबी हुई चिनगारियाँ साम्यवादी जगत में भड़कने लगी।" मास्को में एक पोलैण्ड-वासी ने उनसे कहा, "मैं सोचता हूँ कि क्या ख्रुश्चोव समझते हैं कि वे कितना बड़ा खतरा उठा रहे हैं?

यह ऐसी एकमात्र स्थिति नहीं, जिसमें हम व्यक्तिगत सम्पर्कों से पीछे हटे हैं, जिनमें स्वतन्त्र लोगों का सर्वोत्तम रूप व्यक्त होता है। मैं जब मास्को में था, तो एक अन्तर्राष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता चल रही थी। एक अमरीकी टीम को निमन्त्रित किया गया था, लेकिन अन्तिम समय पर वह पीछे हट गई। मास्को विश्वविद्यालय में सोवियत छात्रों ने मुझसे पूछा, "आपकी टीम ने आने का निर्णय क्यों किया? क्या इसलिए कि विश्व ओलम्पिक में हमने आपको हरा दिया था?"

मुझे जो अधिकृत कारण बताया गया था, उसे मैंने यथा संभव विश्वसनीय रीति से दुहरा दिया—कि अक्तूबर में हंगरी में हुए विस्फोट के बाद, हम विरोध स्वरूप सोवियत संघ के साथ अपने सांस्कृतिक विनिमयों को समाप्त कर रहे हैं।

"किस बात के विरोध में।" रूसियों ने पूछा। इससे कम से कम मुझे हंगरी की क्रांति के सम्बन्ध में एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का अवसर मिला, जो अभी तक उनके सामने नहीं आया था। लेकिन 'विरोध' की ऐसी लौह-आवरण के ही दूसरे पक्ष की नीतियाँ, और तो छोड़ें, स्वयं अपने लक्ष्य की भी पूर्ति नहीं करतीं।

कोई विरोध तभी प्रभावकारी हो सकता है जब उन लोगों को उसका पता हो

जिनसे विरोध किया जा रहा हो। और रूसियों के लिए अमरीकियों के विचारों को समझने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि वे अमरीकियों से मिलें और उनसे बात करें—वही 'सांस्कृतिक सम्पर्क' जिस पर हम भीरुता के साथ प्रतिबन्ध लगाते रहे हैं।

हर योग्य प्रेक्षक इस बात से सहमत है कि इस समय सोवियत रूस के युवा लोगों में एक नया जागरण आ रहा है। उसे आगे बढ़ाने के लिए हम हर उचित अवसर का उपयोग क्यों नही करते ? हमारे शासन को वास्तव में डर किस बात का है ?

श्री ख्रुश्चोव के पिछले बयानो से इसकी कोई आशा नहीं मिलती कि सोवियत शासन की योजना निकट भविष्य मे अपने राजनीतिक दृष्टिकोण मे कोई ढिलाई लाने की है। लेकिन कम से कम लोह आवरण आंशिक रूप में तो खुला है।

मास्को विश्वविद्यालय मे मुझे छात्रों का समाचार-पत्र दिखाया गया, जिसके चालू अंक मे इण्डियाना विश्व-विद्यालय के छात्रों का एक पत्र प्रकाशित किया गया था, जिसमे छात्रों और सूचनाओं के विनिमय का प्रस्ताव था। रूसियो को इस संभावना ने बड़ा आकर्षित किया।

विश्वविद्यालय के रेडियो पर अमरीकी जाज संगीत बहुधा प्रसारित किया जाता है। वस्तुतः, जब हम प्रसारण कक्ष में गए, तो लुई आर्मस्ट्रांग (प्रसिद्ध अमरीका नीग्रो जाज संगीतज्ञ) का एक गीत प्रसारित किया जा रहा था। जब छात्रों को मालूम हुआ कि हमारे पास न्यूयार्क टाइम्स यूरोपीय संस्करण की कुछ हाल की ही प्रतियाँ थी, तो उन्होने इन प्रतियों को देखने का अनुरोध किया।

हर जगह मुझसे मेरे अपने कालेज जाने वाली आयु के तीन बच्चों के बारे में बहुसंख्यक प्रश्न किये गए। 'वे क्या पढ़ रहे हैं ?" स्नातकीय परीक्षा के बाद वे क्या करेंगे ?" और बार-बार यह प्रश्न—"क्या आप सोचते हैं कि शांति होगी ?" फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि हम व्यक्तिगत सम्पर्कों से अपने को रोक रहे हैं, जो हर आयु के रूसियों के साथ हमारी सबसे बड़ी शक्ति होनी चाहिए।

कुछ महीने पहले मुझे बताया गया था कि रूसियों ने कुछ उद्यमी अमरीकी नागरिकों को मास्को में एक कृषि मेला लगाने की अनुमति दे दी थी। हम मेले की जगह पसन्द कर सकते थे, अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ प्रकाशित कर सकते थे, और इतना काफी शुल्क लगा सकते थे कि मेले का खर्च निकल आए। लेकिन हमारे भीरु अधिकारियों ने पहले तो योजना को निजी अमरीकी हाथों से निकाल दिया, फिर चुपचाप उसे खत्म कर दिया।

आखिर हम अमरीकियों को दुनिया में डर किस बात का है ? साम्यवादी विचारों के बीच एक खुली, स्वतन्त्र-गति से चलने वाली प्रतियोगता मे हमारा क्या नुकसान हो सकता है ? निश्चय ही हमें यह डर नहीं हो सकता कि स्वतन्त्रता की परम्परा में पले हुए अमरीकी रूसियो के साथ अपने सम्पर्कों मे उनसे अच्छे नहीं साबित होंगे, जो केवल अपने शक्तिहीन और बेकार सिद्ध हो चुके विचार-दर्शन से ही परिचित हैं।

कठोर सोवियत व्यवस्था को काम करते हुए देखने के बाद, और उन निष्प्राण, गतिहीन, मताग्रही शब्दों को सुनने के बाद, जिनसे युवा सोवियत लोगों की नई पीढ़ी स्पष्टतः ऊबने लगी है, मेरी भविष्यवाणी इसके विपरीत है।

हम मास्को सरकार से क्यों न कहें कि वह अपने सर्वाधिक विश्वसनीय छात्रों में से पांच सौ को चुन कर अमरीका भेजे, और हम पांच सौ को चुन कर रूस भेजें? इसका परिणाम साम्यवादी मताग्रह के लिए बड़ा विनाशकारी ही हो सकता है।

सोवियत छात्र अपने शासन के प्रचार की बेईमानी को समझ कर, और स्वतंत्र संस्थाओं की रचनात्मक शक्ति के लिए नया आदर लेकर लौटेंगे। अमरीकी छात्रों में निःसन्देह रूसी लोगों के प्रति मानवीय सहानुभूति और निजी स्नेह की भावना आएगी। लेकिन इसके साथ, उनमें इस बात की समझ और गहरी होगी कि तानाशाही शासन के अधीन जीवन कितना अप्रिय हो सकता है, और हमारी अपनी उपलब्धियों को तथा हमारी असीमित लोकतांत्रिक संभावनाओं को भी वे ज्यादा अच्छी तरह समझेंगे।

रूस ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा। मुझे इसका विश्वास है। लेकिन हम यह प्रस्ताव रखकर दुनिया को यह क्यों न दिखा दें कि युवा अमरीकी लोगों द्वारा प्रस्तुत लोकतांत्रिक विचारों की शक्ति और प्रभावकारिता में हमें पूरा विश्वास है?

रूसी सरकार मास्को रेडियो पर अधिक सांस्कृतिक सम्पर्कों की बात बड़े ज़ोर-शोर से करती है। क्या अब इस चुनौती को स्वीकार करने का समय नहीं आ गया है?

बयालीस

चीनी मुख्यभूमि पर एक दृष्टि

कम्यून व्यवस्था के अन्तर्गत भोजन का उत्पादन बढ़ाने के लिए चीन के कठिन संघर्ष में 1959 में परेशानियाँ होने लगी थीं। संडरडे ईवनिंग पोस्ट (4 अप्रैल, 1959) में प्रकाशित अपने इस लेख में श्री बौल्स चीन के करोड़ों लोगों को भोजन देने के इस संघर्ष के महत्त्व पर, और उसके दीर्घ-कालीन खतरों पर विचार करते हैं।

क्या साम्यवादी अर्थशास्त्र, जिसने दो पीढ़ियों के अन्दर रूस को बलात् एक आधुनिक औद्योगिक राज्य बना दिया, एशिया मे सफल हो सकता है? या, वहाँ की बिलकुल भिन्न स्थितियों के कारण एशियाई साम्यवाद की असफलता अनिवार्य है।

इस प्रश्न पर दोनों दलों के अमरीकी नीति-निर्माताओं को तत्काल गम्भीरता से विचार करना चाहिए। उनके उत्तरों पर बड़ी हद तक कल की दुनिया का रूप निर्भर हो सकता है।

चीनी साम्यवादियों के सामने बड़ी जबरदस्त समस्याएँ हैं, जो कठिनतम स्थितियों में उनके राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों की परीक्षा ले रही हैं।

अगर पीकिंग सरकार रूस के नमूने पर तेजी से औद्योगीकरण करने की वर्तमान योजना को कार्यान्वित करती है, तो चीन की ग्राम अर्थ-व्यस्था पर असंभव बोझ पड़ने की संभावना है, जिसके लिए जरूरी होगा कि 65 करोड़ लोगों को भोजन प्रदान करने के अलावा, 'अतिरिक्त' कृषि उत्पादनों की भी व्यवस्था करे जो अति आवश्यक आयातों के मूल्य की अदायगी मे सहायक हों।

अगर वह किसानों को सन्तुष्ट करके भोजन का उत्पादन बढ़ाने को प्रोत्साहित करती है, तो लगभग निश्चित रूप से उसे अपने साम्यवादी राजनीतिक लक्ष्यों का परित्याग करना पड़ेगा। संक्षेप में यही चीन की मूल द्विविधा है।

एक पूरे राष्ट्र को स्वयं कमर कस कर उठने को तैयार करने की व्यवस्था, जो रूस में बड़ी क़ीमत देकर सफल हुई, शायद चीन में सफल न हो, क्योंकि वहाँ स्थिति लगभग पूरी तरह भिन्न है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ भूमि, भोजन और लोगों से सम्बन्धित हैं।

सोवियत संघ दो महाद्वीपों मे लगभग दस हजार मील तक फैला है। हमारे

अमरीकी पश्चिम की भाँति, यूराल पर्वत के पूर्व का विकास, लगभग केवल पिछले दो सौ वर्षों में ही खुला है। यह अब भी बहुत कुछ अविकसित है।

साम्यवादियों के सत्तारूढ़ होने के पहले, रूसियों को भुखमरी का अनुभव शायद ही कभी हुआ था। वस्तुतः पहले महायुद्ध के पूर्व, ज़ार के काल में रूस लगभग एक करोड़ टन गेहूँ प्रति वर्ष निर्यात करता था।

खेती में इस बड़ी, पूर्व-निर्मित अनुकूल स्थिति के बावजूद, सोवियत प्रयोग 1930 के बाद भोजन की कमी से लगभग टूट चला था। स्टालिन ने देखा कि तेज़ी से रूस का औद्योगीकरण करने के लिए, भोजन को विशाल मात्राओं को शहरों की ओर भेजना पड़ेगा, ताकि बढ़ती हुए औद्योगिक आबादी को भोजन दिया जा सके।

हर किसान परिवार के लिए स्वतन्त्र भूस्वामित्व और अधिकाधिक अवसर सम्बन्धी लेनिन के वादों को खुलेआम तोड़ कर, स्टालिन ने सारे ग्रामीण रूस को कठोरता से बँधे हुए राजनीतिक आधारों पर संगठित करना आरम्भ किया।

बीस वर्ष से अधिक समय तक रूसी किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए सताया और आतंकित किया गया। खेत पर कृषि उत्पादनों का मूल्य कम रख कर, और सरकारी फुटकर दूकानों पर ऊँची कीमतें लेकर, किसानों से बहुत अधिक मुनाफ़ा वसूल किया गया, ताकि उद्योग-धन्धों के तेज़ी से विकास के लिए अधिकाधिक पूँजी प्राप्त हो।

ग्राम विकास में बहुत थोड़ी पूँजी लगाई गई, और उपभोग की वस्तुएँ तो लगभग थी ही नहीं। सोवियत संघ भोजन के पहले से ही मौजूद उस अतिरिक्त उत्पादन पर कठिनाई से जीवित रहा, जो साम्यवाद ने नहीं, वरन् प्रकृति ने प्रदान किया था।

किन्तु दीर्घ-कालीन परिणामों की दृष्टि से, यह ज़बर्दस्त जुआ कामयाब हुआ। यद्यपि मानवी पीड़ा के अर्थ में इसकी कीमत दिल दहला देने वाली थी, लेकिन स्टालिन की दृढ़ता, और रूसी भूमि की लगभग असीमित क्षमता के फलस्वरूप, सोवियत शासन दो पीढ़ी से कम समय में ही एक सशक्त औद्योगिक राज्य का निर्माण कर सका।

इसी स्टालिनी कार्यक्रम को पीकिंग सरकार ने चीन की विकास-योजना के रूप में स्वीकार किया है। चीन की कहीं अधिक कठिन परिस्थितियों में ऐसा करके उसने शायद इतिहास के सबसे अधिक साहसपूर्ण आर्थिक और राजनीतिक जुए में दाँव लगाना शुरू किया है।

लेनिन की भाँति माओ ने भी अपनी क्रांति को उस अधिकतम नाटकीय वादे पर आधारित किया था, जो किसी विशाल राष्ट्र से किया जा सकता है—"ज़मींदारों का नाश हो। भूमि जोतने वाले को" लेकिन समय आने पर, स्टालिन की भाँति माओ ने भी बेहिचक इस वादे को तोड़ दिया, और चीन के किसानों को ऐसी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के साथ बाँध दिया, जिसमें निजी भूस्वामित्व का कोई स्थान नहीं।

1957 तक, लगभग सारे ही चीनी ग्रामीण परिवार 7,40,000 सामूहिक खेतों मे संगठित कर दिये गए थे। अब सार हीं सामूहिक खेतों, ग्राम उद्योगों और स्थानीय अर्द्ध-सैनिक दलों को 'कम्यूनों' या समुदायों मे समेकित किया जायेगा। यह क़दम इतना अधिक उग्र और क्रूर था कि स्टालिन ने भी इसका प्रयास करने का साहस नहीं किया था।

यद्यपि अब यह स्पष्ट है कि पीकिंग सरकार कठिनाइयों में पड़ गई है, किन्तु यह समझना भूल होगी कि कोई दिशा-परिवर्तन होने वाला है। कम्यून कार्य-क्रम के लक्ष्यों पर बार-बार जोर दिया गया है।

साम्यवादी चीन के नेता जानते हैं कि उनके प्रयत्नों की सफलता या असफलता बहुत कुछ गाँवों पर निर्भर होगी। यद्यपि कठिनाइयाँ निस्सन्देह बहुत अधिक है, किन्तु वे प्रभावी रीति से यह तर्क दे सकते हैं कि कम से कम इस मामले में वे अपने रूसी सहयोगियों की अपेक्षा कहीं अधिक अनुभवी है।

रूस की क्रांति केवल दो लाख पार्टी सदस्यों द्वारा की गई थी। वे अधिकांश बुद्धिजीवी और मजदूर थे जिनकी जड़ें शहरों में थी। मास्को और लेनिनग्राड में क्रांतिकारी उथल-पुथल के समय लेनिन द्वारा चतुराई से की गई घोषणा से कि 'सारी भूमि जोतने वाले की' उन्हें रूसी किसानों का सहयोग प्राप्त हो गया। लेकिन वे कभी ऐसा अनुभव नहीं कर सके कि वे आन्दोलन के अग हैं।

इसके विपरीत, चीन की क्रांति की गहरी जड़ें हमेशा गाँवों में रही। लाल सेनाओं के आगे बढ़ने के पहले गाँवों को संगठित करने वाले पचास लाख पार्टी सदस्यों की संख्या अब बढकर एक करोड तीस लाख हो गई है, और इनमे से अधिकांश किसान परिवारो के हैं। सभी स्तरों पर इस ग्राम अभिमुख साम्यवादी नेतृत्व के निर्देशन में चीन के दस लाख गाँवों में से बहुतेरे ऐसे हैं जिन्हें दो दशकों से विकसित हो रहे अनुशासन का अनुभव है।

साम्यवादी नेताओं का विश्वास है कि इन पद्धतियों से ये एक क्रान्तिकारी उत्साह कायम रख सकते हैं, जो विकास की खतरों से भरी अवधि में चीन को आगे ले जाएगा, और तेजी से औद्योगीकरण के लिए पूँजी का निर्माण करेगा।

निकट पारिवारिक सम्बन्धों और प्राचीन धार्मिक विश्वासों पर आधारित अनिश्चित किन्तु अत्यधिक निजी सुरक्षा के स्थान पर उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था प्रदान की है जो केन्द्रीय शासन की इच्छा के प्रति पूर्ण अधीनता के बदले में, रोजमर्रा के एक नीरस जीवन के पोषण की व्यवस्था करती है।

उपभोग की वस्तुओं मे वृद्धि के परम्परागत आर्थिक प्रोत्साहन के स्थान पर वे मेले करते हैं, जिनमे बड़े-बड़े घंटे बजते हैं, पटाखेबाजी होती है, परेड और नाच होते हैं, और 'जनता के शत्रुओं' की सामूहिक भर्त्सना होती है।

लाखों सरकारी ध्वनि-विस्तारक, और निरन्तर चलने वाली 'अध्ययन गोष्ठियाँ', बहुधा बाह्य संघर्षों की ज्वालाओं को भड़का कर, लोगों को और अधिक प्रयत्न करने के लिए ललकारती हैं। इस प्रक्रिया मे अमरीका ऐसे विष-वमन का विशेष लक्ष्य होता

है, जिसका अंतर्राष्ट्रीय तू-तू मैं-मैं के इस युग मे भी कोई मुकाबला नहीं।

लेकिन मानवीय शक्तियो के इस लगभग पूर्ण सगठन, और सर्वाधिक अनुकूल मौसम के बाद भी, अन्यत्र के समान, चीन को भोजन के उत्पादन की समस्या मे कुछ कठोर यथार्थो का सामना करना पड रहा है, जिन्हें साम्यवादी नारों से खतम नही किया जा सकता। चीन के प्रयत्नों की सफलता के मार्ग मे सबसे बड़ी बाधा उसकी विशाल जनसख्या है, जो प्रतिवर्ष एक करोड साठ लाख की गति से बढ़ रही है, और उसके विशाल, किन्तु सीमित क्षेत्र मे भरी हुई है।

वर्तमान औसत प्रति ग्रामीण परिवार के लिए दो एकड़ से भी कम का है। कुछ थोड़े-से पश्चिमी क्षेत्रो को छोड़कर, चीन की अधिकांश आसानी से सीची जा सकने वाली भूमि पर इस समय सघन खेती हो रही है। वहाँ भी नव तोड़ जमीन को बहुत अधिक खर्च पर ही खेती के लायक बनाया जा सकता है।

चूंकि लोग पहले से ही अधिकांश चावल, गेहूँ और सब्जियाँ खा कर रहते हैं, अत मासाहार को घटाकर अनाज की बचत करना, जैसा कि स्टालिन ने किया था, यहाँ बहुत दूर तक मुमकिन नही है। इसके अतिरिक्त, प्रति एकड उत्पादन पहले ही काफी अधिक है। चीन मे साम्यवाद की विजय के बहुत पहले से ही, शायद अन्य किसी भी अल्प-विकसित देश से अधिक, चीन के किसान अच्छे बीज, अधिक मात्रा मे प्राकृतिक खाद, और बोवाई-कटाई की अधिक कुशल पद्धतियो का प्रयोग कर रहे थे।

यद्यपि जापान मे प्रति एकड़ उत्पादन लगभग दुगुना रहा है, लेकिन जहाँ तक देखा जा सकता है, भविष्य में भी उत्पादन के इन स्तरो को प्राप्त करना चीन के लिए असम्भव प्रतीत होता है।

चीन की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के ये कठोर सामाजिक और आर्थिक तथ्य हैं, जिन पर तेजी से विकसित हो रहे औद्योगिक आधार सम्बन्धी पीकिंग के गर्व भरे दावो के साथ-साथ विचार करना चाहिए।

तैंतालीस

'चीन की समस्या' पर पुनर्विचार

फारेन एफेयर्स के अप्रैल, 1960 के अंक में प्रकाशित, चीन की समस्या, और फारमोसा तथा मुख्यभूमि सम्बन्धी अमरीकी नीति के इस विस्तृत विश्लेषण में, प्रभावकारी नई अमरीकी नीति के लिए श्री बौल्स कुछ निर्देश रेखाएँ प्रस्तुत करते हैं। इन विचारों की पीकिंग में माओत्से-तुंग और तैवान में राष्ट्रवादी, दोनों ने ही तीव्र आलोचना की है।

क्या अब समय नहीं आ गया है कि हम 'चीन की समस्या' के आधारभूत तथ्यों का सामना करें? जब तक हम ऐसा नहीं करते, सारे एशिया के ही साथ हमारे सम्बन्धों में बड़ी अड़चनें आती रहेंगी।

वर्तमान स्थिति में, अमरीका द्वारा साम्यवादी चीन को मान्यता प्रदान करने की बहस का कोई नतीजा नहीं निकलता। अगर हम कूटनीतिक विनिमय का प्रस्ताव रखें, तो माओत्से-तुंग निश्चय ही पूछेंगे कि हमारी मान्यता में 'फारमोसा प्रान्त' पर चीन की प्रभुसत्ता की मान्यता भी शामिल है या नहीं। और जब हम कहेंगे कि नहीं, तो उत्तर में अनिवार्य ही वे हमारे प्रस्ताव को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर देंगे। अगर हम प्रस्ताव रखें कि दोनों चीनों को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना लिया जाय, तो भी यही नतीजा निकलेगा। च्यांग-काई-शेक भी इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देंगे। गतिरोध बना रहेगा।

इसका अर्थ है कि जिन दो मूल प्रश्नों को लेकर यहाँ अमरीका में इतना गहरा मतभेद उत्पन्न हुआ है, उन्हें फिलहाल हल नहीं किया जा सकता। बाद में हम ऐसा कोई प्रस्ताव रखकर साम्यवादी चीन के शांतिपूर्ण इरादों को परखना उपयोगी पा सकते हैं, जिसमें दोनों ही पक्ष एक ऐसी स्थिति को स्वीकार कर लें, जिसे बिना युद्ध के न हम बदल सकें, न वे। लेकिन तब तक के लिए, हम औपचारिक सम्बन्धों के प्रश्न को छोड़कर, तात्कालिक, और सम्भवतः प्राप्य लक्ष्यों की ओर ध्यान दें।

अगर साम्यवादी चीन के सम्बन्ध में कोई नया परिप्रेक्ष्य प्राप्त करने का कोई अन्य कारण न भी होता, तो निःशस्त्रीकरण का निर्णायक प्रश्न अपने-आप में ही इसके लिए पर्याप्त था। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, कि चीन के भाग लिए बिना निःशस्त्रीकरण की किसी योजना का कोई मतलब नहीं हो सकता। उसके पास न केवल दुनिया की सबसे बड़ी सेना है, बल्कि आण्विक हथियारों के निर्माण की

संभाव्य क्षमता भी है। ऐसा सोचने का भी कोई कारण नहीं है कि हम इस मामले में चीन की जिम्मेदारी ले सकता है। या तो हमें बड़े पैमाने पर विश्व-व्यापी निरस्त्रीकरण की किसी सुरक्षित व्यवस्था के सम्बन्ध में सहमति प्राप्त करने का विचार छोड़ देना चाहिए, या फिर चीनी क्षेत्र में घटनाक्रम को प्रभावित करने के तरीकों की खोज करनी चाहिए।

हो सकता है कि हम साम्यवादी चीन में निकट भविष्य में होने वाली घटनाओं को बिलकुल भी प्रभावित न कर सकते हों लेकिन हमारे अन्दर चीन की समस्या के अन्य पहलुओं को प्रभावित करने की क्षमता, जितनी हम समझते प्रतीत होते हैं, उससे अधिक है।

फारमोसा (तैवान) इसका एक उदाहरण है। यह द्वीप समृद्ध है, और इसमें असाधारण आर्थिक विकास हुआ है। लेकिन न केवल चीनी मुख्य भूमि के सन्दर्भ में, बल्कि भारत से जापान तक फैले हुए सारे ही स्वतन्त्र एशिया के सदर्भ में इसकी राजनीतिक स्थिति अभी भी बड़ी अनिश्चित है।

ऐसा इस कारण है कि फारमोसा की राजनीतिक स्थिति इस मिथ्या धारणा पर आधारित है कि च्यांग-काई-शेक, जिन्हें ग्यारह वर्ष पहले मुख्य भूमि से भागना पड़ा था, अब भी 65 करोड़ चीनियों के शासक हैं। इस मिथ्या धारणा के—जिसे अधिकांश एशियावासियों ने, उत्तरी अटलांटिक संधि में हमारे मित्रों ने, हमारे निकटतम मित्र कनाडा ने, और बहुतेरे अमरीकियों ने भी अस्वीकार कर दिया है—केवल वाशिंगटन के भारी दबाव के कारण तीन या चार एशियाई सरकारों का, हमारे विदेश विभाग का, और कांग्रेस के कुछ सदस्यों का समर्थन प्राप्त है। इस मिथ्या धारणा को बनाए रखने से फारमोसा ऐसे समय में अधिकाधिक अकेला पड़ता जाएगा, जब उसके नेताओं को स्वतन्त्र, अ-साम्यवादी एशिया के विचार और कर्म की मुख्य धारा के साथ अपने को जोड़ने का हर संभव प्रयत्न करना चाहिए।

अमरीका और राष्ट्रवादी चीन, दोनों को ही अपने मित्रों और साथियों के साथ सहमति के क्षेत्र की तलाश करनी चाहिए, अपनी नीतियों को अधिक तर्कसंगत रूप में उन शक्तियों से सम्बन्धित करने की चेष्टा करनी चाहिए, जो अगले दशक में एशिया में घटनाक्रम का रूप निर्धारित करेंगी। मैं समझता हूँ कि ऐसी नीतियों को निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित किया जा सकता है—

1. पीकिंग सरकार के कठिनाइयों से घिरे होने पर भी, चीन की मुख्यभूमि पर उसका दृढ़ नियन्त्रण है।

2. साम्यवादी चीन में अपर्याप्त साधनों, बढ़ती हुई आबादी, निर्मम नेतृत्व, और तीव्र राष्ट्रीय भावनाओं के फलस्वरूप, दुर्दम्य प्रसारवादी प्रवृत्तियाँ विकसित होंगी, जिनका लक्ष्य दक्षिण की ओर के दुर्बल पड़ोसी राज्य होंगे।

3. अमरीकी नीति का एक प्राथमिक लक्ष्य दक्षिणपूर्व एशिया में चीन के सैनिक

प्रसार को रोकना होना चाहिए, जिसकी चेष्टा करने का लोभ चीन के साम्यवादी नेताओं को हो सकता है।

4. निरस्त्रीकरण के किसी भी प्रभावकारी कार्यक्रम में अन्ततः चीन का भाग लेना आवश्यक होगा।

5. वर्तमान परिस्थितियों में, चीन के साथ हमारे मुख्य मतभेदों के बारे में किसी समझौता वार्ता के सफल होने की संभावना नहीं है।

6. फारमोसा में बसे हुए अस्सी लाख फारमोसाई लोगों और चीन की मुख्यभूमि से आये हुए बीस लाख चीनियों को सुरक्षित, स्वतन्त्र अस्तित्व का, और साम्यवादी क्षेत्र के बाहर अपने सांस्कृतिक विकास का अधिकार है। फारमोसा का ऐसा विकास अमरीकी लोगों के हित में है।

7. फिलहाल, फारमोसा की स्वतन्त्रता अमरीका की सैन्य सुरक्षा और आर्थिक सहायता पर निर्भर रहेगी।

8. दीर्घ-कालीन दृष्टि से, फ़ारमोसा के लोगों की सुरक्षा और समृद्धि एशिया के अ-साम्यवादी राष्ट्रों, विशेषतः भारत और जापान के व्यवस्थित राजनीतिक विकास पर, और फारमोसा सरकार के प्रति उनके दृष्टिकोण पर निर्भर होगी।

9. अगर कभी यह व्यावहारिक हुआ, तो मुख्यभूमि पर चीनी लोगों के साथ अपने परम्परागत मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को पुनः स्थापित करना हमारे राष्ट्रीय हित के अनुकूल होगा।

अब इन मान्यताओं के सन्दर्भ में हम उन तथ्यों पर विचार करें, जिनका सामना अमरीकी नीति को करना होगा।

× × ×

फारमोसा में आज राजनीतिक शक्ति एकमात्र जनरलिसिमो च्यांग की सर्वसत्तावादी राष्ट्रवादी सरकार के हाथ में है। मुख्य भूमि से जो बीस लाख व्यक्ति च्यांग के साथ भागकर 1949 में फ़ारमोसा आए थे, अधिकांश सरकारी कर्मचारी उन्हीं में से है, और साठ लाख की सेना में भी दो-तिहाई वही लोग हैं। एक दशक तक फ़ारमोसा के सम्बन्ध में अमरीकी नीति मुख्यतः इस राष्ट्रवादी चीनी शासकों की अल्पसंख्या पर केंद्रित रही। किन्तु दीर्घ-कालीन दृष्टि से, अस्सी लाख फारमोसाई लोग ही द्वीप के भाग्य का निर्णय करेंगे। हम उनकी इच्छाओं, आशाओं, आंशकाओं के बारे में बहुत कम सुनते हैं। पिछले दिनों फ़ारेन एफेयर्स में लिखते हुए एक फारमोसावासी ने (ली तियान होक, 'चीनी गतिरोधः एक फारमोसाई दृष्टिकोण' फारेन एफेयर्स, अप्रैल, 1958।) कहा कि न कोई स्वतन्त्र फारमोसाई समाचारपत्र है, और न कोई मान्यता प्राप्त फारमोसाई राजनीतिक दल है।

1945 के पहले लगभग दो दशकों तक फारमोसा पर जापान का शासन था। यद्यपि उनमें से अधिकांश दक्षिण-पूर्व चीन की फुकीन बोली बोलते हैं, लेकिन उन्होंने शिक्षा जापानी स्कूलों में पाई। समृद्धि बढ़ने के कारण, उनमें से बहुतेरे अपने को चीन

की अपेक्षा जापान के अधिक निकट अनुभव करने लगे। लेकिन पन्द्रह वर्ष के राष्ट्रवादी शासन के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। समय, सामीप्य, और शिक्षा के फलस्वरूप विशेषत: युवा समूहों में, द्वीप के चीनी और फारमोसाई समुदायों का धीरे-धीरे मिश्रण हो रहा है। संभवत: एक नए राष्ट्रीय व्यक्तित्व का धीरे-धीरे उदय हो रहा है, जिसकी संस्कृति चीनी है और दृष्टिकोण फारमोसाई।

1949 के बाद राष्ट्रवादी सरकार ने कुछ रचनात्मक कार्य किए हैं, जो उसने मुख्यभूमि पर रहते हुए नहीं किए थे। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक यह है कि उसने ग्रामीणों के निर्णायक महत्त्व को स्वीकार कर लिया है, जो सभी एशियाई राष्ट्रों में न केवल बहुसंख्या में हैं बल्कि भोजन की पूर्ति पर भी जिनका नियंत्रण है, और इस कारण व्यवस्थित विकास की आर्थिक और राजनीतिक कुंजी भी जिनके हाथ में है।

च्याग के निर्देशन में एक भूमि सुधार कार्यक्रम के साथ, जिसमें भू-स्वामित्व को दस एकड़ तक सीमित कर दिया गया है, और लगान भी काफी घटा दिये गए हैं, एक सक्षम ग्रामीण विस्तार सेवा, आसान कर्जों और उर्वरक उद्योग में वृद्धि की भी व्यवस्था की गई है। फलस्वरूप, चावल और कपास के प्रति एकड़ उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है, और किसानों की जिन्दगी ज्यादा आसान और समृद्ध हुई है। फारमोसा के जीवन स्तर अब जापान के बाद एशिया में सबसे ऊँचे हैं।

आन्तरिक राजनीतिक स्थिति भी सुधरी है। निश्चय ही, राष्ट्रीय सरकार को अब भी लगभग पूरी तरह मुख्यभूमि से आये हुए लोग ही चलाते हैं। विधान सभा के 1576 सदस्य हैं, जिसमें केवल 26 फारमोसावासी हैं। लेकिन फारमोसाई लोगों के लोकतांत्रिक सहकार की दिशा में भी कुछ प्रगति हुई है। प्रान्तीय सभाओं और काउण्टी प्रशासनों में, बहुत कुछ स्वतंत्र चुनावों के द्वारा, द्वीपवासियों का काफी बड़ा बहुमत है। अधिकांश नगरों के मेयर स्थानीय फारमोसावासी हैं।

तीस वर्ष से अधिक समय तक, हार और जीत हर स्थिति में, च्यांग-काई-शेक ने लगभग अकेले ही कोमिन्तांग (राष्ट्रवादी दल) की एकता को बनाए रखा है। लेकिन वे हमेशा शासन चलाते नहीं रह सकते। फारमोसा का भविष्य उस सरकार के स्थायित्व पर निर्भर होगा, जो उनके न रहने पर क़ायम होगी।

जब तक अमरीका पूर्व एशिया में पर्याप्त नौसेना और वायुसेना रखता है, और उसका उपयोग करने को तैयार रहता है, तब तक माओत्सेतुंग एक ही तरीके से फारमोसा पर अपनी प्रभुता स्थापित कर सकते हैं, और वह है किसी ऐसी साजिश की सफलता, जो च्यांग या उनके उत्तराधिकारी को हटाकर द्वीप में ऐसी सरकार को सत्तारूढ़ करे, जो पीकिंग से समझौता करने को तैयार हो।

मुख्यभूमि पर सशक्त तानाशाही शक्तियाँ लेनिन-स्टालिन-माओ के विचार-दर्शन की संकुचित सीमाओं के अन्दर चीनी समाज का पुनः निर्माण कर रही हैं, चीनी विचारों को फिर से ढाल रही हैं, और चीनी इतिहास को फिर से लिख रही हैं।

एक स्वतन्त्र चीनी-फारमोसाई राष्ट्र इसके विपरीत एक आधुनिक अ-साम्यवादी चीनी समाज का रूप प्रस्तुत कर सकता है, जिसमें जनता कठोर बन्धनों से मुक्त हो, अधिकाधिक मात्रा मे राजनीतिक स्वतन्त्रता हो, और सभी नागरिकों को अधिकाधिक आर्थिक अवसर उपलब्ध हो। ऐसे समाज का निर्माण करने मे तैवानी और चीनी लोगों की युवा पीढ़ी को एक सामान्य उद्देश्य की भावना प्राप्त हो सकती है, और विदेशों मे बसे हुए एक करोड़ तीस लाख चीनियों को एक सांस्कृतिक आधार भी प्राप्त हो सकता है।

× × ×

ऐसे विकास को प्रोत्साहित करने के लिए हम अपनी नीति को किस प्रकार संशोधित कर सकते हैं।

हम इस तथ्य को स्वीकार कर लें कि अमरीकी नीति-निर्माता सद्भावनाओं और डालरों मे चाहे जितने सम्पन्न हों, वे अपनी मर्जी से ऐसा नहीं कर सकते कि फारमोसा अ-साम्यवादी एशिया में एक नयी विध्यात्मक भूमिका अपनाए। मुख्यभूमि से आये हुए राष्ट्रवादी शरणार्थी इसे स्वेच्छया फारमोसाई बहुमत पर लाद भी नहीं सकते। हमारा कार्य एक सच्चे मित्र का कार्य होना चाहिए। स्थानीय फारमोसा-वासियों, राष्ट्रवादी चीनियों, और सामान्यतः सारे विश्व को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि हमारा लक्ष्य मुख्यभूमि पर आक्रमण करने के लिए एक सैनिक अड्डे का निर्माण करना नहीं, वरन् एक नए स्वतंत्र राष्ट्र के व्यवस्थित विकास को प्रोत्साहित करना है।

फ़ारमोसा की वर्तमान स्थिति केवल इस मिथ्या धारणा को जीवित रखती है कि मुख्यभूमि पर शीघ्र ही राष्ट्रवादी आक्रमण होने वाला है, जिससे पीकिंग को प्रतिरोधात्मक कार्यवाहियों का आसान बहाना मिल जाता है। उसके विपरीत, हमें चीनी तट से लगे हुए द्वीपों को तटस्थ बनाने को तत्काल प्रोत्साहित करना चाहिए।

दूसरी ओर, हमें अपने इस आश्वासन को अधिक पुष्ट करना चाहिए कि फारमोसा पर साम्यवादी आक्रमण होने पर हम उसका हर तरह से सैन्य प्रतिरोध करेंगे, और इसमें किसी साजिश द्वारा शासन पलटने को रोकने के लिए आवश्यक उपायों को भी शामिल कर लेना चाहिए। ऐसी किसी साजिश के सफल होने पर, हमें आर्थिक और नौसैनिक घेराबन्दी करनी चाहिए, ताकि पीकिंग सरकार द्वीप पर प्रभावी रूप से अधिकार न कर सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ में एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में फारमोसा का स्थान स्वीकार किया जाय, इसमें कुछ समय लग सकता है। एक बार ऐसा हो जाने पर विश्वसंगठन की सारी सुरक्षाएँ फारमोसा को सुरक्षा प्रदान करेंगी। इस बीच, द्वीप की रक्षा करने के लिए हमारी सैनिक प्रतिबद्धता असंदिग्ध रहनी चाहिए। जैसे हम पश्चिमी बर्लिन के लोगों को नहीं छोड़ सकते, उसी तरह फारमोसा के लोगों को भी नहीं छोड़ सकते।

सभी जगहों के अ-साम्यवादी चीनियों के सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में फारमोसा के

इसे देखते हुए, बहस में जीतने के लिए विदेश विभाग के कुछ प्रवक्ताओं द्वारा पिछले दिनों यह बताने के प्रयास के कि श्री ख्रुश्चोव 'विश्व साम्यवादी आन्दोलन' के नेता हैं, और 'चीन पर काबू न रखने' के लिए उनका मजाक उड़ाने के प्रयास, नासमझी भरे और बे मतलब हैं। हम इस बात को समझें कि साम्यवादी राष्ट्रों, और साम्यवादी मित्रताओं पर भी अर्थशास्त्र, राष्ट्रीयता, और इतिहास के क्षारक प्रभाव पड़ते ।

1919 से 1933 तक सोवियत संघ के साथ अमरीका का कूटनीतिक सम्बन्ध नहीं था। फिर भी, इस अवधि में हजारों अमरीकियों ने रूस की यात्रा की, जिससे वहाँ की घटनाओं के बारे में हमारी जानकारी बढ़ी, और रूसी लोगों ने भी हमको कुछ अधिक जाना और समझा। मुझे ऐसा लगता है कि इस समय हमको चीनी मुख्यभूमि के साथ जनता के स्तर पर अधिक से अधिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए सभी उचित उपायों का प्रयोग करने की चेष्टा करनी चाहिए। साम्यवादी चीन के साथ संवाददाताओं के विनिमय के लिए एक नया प्रयास पहले कदम के रूप में उपयोगी हो सकता है। हमें तथ्यों और परिप्रेक्ष्य की बड़ी जरूरत है, जो योग्य अमरीकी संवाददाता हमें प्रदान कर सकते हैं, और चीनी पत्रकार अमरीका में जो कुछ देख सकते हैं, उससे परेशान होने की हमें कोई जरूरत नहीं।

पीकिंग सरकार और हमारा शासन, दोनों ही अब तक ऐसे दुतरफा विनिमय में बाधक रहे हैं। ऐसा सोचना निस्सन्देह भूल होगी कि चीन के लोगों के साथ पुनः सम्पर्क स्थापित करने की हमारी चेष्टाओं का पीकिंग द्वारा स्वागत किया जायेगा।

कई दृष्टियों से, हमें अपना सार्वजनिक शत्रु बनाए रखने में साम्यवादियों का हित है। किन्तु यह हमारा काम है कि संवाददाताओं की यात्रा के मार्ग में हमारी ओर से जो बाधाएँ अभी तक मौजूद हैं, उन सबको हटा दें, ताकि सम्पर्क के मार्ग में बाधाएँ कायम रखने की जिम्मेदारी साफ तौर से पीकिंग पर आ जाय ।

लेकिन समाचारों का अधिक स्वतन्त्र प्रवाह केवल एक शुरुआत है। हमारे शासन को विद्वानों, राजनीतिज्ञों और व्यापारियों को—उन सभी अमरीकियों को जो चीनी क्रान्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान से लाभान्वित हो सकते हैं, और उस जानकारी को हममें से शेष लोगों तक पहुँचा सकते हैं—चीन की यात्रा करने की अनुमति देनी चाहिए, बल्कि इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

× × ×

दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दक्षिण पूर्वी एशिया के भौतिक और भूमि संसाधनों पर बलात् अधिकार करने के अलावा, चीन के पास एक ही विकल्प है कि अपने व्यापार को बहुत अधिक बढ़ाने का कार्यक्रम अपनाए। चूंकि विश्व-शान्ति इस पर निर्भर होगी कि चीन अन्ततः कौन-सा मार्ग चुनता है, अतः इस प्रश्न पर अमरीकी नीति-निर्माताओं को तत्काल अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिए।

जब हम दो चीनों के यथार्थ पर आधारित दीर्घकालीन नीतियाँ बनाने और

चलाने से प्रारम्भ करके, पूर्वी एशिया में गतिरोध समाप्त करके आगे बढ़ने लगेंगे, तभी इस आने वाली घटनाओं पर रचनात्मक प्रभाव डाल सकेंगे। और ऐसा होने पर, क्या यह आशा सर्वथा असंगत होगी कि पूर्वी एशिया में युद्ध के खतरे की गंभीरता ही धीरे-धीरे उस क्षेत्र में अमरीका और सोवियत संघ के बीच, किसी हद तक, कम से कम अप्रत्यक्ष सहयोग को जन्म देगी? हमारे गंभीर वैचारिक और राजनीतिक मत-भेदों और लक्ष्यों के बावजूद, एशिया में सैनिक, आर्थिक, और राजनीतिक शक्ति सन्तुलन मे अधिक स्थिरता लाना हम दोनों के ही हित मे प्रतीत होता है।

जिन नीतियो का सुझाव मैंने दिया है, उनसे फारमोसा के राष्ट्रवादियों में परा-काष्ठावादी तत्व प्रसन्न नहीं होंगे और पीकिंग के साम्यवादी उनकी तीव्र निन्दा करेंगे। देशभक्त, किन्तु यथार्थ से सर्वथा काटे हुए फ़ारमोसाई राष्ट्रवादी भी, जिनकी माँग है कि हम च्यांग को हटाकर, उनकी सहायता करें कि वे स्वय अपना शासन स्थापित कर सकें, इन नीतियो को अस्वीकार कर देंगे।

इस समय, हमारी नीति का लक्ष्य होना चाहिए कि निम्नलिखित बातें चीनी साम्यवादी नेताओं के समक्ष स्पष्ट कर दें :

1. उनके दक्षिण-पूर्वी एशिया मे बढ़ने का, हम सभी आवश्यक साधनों से विरोध करेंगे।

2. हम उन्हे प्रत्यक्ष आक्रमण या विध्वंसक कार्यवाहियों द्वारा फ़ारमोसा पर अधिकार नही करने देंगे।

3. फ़ारमोसा में हमारे सैनिक अड्डों का उद्देश्य मुख्यभूमि पर राष्ट्रवादी आक्रमण मे सहायता या सहयोग देना नही है।

4. फ़ारमोसा एक स्वतंत्र इकाई बना रहेगा, और उसके शासन के रूप के सम्बन्ध मे अन्ततः उसके सभी लोगों की राय ली जायेगी।

अगर हम इन लक्ष्यों को अपना लें, तो संभव है कि फ़ारमोसा की समृद्धि और उसका स्थायित्व स्पष्ट हो जाने पर, पीकिंग सरकार अनिच्छापूर्वक अ-साम्यवादी एशिया के एक तथ्य के रूप मे फ़ारमोसा की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर ले।

चौआलीस

रूस निरस्त्रीकरण क्यों नहीं करता

न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन के 19 अप्रैल, 1957 के अंक में श्री वौल्स इसका विश्लेषण करते हैं कि रूस शास्त्र-नियंत्रण सम्बन्धी समझौता क्यों नहीं करना चाहता। और साथ ही, प्रभावकारी अमरीकी नीति सम्बन्धी अपने सुझाव प्रस्तुत करते हैं।

प्रत्यक्ष रूप मे गतिरोध देखकर, और निराश होकर, दुनिया सोचती है कि हथियारो की होड़ के दुश्चक्र से बचने के लिए क्या अब भी कोई प्रभावी कार्यवाही की जा सकती है। देखने में, रूसी दृष्टिकोण से ऐसा लगता है कि रूसी नेता शस्त्र-नियत्रण के सम्बन्ध मे कोई व्यावहारिक समझौता नही करना चाहते।

वे एक व्यापक निरस्त्रीकरण कार्यक्रम का समर्थन क्यों नहीं करते? उन्हे ऐसा करना चाहिए, इसके दो बडे कारण हैं प्रथम, सोवियत रूस सैन्य खर्चों को उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन मे लगा सकता है, जिससे उसे देश और विदेश में तात्कालिक लाभ होंगे। दूसरे, साम्यवादी रूढ़ियो के अनुसार, पूँजीवाद पश्चिम की निरन्तर समृद्धि बहुत कुछ उसके शास्त्र-उद्योगों पर निर्भर है।

जहाँ तक पहले कारण का सम्बन्ध है, सोवियत सघ की उत्पादन शक्ति का लगभग 22 प्रतिशत इस समय सेना पर लगता है। अर्थात् 190 अरब डालर के कुल वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन मे लगभग 40 अरब डालर। सामान्य निरस्त्रीकरण सम्बन्धी समझौता हो जाने पर रूसी नियोजक इस बड़ी रकम के अधिकांश भाग को अन्य कार्यों मे लगा सकेंगे, जिससे रूस की स्थिति कहीं ज्यादा मजबूत हो जाएगी।

सोवियत सघ के अन्दर मकानो की गभीर कमी के खिलाफ बड़े पैमाने पर कार्यवाही की जा सकेगी। दस-पन्द्रह वर्षों के अन्दर, देश के अधिकाश भाग मे शहरी और ग्रामीण गन्दी बस्तियों को साफ किया जा सकेगा। मोटरों और उपभोग की अन्य वस्तुओं के उत्पादन को तेज़ी से बढ़ाया जा सकेगा।

इसके साथ ही, रूस बडे पैमाने पर सरकारी सहायता मुक्त निर्यात कार्यक्रम आरम्भ कर सकेगा, जो अल्पविकसित महाद्वीपो मे, और स्वय यूरोप मे भी, पूंजीवादी देशों की व्यापारिक स्थिति को कमजोर करे। टाइपराइटर, मोटरें, ट्रक और अन्य सामान का मूल्य तुलनीय अमरीकी, ब्रिटिश, फ्रांसीसी, और जर्मन वस्तुओं से 40, और 50 प्रतिशत तक कम रखे जा सकते हैं। श्री ख्रुश्चोव हम से बराबर

कहते रहते हैं कि किसी प्रत्यक्ष शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता में साम्यवाद की विजय निश्चित है।

जहां तक सोवियत रूस के निरस्त्रीकरण पर जोर देने के दूसरे कारण का सम्बन्ध है, साम्यवादियों का दावा है कि अमरीकी मैन्द उद्योगों के बन्द होने पर, तेजी से मन्दी फैलेगी, लोग दीवालिया होंगे, तंगी आएगी, और कटु राजनीतिक मतभेद उत्पन्न होंगे, जिसके फलस्वरूप पूंजीवाद का पतन और साम्यवाद की विजय और भी जल्दी होगी।

यद्यपि मार्क्सवादी विश्लेषण हमारी समस्या को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर रखता है, किन्तु हममें से सर्वाधिक दृढ पूंजीवादियों को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि हथियारों पर होने वाले खर्च मे काफी बड़ी कमी करने पर, अमरीकी उद्योग-धन्धों के समक्ष गंभीर कठिनाइयां उत्पन्न हो जाएंगी।

यह सच है कि अगर कांग्रेस बड़े पैमाने पर करों में कटौती कर दे, तो अरबों डालर हथियारों की सरकारी खरीद में लगने के बजाए पारिवारिक खरीद में, या रोज़गार देने वाले विस्तार कार्यक्रमों में लगाए जा सकेंगे। देश के अन्दर राष्ट्रीय हित के उपेक्षित क्षेत्रों—मकान, सड़कें, शहरी नवीकरण, अस्पताल, स्कूल आदि—की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफ़ी बड़ी रकमें लगाई जा सकेंगी। इसके अतिरिक्त, हम एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका में अपने फिलहाल अपर्याप्त आर्थिक सहायता कार्यक्रमों को तेजी से बढ़ा सकेंगे, और इस प्रकार, बढ़ते हुए निर्यात व्यापार की नींव डाल सकेंगे।

किन्तु इन कार्यवाहियों का असर होने के पहले, कठिन समंजन के कई महीने बीत जाएंगे। इस बीच हमारे सोवियत प्रतियोगी, उस तेज रफ्तार से जो केवल तानाशाही व्यवस्थाओं को ही उपलब्ध होती है, नए बाजारों में प्रवेश करेंगे, पुराने बाज़ारों से हमें स्थानच्युत करेंगे, और सारी दुनिया के लाखों यात्रियों को साम्यवाद की भौतिक उपलब्धियों से प्रभावित करेंगे।

अतः इन दोनों कारणों से, व्यापक निरस्त्रीकरण सन्धि के लिए काम करना सर्वथा रूस के हित में प्रतीत होता है, झंडे उड़ाए हैं, और शांति-कपोत छोड़े हैं। फिर भी समझौता वार्त्ताओं में, वे कभी कोई ठोस, व्यावहारिक प्रस्ताव लेकर नही आये। क्यों?

एक उत्तर पश्चिमी प्रेक्षकों के एक समूह द्वारा दिया जाता है, जिसमें आमतौर पर पेशेवर सैनिक हैं (यद्यपि वे सैनिकों की रायों के प्रतिनिधि नही हैं), जो भविष्य मे संकट को अनिवार्य मानते हैं। इनकी राय के अनुसार, रूस द्वारा निरस्त्रीकरण की समस्या का ठोस रूप में सामना न करना इस बात का प्रमाण है कि सोवियत संघ का अकेला, अपरिवर्तनीय लक्ष्य विश्व पर बलात अपना प्रभुत्व स्थापित करना है।

दूसरी पराकाष्ठा पर जो समूह है, वह एक भिन्न उत्तर देता है। हमारी वास्त-

विक कमियो का उन्हे पूरा एहसास है, वे काल्पनिक होने की हद तक आदर्शवादी है, और सारी मनुष्य जाति से यहाँ तक कि सोवियत नीति के निर्माताओ से भी उच्चतम आशाएँ रखते हैं। उनका कहना है कि मास्को ने निरस्त्रीकरण इस कारण नही स्वीकार किया कि हमने पर्याप्त चेष्टा नही की।

लेकिन मुझे सन्देह है कि वास्तविक कारण कही ज्यादा उलझा हुआ है। मैं समझता हूँ कि वर्त्तमान रूसी व्यवहार को समझने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान मे रखना जरूरी है :

1. जिन शक्तियो को उन्होने स्वय उत्पन्न किया, उनसे सोवियत नेताओ का वास्तविक भय—एक पुन उठता हुआ, सशस्त्र जर्मनी, उत्तरी अटलांटिक संधि, और अमरीकी आण्विक अड्डो की विश्व-व्यापी व्यवस्था।

2. उनके 65 करोड गतिशील, जमीन के भूखे चीनी पड़ोसी, जो जल्दी या देर से साम्यवादी आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे, इसकी सम्भावना है।

3. एक हद तक सोवियत नेता स्वय गोपनीयता की रूसी परम्परा के शिकार हैं, और हमारे खुले समाज की तुलना मे, उनकी गोपनीयता हथियारों की होड मे सचमुच उनके लिए अपेक्षतया लाभकारी है।

4. नीति सम्बन्धी हिचक और विरोधी दबाव—उदाहरण के लिए साम्यवादी दल के अन्दर, और दल तथा सेना के बीच मतभेद—जो रूसी सरकार की कार्य सम्बन्धी स्वतन्त्रता को सीमित कर सकते हैं, जैसे इस प्रकार के मतभेद हमारी अपनी सरकार के कार्य-स्वातन्त्र्य को सीमित करते है।

अन्त में, मेरा निजी अनुमान है कि निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध मे रूसी नेताओं में हिचक उत्पन्न करने वाले मूल तत्वो मे से एक वह है, जिसे एक शब्द, 'हंगरी' मे व्यक्त किया जा सकता है। जेनेवा मे 1955 मे 'चार बड़ो' की बैठक के बाद तनाव मे कमी होने पर, संभावना की एक लहर समूचे साम्यवादी साम्राज्य मे फैल गई, पोलैण्ड मे उथल-पुथल, और हगरी मे विद्रोह।

अतः सोवियत नेताओ के लिए, शीत युद्ध में कोई भी वास्तविक कमी बड़ी भयोत्पादक बात होगी, ऐसी जिसके प्रति कोई भी तानाशाही राज्य अत्यधिक शकालु होगा, क्योकि इसका अर्थ होगा एकता उत्पन्न करने वाले उन भयों का अन्त, जो सोवियत सघ की एकता को क़ायम रखने मे सहायक रहे हैं।

इन परिस्थितियों मे हमें क्या करना चाहिए ? उत्तर कठिन है। रूसी इरादो के बारे में हमारी धारणाएँ केवल अनुमान पर आधारित हो सकती हैं, इस कारण हमे हर संभावना के लिए तैयार रहना चाहिए। मुझे लगता है कि इसके लिए हमारी नीति के तीन पक्ष होने चाहिए :

1. हमें बुरी से बुरी स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। वे आशाहीन प्रेक्षक, जिनका कहना है कि निरस्त्रीकरण पर गंभीरता से विचार करने मे रूस की अनिच्छा

इस बात का प्रमाण है कि मास्को की योजना अपनी पसन्द के समय और स्थान पर युद्ध करने की है, वस्तुतः सही हो सकते हैं। हम कोई जुआ नही खेल सकते।

2. इसके साथ ही, हमें दुनिया के सामने विश्वसनीय रूप में यह प्रमाणित कर देना चाहिए कि हमारे सैन्य कार्यक्रम मे हुई वृद्धि केवल रूस द्वारा उत्पन्न किये गए गतिरोध का ही तार्किक परिणाम है, और हम बड़े पैमाने पर निरस्त्रीकरण के लिए समझौता करने को इच्छुक और उत्सुक हैं।

अगर ऐसे निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में हमारे वर्तमान शासन की कोई विश्वसनीय नीति है, जिसके आधार पर समझौता-वार्ता हो सके, तो किसी को उसका ज्ञान नहीं। सोवियत रूस की अनुकूल प्रतिक्रिया होने की संभावना नहीं है, इससे हमारी अपनी असफलता क्षम्य नही हो जाती कि हमने कोई यथार्थपरक, सन्तुलित शांति कार्यक्रम विकसित नहीं किया, जिसे हम निरन्तर, रचनात्मक रीति से दुनिया के सामने रख सकें।

3. अन्त मे, हमें अच्छी से अच्छी स्थिति के लिए भी—इस संभावना के लिए कि अन्ततः रूस निरस्त्रीकरण के लिए राजी हो जाएगा—तैयार रहना चाहिए।

इसके लिए आवश्यक होगा कि हम साफगोई से अनुमान लगाएँ कि हथियारों की होड़ में कोई ढिलाई आने पर, हमारी अर्थ-व्यवस्था पर उसका क्या प्रभाव होगा। ऐसा सर्वेक्षण कांग्रेस की संयुक्त आर्थिक समिति द्वारा, या इस विशिष्ट उद्देश्य के लिए बनाई गई किसी एजेन्सी या समिति द्वारा किया जा सकता है। इसके लिए उद्योगों, मजदूरी आन्दोलन और विश्वविद्यालयों से आर्थिक विशेषज्ञ लिये जा सकते हैं।

इस अध्ययन में, इस बात पर विचार होना चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र मे, हथियारों के उत्पादन में कटौती होने पर, कितनी बेकारी होगी, निगम करों में किस हद तक, और किस रूप में कमी करना संभव होगा, और इस कमी का निगमित पूँजी के विनियोजन पर, और उपभोक्ताओं की खरीदारी पर अनुमानित प्रभाव क्या पड़ेगा।

उसे पता लगाना चाहिए कि शहरी विकास, आवास, अस्पताल, स्कूल, और सड़क-निर्माण के कार्यक्रम, और विदेशों में पूँजी विनियोजन, किस हद तक कमी को पूरा कर सकेंगे और संक्रमण काल मे किस प्रकार के, और कितने बेकारी के मुआवजे की जरूरत होगी।

बहुतेरे अमरीकी निरस्त्रीकरण के आर्थिक परिणामों की खुली बहस से घबड़ा जाएँगे। लेकिन कार्ल मार्क्स के विपरीत, मैं समझता हूँ कि उनकी आशंकाएँ भ्रांतिपूर्ण हैं।

युद्ध उत्पादन बोर्ड के एक सदस्य के रूप मे 1945 मे मैंने युद्ध से शांति की ओर हमारे आर्थिक संक्रमण के नियोजन में भाग लिया था। रोजगार क्षेत्र में एक करोड़ भूतपूर्व सैनिकों के अचानक प्रवेश करने के बावजूद, डेढ वर्ष में हम किसी बड़ी मन्दी के और बिना गंभीर बेकारी के, अपने लगभग आधे उद्योग-धन्धों को युद्ध-कालीन स्तर से शान्ति कालीन स्तर पर सफलतापूर्वक ले आए थे।

अगर आज फिर वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो जाय, तो मुझे कोई शक नहीं कि हम फिर वैसे ही सफल होंगे। इस समय हमारे प्रयत्नो का कहीं छोटा हिस्सा हथियारों के उत्पादन में लगा है, और स्वास्थ्य, शिक्षा, विदेशी सहायता और अन्य क्षेत्रो मे आवश्यक कार्य विशाल मात्रा मे करने को पडे हैं, जो इस कमी को पूरा कर सकते हैं।

अमरीकी पहल, और सैनिक, राजनीतिक, व आर्थिक पक्षो को ध्यान मे रख कर बनाई गई व्यापक अमरीकी शान्ति नीति का रूस पर अगर प्रभाव पड़ेगा तो किस हद तक, यह कोई नही बता सकता। लेकिन यह तेजी से बदलने वाला युग है, और इसकी सभावनाएँ असीमित हैं। स्टालिन की मृत्यु के बाद, सोवियत सघ मे भी काफी बडे परिवर्त्तन हुए है।

हमारी क्रांतिकारी शताब्दी मे नीति निर्माण, अधिक से अधिक, खतरों के नाजुक सन्तुलन का कार्य है। यद्यपि कोई निश्चित, सुरक्षित रास्ता नही है, किन्तु हथियारो की होड के तेजी से बढ़ते जाने के समय कुछ न करने की नीति सबसे ज्यादा खतरनाक हो सकती है। एक स्वस्थ, व्यावहारिक, कल्पनाशील अमरीकी नीति का निर्माण, जिस पर हम सभी चलने को तैयार हों, एक राष्ट्रीय जिम्मेदारी है जिसे उपेक्षित या स्थगित नही किया जा सकता।

पैंतालीस

प्रतिरक्षा, निरस्त्रीकरण और शान्ति

श्री बौल्स बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ती हुई सैन्य प्रविधियों, और फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले पर्याप्त सैन्य बल और निरस्त्रीकरण के सच्चे प्रयास के बीच विस्फोटक संकट का सिंहावलोकन करते हैं। लॉस ऐंजेलेस में 'मॉडर्न फोरम' के समक्ष मार्च, 1960 में दिये गए भाषण से।

दुनिया में आज 100 अरब डालर प्रतिवर्ष हथियारों पर खर्च किया जा रहा है। इसके अलावा, इस खर्च के परिणाम बड़े भयोत्पादक रूप में अनिर्णायक होते हैं। जो राष्ट्र हथियारों की होड़ में सबसे ज्यादा फँसे हुए हैं, उनके प्रमुख रणनीतिज्ञ वही लोग हैं, जो अधिकाधिक खर्च में सबसे ज्यादा व्यस्त हैं।

हथियारों की होड़ बढ़ने के साथ ही निरस्त्रीकरण की तात्कालिक आवश्यकता का बौद्धिक और नैतिक बोध भी गहरा होता जाता है। लेकिन इस बोध का अभी कोई निर्णायक रूप नहीं है, और व्यवहार में, उसके स्थान पर शीघ्र ही प्रतिरक्षा की अधिक टिकाऊ और अधिक स्वीकार्य स्थिति को फिर से अपनाने की, उतनी ही आसानी से समझी जा सकने वाली आवश्यकता आ जाती है।

बहुतेरे बोधगम्य कारणों से, वाशिंगटन और मास्को में अधिकांश नीति-संचालक निरस्त्रीकरण के बजाय, शस्त्रीकरण के सवाल में व्यस्त हैं। कभी-कभी वे अपने को इस पेचीदा अर्द्ध-सत्य से समझा लेते हैं कि हथियार बढ़ने से निरस्त्रीकरण की उपलब्धि में सहायता मिलेगी क्योंकि, जैसा चर्चिल ने एक बार कहा था, 'हम समझौता वार्त्ता करने के लिए शस्त्रीकरण करते हैं।'

लेकिन शस्त्रीकरण के जो परिणाम होते हैं, वे सब इसकी पुष्टि ही करते हों, ऐसा नहीं है। अपने आप से बराबर यह कहते रहना निरर्थक प्रतीत हो सकता है कि हथियारों की होड़ को बढ़ाना ही शांति की उपलब्धि का सर्वोत्तम मार्ग है। लेकिन इसका विकल्प, कि बढ़ती हुई सोवियत सैन्य क्षमता के विरुद्ध हम प्रभावी प्रतिकारक शक्ति न क़ायम रखें, और भी निरर्थक है।

स्पष्टतः शान्ति अगर कभी कोई सरल, एकपक्षीय, अकृत्रिम वस्तु थी भी, तो अब नहीं है। यह नैतिक, सैनिक, आर्थिक, और प्राविधिक समस्याओं का एक ज़बरदस्त जाल है।

आज हमारे सर्वाधिक बुद्धिपूर्ण पर्यवेक्षकों में से बहुतेरे हार मान लेते हैं, और

इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस अव्यवस्था में से किसी प्रकार की व्यवस्थित नीति निकालना असंभव है ।

ये निराशावादी आज गलत हो सकते हैं । लेकिन इन सभी तत्वों की पेचीदगी अगर यूँही बढ़ती रही, तो कल वे सही होंगे। प्रति वर्ष शांति की समस्या अपने आप में अधिक कठिन होती जाती है । प्रतिरक्षा और निरस्त्रीकरण की जुड़ी हुई समस्याओं के बारे यह बात विशेषत: सच है । जितनी देर तक हम समस्याओं को बढ़ने देते हैं, उतनी ही वे काबू के बाहर होती जाती हैं । हम पूछ सकते हैं कि फिर हम दिशाओं का पता कैसे लगाएँ कि किस तरफ जाना है ? हम समस्या का सामना कैसे कर सकते हैं ?

जैसा अणु-शक्ति कमीशन के भूतपूर्व कमिश्नर थामस ई० मरे ने कहा है, "एक हद तक अणुशक्ति का विकास स्वयं अपनी द्वन्द्वात्मकता से हुआ है । ...आरम्भ में हम सामरिक नीति में इस असीमित शक्ति को जोड़ने के अंतिम परिणामों के बारे में सोचते हुए डरते थे, क्योंकि यह नीति पहले से ही असैनिक जनसंख्या के विनाश को आधुनिक युद्ध-कला का एक सामान्य अंग समझती थी, लेकिन, जैसे भी हो, हमने उसे जोड़ दिया । एक भुलावे में पड़कर, हमने सैन्य-प्रविधि के द्वारा अपनी रणनीति निर्धारित हो जाने दी ।...अब प्राविधिक विकास हमारे नियंत्रण के बाहर तेज़ी से हो रहा है, और हम उसके साथ खिंचे जा रहे हैं ।"

'सुप्रीम सोवियत' (रूस की सर्वोच्च सभा) के समक्ष 14 जनवरी, 1960 को दिये गए ख्रुश्चोव के भाषण से पता चलता है कि रूस में भी यांत्रिक प्रविधियाँ हर चीज को अपने साथ खींचे लिए जा रही हैं । आण्विक अस्त्रों का जो रूप है, और जिस तेज़ी से उनकी मार हो सकती है, उसके फलस्वरूप अब यह अनिवार्य है कि शीत-युद्ध के दोनों पक्षों में यांत्रिक प्रविधियाँ एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए अधिक से अधिक समय और शक्ति लगाएँ । संभव विरोधी के पहले किसी प्राविधिक विकास को प्राप्त करने के अस्थायी लाभ का महत्व निरन्तर बढ़ता जाता है । संभावना इस बात की है कि नए अस्थायी संतुलनों को बिगाड़ने के प्रयत्नों का एक अंतहीन सिलसिला चले, जिसमें खर्च और खतरे बहुगुणित होते जाएँ ।

इसके साथ ही, आक्रमण के लाभ और प्रतिरक्षा की हानि का अन्तर बढ़ता जाता है । यह अन्तर अभी भी इतना अधिक हो गया है कि सर्वथा समझदार और गंभीर सोवियत रणनीतिज्ञ शीघ्र ही यह अनुभव करने लगें कि अमरीका पर अचानक आण्विक हमला करना, सोवियत रूस के लिए एक तर्कसंगत नीति होगी ।

सैन्य प्रविधियों के जिस दशक में हम प्रवेश कर रहे हैं, उसमें अचानक हमला, रफ्तार, गलती, और दुर्घटना के खतरनाक तत्व निहित हैं । और जैसे ये सब काफी न हों, अब हम लौह आवरण के दोनों ओर शीत-युद्ध के रणनीतिज्ञों को एक-दूसरे का मनोविश्लेषण करने की चेष्टा करते देख सकते हैं । अस्थिरता के इससे बड़े किसी नए तत्व की कल्पना करना कठिन है ।

रोज़ ब रोज़ इस पीढ़ी के अमरीकियों के साधन, शक्तियाँ, जनशक्ति, और

मनोशक्ति, अधिकाधिक इस प्रश्न पर केन्द्रित हो रही है कि आधे-घंटे के प्रलयकारी आणविक विनाश में अपने-आप को कैसे बचाया जा सकता है। उत्तर-जीवन के साथ हमारी व्यस्तता ने भयंकर सीमा तक अन्य सभी कामों का स्थान ले लिया है। कूट-नीति, विदेशी सहायता और शिक्षा, सब इस मूल रणनीतिक प्रयास के साथ बंध गए हैं।

दोनों ओर से करोड़ों व्यक्तियों के विनाश की धमकियाँ अणु-युग में निरोध और प्रतिरोध की प्रमुख विशेषता बन गई हैं, और हमें सलाह दी जाती है कि अपनी धमकियों को विश्वसनीय बनाने के लिए हमें बराबर नए तरीके निकालने होंगे।

फिर भी, चूँकि यान्त्रिक प्रविधियाँ अनियंत्रित गति से बढ़ती जाती हैं, अतः ये धमकियाँ अपनी भयंकरता के कारण ही विश्वसनीयता खो रही हैं। हिरोशिमा पर गिराया गया अणु बम, दूसरे महायुद्ध में प्रयुक्त बड़े से बड़े साधारण बम से हजारों गुना अधिक शक्तिशाली था। लेकिन उसके बाद कुछ हाइड्रोजन बम जो हमने बनाए हैं, उनकी शक्ति दूसरे महायुद्ध में गिराये गए सारे बमों की कुल शक्ति से हज़ार गुना अधिक है।

आण्विक प्रविधियों की होड़ का अंत क्या हो सकता है, इसमें कोई रहस्य नहीं है। अगर यह होड़ बेरोकटोक चलती रही, तो इसका अंत होगा दुनिया का अंत। किसी ने कहा है कि हमारे आस-पास के ग्रहों के प्राणीविहीन होने का कारण शायद यह है कि उनके वैज्ञानिक हमारे वैज्ञानिकों से आगे थे।

× × ×

जब हम आज निरस्त्रीकरण की बात करते हैं, तो हमें दूसरे महायुद्ध के पहले की, या अणु-युग, या प्रक्षेपास्त्रों के युग के भी पहले की आदतों के अनुसार सोचने की ग़लती नहीं करनी चाहिए। 1960 की दुनिया इन सभी कालों की दुनिया से भिन्न है, और हमें पुराने निरर्थक मताग्रहों को छोड़कर उसके वास्तविक रूप को देखना चाहिए।

यह व्यंगपूर्ण है कि अपने मताग्रह-रहित, लोकतांत्रिक विरोधियों की अपेक्षा, ख़ुश्चोव कभी-कभी अधिक स्वतंत्रता के साथ अपने मताग्रहों का परित्याग करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, फरवरी, 1957 में उनके मास्को के दफ्तर में मैंने श्री ख़ुश्चोव से पूछा कि वे क्या वास्तव में अपने मार्क्सवादी विश्वासों से हट नहीं रहे हैं। हम निरस्त्रीकरण की चर्चा कर रहे थे, और निरस्त्रीकरण सम्बन्धी प्रभावी समझौता करने की उनकी इच्छा को मैंने चुनौती दी थी।

मैंने कहा कि मार्क्सवादी मताग्रह के अनुसार, पूँजीवादी पश्चिम अपनी समृद्धि को कायम रखने के लिए बहुत कुछ अपने शस्त्र उद्योगों पर निर्भर है। इस सिद्धान्त का यह अर्थ प्रतीत होता है कि निरस्त्रीकरण से साम्यवाद की विजय और निकट आ जाएगी। इसके अनुसार सैन्य उद्योगों के बन्द होने पर बेकारी बढ़ेगी, क्रय-शक्ति

घटेगी और बढ़ती हुई मन्दी के फलस्वरूप राजनीतिक उथल-पुथल होगी और पूँजीवाद का विनाश होगा।

फिर, श्री ख्रुश्चोव इस मार्क्सवादी सिद्धान्त पर चल कर, निरस्त्रीकरण के व्यावहारिक समझौते के लिए हर संभव प्रयास क्यों नहीं करते, जो पूँजीवाद के विनाश की भूमिका होगी ? क्या इस प्रकार कार्य करने में उनकी असफलता उन्हें मार्क्सवाद से हटने वाला नहीं बनाती ? क्या उन्हें अपने अधिक मताग्रही साथियों की प्रतिक्रियाओं की चिन्ता नहीं थी ? उनकी मुस्कान भरी प्रतिक्रिया से संकेत मिलता था कि उन्होंने मेरी बात समझ ली है, और उसमें वे परेशान नहीं हुए।

यह एक ऐसा प्रसंग है, जिसमें हम इस बात को ज्यादा पसन्द कर सकते हैं, कि आधुनिक मार्क्सवादी अपने मताग्रह को छोड़ने के बजाए, उसके अनुरूप आचरण करें।

इस बीच, शस्त्र-नियन्त्रण के क्षेत्र में हम अमरीकियों के अपने मताग्रह हैं, जिनका हमें परित्याग करना है। कितनी बार हमने सुना है कि सबसे कठिन समस्याएँ, निस्सन्देह, राजनीतिक समस्याएँ हैं—बर्लिन, जर्मनी, मध्य-पूर्व, कोरिया, वियतनाम, और फारमोसा—और कितनी बार हमें समझाया गया है कि इन समस्याओं के हल हो जाने के बाद ही शस्त्र-नियन्त्रण संभव होगा ?

यह बार-बार दुहराई गई बात खोखली प्रतीत होती है कि हथियार लक्षण है, रोग का कारण नहीं। शस्त्र-नियन्त्रण का अपना एक महत्त्व हो गया है। विशेषतः इस बात को देखते हुए कि विश्व की बहुतेरी बड़ी और ठोस राजनीतिक समस्याओं के बारे में इस समय समझौता होना संभव नहीं है, या सदेहास्पद है, शस्त्र-नियन्त्रण का सचमुच प्राथमिक महत्त्व हो जाता है।

इस समस्या के मूल में दो आधारभूत सत्य हैं। पहला यह तथ्य है कि सारे इतिहास में शस्त्रों की होड़ का अन्त आमतौर पर युद्ध में हुआ है। दूसरा यह तथ्य है कि असावधानी और एकपीक्षय या सुरक्षाहीन निरस्त्रीकरण का अंत हमेशा राष्ट्रीय संकट में हुआ है।

ये दोनों तथ्य समान रूप से मौलिक हैं, और उन पर साथ-साथ विचार करना चाहिए। हमारी कुछ बड़ी कठिनाइयाँ अपने विचारों में उन्हें अलग-अलग करने के प्रयत्नों से उत्पन्न होती हैं। जिनका मुख्य आग्रह हमारी सैन्य प्रतिरक्षा को हर तरह से पूर्ण बनाने पर है, वे बहुधा शस्त्र-नियन्त्रण के समर्थकों को गंभीर सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। जिनका आग्रह सुरक्षापूर्ण निरस्त्रीकरण पर है, वे सैन्यबल के लोगों के प्रति उसी प्रकार सशंकित हैं।

अगर हम अपने को बचाने की समस्या को प्रतिरक्षा के दृष्टिकोण से देखें, तो समस्या शस्त्रों की होड़ में आगे रहने की है। मानवी दृष्टिकोण से देखें, तो समस्या इस होड़ को कम करने की है।

जनवरी, 1959 के फारेन एफेयर्स में लिखते हुए श्री ऐल्बर्ट वॉल्स्टेटर ने कहा—

"तनाव घटाना, जिसे सब लोग अच्छा समझते हैं, और रक्षा सम्बन्धी सावधानी घटाना, जिसे सब लोग बुरा समझते हैं, इनके बीच अन्तर कर पाना आसान नहीं है।"

प्रतिरक्षा और निरस्त्रीकरण के विभिन्न परिप्रेक्ष्य, निरीक्षण के प्रश्न पर मिलते हैं। जमीन या पानी के नीचे किये गए परीक्षणों का पता लगाने में, अधिक विश्वसनीय वैज्ञानिक उपलब्धि, बड़े समय, अनिश्चय और परेशानी की बचत कर सकती थी। जिस हद तक शासनों के अन्दर ऐसी शक्तियाँ हैं, जो परीक्षण करना चाहती हैं, चाहे उनका पता चले या न चले, उस हद तक पता लगाने की समस्या हल हो जाने पर भी विवाद का अन्त न होता। लेकिन जेनेवा में बड़े विभ्रम और बड़ी बाधा का एक कारण दूर हो जाता।

ऐसे क्षेत्र में, जहाँ सभी दिशाओं मे प्रगति कठिन है, उन क्षेत्रों की अपेक्षा न करना उचित होगा, जहाँ अधिक सही वैज्ञानिक सूचना नीति की समस्याएँ हल कर सकती है। जमीन के नीचे किये गए परीक्षणों का पता लगाने के विवाद में, वैज्ञानिक समस्या को हल करना स्पष्टतः एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें प्रयास करना चाहिए। चूँकि हमने अभी तक इस वैज्ञानिक खाई को पाटने का सशक्त प्रयास नहीं किया है, अतः अब ऐसा करना आवश्यक है।

आण्विक अस्त्रों में दूसरों को हिस्सेदार बनाने का वर्तमान विवाद इसका एक और बड़ा उदाहरण है कि प्रतिरक्षा और निरस्त्रीकरण के भिन्न परिप्रेक्ष्य किस प्रकार नियन्त्रणों के वैज्ञानिक और प्राविधिक सदर्भ में एक जगह मिलते हैं।

एक दृष्टिकोण के अनुसार हमे अधिक व्यापक रूप में अपने मित्रो को आण्विक अस्त्रो मे हिस्सेदार बनाना चाहिए। इसका तर्क है कि हमारे संभाव्य शत्रु के पास जो क्षमता पहले से ही है, उससे अपने मित्रो को वंचित रखना इस युग मे आत्मघाती कार्य होगा, जिसमें एक क्षण के छोटे से अंश का भी रणनीतिक महत्त्व है।

दूसरा दृष्टिकोण इस उतने ही यथार्थ खतरे पर जोर देता है कि हथियारो की संख्या मे और अधिक वृद्धि होने से इसकी सभावना बढ़ती है कि उन पर कभी भी नियन्त्रण न किया जा सके, और इसके साथ, अणु-युद्ध के दुर्घटनावश, या जान-बूझ कर शुरू किए जाने का खतरा भी उतना ही बढ़ जाता है।

किन्तु इन विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की अगर हम निकट परीक्षा करें, तो शायद ये अटल रूप में विरोधी न सिद्ध हों। यहाँ भी, मेल की संभावना जो भी है, वह नियंत्रण व्यवस्थाओं के क्षेत्र में है। यह सभवतः प्रश्नो के इस क्रम के कार्य-पद्धति सम्बन्धी नए उत्तरों पर निर्भर है।

प्रतिरक्षा और निरस्त्रीकरण, दोनो की ही आवश्यकताओ से संगत अगर कोई विशिष्ट कदम हैं, तो क्या हैं? उत्तरी अटलांटिक सधि मे ऐसी नई व्यवस्थाएँ कौन-सी की जा सकती हैं, जो बाह्य आक्रमण के लिए एक साथ ही अधिकतम रोक और न्यूनतम उत्तेजना प्रदान करें? कौन-सी व्यवस्था आण्विक प्रविधियों को

अधिकतम सीमा तक सामान्य उद्देश्यो मे लगा सकती है, और वंचित होने की उस भावना को अधिक से अधिक घटा सकती है, जो इस समय उन राष्ट्रों को अणु-शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है, जिनके पास इस समय अणु-शक्ति नही है।

अपने मित्रो को वे समझे-बूझे अणु-शस्त्र प्रदान करने मे इस प्रश्न का उत्तर मिलने की सभावना नही है। इसी तरह, प्रश्न का उत्तर इस सरल सतोष में भी मिलने की सभावना नही है कि हम अणु-अस्त्रो का स्वय अपना भडार जमा करते रहे, और हमारी आपत्तियो के बावजूद, तथा हमारी सहायता के बिना ही, अणु-अस्त्रों के फैलाव की बड़ी ही यथार्थ सभावना पर विचार न करें।

नियत्रण, देख-रेख, निरीक्षण, और नियोजन सम्बन्धी कार्यों मे अगर उत्तरी अटलांटिक सघ के माध्यम से वे सदस्य भी भाग लें जिनके पास अणु-अस्त्र नही हैं, तो फ्रांस के समान स्वतत्र मार्ग पर चलने की कुछ सदस्यो की इच्छा इससे समाप्त हो सकती है। अगर उत्तरी अटलांटिक सधि के द्वारा एक विश्वसनीय, और व्यापक आण्विक बाधा रणनीति का विकास किया जाय, तो इसी से अलग-अलग आण्विक प्रतिकार विकसित करने के कारण घटेंगे, और रूस भी अधिक आश्वस्त हो सकता है। उत्तरी अटलांटिक सधि के अन्तर्गत, सयुक्त वैज्ञानिक खोजकार्य का शस्त्र-निर्माण और शस्त्र-नियंत्रण दोनो में ही सम्भाव्य महत्त्व बहुत अधिक हो सकता है।

उत्तरी अटलांटिक संधि के बाहर भी अणु अस्त्रों के फैलने के खतरे के उतने ही गभीर परिणाम हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, साम्यवादी चीन, या प्रत्यावर्तित पूर्वी जर्मनी मे स्वतंत्र आण्विक क्षमताओं के विकास की संभावना से रूस को वास्तव मे कोई सन्तोष नही हो सकता। सामान्य खतरे से, सामान्य हित पर आधारित समझौतों के लिए नए अवसर उत्पन्न हो सकते हैं।

सीनेट की वैदेशिक सम्बन्ध समिति के लिए तैयार किये गए 'सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप' सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अध्ययन मे, कोलम्बिया-हार्वर्ड खोज समूह के दिमाग में शायद यही बात रही हो, जब उसने लिखा—"दीर्घ-कालीन दृष्टि से, शस्त्र-नियत्रण के कुछ पक्षों को सीमित करने मे सामान्य हित की संभावनाओं की खोज करते हुए, हम रूसियों को शायद अपना सबसे जिम्मेदार और दकियानूसी विरोधी पाएँ।" यह बात बहुतेरे अमरीकियों को विचित्र लग सकती है, लेकिन किसी भी तरह असम्भव नहीं है।

× × ×

सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि शस्त्र-नियंत्रण की समस्या को जो प्राथमिकता मिलनी चाहिए, वह हमने उसे इतने दिनों तक नहीं दी, और अब भी नहीं दे रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इसके लिए आग्रह न किया गया हो। लेकिन सभी अनुरोध अन-सुने कर दिये गए।

इस प्रकार, लिखे जाने से दस साल पहले, 1 मार्च, 1950 को, कॉनेक्टिकट के प्रतिष्ठित सीनेटर, स्वर्गीय ब्रायन मैकमेहोन ने सीनेट में भाषण देते हुए इस प्रकार

की कार्यवाही के लिए अपील की, जो हमने अभी तक नहीं की है। उन्होंने तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता पर जोर दिया था, और उनके सन्देश की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। उनकी भांति, मैं भी अपनी बात इन शब्दों से समाप्त करूँ, जो दस वर्ष पुराने होकर भी सर्वथा नए हैं :

"हर क्षण के साथ सभ्यता को बचाने का समय कम होता जाता है। हम इस काम में कब लगेंगे ? नियति हमें उदासीनता की भेंट नहीं प्रदान करेगी। अगर हम कार्यवाही नहीं करते, तो बरबाद धरती के उत्तराधिकारी शायद हमेशा हमारी भर्त्सना करेंगे।

"हमारी भर्त्सना मूर्खों के रूप में नहीं की जाएगी—क्योंकि कोई मूर्ख भी किसी बहुत बड़े खतरे को समझ लेता है। हमारी भर्त्सना कायरों के रूप में की जायगी—जो ठीक ही होगी, क्योंकि जो भयानक तथ्य हमसे धीरज के साथ काम करने की माँग कर रहे हैं, उनसे कोई कायर ही मुँह चुरा सकता है। महानतम संकट का यह काल महानतम अवसर का भी काल है। आण्विक शान्ति का पुरस्कार, जीतने वाले की प्रतीक्षा कर रहा है—और वह पुरस्कार है एक आश्चर्यमय नयी दुनिया।"

अधिकतम सीमा तक सामान्य उद्देश्यो मे लगा सकती है, और वंचित हं
भावना को अधिक से अधिक घटा सकती है, जो इस समय उन राष्ट्रो को
प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है, जिनके पास इस समय अणु-शक्ति नह

अपने मित्रो को वे समझे-बूझे अणु-शस्त्र प्रदान करने मे इस प्रश्न
मिलने की संभावना नही है। इसी तरह, प्रश्न का उत्तर इस सरल स
मिलने की संभावना नही है कि हम अणु-अस्त्रो का स्वयं अपना भंडार
रहे, और हमारी आपत्तियों के बावजूद, तथा हमारी सहायता के बिना ही,
के फैलाव की बड़ी ही यथार्थ संभावना पर विचार न करें।

नियंत्रण, देख-रेख, निरीक्षण, और नियोजन सम्बन्धी कार्यों मे अ
अटलांटिक संघ के माध्यम से वे सदस्य भी भाग लें जिनके पास अणु-अस्
सो फ्रांस के समान स्वतंत्र मार्ग पर चलने की कुछ सदस्यों की इच्छा इस
हो सकती है। अगर उत्तरी अटलांटिक संधि के द्वारा एक विश्वसनीय, औ
आण्विक बाधा रणनीति का विकास किया जाय, तो इसी से अलग-अलग
प्रतिकार विकसित करने के कारण घटेंगे, और रूस भी अधिक आश्वस्त हो स
उत्तरी अटलांटिक संधि के अन्तर्गत, संयुक्त वैज्ञानिक खोजकार्य का शस्त्र
और शस्त्र-नियंत्रण दोनो मे ही सम्भाव्य महत्व बहुत अधिक हो सकता है।

उत्तरी अटलांटिक संधि के बाहर भी अणु अस्त्रों के फैलने के खतरे के
गंभीर परिणाम हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, साम्यवादी चीन, या अ
पूर्वी जर्मनी मे स्वतंत्र आण्विक क्षमताओं के विकास की संभावना से रूस को
मे कोई सन्तोष नही हो सकता। सामान्य खतरे से, सामान्य हित पर अ
समझौतों के लिए नए अवसर उत्पन्न हो सकते हैं।

सीनेट की वैदेशिक सम्बन्ध समिति के लिए तैयार किये गए 'सोवियत स
पूर्वी यूरोप' सम्बन्धी महत्वपूर्ण अध्ययन मे, कोलम्बिया-हार्वर्ड खोज समूह के
मे शायद यही बात रही हो, जब उसने लिखा—"दीर्घकालीन दृष्टि से, शस्त्र
यण के कुछ पक्षों को सीमित करने मे सामान्य हित की संभावनाओं की खोज
हुए, हम रूसियों को शायद अपना सबसे जिम्मेदार और दकियानूसी विरोधी पा,
यह बात बहुतेरे अमरीकियों को विचित्र लग सकती है, लेकिन किसी भी त
असम्भव नहीं है।

× × ×

सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि शस्त्र-नियंत्रण की समस्या को जो प्राथमि-
कता मिलनी चाहिए, वह हमने उसे इतने दिनों तक नहीं दी, और अब भी नहीं दे
रहे है। ऐसा नहीं है कि इसके लिए आग्रह न किया गया हो। लेकिन सभी अनुरोध
अन-सुने कर दिये गए।

इस प्रकार, कितने हमने से दस साल पहले, 1 मार्च, 1950 को, कनेक्टिकट के
प्रतिष्ठित सीनेटर, स्वर्गीय ब्रायन मैक्मेहोन ने सीनेट में भाषण देते हुए उस प्रकार

की कार्यवाही के लिए अपील की, जो हमने अभी तक नहीं की है। उन्होंने तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता पर जोर दिया था, और उनके सन्देश की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। उनकी भांति, मैं भी अपनी बात इन शब्दों से समाप्त करूँ, जो दस वर्ष पुराने होकर भी सर्वथा नए हैं :

"हर क्षण के साथ सभ्यता को बचाने का समय कम होता जाता है। हम इस काम में कब लगेंगे ? नियति हमें उदासीनता की भेंट नहीं प्रदान करेगी। अगर हम कार्यवाही नहीं करते, तो बरबाद धरती के उत्तराधिकारी शायद हमेशा हमारी भर्त्सना करेंगे।

"हमारी भर्त्सना मूर्खों के रूप में नहीं की जाएगी—क्योंकि कोई मूर्ख भी किसी बहुत बड़े खतरे को समझ लेता है। हमारी भर्त्सना कायरों के रूप में की जायगी—जो ठीक ही होगी, क्योंकि जो भयानक तथ्य हमसे धीरज के साथ काम करने की माँग कर रहे हैं, उनसे कोई कायर ही मुँह चुरा सकता है। महानतम संकट का यह काल महानतम अवसर का भी काल है। आण्विक शान्ति का पुरस्कार, जीतने वाले की प्रतीक्षा कर रहा है—और वह पुरस्कार है एक आश्चर्यमय नयी दुनिया।"

छियालीस

सोवियत अजेयता की मिथ्या धारणा

नए प्रशासन ने 1961 में, चोटी के अमरीकी संपादकों, और जनमत के नेताओं के साथ अमरीकी विदेश-नीति की समस्याओं की चर्चा करने के लिए कई क्षेत्रीय 'सूचना सम्मेलन' किए। अक्टूबर, 1961 में, डालास, टेक्सास में हुए सम्मेलन में अवर विदेश सचिव बौल्स ने शीत युद्ध में सोवियत पैंतरेबाजी के सम्बन्ध में एक नया परिप्रेक्ष्य अपनाने का सुझाव रखा।

कोई राष्ट्रीय नीति जो सोवियत शक्ति और संकल्प को ध्यान में नहीं रखती, वह खतरनाक ही नहीं, आत्मघाती होगी। फिर भी, हमें अपनी दृष्टि सन्तुलित रखनी चाहिए। सभी रूसी दस फुट ऊँचे नहीं होते।

हम इस स्पष्ट तथ्य को बहुधा भुला देते हैं, विशेषतः एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के नए राष्ट्रों के साथ अपने व्यवहार में, कि राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में रूस ने कहीं अधिक, और कहीं ज्यादा गंभीर ग़लतियाँ की हैं, और उन्हें उतना ही अधिक निराश भी होना पड़ा है।

स्थिति को सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, हम पिछले पन्द्रह वर्षों को उस रूप में देखें, जिस रूप में रूसी शासन के सदस्य आवेगहीन यथार्थ की दृष्टि से देखने पर इस काल को देख पाते होंगे। ऐसे सिंहावलोकन से हमें स्वयं अपनी शक्तियों को ज्यादा अच्छी तरह समझने में, और समूचे विश्व की स्थितियों को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने में सहायता मिल सकती है।

दूसरे महायुद्ध के बाद यूरोप में एक राजनीतिक और आर्थिक शून्य उत्पन्न हो गया था। अधिकांश उद्योग नष्ट हो गए थे, महगाई और व्यापक बेकारी से हर राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था पीड़ित थी।

इस बीच अमरीका में, दोनों दलों के विवेक हीन राजनीतिक नेताओं की प्रेरणा से इस बात की होड़ लग गई थी कि हम जल्दी से जल्दी अपनी विजयी सेनाओं को भंग कर दें, और अपने घरौंदे में वापस आ जाएँ।

अधिकांश पूर्वी यूरोप पर लाल सेनाओं का अधिकार था, और सोवियत सेना के लगभग दो सौ युद्ध-परीक्षित डिवीजन अब भी हथियारबन्द थे। अतः स्टालिन को

विश्वास था कि साम्यवाद शीघ्र ही सम्पूर्ण यूरोप के शून्य को भर देगा। यूरोप में साम्यवाद का प्रभुत्व स्थापित करने की स्टालिन की पद्धतियों में सैन्य शक्ति, साम्यवादियों द्वारा नियन्त्रित हड़तालें, विभाजक प्रचार, और यूनान तथा अन्य स्थानों में छापामार कार्यवाहियाँ भी शामिल थीं।

फिर भी नतीजा क्या निकला ?

ज़ारों की पुरानी परम्परा में, यूनान और तुर्की के माध्यम से भूमध्य-सागरीय क्षेत्र पर सोवियत दबाव को, ट्रूमन सिद्धान्त के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर अमरीकी सैन्य और आर्थिक सहायता की प्रतिरोधात्मक कार्यवाही ने, और स्वतन्त्रता के प्रति यूनान की निष्ठा ने विफल बना दिया।

कुछ महीनों के अन्दर ही, पश्चिमी यूरोप की युद्ध-ध्वस्त अर्थ-व्यवस्थाओं का पुनः निर्माण करने के लिए मार्शल योजना की सहायता प्रदान की गई। इसके बाद उत्तरी अटलांटिक संधि की स्थापना हुई, जिसने हमारे मित्रों और साम्यवादी जगत के बीच एक प्रभावकारी रक्षा-पंक्ति प्रदान की।

यह भूल जाना आसान है कि पन्द्रह वर्ष पहले ही, बहुतेरे अमरीकी यह गंभीर भविष्यवाणी करते थे कि पश्चिमी यूरोप शीघ्र ही साम्यवादियों के हाथ में चला जाएगा। लेकिन, चेकोस्लोवाकिया को छोड़कर, सोवियत शक्ति उस इलाके से आगे नहीं बढ़ सकी, जिसे लाल सेना ने जीत कर अपने अधिकार में ले लिया था। तत्काल साहसपूर्ण, संयुक्त कार्यवाही से यूरोप की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई, और आज वह अपने इतिहास के अन्य किसी भी काल से अधिक सबल और समृद्ध है।

सोवियत संघ ने 1948 में शीत-युद्ध की एक और चाल चली कि बर्लिन के रास्ते बन्द करके उसका दम घोट दिया जाय। लेकिन इस परीक्षा में भी अमरीकी और अंग्रेज उद्यम और चतुराई को सफलता मिली। बर्लिन के साथ हवाई सम्पर्क की अविश्वसनीय सी लगने वाली व्यवस्था से रूसी वार विफल कर दिया गया। और कुल नतीजा यही निकला कि पश्चिम में साम्यवादी खतरे की चेतना अधिक आई।

1948 में ही युगोस्लाविया सोवियत गुट से अलग हो गया। और तेरह वर्ष तक दी गई रूसी धमकियों और लोभों को उसे वापस लाने में सफलता नहीं मिली है। एकात्मक समझे जाने वाले सोवियत साम्राज्य में यह पहली महत्त्वपूर्ण दरार थी। यद्यपि वे अब भी अपने को साम्यवादी कहते हैं, किन्तु युगोस्लाव लोग आज सोवियत नियंत्रण से मुक्त एक अपेक्षतया समृद्ध समाज का निर्माण कर रहे हैं।

स्टालिन और उनके अति-आशावादी समर्थकों के लिए 1948 वस्तुतः बड़ी व्यस्तता का वर्ष था। उसी वर्ष मास्को के आदेश से एशिया में छह नई साम्यवादी क्रांतियाँ आरम्भ की गई—फिलीपीन, इण्डोनेसिया, फ्रांसीसी हिन्दचीन, मलय, ब्रह्मा और भारत में।

इन छह राष्ट्रों में से पाँच नए स्वतंत्र, अपेक्षतया असंगठित राष्ट्र थे, जिन्हें अपेक्षतया दुर्बल और बटा हुआ समझा जाता था। मास्को की नजरों में वे साम्यवादी

क्रांति के लिए—जो सावधानी से संगठित की गई थी, जिसे धन की कमी न थी, और जिसका नेतृत्व स्थानीय था—आसान लक्ष्य प्रतीत हुए होंगे। लेकिन पाँचों में ही ये प्रयास पूर्णतः असफल रहे।

छठे क्षेत्र हिन्द-चीन में, साम्यवादी अपने प्रचार और दबाव को फ्रांस के विरुद्ध केन्द्रित कर सके, जो एक गोरा औपनिवेशिक देश था, और केवल यहीं उनकी शक्तियों को आंशिक सफलता मिली।

फिर, कुछ ही वर्ष पहले, सभी विचारशील प्रेक्षक मध्य-पूर्व में सोवियत प्रवेश से चिन्तित थे। बहुतों का ख्याल था कि, मिसाल के लिए, मिस्र पर सोवियत नियन्त्रण कायम हो जाएगा। किन्तु आज नासिर का राष्ट्रवाद आन्तरिक साम्यवाद के विरुद्ध तेजी से लड़ता है, और सोवियत संघ के साथ उनके सम्बन्धों में घनिष्ठता बराबर कम होती जा रही है। मध्य-पूर्व में स्थिति यद्यपि अभी अस्थिर और अनिश्चित है, किन्तु सोवियत रूस को अभी तक अपनी आशाओं से बहुत कम लाभ हुआ है।

1955 में सोवियत रूस ने हिन्दुस्तान और जापान में ख्रुश्चेव का नया आर्थिक राजनीतिक कार्य-क्रम चलाया। हर तरह के संकेत और वादे किये गए। और एक बार फिर उसके प्रयत्न अपने लक्ष्यों को नहीं प्राप्त कर सके।

अपनी सारी समस्याओं सहित, आज हिन्दुस्तान एक तेजी से विकसित होता हुआ अधिकाधिक आत्म-विश्वास पूर्ण, लोकतांत्रिक राष्ट्र है। और ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धोत्तर कालीन जापान धीरे-धीरे अपने आन्तरिक संघर्षों पर काबू पाता जा रहा हैं, और एक लोकतांत्रिक शासन के अन्तर्गत, असाधारण आर्थिक और राजनीतिक सफलता प्राप्त कर रहा है।

अब हम अफ्रीका पर विचार करें, जो सोवियत महत्वकांक्षा के सर्वप्रथम लक्ष्यों में से एक है, और जिस पर उन्होंने बड़ी आशाएँ लगा रखी हैं।

पिछले दस वर्षों में, अफ्रीका में चौबीस नए स्वतंत्र देशों का उदय हुआ है। जब इस विशाल और अव्यवस्थापूर्ण महाद्वीप में साम्यवादियों ने अपने प्रयत्न तेज किए, तो अफ्रीका में रूसी 'पिट्ठूगुओं' की अनिवार्यता की बड़ी चर्चा हुई।

यद्यपि अफ्रीकी राजधानियों में कुछ रोष उत्पन्न करने वाले भाषण हुए हैं, और कुछ सम्बन्ध आशंकाजनक सीमा तक दुर्बल हैं, किन्तु अफ्रीकी राष्ट्रवाद ने अभी तक रूसी लालचों में फँसने को अपने से बचाया है।

कांगो में विशेषतः नाटकीय रीति से रूस की पराजय हुई, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ स्वयं उसका मुख्य विरोधी था। इस पराजय का प्रत्यक्ष परिणाम था कि एक प्रधान-मन्त्री के स्थान पर तीन प्रमुख अधिकारियों द्वारा प्रशासन के 'त्रिमूर्ति' प्रस्ताव के द्वारा रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रभावकारिता को समाप्त करने की चेष्टा की। सोवियत गुट के बाहर एक भी राष्ट्र ने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया, जो एक और पराजय थी।

मेरा यह मतलब नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संघ में सब काम हमारी तबियत के अनु-

सार हो रहा है। लेकिन इस संगठन को नष्ट या दुर्बल करने के सोवियत प्रयास अभी तक असफल रहे हैं।

साम्यवादी चीन में भी, जहाँ साम्यवाद की आश्चर्यजनक जीत पर रूस ने अपने-आपको बधाई दी थी, आज रूस को उलझन में डालने वाले दबावों और अज्ञात खतरों का सामना करना पड़ रहा है। आज हम विश्व साम्यवादी आन्दोलन के नेतृत्व के लिए कटु संघर्ष होता देख रहे हैं, जो पीकिंग और मास्को के बीच बार-बार उठने वाले सैद्धान्तिक विवादों में व्यक्त होता है।

अब हम उन आर्थिक और राजनीतिक कठिनाइयों के एक अन्य पक्ष पर विचार करें, जिनकी ओर मास्को को ध्यान देना होगा। पिछले कई वर्षों से रूसी सरकार दो प्रकार की व्यवस्थाओं के बीच शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता की बात करती रही है। किन्तु ऐसी प्रतियोगिता का अनुभव क्या अपने पड़ोस में ही उन्हें नहीं हो चुका?

पन्द्रह वर्षों से पश्चिमी जर्मनी का विकास एक व्यवस्था के अन्तर्गत हो रहा है, पूर्वी जर्मनी का दूसरी के अन्तर्गत। और नतीजा क्या निकला है? पश्चिमी जर्मनी में हमें आधुनिक काल की महान् आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक सफलता की कहानियों में से एक मिलती है—अत्यधिक शक्ति और सम्भावनाओं से युक्त एक स्वतंत्र, समृद्ध, गतिशील समाज।

इसके विपरीत पूर्वी जर्मनी का शासन बुरी तरह असफल है, आर्थिक मंदी है, बौद्धिक विफलता है, और स्वयं उसके नागरिक उसे स्पष्ट तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। वस्तुतः पूर्वी जर्मनी मे सोवियत असफलता इतनी बड़ी रही है कि साम्यवादियों को मशीन-गनों और टैंकों द्वारा रक्षित एक दीवाल बनानी पड़ी ताकि पूर्वी जर्मनी के लोग पूर्वी जर्मनी के तथाकथित 'साम्यवादी स्वर्ग' से पश्चिमी जर्मनी के 'पूँजीवादी गन्दे नाले' की ओर सामूहिक निष्क्रमण न करें।

इस हताशाजनित कार्य से साम्यवादी नेताओं ने दुनिया को यह बता दिया है कि अपने लोगों को अपने साथ रखने का उनके पास एक ही उपाय है, कि वे उन्हे ताले मे बन्द रखें। यद्यपि पूर्वी जर्मनी पश्चिम के लिए नई समस्याएँ उत्पन्न करता है, किन्तु यूरोप मे सोवियत नीति की असफलता का यह एक विशाल प्रतीक है।

अपने लोगों का समर्थन प्राप्त करने में साम्यवादियों की असफलता केवल पूर्वी यूरोप मे ही नही वरन् पोलैण्ड और हंगरी में भी, और वस्तुतः शेष सभी अभागे पिछलग्गू राष्ट्रों में भी है। और यह स्थिति तब है जब साम्यवादी स्कूलों, साम्यवादी रेडियो, और साम्यवादी पुस्तको और समाचार पत्रों के द्वारा समूची युद्धोत्तर-कालीन पीढ़ी का पिछले पन्द्रह वर्षों से सुनियोजित, सघन और निरन्तर सैद्धान्तिक प्रशिक्षण किया जा रहा है।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय स्वाधीनता की भूख, जो सोवियत तानाशाही का प्रतिरोध करने से भी पीछे नही हटी, रूसी असफलता की गंभीरता को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करती है।

पांच वर्ष पहले, हंगरी के पचीस हजार नौजवानों ने बुडोपेस्ट की सड़कों पर सोवियत टेंको के विरुद्ध सघर्ष मे अपनी जान देकर इसे प्रमाणित किया। पूर्वी जर्मनी के लगभग चालीस लाख लोगो ने, जिनमे से अधिकांश की आयु तीस वर्ष से कम है, पश्चिम मे सुरक्षा और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अपने घरों को छोड़कर इसका प्रमाण दिया है।

यद्यपि हमे कभी भी सोवियत सघ की भौतिक और सैन्य शक्ति को कम नहीं समझना चाहिए, किन्तु रूस की आर्थिक और राजनीतिक कार्यवाही यूरोप में असफल रही है, सुदूर पूर्व मे असफल रही है, मध्य-पूर्व में असफल रही है, और अफ्रीका में असफल रही है। एकमात्र क्यूबा के अपवाद को छोड़कर यह लातिन अमरीका मे भी असफल रही है।

मेरा कहना है कि शीत युद्ध मे सोवियत रूस की जीत नही, हार होती रही है।

सैंतालीस

साम्यवादी विचार-दर्शन की क्षीणता

इस विचारोत्तेजक लेख में श्री बोल्स का कथन है कि राष्ट्रीयता की शक्ति और पश्चिमी समाज की स्पष्ट सफलता के सामने साम्यवादी विचार का आकर्षण पुराना पड़ गया है। फॉरेन एफेयर्स, जुलाई, 1962।

साम्यवाद का अब भी दावा है कि उसकी शक्ति अनिवार्य ही सारे नए और पुराने राष्ट्रों पर छा जाने वाली है। लेकिन क्या इस तथाकथित नियति के अनुरूप उसकी शक्ति बढ़ रही है ? या कि उसने ऐतिहासिक सत्य और आधुनिक यथार्थ से अपने को असम्बद्ध कर लिया है, और उसकी प्रासंगिकता व गति दोनों ही समाप्त हो रहे हैं।

पिछले दिनों चार महाद्वीपों की यात्रा करने पर मुझे विश्वास हो गया है कि एक विचार-दर्शन के रूप में साम्यवाद की शक्ति घट रही है। साम्यवादी सिद्धान्त और आज के कठोर आर्थिक व राजनीतिक यथार्थ के बीच बढ़ते हुए अन्तर्विरोधों को अब अधिक व्यापक रूप मे समझा जा रहा है।

स्वयं सोवियत संघ मे भी व्यावहारिक परिवर्तन अब रूढ़ सिद्धान्तों में सार्वजनिक रूप मे स्वीकृत परिवर्तनों मे परिलक्षित हो रहे हैं। सीधा सा तथ्य है कि साम्यवादी सिद्धान्त ने जैसा कहा था, दुनिया उसके मुताबिक चलने से इन्कार कर रही है।

मार्क्सवादी सिद्धान्तो के अनुसार, साम्यवाद को एक अन्तर्राष्ट्रीय मशाल बनना चाहिए, जिसके चारो ओर सारी दुनिया के मजदूर वर्ग, राजनीतिक सीमाओं को तोड़ कर, एक निष्ठापूर्ण आन्दोलन में एकताबद्ध हो। अतः लेनिन को आशा थी कि सोवियत क्रांति के फलस्वरूप, पश्चिमी यूरोप के मुख्य देशों में एक के बाद एक, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाला सर्वहारा वर्ग सत्तारूढ होगा। ऐसा न होने पर उन्हें बड़ी निराशा हुई।

जब स्टालिन ने विश्व क्रांति से ध्यान हटाकर 'एक देश में समाजवाद' पर लगाया, तो वे मुख्यतः एक रक्षात्मक चाल चल रहे थे, ताकि विश्व प्रभुत्व की दिशा में जो भी अगला कदम व्यावहारिक हो, उसकी तैयारी के लिए सोवियत संघ को पर्याप्त समय और साधन मिल सकें।

पाँच वर्ष पहले, हंगरी के पचीस हजार नौजवानों ने बुडापेस्ट की सड़कों पर सोवियत टैंकों के विरुद्ध संघर्ष में अपनी जान देकर इसे प्रमाणित किया। पूर्वी जर्मनी के लगभग चालीस लाख लोगों ने, जिनमें से अधिकांश की आयु तीस वर्ष से कम है, पश्चिम में सुरक्षा और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपने घरों को छोड़कर इसका प्रमाण दिया है।

यद्यपि हमें कभी भी सोवियत संघ की भौतिक और सैन्य शक्ति को कम नहीं समझना चाहिए, किन्तु रूस की आर्थिक और राजनीतिक कार्यवाही यूरोप में असफल रही है, सुदूर पूर्व में असफल रही है, मध्य-पूर्व में असफल रही है, और अफ्रीका में असफल रही है। एकमात्र क्यूबा के अपवाद को छोड़कर यह लातिन अमरीका में भी असफल रही है।

मेरा कहना है कि शीत युद्ध में सोवियत रूस की जीत नहीं, हार होती रही है।

सैंतालीस

साम्यवादी विचार-दर्शन की क्षीणता

इस विचारोत्तेजक लेख में श्री बौल्स का कथन है कि राष्ट्रीयता की शक्ति और पश्चिमी समाज की स्पष्ट सफलता के सामने साम्यवादी विचार का आकर्षण पुराना पड़ गया है। फॉरेन एफेयर्स, जुलाई, 1962।

साम्यवाद का अब भी दावा है कि उसकी शक्ति अनिवार्य ही सारे नए और पुराने राष्ट्रों पर छा जाने वाली है। लेकिन क्या इस तथाकथित नियति के अनुरूप उसकी शक्ति बढ़ रही है? या कि उसने ऐतिहासिक सत्य और आधुनिक यथार्थ से अपने को असम्बद्ध कर लिया है, और उसकी प्रासंगिकता व गति दोनों ही समाप्त हो रहे हैं।

पिछले दिनों चार महाद्वीपों की यात्रा करने पर मुझे विश्वास हो गया है कि एक विचार-दर्शन के रूप में साम्यवाद की शक्ति घट रही है। साम्यवादी सिद्धान्त और आज के कठोर आर्थिक व राजनीतिक यथार्थ के बीच बढ़ते हुए अन्तर्विरोधों को अब अधिक व्यापक रूप में समझा जा रहा है।

स्वयं सोवियत संघ में भी व्यावहारिक परिवर्तन अब रूढ़ सिद्धान्तों में सार्वजनिक रूप में स्वीकृत परिवर्तनों में परिलक्षित हो रहे हैं। सीधा सा तथ्य है कि साम्यवादी सिद्धान्त ने जैसा कहा था, दुनिया उसके मुताबिक चलने से इन्कार कर रही है।

मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार, साम्यवाद को एक अन्तर्राष्ट्रीय मशाल बनना चाहिए, जिनके चारों ओर सारी दुनिया के मजदूर वर्ग, राजनीतिक सीमाओं को तोड़ कर, एक निष्ठापूर्ण आन्दोलन में एकताबद्ध हों। अतः लेनिन को आशा थी कि सोवियत क्रांति के फलस्वरूप, पश्चिमी यूरोप के मुख्य देशों में एक के बाद एक, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाला सर्वहारा वर्ग सत्तारूढ़ होगा। ऐसा न होने पर उन्हें बड़ी निराशा हुई।

जब स्टालिन ने विश्व क्रांति से ध्यान हटाकर 'एक देश में समाजवाद' पर लगाया, तो वे मुख्यतः एक रक्षात्मक चाल चल रहे थे, ताकि विश्व प्रभुत्व की दिशा में जो भी अगला कदम व्यावहारिक हो, उसकी तैयारी के लिए सोवियत संघ को पर्याप्त समय और साधन मिल सकें।

समय आया दूसरे महायुद्ध के बाद, जब लाल सेनाओं ने पूर्वी यूरोप पर अधिकार कर लिया। साधनों का विकास सोवियत संघ में शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ा कर, और औद्योगिक विकास के द्वारा किया गया था। लगभग तत्काल ही, युद्ध-पीड़ित पश्चिमी यूरोप पर साम्यवादी दबाव का अनुभव किया जाने लगा। यहाँ फिर सोवियत योजनाएँ आगे नहीं बढ़ सकीं, इस बार इस कारण की मार्शल योजना की सहायता, और उत्तरी अटलांटिक संधि द्वारा रक्षित, यूरोपीय राष्ट्रों ने तेजी से अपना आर्थिक पुन. निर्माण कर लिया।

तब स्टालिन एशिया और अफ्रीका की ओर मुड़े। 1948 में, अनोखी और बहुत दिनों से विकसित हो रही चीनी साम्यवादी क्रांति के अतिरिक्त, दस देशों में साम्यवादी नेतृत्व में क्रान्तियाँ आरम्भ की गईं। हाल ही में स्वतन्त्र हुए भारत, इन्डोनीशिया, ब्रह्मा, मलय और फिलीपीन में ये क्रांतियाँ असफल हुईं। केवल हिन्द-चीन में ही, जहाँ फ्रांसीसियों ने एक असंभव औपनिवेशिक स्थिति को क़ायम रखने की चेष्टा की, साम्यवादियों को काफी बड़ी सफलता मिली।

तब से, एशिया और अफ्रीका में साम्यवादी प्रगति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ बहुगुणित हो गई हैं। इसके प्रमाण साम्यवादी प्रचार के अन्तर्विरोधों में, मास्को और बहुतेरे स्थानीय साम्यवादी दलों के बीच मतभेदों में, स्थानीय दलों में पड़ने वाली फूट में, और सन्तोषजनक कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा में मास्को की नीतियों में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों और प्रयोगों में दिखाई देते हैं।

इस साम्यवादी अभियान का एक विशिष्ट पहलू यह है कि उसके प्रचारक साम्यवाद के कथित सामाजिक या आर्थिक गुणों का सहारा लेने से हिचकते हैं। इसके बजाए, वे साम्यवाद को राष्ट्रवादी शक्तियों के एक मित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसके फलस्वरूप काफी सैद्धान्तिक विभ्रम उत्पन्न होता है। एक तो पूर्वी यूरोप के पिछलग्गू देशों में सोवियत संघ की राष्ट्रीयता-विरोधी नीतियाँ अब सुविदित हो गई हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रवाद का मौखिक समर्थन करके सोवियत रूस एक ऐसी शक्ति का समर्थन कर रहा है, जिसका न केवल साम्यवादी सिद्धान्त से बल्कि रूस के अपने दीर्घकालीन लक्ष्यों से कोई मेल नहीं है।

उदाहरण के लिए, आज दक्षिणी वियतनाम में, साम्यवादी प्रचार मार्क्सवादी शब्दावली में 'सर्वहारा' और 'मेहनतकश जनता' से विद्रोह की अपील करने के बजाए गोरे विदेशियों के हस्तक्षेप के विरुद्ध चेतावनी देना अधिक प्रभावकारी पाता है।

अन्य देशों में, ऐसा लगता है कि साम्यवाद के गुणों की प्रशंसा करने वाला प्रचार निश्चित रूप से हानिकारक समझा जाता है, और इस कारण, परम्परागत रूसी लक्ष्यों की अधिक प्रभावकारी रूप में आगे बढ़ाने के लिए, ऐसा प्रचार बिलकुल नहीं किया जाता।

उदाहरण के लिए, अफगानिस्तान में कोई साम्यवादी इश्तहार, प्रदर्शन या नारे कोई भी प्रत्यक्ष साम्यवादी प्रचार देखा या सुना नहीं जा सकता। मार्क्सवादी परम्परा

के अनुसार छात्रों, मजदूरों या किसानों को अफगान शाही परिवार के विरुद्ध भड़काने के बजाए, कम से कम फिलहाल, सोवियत नीति शासक और शासित दोनों को यह समझाने की प्रतीत होती है कि अफगानिस्तान को शीघ्रता से बीसवीं सदी में लाने का सर्वोत्तम उपाय पड़ोसी सोवियत संघ से आर्थिक सहायता और प्राविधिक मार्ग-दर्शन प्राप्त करना है—जिसके सैद्धान्तिक प्रभावों से मुक्त होने का दावा किया जाता है।

सोवियत नीति और साम्यवादी सिद्धान्त के बीच पूर्ण विरोध कई अन्य स्थानों पर दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, अल्जीरिया में, केवल रूस के राष्ट्रीय हितों के कारण, सोवियत संघ दिगाल सरकार को खुश रखने को इतना उत्सुक था, कि युद्ध-विराम के बाद तक अल्जीरिया की अस्थायी सरकार को मान्यता न देकर उसने एक सुनहरी सैद्धान्तिक अवसर खो दिया।

इसी प्रकार, मध्य-पूर्व के तेल-उत्पादक राज्यों में साम्यवादी आन्दोलन पर इसके विपरीत प्रभाव की ओर ध्यान दिए बिना, सोवियत संघ तेज़ी के साथ अपने तेल को, जहाँ भी बाज़ार मिले वहाँ बेच रहा है।

इस बीच, पैंतालीस देशों में साम्यवादी दलों को सरकारी आदेश या कानून द्वारा दबा दिया गया है। इसमें अफ्रीका के बहुतेरे नये राष्ट्र नहीं आते, जिनमें साम्यवादी दलों का निर्माण ही नहीं हो सका है। इस समय केवल दो अफ्रीकी राज्यों में साम्यवादी दल क़ानूनी रीति से काम कर रहा है—ट्यूनिसिया, जहाँ वह महत्त्वहीन है, और मडागास्कर, जहाँ साम्यवादी अपने को 'टीटोवादी' कहते हैं।

साम्यवादियों के बहुतेरे रूपों में से जहाँ किसी रूप को सहन भी किया जाता है, वहाँ उनका प्रभाव आम तौर पर सीमित रहा है। जहाँ वे अन्य दलों में शामिल हो गए हैं, वहाँ उन्होंने अपना व्यक्तित्व खो दिया है। जहाँ शामिल नहीं हुए, वहाँ उन्होंने बहुधा अपने को जेल में पाया है।

अपेक्षतया वर्गविहीन और अत्यधिक राष्ट्रवादी नए अफ्रीकी समाजों में साम्यवादी विचार-दर्शन के सामने जो कठिनाइयाँ आती हैं, गिनी उनका एक उदाहरण है। एक दलीय गिनी राज्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए, साम्यवादियों को अपने हितों को शासन के गतिशील राष्ट्रवादी लक्ष्यों के अधीन रखना पड़ा। पिछले दिसम्बर मास में जब उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो सोवियत राजदूत से कहा गया कि वे देश छोड़ दें।

हिन्दुस्तान में साम्यवादी दल पर क़ानूनी रोक नहीं है, लेकिन संगठन में फैली हुई अव्यवस्था में वही द्विविधा परिलक्षित होती है, जो अन्य कई विकासशील राष्ट्रों में साम्यवादियों के सामने आती है। अपनी मतशक्ति को कायम रखने के लिए, साम्यवादियों को अपनी सैद्धान्तिक अपील को गौण स्थान देकर, गोआ और काश्मीर जैसे राष्ट्रवादी लक्ष्यों के समर्थन पर जोर देना पड़ता है। दल के अन्दर भी मास्को-समर्थक और पीकिंग-समर्थक गुट तीव्र और विध्वंसात्मक सैद्धान्तिक लड़ाई में लगे हुए हैं।

विकासशील राष्ट्रों में आज शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसमें साम्यवादी

प्रमुख और प्रत्यक्ष रूप में सोवियत लक्ष्यों के एजेण्ट का कार्य कर रहा हो। जहाँ इसे दबा नहीं दिया गया है, या जहाँ उसे महत्त्वहीन मानकर इसकी उपेक्षा नहीं की गई है, वहाँ यह भटकाव और शरारत के उपेक्षणीय कार्य कर रहा है।

इंडोनीसिया एक महत्त्वपूर्ण अपवाद है, जहाँ साम्यवादी दल सोवियत गुट के बाहर सबसे बड़ा है। किन्तु वहाँ भी साम्यवादी दल की शक्ति का एक बड़ा कारण यह है कि इंडोनीसियाई राजनीति में बचे हुए एकमात्र औपनिवेशिक प्रश्न, पश्चिम न्यूगिनी के सवाल पर उसने अपने आपको राष्ट्रवादी शक्तियों के साथ सम्बद्ध कर लिया है। अगर इस प्रश्न का हल शांतिपूर्वक किया जा सके, और आर्थिक विकास के लिए सघन प्रयास किया जाय, तो आशा की जा सकती है कि इंडोनीसिया में साम्यवाद की शक्ति घटेगी।

× × ×

जब सोवियत संघ ने देखा कि नए विकासशील राष्ट्रों में साम्यवादी सिद्धान्त का आकर्षण कम होता जा रहा है, तो उसने राजनीतिक प्रसार के दो अन्य हथियारों का अधिकाधिक प्रयोग करना आरम्भ किया है—विध्वंसक कार्यवाहियाँ, और विदेशी सहायता।

दक्षिणी वियतनाम और लाओस में भौगोलिक स्थिति साम्यवादी घुसपैठ और विध्वंसक कार्यवाही के लिए सर्वथा अनुकूल थी। लेकिन ऐसी स्थितियों में, जहाँ प्रत्यक्ष साम्यवादी दबाव उस तरह संभव नहीं था, मास्को और पीकिंग दोनों के ही विध्वंसात्मक प्रयत्नों ने आम तौर पर जनता में अरुचि या विरोध उत्पन्न किया है, और कई मामलों में इसके फलस्वरूप प्रभावकारी रीति से सरकारी प्रतिकारात्मक कार्यवाही हुई।

पिछले दिनों लातिन अमरीका की यात्राओं में मैंने विशेष रूप से यह बात देखी। बड़ी रक़में खर्च करने, और जासूसी, प्रचार, तथा आन्दोलन करने के बड़े प्रयत्नों के बावजूद, या शायद इसके कारण ही, कास्ट्रो (क्यूबा) के साथ अब तक चौदह लातिन अमरीकी राष्ट्र कूटनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके हैं। कम से कम आंशिक रूप में क्यूबा के बाहर अपनी राजनीतिक गलतियों का प्रतिकार करने के प्रयत्न में उन्होंने पिछले दिनों स्वयं अपने देश में अधिक मताग्रहपूर्ण साम्यवादी तत्वों का परित्याग किया है।

अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के दूसरे साधन के रूप में, साम्यवादी सरकारों ने विदेशी सहायता के कार्यक्रम अधिकाधिक अपनाए हैं। 1955 से 1961 तक रूस-चीन गुट ने, लौह आवरण के बाहर अट्ठाइस राष्ट्रों को लगभग चार अरब चालीस करोड़ डालर आर्थिक अनुदान या कर्ज के रूप में, अधिकांश क़र्ज के रूप में, दिए हैं। इसका लगभग तीन-चौथाई सोवियत संघ ने दिया। 1961 के अन्त में, साम्यवादी गुट के लगभग 8,500 वैज्ञानिक विभिन्न स्थानों पर काम कर रहे थे।

कई मामलों में यह सहायता ऐसे राष्ट्रों को दी गई है, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप में

साम्यवाद-विरोधी नीतियाँ अपनाई हैं। अमरीकी और यूरोपीय विदेशी सहायता कार्यक्रमों की काट करने में इस प्रयास का राजनीतिक महत्त्व चाहे जो भी हो, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की धारणाओं से इसका कोई सैद्धान्तिक सम्बन्ध नहीं।

शस्त्र नियंत्रण के निर्णायक प्रश्न पर भी, साम्यवादी सिद्धान्त का रूसी राष्ट्रवाद के स्वीकृत हितों के साथ टकराव हुआ है।

मार्क्स के अनुसार, पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाओं को युद्ध या युद्ध का खतरा जीवित रखता है। अगर सोवियत नेतृत्व सचमुच अपने इस सिद्धान्त में विश्वास करता, तो वह हथियारों के बोझ को कम करने के लिए एक सशक्त और यथार्थपरक कार्यक्रम चलाता, और उसे यह विश्वास रहता कि अगर अमरीका अपने प्रतिरक्षा बजट में कमी करना स्वीकार कर लेगा तो वहाँ बेकारी क़ाबू से बाहर हो जाएगी, और अगर अस्वीकार करेगा तो सारा विश्व एकमत से उससे रुष्ट हो जाएगा। किन्तु गोपनीयता की परम्परागत रूसी राष्ट्रवादी भावना के कारण, मास्को निरीक्षण के सिद्धान्त के किसी व्यावहारिक रूप को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, जिसके द्वारा, कार्ल मार्क्स के बावजूद, शस्त्र नियंत्रण को वास्तविक बनाया जा सकता है।

मैंने जो उदाहरण दिए हैं, उनसे पता चलता है कि साम्यवादी प्रचार हो या राजनीतिक कार्यवाही, विध्वंसात्मक कार्यवाही हो या विदेशी सहायता, साम्यवादी सिद्धान्त या तो सोवियत विदेश नीति के लिए व्यर्थ रहा है, या उसके कार्य में बाधक। इनसे यह भी देखा जा सकता है कि सोवियत रूस ने जहाँ अपने अनुभव से, व्यावहारिक यथार्थ को देखते हुए, इस या उस चाल या पैंतरे को वांछनीय या आवश्यक पाया है, वहाँ इसके फलस्वरूप, सोवियत सिद्धान्त विकृत या विभ्रमपूर्ण हो गए हैं, या कई मामलों में उनकी पूर्ण उपेक्षा की गई है।

साम्यवादी सिद्धान्त अपने अनुयायी राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधे रखने में भी विश्वसनीय सिद्ध नहीं हुए। वस्तुतः, ऐसा कहा जा सकता है कि साम्यवादी सिद्धान्त का बड़ा महत्त्व इस समय साम्यवादी गुट के अन्दर चल रहे विवादों में ही है—सबसे अधिक, निस्सन्देह, मास्को और पीकिंग के सैद्धान्तिक विवादों में। ये विवाद, एक अकेली राजनीतिक और आर्थिक रूढ़ि के समूचे मार्क्सवादी विचार को क्षति पहुँचाते हैं, और मास्को द्वारा सोवियत संघ के विशिष्ट अनुभव और राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार उसकी व्याख्या करने के प्रयत्नों को असफल बनाते हैं।

स्वयं राष्ट्रवाद, वर्गों पर आधारित विश्व की मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणाओं के विरुद्ध है, क्योंकि इसके अनुसार अर्थ-व्यवस्था और इतिहास के तथाकथित अनिवार्य प्रवाह परिवर्तन का आधार नहीं रह जाते, वरन् परिवर्तन किसी एक विशिष्ट व्यक्ति, या व्यक्तियों के समूह की व्याख्याओं और आवश्यकताओं पर आधारित हो जाता है। लेकिन मास्को, पीकिंग, बेलग्राड, तिराना, और पूर्वी यूरोप की पिछलग्गू राजधानियों की असहमति में राष्ट्रवाद का तत्व प्रमुख रूप में विद्यमान है।

इतना कुछ दाँव पर लगा होने के बावजूद, साम्यवादी राष्ट्र एक संयुक्त मोर्चा

बनाकर कायम नहीं रख सकते, यह तथ्य न केवल 'साम्यवादी खेमे' के रूप में उनके राजनीतिक भविष्य को प्रभावित करता है, वरन् इस खेमे की तथाकथित अविचल एकता के फलस्वरूप दुनिया में मार्क्सवादी विचारों की जो शक्ति मानी जाती है, उसे भी प्रभावित करता है।

मेरा विचार है कि आधुनिक विश्व की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में, साम्यवादी सिद्धान्त का ह्रास हो रहा है, और स्वयं साम्यवादियों के लिए, एक राजनीतिक औजार के रूप में, सभी आर्थिक रोगों के इलाज के रूप में, और एक कूटनीतिक उपकरण के रूप में इसका मूल्य घटता जा रहा है।

यद्यपि आगे चलकर इससे हमें लाभ हो सकता है, लेकिन मैं अधिक से अधिक जोर देकर कहना चाहूँगा कि अमरीकी लोगों और उनके नीति-निर्माताओं के समक्ष सोवियत संघ जो तात्कालिक चुनौती प्रस्तुत करता है, वह इससे किसी प्रकार कम नहीं होती।

स्वयं अपने मताग्रहों से अधिकाधिक मुक्त होने पर, सोवियत नेताओं को प्रेरणा हो सकती है कि अपनी विशाल शक्तियों का प्रयोग अधिक रचनात्मक रीति से करें। अथवा, इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि स्वयं सोवियत संघ के अन्दर आस्था का एक संकट उत्पन्न हो जाय, 'श्रद्धालुओं' और 'यथार्थवादियों, में टकराव हो। इससे साम्यवादी जगत में ऐसी निराशाएँ और विरोध-भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिनके परिणाम विश्व-शांति के लिए खतरनाक हो सकते हैं।

हम केवल यह आशा कर सकते हैं कि साम्यवादी देशों में मताग्रही कट्टरता के कम होने का, और उसके स्थान पर राष्ट्रवादी लक्ष्यों के आने का यह परिणाम नहीं होगा, बल्कि इसके विपरीत किसी समय इसके फलस्वरूप हमारे साथ और हमारे मित्रों के साथ सफल वार्त्ता और शांतिपूर्ण समझौते के लिए नए आधार उपलब्ध होंगे।

यह प्रश्न रह जाता है कि स्वयं अमरीका की स्थिति क्या है? अगर यह सच भी है कि एक विश्व सिद्धान्त के रूप में, साम्यवाद का महत्त्व बहुत-कुछ समाप्त हो रहा है, तो भी हमारे बाद आने वाली पीढ़ियों के लिए इसका महत्त्व बहुत अधिक नहीं होगा, अगर उस लोकतांत्रिक आस्था को हम भविष्य के लिए अर्थमय नहीं बना पाते, जिस पर आचरण करना हमारा लक्ष्य है।

अगर ऐसा होता है, तो अमरीकी लोगों को एक ऐसी भूमिका अपनानी होगी, जो मनुष्य-जाति के लम्बे इतिहास में अभी तक किसी समृद्ध और सशक्त राष्ट्र ने नहीं अपनायी। अमरीका को उस सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक क्रान्ति से अपने-आप को जोड़ना होगा, जो दुनिया के सभी हिस्सों में अब करोड़ों व्यक्तियों की जिन्दगी को बदलने लगी है।

हम ऐसी भूमिका अदा कर सकें, इसके मार्ग में बाधाएँ बहुत बड़ी हैं। लेकिन हमारे लिए और मनुष्य जाति के लिए उसमें निहित संभावनाएँ लगभग असीमित हैं।

अड़तालीस

साम्यवादी जगत को हम से अलग करने वाली तीन सीमाएँ

सैन्य सीमाओं को सुरक्षित रखने की अपनी शक्ति को क़ायम रखते हुए, श्री बोल्स आर्थिक और सांस्कृतिक सीमाओं में 'अधिकतम कठोरता' के स्थान पर 'अधिकतम लचीलेपन' की नीति का समर्थन करते हैं। 21 जून, 1962, को नेब्रास्का विश्वविद्यालय में दिया गया भाषण।

आज अमरीका में क्या विदेश-नीति सम्बन्धी कोई राष्ट्रीय सहमति है ? मेरा विश्वास है कि विदेश-नीति के तीन महत्त्वपूर्ण पक्षों के सम्बन्ध में ऐसी सहमति मौजूद है :

1. सशक्त सैन्य बल की आवश्यकता, और आक्रमण का विरोध करने के लिए आवश्यक होने पर उसका प्रयोग करने का संकल्प।

2. यह तथ्य कि अणु-अस्त्रों ने सैन्य स्थिति को एक नया रूप प्रदान किया है, और यह कि युद्ध होने पर वह शीघ्र ही एक-दूसरे के सम्पूर्ण विनाश का कार्य बन जा सकता है।

3. उन राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का महत्त्व जिन्होंने बीस वर्षों से भी कम समय में दुनिया के नक्शों को इतनी नाटकीय रीति से बदल दिया है, और एशिया अफ्रीका के करोड़ों निवासियों की ज़िन्दगियाँ बदल दी हैं।

हमारे अन्दर जो मतभेद शेष रह जाते हैं, वे पद्धति और प्राथमिकता सम्बन्धी हैं, विशिष्ट रूप से, तटस्थ राष्ट्रों और साम्यवादी राष्ट्रों के साथ हमारे सम्बन्धों के प्रसंग में। इन मतभेदों पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए, ताकि हम अन्तर को मिटा सकें, और राष्ट्रीय सहमति का एक ढाँचा बना सकें, जिसके अन्तर्गत हमारा शासन विश्वास कर सके।

इन प्रश्नों के प्रति अधिकांश अमरीकियों के दृष्टिकोण दो समूहों में रखे जा सकते हैं। दोनों ही एक शांतिपूर्ण, अधिक व्यवस्थित विश्व में विश्वास करते हैं, दोनों ही जानते हैं कि कोई सरल उपाय उपलब्ध नहीं है, लेकिन अमरीकी विदेश-नीति के असैनिक पहलुओं के बारे में उनके दृष्टिकोणों में बड़ी भिन्नता है।

उस प्रसंग में ऐसा कहा जा सकता है कि एक समूह 'अधिकतम कठोरता' की नीति का समर्थक है, और दूसरा 'अधिकतम लचीलेपन' की नीति का।

'अधिकतम कठोरता' का समर्थन करने वाले, सार रूप में, इस पुराने सूत्र को मानते है कि जो हमारे साथ नही, वह हमारे विरुद्ध है। उनका विश्वास है कि संघर्ष की रेखाएँ हर जगह बहुत साफ़ खींची जानी चाहिए। उनका मत है कि जो लोग दुनिया की हमारी व्याख्या से सहमत नही हैं, उनके साथ सहयोग करने का कोई आधार नही है, और अन्ततः दुनिया पर या तो साम्यवादी पक्ष का प्रभुत्व होगा, या लोकतांत्रिक पक्ष का।

विदेश-नीति के विशिष्ट प्रश्नो पर 'अधिकतम कठोरता' के दृष्टिकोण को लागू करने के उदाहरण पिछले दिनो अमरीकी सीनेट की कार्यवाहियो में देखे जा सकते हैं, जब उसने पहले हिन्दुस्तान को दी जाने वाली सहायता घटाने के पक्ष में और फिर पोलैण्ड व यूगोस्लाविया को दी जाने वाली अमरीकी सहायता को समाप्त करने के पक्ष मे मतदान किया। यद्यपि बाद मे बातचीत के फलस्वरूप विधेयक से ये व्यवस्थाएँ निकाल दी गईं, किन्तु सीनेट की कार्यवाही से पता चलता है कि यह विचारधारा कितनी व्यापक है।

इसके विरुद्ध 'अधिकतम लचीलेपन' की नीति के समर्थक इस बात पर जोर देते हैं कि साम्यवादी जगत मे शक्तियों का सन्तुलन निरन्तर बदल रहा है, और यह परिवर्तन हर देश के अन्दर और एक-दूसरे के साथ उनके सम्बन्धों में परिवर्तन के लिए अधिकाधिक दबाव उत्पन्न करता है। उनका विश्वास है कि इस प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना हमारी नीतियो का लक्ष्य होना चाहिए।

कठोर सैन्य आवश्यकताओ को समझते हुए भी, 'शक्ति' की उनकी परिभाषा में सैनिक हथियार और औद्योगिक क्षमता के अलावा, लोग और उनको प्रभावित करने वाले विचार भी शामिल हैं। इस प्रकार, वे न्याय, प्रतिष्ठा, और प्रगति की आकांक्षाओं को विशेष महत्त्व देते हैं, जो विकासशील राष्ट्रों के विचारों और नीतियों को निर्धारित करती हैं।

इस पृष्ठभूमि में हम कठोरता और लचीलेपन के इन दो दृष्टिकोणों की जाँच करें कि साम्यवादी हितो और हमारे हितो के बीच जो तीन सैनिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सीमाएँ हैं, उन्हें ये दृष्टिकोण किस तरह प्रभावित करते हैं।

यद्यपि इन तीन सीमाओ के स्वरूप और महत्त्व मे बड़ा अंतर है, किन्तु 'अधिकतम कठोरता' के समर्थक अधिकांश इन अन्तरो की उपेक्षा करते हैं। उनके विचार से हर सीमा एक ऐसी रेखा है जिसे हमको न केवल टैंको के विरुद्ध बल्कि व्यापार, सहायता, लोगों और विचारो के विरुद्ध भी कठोरता से कायम रखना है।

इसके विपरीत, 'अधिकतम लचीलेपन' के समर्थकों का विश्वास है कि अणु युग मे इन तीन सीमाओ के अन्तरो का एक प्रभावकारी विदेश-नीति मे निर्णायक महत्त्व है। ये अन्तर क्या हैं?

सैन्य सीमा बाल्टिक से लेकर लौह आवरण के साथ-साथ बास्फोरस तक जाती है, जहाँ सोवियत संघ और उत्तरी अटलांटिक संधि की सेनाएँ, टैंक और वायुयान,

कँटीले तारों, सन्तरी-चौकियों और सुरंग लगे हुए इलाकों की पंक्ति के आर-पार एक दूसरे के आमने-सामने पड़े हैं।

मध्य-क्षेत्रीय संधि, दक्षिण-पूर्वी एशिया संधि और अन्य विभिन्न बहुपक्षीय और द्विपक्षीय सैन्य संधियों से होती हुई यह सीमा न्यूनाधिक प्रभावकारिता के साथ दक्षिण चीन सागर तक फैली है।। सेनाओं और संधियों के इस संगठन के पीछे दोनों विरोधी शक्ति-गुटों की भयंकर आण्विक क्षमता है।

इस सैन्य सीमा के सम्बन्ध में, हमारी विदेश-नीति की राष्ट्रीय सहमति स्पष्टतः प्रतिष्ठित है। 'अधिकतम कठोरता' व 'अधिकतम लचीलापन' दोनों ही धाराएँ इस बात पर सहमत हैं कि सशस्त्र आक्रमण या आक्रमण की धमकी के सामने दुर्बलता दिखाने से आक्रमण और बढ़ता है, और इस कारण इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

लेकिन यहाँ आकर सहमति अचानक समाप्त हो जाती है। कठोर दृष्टिकोण के समर्थक आर्थिक सीमा के सम्बन्ध में भी सैन्य सीमा जैसी अपरिवर्त्तनीयता अपनाना चाहेंगे। वे न केवल सेनाओं के लिए, वरन् व्यापार, वैज्ञानिकों, और पूँजी के लिए भी दीवार खड़ी करना चाहेंगे।

अधिक लचीलेपन के समर्थक इससे सहमत नहीं हैं। वे आर्थिक सीमा को साहस, कौशल और स्फूर्त्ति के लिए एक अवसर मानते हैं।

युगोस्लाविया को आर्थिक सहायता देने के प्रश्न पर दोनों धाराओं के मतभेद से उनके दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाते हैं। कठोर दृष्टिकोण के समर्थक मानते हैं कि इस सहायता ने केवल एक संभाव्य शत्रु को शक्ति प्रदान की है। अधिकतम लचीलेपन की नीति के समर्थक समझते हैं कि यह सहायता बुद्धिमत्तापूर्ण और फलदायक रही है।

हम 1948 के आरम्भ मे जो स्थिति थी, उस पर संक्षेप में विचार करें, जब सर्वप्रथम युगोस्लाविया के प्रश्न पर चर्चा शुरू हुई।

उस समय यूनान में गृह-युद्ध पूरी रफ्तार से चल रहा था, और सोवियत-निर्देशित साम्यवादी छापामार दक्षिणी युगोस्लाविया के अड्डों से यूनानी लोकतंत्र को नष्ट करने की पूरी कोशिश कर रहे थे।

इटली मे एक कटुतापूर्ण चुनाव अभियान अपने चरम-बिन्दु पर पहुँच रहा था। व्यापक गरीबी, युद्ध की थकान, और राजनीतिक निराशा के फलस्वरूप, बहुतेरे प्रेक्षकों को भय था कि स्वतंत्र चुनावों के इतिहास में साम्यवादियो को शायद अपनी पहली सच्ची सफलता प्राप्त हो। दुनिया के दूसरे कोने में, चीन के गृह-युद्ध में, लगता था कि साम्यवादियों को शीघ्र ही शानदार सफलता मिलेगी।

इस प्रकार, फ्रांस की सीमाओं से लेकर जापान सागर तक फैले हुए एकात्मक साम्यवादी साम्राज्य की संभावना हमारे सामने थी। ऐसा होने पर यूरोप के युद्ध-विनष्ट राष्ट्रों पर, और एशिया के हाल ही मे स्वतंत्र हुए राष्ट्रों पर उसका कल्पनातीत प्रभाव पड़ता।

इस महत्त्वपूर्ण वर्ष के फरवरी और मार्च महीनो में स्टालिन के साथ टीटो की बहुत दिनो से चली आ रही असहमतियाँ पहली बार व्यक्त हुई। जून मे युगोस्लाविया ने साहसपूर्वक सोवियत नियंत्रण से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी, और सहायता के लिए हमसे अपील की।

इससे राष्ट्रपति ट्रुमन, और आर्थर वान्डेनबर्ग के नेतृत्व मे रिपब्लिकन दल के बहुमत वाली कांग्रेस के सामने ऐतिहासिक महत्त्व की एक द्विविधा आई। युद्ध-काल मे युगोस्लाव लोगो ने दृढ़ता के साथ लगभग तीस नाजी डिवीजन फँसा रखे थे। किन्तु उसके बाद युगोस्लाविया साम्यवादी गुट के अति पश्चिम-विरोधी सदस्यो मे से एक रहा था, और अमरीकी जनमत उसके प्रति अधिकाधिक कटु हो गया था।

लेकिन अगर हम राष्ट्रीय स्वाधीनता की स्थापना के नए प्रयास मे टीटो का समर्थन न करते, तो युगोस्लाविया को मजबूरन स्टालिनी गुट मे वापस जाना पड़ता, और साम्यवादी साम्राज्य मे पड़ी पहली दरार पट जाती।

बड़े विचार-विमर्श के बाद, एक द्विपक्षीय समझौता हो गया कि युगोस्लाव स्वतन्त्रता का सक्रिय समर्थन करने मे अमरीका का सर्वाधिक हित है। शीघ्र ही काफी मात्रा मे सैन्य और आर्थिक सामग्री रवाना कर दी गई। 1952 में अपने चुनावों के बाद, राष्ट्रपति आइज़न हॉवर ने इस नीति को जारी रखने का इरादा व्यक्त किया। आठ वर्ष बाद राष्ट्रपति केनेडी ने भी ऐसा ही किया।

इस सहायता कार्यक्रम के तात्कालिक परिणाम नाटकीय रूप से अनुकूल सिद्ध हुए। अप्रैल, 1948 में, युगोस्लाविया के अलग होने की अफवाहों से प्रोत्साहित होकर, इटली मे लोकतांत्रिक शक्तियों ने चुनावों में निर्णायक विजय प्राप्त की। एक वर्ष बाद, युगोस्लाविया में उनके पुराने अड्डों के खतम हो जाने पर, यूनान में साम्यवादी छापामारों पर काबू पा लिया गया।

तब से, स्वयं युगोस्लाविया के अन्दर काफी बड़े परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए, रूसी क़िस्म के सामूहिक खेतों का आम तौर पर परित्याग कर दिया गया है। दस किसानों में से नौ, अब खुद अपने खेतों के मालिक हैं। औद्योगिक विकास-संबंधी साम्यवादी मताग्रह को बड़ी हद तक संशोधित किया गया है। अब युगोस्लाविया के वैदेशिक व्यापार का सत्तर प्रतिशत अ-साम्यवादी देशों के साथ है। इसके फलस्वरूप विदेशों में कुछ लोगों ने मज़ाक में यह भी कहा कि, "केवल युगोस्लाव और अमरीकी लोग ही अब भी ऐसा समझते हैं कि युगोस्लाविया एक साम्यवादी राज्य है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ में युगोस्लाविया अब भी बहु-संख्यक अवसरों पर सोवियत संघ के साथ मतदान करता है। उसके नेता बहुधा ऐसे दृष्टिकोण अपनाते है, जिनसे अधिकांश अमरीकी सर्वथा असहमत होते हैं।

फिर भी, युगोस्लाविया को सोवियत रूस का पिछलग्गू नहीं कहा जा सकता। तथाकथित त्रिमूर्ति योजना के विरुद्ध एक ही प्रधान मंत्री रखने के महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर, कांगो में संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं के लिए वित्त-व्यवस्था करने के प्रश्न

पर, और पिछले अक्तूबर में रूस द्वारा पचास मेगाटन के हाइड्रोजन बम के विस्फोट के प्रश्न पर, युगोस्लाव प्रतिनिधियों ने अमरीका का समर्थन और रूस का विरोध किया। युगोस्लाविया ने साम्यवादी चीन का निरन्तर कटु विरोध किया।

युगोस्लाविया की स्वाधीनता का स्वयं साम्यवादी गुट के अन्दर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए, बहुतेरे प्रेक्षकों का विश्वास है कि भूमि के समूहीकरण जैसी बहुतेरे मताग्रही साम्यवादी पद्धतियों का परित्याग करने में पोलैण्ड को युगोस्लाविया से प्रेरणा मिली।

सोवियत रूस और पूर्वी जर्मनी में स्थित लाल सेना दस्तों के बीच फँसा हुआ पोलैण्ड विदेश-नीति के मामलों में बराबर मास्को का समर्थन करता है। फिर भी, सैन्य सीमा के पार, थोड़ी ही मात्रा में अमरीकी आर्थिक सहायता ने पोलैण्ड के लोगों में एक नयी, विश्वास और स्वतंत्रता की, भावना उत्पन्न करने में सहायता पहुँचाई है। अब पोलैण्ड के वैदेशिक व्यापार का चालीस प्रतिशत अ-साम्यवादी देशों के साथ है।

आरम्भ से ही, युगोस्लाविया में हमारे सहायता प्रयास का लक्ष्य यह रहा है कि अपने मूल निर्णय करने में वहाँ का शासन स्वतंत्र हो, और अन्य साम्यवादी राष्ट्रों में भी स्वतन्त्रता की ऐसी ही भावना को प्रोत्साहन मिले। मुझे लगता है कि आम तौर पर, हम इस लक्ष्य में सफल रहे हैं।

अब हम आर्थिक सीमा के एक अन्य महत्वपूर्ण हिस्से पर विचार करें, जिसके सम्बन्ध में दोनों विचारधाराओं में अब भी बहस चल रही है—अफ्रीका, एशिया और लातिन अमरीका के नवोदित राष्ट्र।

यहाँ 'अधिकतम कठोरता' के समर्थक उन्हीं लोगों की सहायता करना चाहेंगे, जिनकी सरकारें अमरीकी नीतियों का समर्थन करें। 'अधिकतम लचीलेपन' के समर्थकों का विश्वास है कि 'इधर या उधर' का यह दृष्टिकोण नए विकासशील राष्ट्रों को मजबूर करेगा कि वे या तो मास्को अथवा वाशिंगटन की अधीनता स्वीकार करें, या फिर अव्यवस्था और बढ़ते हुए कष्टों में पड़े रहें।

विकासशील महाद्वीपों में हमारे सामने क्या स्थिति है, इस पर विचार करने से शायद यह समस्या अधिक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य में सामने आए।

एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के उभरते हुए राष्ट्र निरक्षरता, रोग, गरीबी, और अन्याय की भयंकर समस्याओं से लड़ रहे हैं। जब तक इन राष्ट्रों के लोगों को विश्वास नहीं हो जाता कि इन बुराइयों को दूर करने की दिशा में उचित प्रगति हो रही है, तब तक व्यवस्थित राजनीतिक विकास असंभव होगा।

इन नये राष्ट्रों की सहायता करने के अमरीकी प्रयत्नों में एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका के बहुतेरे नेताओं के झगड़ालू राजनीतिक दृष्टिकोणों से दिक्कत पैदा होती है, जिन्हें पश्चिम के आर्थिक सुविधा प्राप्त या कुछ मामलों में जातीय भावना से ग्रस्त पश्चिमी राष्ट्रों के साथ उनके पुराने अनुभवों ने कटु बना दिया है।

जब ये अफ्रो-एशियाई अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ में और अन्यत्र अमरीकी नीतियों की आलोचना करते हैं, तो सम्पादकीय लेखक उन्हें 'षड्यन्त्र और साम्यवादी प्रचार के शिकार' कहते हैं, और कांग्रेस के सदस्य माँग करते हैं कि ऐसे 'असहयोगी' राष्ट्रों के साथ हमारे सहायता कार्यक्रम समाप्त कर दिये जाएँ।

यद्यपि ऐसी प्रतिक्रियाओं को हमारी अपनी परेशानियों और निराशा के सन्दर्भ में समझा जा सकता है, किन्तु इनसे हमारी दुनिया की उलझी हुई असलियतें खत्म नहीं हो जातीं।

अफ्रीका, एशिया और लातिन अमरीका के साधनों और बाजारों पर नियंत्रण करना, जिन पर पश्चिम के औद्योगिक राष्ट्र बहुत अधिक निर्भर हैं, साम्यवाद के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है। अमरीकी विदेश-नीति का एक प्राथमिक उद्देश्य इन प्रयत्नों को विफल करना, और विकासशील राष्ट्रों की सहायता करना है, जिससे वे अपनी स्वतंत्रता पूर्णतः स्थापित कर सकें, और अधिकाधिक राजनीतिक स्थायित्व और आर्थिक प्रगति प्राप्त करें।

नए राष्ट्रों को समझना हमारे लिए चाहे जितना भी कठिन प्रतीत हो, उनकी कोई इच्छा नहीं है कि अंग्रेज, फ्रांसीसी, बेल्जियन, और डच शासन के बदले में, जिससे उनमें से कई राष्ट्रों ने हाल ही में मुक्ति पाई है, वे रूस की अधिक क्रूर प्रभुता को स्वीकार कर लें। इसके अतिरिक्त, उनकी अपनी संस्कृतियाँ और इतिहास एक गहरी जमी हुई विविधता को प्रोत्साहित करते हैं, जो विदेशी दबावों और सिद्धान्तों को आसानी से स्वीकार नहीं करती।

मास्को के रणनीतिज्ञ कठोर अनुभवों से यह सीख रहे हैं कि दुनिया में सोवियत प्रभुत्व के लेनिनवादी लक्ष्य के मार्ग में, स्थानीय-विरोधी शक्तियाँ बहुत बड़ी बाधाएँ हैं।

'अधिकतम लचीलेपन' की नीति के समर्थकों का विश्वास है कि एक लचीला, सु-प्रशासित, संवेदनशील आर्थिक सहायता कार्यक्रम इन पहले से विद्यमान बाधाओं को और सबल बना सकता है। किन्तु वे इस बात पर जोर देते हैं कि इस प्रयास के उद्देश्यों और सीमाओं के बारे में हमारे दिमाग में सफाई रहनी चाहिए।

हमारा लक्ष्य विकासशील राष्ट्रों की बोलियों और नीतियों पर नियंत्रण करना, दुनिया में रूस से अधिक लोकप्रिय होना, या संयुक्त राष्ट्र संघ में वोट खरीदना नहीं है।

अमरीकी डालरों से खरीदे गए शासनों पर हमारे पक्ष में बने रहने का भरोसा उसी तरह नहीं किया जा सकता, जैसे इस तरह खरीदे गए व्यक्तियों पर। हमारे जैसे धनी राष्ट्र इसकी भी आशा नहीं कर सकते कि हमसे अधिक कम भाग्यशाली लोग हमसे प्यार करेंगे। हम अधिक से अधिक उनके आदर की अपेक्षा कर सकते हैं।

अतः, हमारे वास्तविक लक्ष्य दो होने चाहिए—प्रथम, जो विकासशील राष्ट्र स्वयं अपनी सहायता करने को उत्सुक हैं, उनमें आर्थिक प्रगति को बढ़ाने और फैलाने में सहायता करना। और दूसरे, इस काम को ऐसी रीति से करना कि उन राष्ट्रों के

लोगों को अधिक व्यापक रूप में सक्रिय भाग लेने का अवसर मिले, और राष्ट्रीय स्वतंत्रता में हर परिवार का निजी हित बढ़े।

इन दो लक्ष्यों को ध्यान में रखकर, हम कठोरता और लचीलेपन के दो विरोधी दृष्टिकोणों पर भारतीय गणराज्य के प्रसंग में विचार करें, जो नए स्वतंत्र राष्ट्रों में सबसे बड़ा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

एक दशक से अधिक समय से, हम दुनिया के दो सबसे अधिक आबादी वाले राष्ट्रों, चीन और हिन्दुस्तान में एक नाटकीय और संभावनापूर्ण घटनाक्रम देख रहे हैं। इनमें से एक तानाशाही की पद्धतियों का प्रयोग कर रहा है, और दूसरे ने लोकतन्त्र को स्वीकार किया है।

पिछले एक-दो वर्षों में नतीजे स्पष्ट हो गए हैं। जबकि हिन्दुस्तान यह प्रमाणित करता रहा है कि एक सक्षम लोकतांत्रिक शासन अधिकाधिक मात्रा में रोटी, आजादी और अवसर प्रदान कर सकता है, साम्यवादी चीन में आंतरिक कठिनाइयों की बाढ़ आ गई है।

फिर भी, आज जब कि इस स्थिति से आगे निकलने वाले नतीजों को समझा जा रहा है, 'अधिकतम कठोरता' की नीति के अमरीकी समर्थक कहते हैं कि भारत को हमारी निर्णायक महत्त्व की सहायता बड़ी हद तक कम कर दी जाय।

अधिकांश अमरीकी लोग भारत सरकार के जिन कार्यों को ग़लत समझते हैं, उनसे या दूसरों द्वारा की गई किसी भी आलोचना पर नाराज़ हो जाने की भारतीय प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाली चिढ़ के प्रसंग में इस प्रस्ताव को समझा जा सकता है। लेकिन जो लोग हमारे युग का इतिहास लिखेंगे, उन्हें यह बात सर्वथा तर्कहीन लगेगी।

इस प्रकार, साम्यवादी जगत और हमारी अपनी दुनिया के बीच आर्थिक सीमा उलझी हुई है। 'अधिकतम लचीलेपन' की नीति के अनुसार इस सीमा को खुला रख कर, हम बराबर प्रगति करते रहे हैं।

पूर्व और पश्चिम के बीच तीसरी सीमा, सांस्कृतिक सीमा के सम्बन्ध में क्या स्थिति है?

'अधिकतम कठोरता' की विचारधारा का तर्क है कि रेडियो प्रचार को छोड़कर, आर्थिक सीमा की भाँति सांस्कृतिक सीमा को भी सैन्य सीमा जैसी कठोरता से बन्द रखना चाहिए। 'अधिकतम लचीलेपन' की नीति यहाँ भी लचीलेपन, और स्वतः स्फूर्ति के पक्ष मे है। कौन-सा रास्ता अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है?

1955 में जेनेवा सम्मेलन के बाद सोवियत जगत और पश्चिमी जगत को बाँटने वाली सैन्य सीमा के आर-पार विद्वानों, छात्रों, कलाकारों, संगीतज्ञों, किसानों और वैज्ञानिकों का प्रवाह निरन्तर स्थिर गति से चलता रहा है

'अधिकतम कठोरता' के सिद्धान्त को मानने वालों को यह दुतरफी सांस्कृतिक

विनियम खतरनाक ही नहीं, अनैतिक भी प्रतीत होता है। दूसरी ओर, सम्मेलन पर आधारित कार्यक्रम के समर्थकों का कहना है कि यह जन-स्तर पर समझ को बढ़ाने में, और दोनों खेमों के नागरिकों को एक-दूसरे के बारे में अधिक स्पष्ट जानकारी प्रदान करने में सहायक हो रहा है।

उनका कहना है कि अगर कभी पूर्व और पश्चिम को अलग करने वाले संघर्ष कम हुए, तो यह उस समझ का ही फल होगा जिसे सैन्य सीमा के दोनों ओर धीरे-धीरे और कष्टप्रद रीति से विकसित किया जा रहा है।

किसी हद तक हम सब रूढ़ियों के कैदी हैं। हम एक-दूसरे को विकृत और अति सरल बिम्बों के सन्दर्भ में देखते हैं। विचारों, कलाओं, और विज्ञान के क्षेत्र में ज्यादा अच्छे सम्पर्क से इन झूठे चित्रों को सुधारने में सहायता मिल सकती है। और ज्यादा साफ देख पाने पर हम अधिक बुद्धिमत्ता से काम कर सकते हैं।

मेरे दिमाग में यह बात स्पष्ट है कि इन दो विकल्पों में से हमें किसको चुनना चाहिए। हमें, एक स्वतन्त्र राष्ट्र को, विचारों से क्यों भय हो ? क्या विचारों से साम्यवादियों को भय नहीं होना चाहिए ?

× × ×

भविष्य की संभावनाएं क्या हैं ?

यद्यपि आणविक गतिरोध खतरनाक है, किन्तु सैन्य सीमा पर हमारी स्थिति सबल है। रूसियों द्वारा घोषित तारीखें आईं और गईं, लेकिन स्वतन्त्र मनुष्यों के द्वारा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए दृढ़ निश्चय के एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में, सैन्य सीमा पर हमारी चौकी, पश्चिमी बर्लिन, आज भी मौजूद है।

पिछले दो वर्षों में, हमारी सैन्य शक्ति आम तौर पर अधिक सन्तुलित, अधिक गतिशील, और इस कारण सैन्य सीमा की रक्षा करने में अधिक समर्थ हुई है। इस बीच, हमें यह आशा बनाए रखनी चाहिए कि सोवियत नेता अन्ततः इस बात को समझेंगे कि समूचे इतिहास के दो महानतम औद्योगिक राष्ट्रों का एक-दूसरे को नष्ट करने की अधिकाधिक क्षमता प्राप्त करने की निरन्तर बढ़ती हुई प्रतियोगिता मूर्खतापूर्ण है।

आर्थिक और सांस्कृतिक सीमाओं पर, निरन्तर प्रगति और परिवर्तन की संभावनाएँ अधिक आशाप्रद प्रतीत होती हैं।

अ-साम्यवादी जगत पहले किसी भी समय से अधिक तेज़ी से होने वाले आर्थिक विकास के दरवाज़े पर खड़ा है। स्वतन्त्र मनुष्यों के अधिक समृद्ध, परस्पर अधिक सम्बद्ध समाज का निर्माण होने पर, सोवियत रूस भी बाध्य हो सकता है कि स्वयं अपनी व्यवस्था की निष्फल कठोरताओं को और अधिक संशोधित करे।

इस बीच आर्थिक और सांस्कृतिक सीमाओं के आर-पार व्यापार, पूंजी, कारीगरों, शान्ति सेना के स्वयंसेवकों, गेहूं, कपास, वाद्य-वृन्दों, और विचारों के बढ़ते हुए प्रवाह से दिमाग खुलेंगे, मताग्रह कमजोर पड़ेंगे, और विविधता को प्रोत्साहन मिलेगा।

हम अमरीकी लोग प्रयोग करने की अपनी तत्परता नई स्थितियों के प्रति अपने अनुकूलन, और नई कार्यविधियां निकालने में अपनी कल्पना-शक्ति पर हमेशा गर्व करते रहे हैं। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति अटल निष्ठा के ढांचे में, हम इसी कारण सबल हुए हैं कि यथास्थिति की कठोरताओं के बजाए, हमने रचनात्मक, जिम्मेदार कार्यशीलता को पसन्द किया है।

तर्क संगत शांति के आधार की खोज करते हुए, हम इस परम्परागत धारणा का परित्याग क्यों करें। दूसरा कोई चाहे ऐसा करे भी, लेकिन हम भला नए, गर्व-भरे विकासशील राष्ट्रों से यह अपेक्षा क्यों करें, कि वे दुनिया को हमारी ही नज़र से देखेंगे ? क्या कोई नया राष्ट्र कभी भी जेफरसन, जैक्सन, और लिंकन के युवा अमरीका से अधिक स्पष्टवक्ता, स्वतन्त्र, और अजुड़ था ?

× × ×

मूल प्रश्न अब भी रह जाता है—क्या कोई लोकतांत्रिक शासन ऐसी विदेशी नीति बना और चला सकता है, जो आज की दुनिया की उलझनों के लिए पर्याप्त हो ?

इसका उत्तर एक ऐसी राष्ट्रीय सहमति निर्मित करने की हमारी क्षमता पर निर्भर है, जो राष्ट्रपति को एक ठोस आधार प्रदान करे जिससे वे विश्व-नेतृत्व की जिम्मेदारी निभा सकें।

युद्ध के बाद ऐसी सहमति के निर्माण की दिशा में कई बड़े क़दम उठाए हैं। जो परेशान करने वाले मतभेद अब भी बचे हैं, उनका सम्बन्ध एक ओर पिछलग्गू देशों के प्रति हमारे दृष्टिकोण से, और दूसरी तरफ एशिया और अफ्रीका नए अजुड़ राष्ट्रों के साथ हमारे सम्बन्धों से है।

इस मतभेद से इतिहास की एक निर्णायक घड़ी में अमरीकी विदेश-नीति की प्रभावकारिता कम होने का खतरा है। इसे खुली जिम्मेदारी सार्वजनिक बहस के द्वारा ही मिटाया जा सकता है। जो मत मैंने यहाँ व्यक्त किए हैं, वे उस बहस में एक व्यक्ति का योग हैं।

दूसरा खण्ड

अमरीकी सपने की उपलब्धि

दूसरे खण्ड पर एक निजी टिप्पणी

पहले खण्ड में चर्चित विश्व समस्याओं का सामना हम कितनी सफलता के साथ करते हैं, इसका निर्णय अन्ततः स्वयं अमरीकी समाज के स्वरूप द्वारा होगा। तीन तत्वों द्वारा यह स्वरूप निर्धारित होगा :

—हमारी घरेलू अर्थ-व्यवस्था की शक्ति और गतिशीलता;

—हमारी संघ-राज्य और कार्यकारी-विधायिका-न्यायपालिका पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था की ग्रहणशीलता, लचीलापन, और सन्तुलन;

—सभी अमरीकी सह-नागरिकों को पूरी मात्रा में प्रतिष्ठा, अवसर, और न्याय प्रदान करने के लिए हमारी नैतिक प्रतिबद्धता की गंभीरता।

अगर हम इन तीन मामलों में असफल रहते हैं, तो अमरीका के पास विश्व-व्यापी आर्थिक चुनौती का सामना करने के लिए उत्पादन-शक्ति का, विदेशों में राजनीतिक संकटों का सामना करने के लिए लचीलेपन का, और अन्य राष्ट्रों का आदर प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय निष्ठा का अभाव रहेगा।

दूसरे खण्ड में, सत्रह वर्ष की अवधि में लिखे गए, इन प्रश्नों से सम्बन्धित लेख और भाषण हैं। इस सामग्री को फिर से पढ़कर मैं देखता हूँ कि उसमें उठाये गए कुछ महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में अमरीका में प्रभावशाली प्रगति हुई है, लेकिन अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में इसका चिन्तनीय अभाव है।

बेकारी, जातिभेद, और भ्रष्टाचार, स्कूलों और मकानों की कमी, और गन्दे शहर, राज्य विधायिकाओं में असन्तुलित प्रतिनिधित्व, और वाशिंगटन में शासकीय अड़चनें इन समस्याओं के अवशेष अमरीका की राष्ट्रीय अन्तरात्मा, विश्वास, और क्षमता पर आज भी एक बोझ हैं।

उदाहरण के लिए, दस वर्ष पहले कानेक्टिकट राज्य के गवर्नर के रूप में मैंने जिन समस्याओं का सामना किया था, 1962 में राष्ट्रीय विधायक गतिरोध के मर्म में भी वही प्रश्न हैं। राज्यों के अधिकारों का सर्वाधिक मुखर समर्थन करने वाले राजनीतिक नेता बहुधा राज्यों की जिम्मेदारियों को अस्वीकार करने वालों में सबसे आगे दिखाई देते हैं।

पहला भाग

अधिक समृद्ध समाज की ओर

मुझे विश्वास है कि इस देश मे सच्ची आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने, और अपनी अमरीकी परम्पराओं के अनुसार व्यक्ति के जीवन का विकास करने का एकमात्र उपाय पूर्ण उत्पादन और पूर्ण रोजगार के वातावरण में है, जिसमें व्यापार को अच्छा मुनाफा मिले, मजदूरों को अच्छे काम और स्थिर वेतन मिलें, और किसानों को अच्छी आय प्राप्त हो। तभी हम भय और असुरक्षा के जाल से निकल सकते हैं, जिसने अतीत में कल्पनाशील और साहसपूर्ण रीति से विचार करने की क्षमता हममें से लाखों व्यक्तियों में नष्ट कर दी है।

1 सितम्बर, 1945

एक

शान्ति और सबको काम

जापान पर विजय प्राप्त होने के तीन सप्ताह बाद सीनेट की बैंक और मुद्रा समिति ने एक 'पूर्ण रोजगार विधेयक' सम्बन्धी सुनवाई आरंभ की, जिसका उद्देश्य शान्ति स्थापना के बाद पुनः परिवर्तन की प्रमुख समस्या को हल करना था—युद्धोत्तर अर्थ-व्यवस्था में सभी लोगों के लिए काम की व्यवस्था करना। श्री बौल्स ने, जो उस समय मूल्य प्रशासन कार्यालय के अध्यक्ष थे, 1 सितम्बर, 1945 को अपना साक्षी दी।

शान्ति की स्थापना से अमरीकी लोग अब शान्ति, समृद्धि और बाहुमूल्य की एक बिलकुल नई दुनिया के प्रवेश-द्वार पर खड़े हैं।

युद्ध-काल में हमने प्रत्यक्ष देखा कि हमारे औद्योगिक संयन्त्र मे कितने विशाल उत्पादन की क्षमता है। हममे से कम ही लोग होगे जो ऐसा नही सोचते कि युद्ध-उत्पादन से हटाकर इसी औद्योगिक संयन्त्र को शान्ति-कालीन उत्पादन में लगाने पर, यह अब आधुनिक मकानों और ज्यादा अच्छी शिक्षा के द्वारा जीवन के ज्यादा ऊँचे स्तर, और स्वास्थ्य, मनोरंजन तथा अवकाश के कही अधिक ऊँचे स्तर प्रदान कर सकता है।

मरे-पैंटमैन विधेयक मे, जो इस समय आपकी समिति के सामने है, कहा गया है कि इस प्रकार की समृद्धि प्राप्त करना—स्वतन्त्र उद्यम की व्यवस्था के अन्तर्गत निरन्तर समृद्धि—अमरीकी लोगो की राष्ट्रीय नीति होगी।

ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो इस विधेयक को बड़ी आशंका की दृष्टि से देखते हैं।

कुछ लोग इसलिए इसका विरोध करते हैं कि हर प्रकार के शासन को वे अरुचि और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं, और इस विधेयक मे सीमित शासकीय नियोजन की जो व्यवस्था है, उससे डरते हैं।

क्या वे सचमुच ऐसा सोचते हैं कि 1932 की मन्दी की तीव्रता के निकट पहुँचने वाली भी किसी और मन्दी का सामना, यहाँ जितना प्रस्तावित है, उससे कही अधिक दूरी तक जाने वाले शासकीय नियन्त्रणों के बिना हम कर सकते हैं?

अन्य लोग इसलिए इस विधेयक का विरोध करते हैं कि उन्हे संघ शासन के दीवालिया हो जाने का भय है। लेकिन इस बात को गंभीरता से कौन मान सकता है कि राष्ट्रीय उत्पादन अस्थिर होने पर, और लाखों बेकार व्यक्तियों के काम की

दो

बदलते हुए अमरीका के नक्शे

एक भूतपूर्व व्यापारी के रूप में, श्री बौल्स अन्य व्यापारियों को चुनौती देते हैं कि वे निजी उद्यम व्यवस्था की कार्यप्रणाली, और युद्धोत्तर-काल में पूर्ण उत्पादन और रोज़गार क़ायम रखने की तीव्र आवश्यकता के प्रति अधिक यथार्थ-परक दृष्टिकोण अपनाएँ। सीमूर ई० हैरिस द्वारा सम्पादित 'सेविंग अमेरिकन कपिटलिज्म' से।

दूसरे महायुद्ध ने विध्वंस की ऐसी विरासत छोड़ी है, जो लगभग मनुष्य की समझ के परे है। उसने नगर, कारखाने, बाँध, बिजली-घर और रेलें नष्ट कर दी हैं। इससे भी बुरा है कि उसने करोड़ों मनुष्यों की शक्ति, आशाओं, और क्षमताओं को नष्ट कर दिया है, जिन पर विश्व का पुनः निर्माण निर्भर होगा।

विश्व-व्यापी विनाश की इस पृष्ठभूमि मे अमरीका एक आर्थिक स्वप्न-देश प्रतीत होता है—वह स्वयं युद्ध के विनाश से अछूता रहा, उसके साधनों को क्षति नहीं पहुँची, और उसके लोग आम तौर पर समृद्ध और एकताबद्ध हैं।

फिर भी, आज सारे अमरीका में हमारे आर्थिक भविष्य के बारे में बेचैनी है। विदेशो मे यूरोप और एशिया की अव्यवस्था पर नजर डाल कर, बहुत से लोग सोचते हैं कि क्या अभाव की दुनिया मे हम बाहुल्य का एक द्वीप बनकर समृद्ध हो सकते हैं।

चौथे दशक मे आर्थिक अल्पता के दर्शन ने हमारे आर्थिक विकास में बड़ी बाधा पहुँचाई थी। पर्ल हार्बर के एक मास बाद, राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने जब पचास हज़ार वायुयान और पचास लाख टन भार के जहाजो के वार्षिक उत्पादन की माँग की, तो बहुतेरे अमरीकियों को विश्वास था कि वे एक असंभव माँग कर रहे है।

लेकिन भीरु विचारक गलती पर थे। जैसे-जैसे समय बीता, हमारा देश अपनी विशाल औद्योगिक क्षमता की पूरी शक्ति के साथ सक्रिय हुआ। हमने राष्ट्रपति के पचास हज़ार वायुयानों के लक्ष्य को पूरा किया, फिर उसे दुगुना कर दिया। प्रति वर्ष पचास लाख टन भार के जहाजों के उनके अनुमान को हमने चार गुना कर दिया। दस प्रतिशत कम मजदूरों के साथ, हमारे किसानो ने खेतिहर उत्पादन में 30 प्रतिशत वृद्धि की। 1942, 1943, और 1944 में, तथ्यों से पता चलता है कि हमने अपने इतिहास की अन्य किसी भी अवधि से अधिक असैनिक वस्तुओं का

उत्पादन किया। और इन सब के ऊपर, युद्ध प्रयत्नों के शिखर पर, हमने 100 अरब डालर के सैन्य सामान और सेवाओं की वार्षिक उत्पादन गति प्राप्त की।

हमारा औद्योगिक संयन्त्र हमारे लोगों को क्या कुछ प्रदान कर सकता है, युद्ध कालीन उत्पादन की सफलता ने इसमें हमारे विश्वास को फिर से प्रतिष्ठित किया। जब हमने अपने युद्ध कारखानों को दिनरात काम करते देखा; तो हम कुछ समझने लगे कि शांतिकाल में ये कारखाने हम सबके लिए उपभोग की वस्तुओं की कैसी बाढ़ ला सकते हैं। और इससे यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि हमें मन्दियों को अनिवार्य मान कर स्वीकार नहीं करना चाहिए, पुराने पड़े आर्थिक सिद्धान्तों को हमें छोड़ देना चाहिए, किसी प्रकार, बिना अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता खोए, हमें अपने खेतों और कारखानों में पूरी तरह उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को जारी रखना चाहिए जिनकी हमें, और सचमुच सारी दुनिया को, इतनी जरूरत है।

हम अपनी युद्धकालीन गति को कैसे कायम रख सकते हैं ? पूर्ण रोजगार और पूर्ण उत्पादन की अर्थ-व्यवस्था को जिस सिद्धान्त के आधार पर निर्मित करना होगा, उसे सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—वस्तुओं या सेवाओं के प्रत्येक डालर मूल्य के उत्पादन से, एक डालर की संभाव्य क्रय-शक्ति उत्पन्न होती है।

अगर उत्पादन के स्तर को कायम रखना और बढ़ाना है, तो इस सारे धन का व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं द्वारा उसी समय खर्च होना जरूरी है। अन्यथा वस्तुएँ और सेवाएँ बिना खरीदी रह जाएंगी, और हमारा उत्पादन उतना ही घट जाएगा।

इससे नए सामान और नई मशीनों के आदेश रद्द कर दिए जाएँगे; बदली और बेकारी बढ़ेगी। क्रय शक्ति घटेगी, और हम मन्दी की ओर बढ़ने लगेंगे। बेकारी में होने वाली हर वृद्धि, और क्रय-शक्ति में होने वाली हर कमी अपने-आप को बढ़ाएगी।

तीन समूह हैं, जो मिलकर हमारी कुल क्रयशक्ति के सारे धन को खर्च कर सकने की स्थिति में हैं, और इस प्रकार एक समृद्ध, बढ़ती हुई अर्थ-व्यवस्था को क़ायम रख सकते हैं। इनमें से एक समूह व्यापार है। हर वर्ष यह समूह एक विशाल, लेकिन घटती-बढ़ती रकम औद्योगिक विस्तार, तरह-तरह की वस्तुओं, नए सामान, और इमारतों पर खर्च करता है।

खर्च करने वाले तीन समूहों में दूसरा समूह शासन है—संघ, राज्य, और स्थानीय। प्रतिवर्ष हमारी शासकीय संस्थाएँ स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों, पुलों, सिंचाई योजनाओं, पुलिस और दमकल विभागों, सेना और नौसेना के प्रतिष्ठानों पर विभिन्न रकमें खर्च करती हैं।

खर्च करने वालों का तीसरा समूह अमरीकी लोग स्वयं हैं। हर वर्ष हम अपने वेतनों, पगारों, और लाभांशों की विभिन्न रकमें, उपभोक्ताओं के रूप में भोजन, वस्त्र, यात्रा, सिनेमा, कपड़ा धोने और सफाई करने की मशीनों, पुस्तकों, मकानों,

और केश-विन्यास आदि पर खर्च करते हैं।

यद्यपि इन तीनों समूहों द्वारा किए जाने वाले खर्च का रूप प्रति वर्ष बदलता रहता है, लेकिन तीनों का कुल खर्च मिलाकर, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन द्वारा प्राप्त सभी लोगों की कुल आय के बराबर होना चाहिए—अन्यथा हमें बढ़ती हुई बेकारी का सामना करना पड़ेगा।

अतः समस्या स्पष्ट है। इन तीनों समूहों में किसी प्रकार सन्तुलन कायम रखना आवश्यक है, ताकि जिन वस्तुओं और सेवाओं का हम उत्पादन करें, उन सभी के लिए बाजार मौजूद रहे, और उत्पादन व रोजगार को एक ऊँचे स्तर पर कायम रखा जा सके, और हमारी उत्पादन शक्ति में वृद्धि होने के साथ-साथ यह स्तर भी उठे।

हमारे वर्तमान शासकीय बजटों का हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर जो प्रभाव पड़ता है, उसके कारण हमारी कुल क्रय-शक्ति को कायम रखने में शासन की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है, कि हमारी कुल क्रय-शक्ति के शासन द्वारा समर्थित हिस्से को, उचित सीमाओं के अन्दर, हमारी कुल आवश्यकताओं के अनुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

जब हम देखते हैं कि शासन क्या कर सकता है, और उसे क्या करना होगा, तो हमारे सामने बहुतेरे पूर्वाग्रह और कुंठाएँ आ जाती हैं। चालीस वर्ष से अधिक आयु के अमरीकी, ऐसे काल में वयस्क हुए थे, जब शासन की प्राथमिक जिम्मेदारियाँ आम-तौर पर यही थीं कि अपराध को कम करे, सेना और नौसेना के बुनियादी ढाँचे को कायम रखे, सड़कों को चालू रखे, और सीमित सेवाओं के खर्च के लिए न्यूनतम आवश्यक कर लगाए।

हमसे कहा जाता है कि शासन में कोई भी विस्तार व्यक्ति की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करता है, और उसका यथासम्भव विरोध करना चाहिए, और यह कि न्यूनतम आवश्यक शासन भी प्रशंसा की नहीं, सहन करने की वस्तु है। हमारे बचपन के व्यंग्य-चित्रों में सार्वजनिक कर्मचारियों को स्थूलकाय राजनीतिज्ञों के रूप में प्रस्तुत किया जाता था, जिनके मुँह में बढ़िया सिगार और सिर पर बढ़िया टोप होते थे, और जेबों में हजार डालर के नोट, जिन पर 'रिश्वत' लिखा रहता था।

1929 की मन्दी के बाद से इस घिसे-पिटे दृष्टिकोण को स्वीकार करना अधिकाधिक कठिन होता गया है। देश के विकास के साथ, यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती गई है कि हमारे शासन में, बढ़ी हुई जिम्मेदारियों के अनुरूप वृद्धि करनी होगी। हमारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का विकास होने पर, और उसमें नई पेचीदगियाँ आने पर, शासन के प्रति पुराने दृष्टिकोण को संशोधित करना अपरिहार्य हो गया था। ऐसे संशोधन के बिना हम यह आशा कैसे कर सकते थे, कि अपरिहार्य घटनाओं ने शासन पर जो नई जिम्मेदारियाँ डाल दी थीं, उन्हें वह कौशल से, पर्याप्त रूप में, और बिना हमारी स्वतन्त्रताओं को नष्ट किए निभा सकेगा?

एक निर्णायक महत्त्व के प्रश्न की हम कभी उपेक्षा नहीं कर सकते—अगर अमरीकी लोग अभी पर्याप्त शासन स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो अन्त में हमें बहुत अधिक शासन स्वीकार करना पड़ेगा। यह बात विरोधाभासपूर्ण प्रतीत हो सकती है, लेकिन सच है। अगर हम आवश्यक कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए शासन को पर्याप्त अधिकार देने को तैयार नहीं हैं, तो अनुत्तरित समस्याएँ किसी दिन हमको पकड़ लेंगी, और, पहले पर्याप्त कार्यवाही करने के लिये जितना शासकीय नियंत्रण आवश्यक होता, बाद में उत्पन्न संकट का सामना करने के लिए हमें उससे कहीं अधिक शासकीय नियंत्रण स्वीकार करना पड़ेगा।

× × ×

मैं समझता हूँ कि शासन के छह आधारभूत कर्तव्य हैं। उसकी पहली जिम्मेदारी परम्परागत है—एक सक्षम डाक व्यवस्था को, और अन्य आधारभूत शासकीय सेवाओं को कायम रखना। इस प्रश्न पर मतभेद की गुंजाइश बहुत कम है।

शासन का दूसरा कर्त्तव्य उन चार समूहों के बीच निर्णायक का काम करना है, जो हमारी अर्थ-व्यवस्था के मुख्य अंग हैं—व्यापारी, मजदूर, किसान, और उपभोक्ताओं के रूप में हम सभी लोग। हमारे आर्थिक इतिहास के प्रारम्भिक काल में यह भूमिका अपेक्षतया महत्त्वहीन थी।

लेकिन 'बड़े' व्यापार का विकास होने पर, 'बड़ी' खेती और 'बड़े' मजदूर समूहों का भी विकास हुआ। इसके फलस्वरूप हमारा शासन भी 'बड़ा' हुआ, इतना काफी सबल कि 14 करोड़ नागरिकों के हितों और अधिकारों की रक्षा कर सके, जो अन्यथा व्यापारियों, मजदूरों, और किसानों के अत्यधिक संगठित समूहों की दया पर निर्भर होते।

इस क्षेत्र में शासन की एक बड़ी जिम्मेदारी किसी भी दिशा में आर्थिक एकाधिकार को रोकना है। सीमित औद्योगिक उत्पादन का प्रतिरूप मजदूर आन्दोलन में सुविधाजनक काम लेना, और अनावश्यक काम गढ़ने के अन्य तरीके हैं। ये दोनों ही बुराइयाँ इस धारणा से उत्पन्न होती हैं कि हम अपने सभी साधनों का उपयोग नहीं कर सकते, क्योंकि सबके लिए पर्याप्त काम उपलब्ध नहीं है।

शासन की तीसरी जिम्मेदारी ऐसी सेवाओं की व्यवस्था करना है, जिनकी हम लाभ-हानि के आधार पर काम करने वाले व्यक्तियों से उचित रूप में अपेक्षा नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, इसकी अपेक्षा करना उचित न होता कि एक अरब डालर से अधिक पूँजी वाले टेनेसी घाटी अधिकरण की स्थापना निजी पूँजी द्वारा हो सकती थी। न हम इसकी ही अपेक्षा कर सकते हैं कि मिसौरी, आर्कन्सास, कोलम्बिया, सेन्ट लॉरेन्स और अन्य प्रमुख नदियों के जलमार्गों में पानी के प्रवाह का पर्याप्त नियंत्रण निजी धन से किया जा सकता है।

इसी कारण, हम यह आशा भी नहीं कर सकते कि निजी पूँजी लगाने वाले गन्दी बस्तियों को समाप्त करने के लिए, और आधुनिक बगीचों, अस्पतालों, और मनोरंजन

क्षेत्रो का निर्माण करने के लिए धन की व्यवस्था करेंगे । इस व्यापक क्षेत्र मे ऐसी बहुतेरी सेवाएँ है जो अमरीकी लोगो को मिलनी चाहिए, लेकिन जो अभी तक उन्हें पूरी तरह उपलब्ध नही है । यह हमारे आधुनिक लोकतान्त्रिक शासन की जिम्मेदारी है कि उनकी व्यवस्था करने के लिए तेजी से काम करे ।

हमारी निजी उद्यम व्यवस्था मे शासन की चौथी जिम्मेदारी यह है कि बिना जाति, धर्म, या रंग के भेदभाव के, हर नागरिक को उचित रूप मे समान अवसर प्राप्त हो । अपने सारे इतिहास मे, हमने उन लोगो की ओर सगर्व संकेत किया है, जो गरीबी से उठकर शासन, व्यापार, या कानून के क्षेत्रो मे जिम्मेदारी के स्थानो पर पहुँचे हैं ।

फिर भी, किसी भी निष्पक्ष प्रेक्षक को स्वीकार करना होगा कि हम अभी अपने आदर्श से बहुत दूर है । धनी माता-पिता के बच्चो को शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, और सामान्य विकास के ऐसे अवसर मिलते हैं, जिनसे कम आय वाले लोगो के बच्चे वंचित रहते हैं ।

यह संघ-शासन की जिम्मेदारी है कि अमरीका मे हर बच्चे को शिक्षा का एक उच्चस्तर उपलब्ध हो, चाहे उसके माता-पिता की आय जो भी हो ।

हमे सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक न्यूनतम स्तर भी निर्धारित करना चाहिए, और यह न्यूनतम स्तर ऊँचा होना चाहिए । व्यापक स्वास्थ्य बीमा कार्य-क्रम के लिए, कई हजार अस्पताल बनाने और दसियो हजार डाक्टरो, दन्त-चिकित्सको और नर्सों को प्रशिक्षित करना पड़ेगा । लेकिन हम एक धनी राष्ट्र है, और इस जिम्मेदारी से मुँह नही मोड़ सकते ।

सभी लोगो के लिए अच्छे मकानो की व्यवस्था करने के प्रयास मे भी हमारे शासन को अगुआई करनी होगी । युद्ध के पहले अनुमान लगाया गया था कि एक तिहाई से अधिक अमरीकी परिवारो के निवास-स्थान सर्वथा अपर्याप्त थे । एकाधिकार-ग्रस्त आवास उद्योग, जो केवल सुविधाजनक काम ही करता है, और जिसने निर्माण-काम के सम्बन्ध मे राजनीति प्रेरित नियम बना रखे हैं, अपनी सार्वजनिक जिम्मेदारी को निभाने मे बुरी तरह असफल रहा है ।

हमारे शासन की पाँचवी जिम्मेदारी हमारे आयात-निर्यात कार्यक्रम को इस प्रकार समंवित करना है, जिससे सारी दुनिया मे राहत और पुनर्वास का कार्यक्रम मजबूती से आगे बढ़ाया जा सके ।

दुनिया मे एकमात्र हमारा ही प्रमुख राष्ट्र ऐसा है, जो युद्ध से अछूता रहा है । हम प्राकृतिक साधनो, मानवी कौशल, और उत्पादन क्षमता मे समृद्ध हैं । जिस दुनिया मे हम रहते है, वह बराबर छोटी होती जाती है । हममे से कुछ लोग अब भी कहते हैं कि शेष दुनिया के प्रति हमारी कोई जिम्मेदारियाँ नही, और यह कि हमे अपने प्रयत्नों को केवल अपने लोगो के धन मे वृद्धि करने पर केन्द्रित करना चाहिए । हमारी और दुनिया की भलाई के लिए यह जरूरी है कि इस दृष्टिकोण का परित्याग किया जाय ।

दुनिया की गन्दी बस्ती के बीच हम अमरीकियों के लिए सफलतापूर्वक किसी महल का निर्माण नहीं कर सकते। जब तक सभी लोगों का जीवन स्तर बराबर नहीं उठता, तब तक हमें या हमारे बच्चों को शांति या सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती।

अगर हम दुनिया की उत्पादन शक्ति को, और उसके साथ दुनिया के लोगों की सुरक्षा को बढ़ाना चाहते हैं, तो हमें दुनिया की खेती के आधुनिकीकरण में सहायता करनी होगी। यह अगली पीढ़ी के लिए एक बुनियादी चुनौती है। हमें आधुनिक परिवहन व्यवस्थाओं के, बिजली-घरों के और मूल औद्योगिक कारखानों के निर्माण में भी सहायता करनी होगी। अमरीकी प्रबन्ध-कौशल के लिए लगभग असीमित अवसर हैं।

सोवियत संघ और साम्यवादी दल भूखे लोगों को अधिक ऊँचे जीवन-स्तर और अधिक आर्थिक सुरक्षा की आशा दिलाते हैं। अगर हमें सफलतापूर्वक इस चुनौती का सामना करना है, केवल इतना कहना ही काफी नहीं होगा कि साम्यवाद का अर्थ राजनीतिक लोकतन्त्र की समाप्ति होता है, यद्यपि यह बात अपने आप में बिलकुल सही है। हमें सारे विश्व के पैमाने पर, न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता को बल्कि आर्थिक लोकतन्त्र को भी प्रोत्साहित करना होगा।

हमारे शासन की छठी और अन्तिम जिम्मेदारी यह है कि अपनी सारी नीतियों को इस प्रकार समन्वित करें कि हम जो कुछ भी उत्पादन कर सकते हैं, उसके लिए बाजार उपलब्ध हो।

मेरा तात्पर्य यह है कि शासन इस बात की सुरक्षा प्रदान करे हमारे मजदूर, किसान, और व्यापारी प्रति वर्ष जिन वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं, उनके लिए हमेशा क्रय-शक्ति मौजूद रहे। अगर हमें पूर्ण उत्पादन और पूर्ण रोजगार को कायम रखना है, तो यह कार्य आवश्यक है। यह सुरक्षा जितनी प्रभावकारी होगी, आर्थिक भविष्य के सम्बन्ध में विश्वास उतना ही अधिक होगा, और दबी हुई माँगें उतने ही अधिक निश्चित रूप में खरीदों का रूप लेंगी। इस बात पर विशेष जोर देने की जरूरत है।

× × ×

तथाकथित सामान्य कालों में, हर व्यापारी को दो खतरे उठाने पड़ते हैं। पहला, प्रतियोगिता का सामान्य खतरा होता है, इस बात की कसौटी कि उसमें अपने उद्योग के अन्य व्यापारियों के साथ, उचित मूल्यों पर अच्छी वस्तुओं का उत्पादन करने में प्रतियोगिता करने की योग्यता है। यह एक उचित जोखिम है, जिसे निजी उद्यम की हमारी व्यवस्था में सचमुच विश्वास करने वाले हर व्यापारी को स्वीकार करना चाहिए।

दूसरा खतरा इस संभावना का है कि मन्दी कभी भी आ सकती है। मन्दी में कुशल और अकुशल दोनों ही तरह के व्यापारी दीवालिया हो जाते हैं। मन्दी के निरन्तर भय के फलस्वरूप व्यापारी अपना उत्पादन सीमित रखते हैं, विस्तार

क्रमो को रोक देते हैं, और विशाल आरक्षित विधियाँ एकत्रित करते हैं, जिनकी सहायता से वे कठिन समय मे अपने को बचा लेने की आशा करते हैं।

कोई आधुनिक अर्थ-व्यवस्था किस तरह काम करती है, इसके बारे में आज हम लोग जो कुछ जानते हैं, उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि यह दूसरा खतरा अनावश्यक है। बुद्धिपूर्ण, लोकतान्त्रिक कार्यवाही के द्वारा इसे मिटाया जा सकता है, और मिटाना चाहिए।

सबसे पहले, हमारे लिए जरूरी होगा कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों को समन्वित करें, और उन्हे निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चलाएँ।

हमें अपनी कर नीतियो और वित्तीय नीतियो पर भी सावधानी से विचार करना होगा। पिछले कुछ वर्षों मे हम कर सम्बन्धी जिन क़ानूनो के अधीन काम करते रहे हैं, वे किसी पुराने मकान की तरह बढते रहे है, कभी एक कमरा इधर, कभी एक भण्डारघर उधर। अगर हम चाहते हैं कि हमारी कराधान नीति पूर्ण रोजगार और पूर्ण उत्पादन मे योग दे, तो हमे उसका नए सिरे से संगठन करना पड़ेगा।

आधुनिक कराधान कार्यक्रम को नए उद्यम के विकास के लिए अधिक प्रोत्साहन भी प्रदान करना होगा। नए उद्योगो को इस बात की अनुमति होनी चाहिए कि प्रारम्भिक वर्षों मे होने वाली हानि को अपने पाँव पर खड़े हो जाने के बाद होने वाले लाभो से सतुलित कर सकें।

अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि किसी विशिष्ट अवधि मे, मूल कर-व्यवस्था तत्कालीन आर्थिक स्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए जिस अवधि में उत्पादन घटने का खतरा हो, उसमे कर घटा देने चाहिए, ताकि क्रय-शक्ति और उत्पादन के लिए प्रोत्साहन बढ़ें।

मैं चाहूँगा कि राष्ट्रपति को अधिकार दे दिया जाय, कि वे अपनी आर्थिक परिषद् की सलाह से, निश्चित सीमाओं के अन्दर, हमारी अर्थ-व्यवस्था की तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार, करो को घटा-बढा सकें। निस्सन्देह, राष्ट्रपति का ऐसा करने का अधिकार, स्पष्टतः निरूपित विधायक सत्ता और प्रतिमानों के अन्तर्गत होना चाहिए। इससे हम अपनी अर्थ-व्यवस्था के तेजी या मन्दी की ओर बढ़ने पर, तत्परता से अपनी कुल क्रय-शक्ति के प्रवाह को घटा या बढा सकेंगे।

मै समझता हूँ कि हमारे पास इतना काफी आर्थिक ज्ञान है, कि व्यापारिक चक्र की ऊँच-नीच को सम-स्तर पर लाने के लिए, हम इस प्रकार के उपकरण का इस्तेमाल कर सकें।

लेकिन यह मानना भूल होगी कि निजी उद्यम व्यवस्था के अन्तर्गत शासन हमारी सारी आर्थिक समस्याओं को हल कर सकता है। अगर निजी उद्यम व्यवस्था में व्यापार, मजदूरों और किसानो के नेता अपने उचित आर्थिक कर्त्तव्यो को पूरा करने में व्यापक रूप मे असफल रहते हैं, तो शासकीय खर्च, ध्यानपूर्वक समन्वित होने पर भी, उस कमी को पूरा नही कर सकते। जब तक हम अपनी निजी उद्यम व्यवस्था

को क़ायम रखते हैं,—और उसे छोड़ना निश्चय ही मूर्खतापूर्ण होगा—तब तक हमारी अर्थ-व्यवस्था पर सबसे बड़े प्रभाव वेतनों, मूल्य और मुनाफों को तय करने में, और हमारी औद्योगिक सुविधाओं के विस्तार का नियोजन करने मे, व्यक्तियों के रूप मे, व्यापारियो, मज़दूरों और किसानो के निर्णयो के पड़ेंगे ।

अगर हमें अपने आर्थिक भविष्य का तर्क-संगत हल प्राप्त करना है, तो जिम्मेदार मज़दूर नेतृत्व आवश्यक होगा । हमे कम काम करने के चलन को ख़तम करना होगा, और हर मज़दूर को यह निश्चय करना होगा कि पूरे दिन के वेतन के बदले में वह पूरे दिन का काम करेगा ।

लेकिन सबसे बड़ी जिम्मेदारी हमारे व्यापारियो के ऊपर होगी । ऐसा इस कारण है कि निजी उद्यम की अर्थ-व्यवस्था, व्यापारिक अर्थ-व्यवस्था होती है । व्यापारियो से यह आशा करना उचित नही होगा कि वे व्यापार मे घाटा लाने वाले काम करेंगे । मुनाफे व्यापार का प्राणरक्त होते हैं ।

किन्तु अगर हमारे व्यापारियों को अपने प्रति ही नही, वरन् हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाना है, तो मुनाफा कमाने के सम्बन्ध मे उनका दृष्टिकोण दीर्घकालीन होना चाहिए ।

तीन ही तरीके हैं, जिनमें वेतन बढाये जा सकते हैं । जिस व्यापार में पर्याप्त से अधिक मुनाफा हो रहा हो, वह वेतन बढ़ाकर, और वर्तमान मूल्य स्तरों को कायम रखकर भी काफी मुनाफा कमा सकता है । जो व्यापार उचित से कम वेतन देकर, केवल सामान्य मुनाफा कमा रहा हो, वह मूल्य बढा कर वेतन बढ़ा सकता है, और उसे ऐसा करना चाहिए । जहाँ वेतन उचित से कम हैं, वहाँ ऐसा करना सर्वथा तर्क-सगत होगा । अगर मालिक लोग न्यूनतम वेतन प्रतिमान को पूरा नही कर सकते, तो उन्हें व्यापार मे नही रहना चाहिए । हममे से किसी को भी उपभोक्ता के रूप में यह अधिकार नही कि उचित से कम वेतनों का लाभ उठाएँ ।

अन्त में, श्रम की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाकर, वेतन बढाये जा सकते है, मूल्य स्थिर रखे या कम किये जा सकते हैं, मुनाफे कायम रखे या बढाये जा सकते हैं । अपने जीवन-स्तर मे वृद्धि के लिए हमे बहुत कुछ इस आखिरी तरीके पर भी निर्भर रहना होगा । युद्ध के पहले के बीस वर्षो मे, प्रति व्यक्ति, प्रति घण्टा श्रम की उत्पादन शक्ति 4 प्रतिशत वार्षिक की रफ्तार से बढ़ती रही थी ।

श्रम की उत्पादन शक्ति अधिकांश मशीनो और सुविधाओं में सुधार होने से बढती है । प्रबन्धकों को प्रोत्साहित करने के लिए, कि वे अपने मुनाफों को अपने कारखानो की उत्पादन शक्ति को बढाने में लगाएँ, यह उचित है कि बढ़ी हुई श्रम उत्पादन शक्ति से होने वाली आय के एक हिस्से से उन्हें अपना मुनाफा बढाने का अधिकार हो । लेकिन यह भी उतना ही स्पष्ट है कि श्रम की उत्पादन शक्ति में वृद्धि के काफी बडे हिस्से को वेतन वृद्धियो के लिए सुरक्षित रखना चाहिए ।

अगर प्रबन्धक इस दृष्टिकोण को स्वीकार नही करते, या मजदूर अपनी माँग के

औचित्य को प्रस्तुत नही कर पाते, तो वस्तुओ के बढ़े हुए उत्पादन को खरीदने के
लिये क्रय-शक्ति मे आवश्यक वृद्धि नही होगी । 1929 की सकटपूर्ण मन्दी का यही
कारण था ।

मूल्य-निर्धारण एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमे निजी उद्यम व्यवस्था के
अन्तर्गत व्यापारियो को मुख्य निर्णय करने रहते हैं । कुछ मूल्य बहुत अधिक रखे जाते
हैं, क्योकि मूल्य कम होने पर अधिक मात्रा और अधिक मुनाफों की संभावनाओं को
व्यापारी नही समझ पाते । अमरीकी व्यापार के हर हिस्से मे हमने ऐसे उदाहरण देखे
हैं, जहाँ मूल्य कम होने पर मात्रा मे इतनी वृद्धि हुई है कि मुनाफे काफी बढ़ गए ।

मेरा आग्रह है कि निजी निर्णयो के इस आवश्यक क्षेत्र मे उद्यम अधिक हो,
मालिक मजदूर सम्बन्धो मे अधिक कल्पनाशीलता हो, व्यापार पद्धतियों में सुधार हो,
और बढ़ी हुई मात्रा पर आधारित मुनाफे की दीर्घ-कालीन संभावनाओ को ज्यादा
अच्छी तरह समझा जाय ।

पूर्ण उत्पादन को जिन बाजारो और क्रय-शक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है, उन्हें
कायम रखने मे शासन की एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है । लेकिन मूल्य, मुनाफे और
वेतन तय करने मे हमारे व्यापारियो, मजदूरों और किसानो की जिम्मेदारी और भी
बड़ी है ।

अगर, किसी कारणवश, निजी निर्णयो के इस क्षेत्र में हम असफल रहते हैं, तो
हमारी अर्थ-व्यवस्था मे शासन का महत्त्व निश्चय ही बढ़ेगा । अगर एकाधिकारवादी
मूल्य निर्धारण चलता रहता है, तो शासकीय नियत्रण की माँग बढ़ेगी । अगर
मालिक-मजदूरो के विवाद बढ कर हमारे आर्थिक जीवन मे व्यापक गड़बड़ी पैदा
करते हैं, तो यह माँग और भी अधिक होगी ।

और अगर शांति काल मे एक बार शासन को ऐसे क्षेत्र मे प्रवेश करना पड़ा,
जो निजी निर्णयो के लिए सुरक्षित रहना चाहिए, तो शासकीय नियत्रण बढता
जाएगा, क्योकि एक नियत्रण से फिर दूसरे नियंत्रणो को जगह मिलती जाती है ।
हमे इससे बचने का यथासभव प्रयास करना चाहिए ।

तीन

आर्थिक विकास पर एक नई दृष्टि

जब अमरीकी अर्थ-व्यवस्था का पिछड़ना जारी रहा, तो कांग्रेस-सदस्य बौल्स ने प्रतिनिधि सभा में एक प्रमुख भाषण में अधिक तीव्र गति से विकास को प्रोत्साहित करने के लिए सशक्त निजी और सार्वजनिक कार्यवाही के लिए अपील की। 29 जून, 1959।

अध्यक्ष महोदय, आज मैं ऐसे प्रश्न पर बोलने खड़ा हुआ हूँ, जो मेरे विचार में, अमरीकी लोगों के सामने सर्वप्रमुख प्रश्न है। मेरा तात्पर्य इससे है कि पिछले वर्षों में हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था, बिना मँहगाई के, और रोज़गार का ऊँचा स्तर कायम रखते हुए, निरन्तर विकास की अपनी विशाल क्षमता के अनुसार आगे बढ़ने में बराबर असफल होती रही है।

इस चुनौती का सामना करने में हमारी सफलता से न केवल आने वाले वर्षों में हमारे अपने समाज का स्वरूप निर्धारित होगा, वरन् क्रान्तिकारी परिवर्तन के विश्व में नेतृत्व की हमारी क्षमता भी निर्धारित होगी।

इस समय हम दस वर्षों में अपनी तीसरी मन्दी से निकल रहे हैं। पहली 1949 में आई, दूसरी 1953-54 में, और तीसरी 1957-58 में।

पिछले वर्षों में उत्पादन में जो क्षति हुई, वह भरी नहीं जा सकती, और उसकी मात्रा काफी है। अगर कोरिया-युद्ध के बाद हमारे विकास की गति दूसरे महायुद्ध के पूर्व की 4 प्रतिशत वार्षिक की गति पर कायम रहती, तो हमने जितनी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया है, उससे 170 अरब डालर अधिक मूल्य का करते।

अगर हम 5 प्रतिशत वृद्धि की गति प्राप्त कर लेते, जिसे 1958 में रॉकफेलर प्रतिवेदन ने व्यावहारिक और आवश्यक दोनों ही बताया था, तो कोरिया युद्ध के बाद हमारा अतिरिक्त उत्पादन 400 अरब डालर से अधिक का होता।

यह एक विशाल रकम है। यह लगभग एक पूरे वर्ष की राष्ट्रीय आय के बराबर है। यह हमारे 285 अरब डालर के राष्ट्रीय ऋण की डेढ़ गुनी है।

कोरिया युद्ध के बाद हम अपनी आर्थिक संभावनाओं की उपलब्धि में असफल क्यों रहे हैं? क्या गड़बड़ी हो गई?

कारण बहुतेरे और उलझे हुए हैं। उनकी प्रकृति और विस्तार स्रोतों के बारे में

ईमानदार व्यक्तियों मे मतभेद हो सकता है। मैं ऐसा अनुमान लगाता हूँ कि इतिहास-कार हमारे पिछड़ने का कारण बहुत कुछ यह बताएँगे कि जिस निजी उद्यम व्यवस्था को हम इतना मौखिक समर्थन प्रदान करते हैं, उसकी गत्यात्मकता को हम नहीं समझ पाए।

हमारी गलतियाँ इस कारण नही हैं कि संघ शासन ने हमारी अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी अपनी शक्ति का उपयोग नही किया। हमारी कठिनाइयाँ इस कारण हैं कि हमने उस शक्ति का उपयोग गलत उद्देश्यो के लिए, गलत कारणो और गलत तरीकों से किया।

अपने शासन की शक्तियों का उपयोग, विकास और रोजगार के ऊँचे स्तर को प्रोत्साहित करने के लिए करने के बजाए, हमने बहुधा उनका उपयोग अनजाने में विकास को कुंठित करने के लिए किया है, क्योंकि हम भूल से यह मान बैठते हैं कि निरन्तर विकास, रोजगार का ऊँचा स्तर, और मूल्यो की स्थिरता, इनमे परस्पर मेल नही हो सकता।

यद्यपि हम सब सहमत हैं कि अधिकाश मूल्य बहुत ऊँचे हैं, लेकिन जीवन-निर्वाह के सूचकाक एक वर्ष से अधिक समय से स्थिर रहे हैं। वस्तुत., श्रम विभाग के अनुसार, पिछले उन्नीस वर्षों मे इतने लम्बे समय तक मूल्य पहले कभी निरन्तर स्थिर नही रहे।

मूल्य बढे हैं कम्पनियो के सामान्य हिस्सो के, और भू-सम्पत्तियो के। इनमें बीसियो अरब डालर की वृद्धि हुई है।

अध्यक्ष महोदय, अगर यह वृद्धि जारी रहती है, तो जैसा अतीत मे हो चुका है, ये मूल्य भहरा पड़ेंगे। ऐसा हो । पर सब से गहरी चोट लाखों छोटे-छोटे पूँजी विनि-योजको को लगेगी, जिनमे से बहुतेरो ने मूल्य बढने की गैर-ज़िम्मेदार बातों के फल-स्वरूप ही बाजार मे प्रवेश किया।

हमारी अर्थ-व्यवस्था के निरन्तर तेज रफ्तार से विकसित न होने का लगभग हर उस प्रश्न पर गभीर प्रभाव पड़ता है, जो इस काग्रेस मे हमारे सामने आता है। अपने प्रति सच्चे रहकर हम इस सम्बन्ध मे अपनी ज़िम्मेदारियो से मुँह नही मोड़ सकते। इसे ध्यान मे रख कर, काग्रेस द्वारा अब तक प्रस्तुत राष्ट्रीय आर्थिक नीति के सर्वाधिक स्पष्ट वक्तव्य पर हम पुनर्विचार करें। मेरा तात्पर्य 1946 के रोजगार अधिनियम से है।

यह कानून युद्धोत्तर-कालीन सहयोग और विश्वास की भावना का एक फल था। काग्रेस मे इसे एक द्विपक्षीय समूह ने प्रस्तुत किया था, और दोनो दलो के विशाल बहुमत ने इसका समर्थन किया था।

सामान्य कल्याण इसका व्यक्त उद्देश्य था। इसमे राष्ट्रपति से कहा गया कि वे काग्रेस के समक्ष एक 'आर्थिक प्रतिवेदन' प्रस्तुत करें जिसमें 'संयुक्त राज्य अमरीका मे रोजगार, उत्पादन, और क्रय-शक्ति के चालू स्तरो की सूचना के साथ यह भी बताया

जाय कि घोषित नीति को कार्यान्वित करने के लिए किन स्तरों की आवश्यकता है।

पिछली जनवरी मे अपने आर्थिक प्रतिवेदन मे राष्ट्रपति आइजनहूवर ने इस जिम्मेदारी का जिक्र किया था। लेकिन पहले के आर्थिक प्रतिवेदनों का उन्होंने कभी अनुसरण नहीं किया, जिनमें राष्ट्रीय लक्ष्य प्रतिवर्ष निर्धारित किये जाते थे, और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन निरूपित किये जाते थे।

अन्य कई प्रश्नों की भाँति इस प्रश्न पर भी जिम्मेदारी काग्रेस पर डाल दी गई है। अगर हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्यो का स्पष्टीकरण करने की इस जिम्मेदारी से मुँह मोड़ते हैं तो हम आगे भी अपने अवसरो का पूरा लाभ नही उठा पाएँगे।

यह भी आवश्यक है कि अपनी वर्तमान धीमी प्रगति के कारणो के सम्बन्ध मे हम इस सदन में किसी प्रकार की सामान्य सहमति पर पहुँचें। एक बार ऐसी सहमति प्राप्त हो जाने पर, हम कोई ऐसा तरीका निकाल सकते हैं जिससे हम मूल्यों को स्थिर रखते हुए, उत्पादन के ऊँचे स्तरो को क़ायम रख सकें, और बढ़ा सकें।

इस प्रसग मे मैं कुछ बातें कहना चाहता हूँ।

एक—मैं आशा करता हूँ कि सयुक्त आर्थिक समिति के अध्ययनों और प्रतिवेदन में इसका एक आँकड़ो सहित, दस्तावेजी विवरण भी शामिल होगा कि हमारे लोगों, मशीनों, और पूँजी का अधिकतम उपयोग होने पर हमारी निजी और सार्वजनिक अर्थ-व्यवस्था की क्या स्थिति होगी।

दो—मैं आशा करता हूँ कि इस प्रतिवेदन में हमारी वास्तविक संभावनाओं के कुछ विशिष्ट अनुमान भी होगे कि हमारे उद्योगों को अधिकाधिक व्यापक बाजार प्रदान करने मे सहायक होने के लिए कितनी क्रय-शक्ति की आवश्यकता होगी, हमारी औद्योगिक मशीनो के आधुनिकीकरण और विस्तार को जारी रखने के लिए कितनी और किस प्रकार की पूँजी आवश्यक होगी, और हमें, संसार के सबसे धनी राष्ट्र में, कितनी और किस प्रकार की सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध हो सकती हैं।

तीन—मैं आशा करता हूँ कि प्रतिवेदन मे इसका भी संकेत होगा कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य करने पर, हमारे संघ, राज्य, और स्थानीय राजस्व में कितनी वृद्धि होगी।

चार—मैं आशा करता हूँ कि 'साधन और पद्धति' समिति हमारी वर्तमान कर-व्यवस्था का विश्लेषण करके सुधारों की सिफारिश करते समय, इस पर भी विचार करेगी कि करो से होने वाली आय का ज्यादा बड़ा हिस्सा राज्यो और स्थानीय शासन संस्थाओं को कैसे दिया जा सकता है, और औद्योगिक विस्तार तथा विकास के लिए किन विशेष कर प्रोत्साहनों को आवश्यकता हो सकती है।

चूँकी पूँजी के रूप में विनियोजित हर डालर के पीछे कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे दो डालर वार्षिक की वृद्धि होती है, अतः ऐसा प्रयास हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को उद्दीपित करेगा।

पाँच—मैं आशा करता हूँ कि कर-व्यवस्था की वर्तमान खामियो की ओर जैसे,

व्यापार में खर्च-खाते की जाने वाली बहुत बड़ी कटौतियाँ, गंभीरता से ध्यान दिया जायेगा। कुछ प्रेक्षकों का ख्याल है कि विभिन्न रीतियो से हमें चार अरब डालर वार्षिक की हानि हो रही है।

छह—मैं आशा करता हूँ कि अर्द्ध-एकाधिकारग्रस्त उद्योगों में 'नकली' मूल्यों की समस्या के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रस्तावो पर भी विचार किया जाएगा। इन प्रस्तावो को गभीरता से लेना चाहिये। क्या एकाधिकार सम्बन्धी वर्तमान कानूनों को अधिक व्यापक बनाना चाहिये? एक-एक विशेष 'अतिरिक्त लाभ' कर व्यावहारिक और प्रभावकारी होगा?

सात—इस सम्बन्ध मे मैं आशा करता हूँ कि सदन को इस प्रस्ताव पर विचार करने का अवसर मिलेगा कि हमारी राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता के लिए आशंकाजनक रूप मे व्यापक मूल्य या वेतन वृद्धि की सभावनाओ के सम्बन्ध मे तथ्यों का पता लगाने के लिए सार्वजनिक जाँच की जाय।

आठ—यद्यपि खेती मे हमारी प्रमुख समस्या उत्पादन सम्बन्धी नीतियो की है, किन्तु भोजन के उपभोग मे काफी बडी वृद्धि की सम्भावना की उपेक्षा नही करनी चाहिए।

हमारी खेती का बाहुल्य कम भाग्यशाली देशो में आर्थिक विकास मे सहायता देने का, और करोडो व्यक्तियो की भूख मिटाने का सशक्त उपकरण हो सकता है। उसे बेकार पड़े रहने देना अबुद्धिमत्तापूर्ण, अनार्थिक और अनैतिक है।

हमारे 'अतिरिक्त' भोजन के काफी बड़े हिस्से की यहाँ अमरीका मे भी आवश्यकता है। स्कूलो में भोजन देने के कार्यक्रम का विस्तार, और भोजन टिकट योजना अब भी हमे दो व्यावहारिक अवसर प्रदान करते हैं कि इस समय खत्तियो मे पड़े हुए आठ अरब डालर मूल्य के भोजन का देश मे लाभकारी उपयोग करें।

नौ—मे आशा करता हूँ कि सयुक्त आर्थिक समिति के प्रतिवेदन में ब्याज की दरों का, और औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन, निर्माण, क्रय शक्ति, बेकारी, और सभी स्तरों के सरकारी राजस्व पर उनके प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा।

दस—अन्त मे कुछ बातें मैं एक निकट रूप मे सम्बन्धित विषय पर कहना चाहूँगा। मैं समझता हूँ कि जल्दी या देर से कांग्रेस को इस समस्या का सामना करना पड़ेगा।

वर्षों से साम्यवादी दुनिया को वह यह बताते आ रहे हैं कि अमरीका को सबसे अधिक भय निरस्त्रीकरण के आर्थिक परिणामो का है।

मास्को के अनुसार, अगर सेना के मुख्य कार्यालय से शास्त्रों की माँग आनी बन्द हो जाय, तो अमरीकी उद्योग दीवालिया हो जाएँगे, और अमरीकी मजदूर भूखो मरने लगेंगे। तब पूँजीवाद का पतन और साम्यवाद की विजय अनिवार्य हो जाएगी।

कार्ल मार्क्स के बावजूद, मैं समझता हूँ कि हममें से अधिकांश लोग जैसा मानते हैं, शांति-कालीन अर्थ-व्यवस्था की ओर सक्रमण उससे कहीं अधिक सरल होगा।

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के अठारह महीने बाद, हमने 45 प्रतिशत अमरीकी

उद्योगों को युद्ध-कालीन उत्पादन से हटाकर शांति-कालीन उत्पादन में लगा दिया था और सेना से निकले हुए लगभग एक करोड़ व्यक्तियों को असैनिक अर्थ-व्यवस्था में खपा लिया था।

निश्चय ही, उस समय हमें यह लाभ था कि मकान, स्कूल, और उपभोग की टिकाऊ वस्तुओं की युद्ध-काल में संचित माँगों की मात्रा इकट्ठा हो गई थी, जिसकी पूर्ति करनी थी। लेकिन 1945 में हमारी अर्थ-व्यवस्था का जितना हिस्सा प्रतिरक्षा उत्पादन में लगा हुआ था, आज उसका पाँचवाँ भाग ही लगा है। जहाँ तक पुरानी अपूर्त आवश्यकताओं का सवाल है, हर मेयर, नगर नियोजक, शिक्षक, सड़क इंजीनियर, अस्पताल अध्यक्ष, और समाजशास्त्री जानता है कि उनकी मात्रा विशाल है।

सीनेटर हम्फी की अध्यक्षता में सीनेट की निरस्त्रीकरण समिति ने निरस्त्रीकरण के आर्थिक परिणामों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक सुनवाई की है। मुझे विश्वास है कि इस विषय पर और अधिक अध्ययन से अमरीकी लोग आश्वस्त होंगे और दुनिया को प्रमाण मिलेगा कि शीत युद्ध के तनावों को यथार्थ परक रीति से घटाने के मार्ग में अमरीका नहीं वरन् सोवियत रूस बाधक है।

अन्त में, हम इस पर विचार करें कि मैंने जो प्रश्न उठाए हैं, उनके व्यावहारिक उत्तर प्राप्त करना, व्यक्तियों के रूप में, और एक राष्ट्र के रूप में, हमारे लिए कितना महत्त्वपूर्ण है।

उदाहरण के लिए, अगले वित्तीय वर्ष में रोज़गार के ऊँचे स्तर और आर्थिक विकास की तीव्र गति संघीय राजस्व और का संघीय बजट पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

अगर 1961 के वित्तीय वर्ष में 4 प्रतिशत विस्तार की गति कायम रहे, तो 1960 में अपेक्षित वृद्धियों के अलावा, 18 से 20 अरब डालर मूल्य का अतिरिक्त उत्पादन हमें प्राप्त होगा।

इससे संघीय कर-आय में कई अरब डालर की वृद्धि होगी। ब्याज की अदायगी में और संघीय सहायता की रकमों में कमी होने से, हमारे पास पर्याप्त धन होगा कि निर्माण कार्य, प्रतिरक्षा, शिक्षा, और स्वास्थ्य कल्याण और खोज सम्बन्धी अपनी पूरी जिम्मेदारियाँ निभा सकें, और उसके साथ ही करों में कमी कर सकें, और बजटको सन्तुलित कर सकें।

अगामी वर्षों में, अगर हम बुद्धिमत्तापूर्ण नीति-निर्देशन कर सकें, जिससे बिना मँहगाई के तीव्र गति से विस्तार हो सके, तो हम करों में और कटौती करने, और राष्ट्रीय ऋण में बहुत दिनों से स्थगित होती आ रही, प्रभावकारी कमी करने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

अध्यक्ष महोदय, यह कोई शेखचिल्ली का सपना नहीं है। यह निरन्तर आर्थिक विकास का कठोर, तथ्यपूर्ण गणित है।

अपने राष्ट्र की सुरक्षा, और अपने लोगों के कल्याण के लिए जिसकी आवश्यकता

इतनी स्पष्ट है, अलग-अलग रीतियों और कारणों में, उसके लिए प्रयास करने का विरोध करने वाले समूह भी रहेंगे।

वे ऐसा कहकर बांधों, स्कूलों, या मकानों के निर्माण सम्बन्धी हर प्रस्ताव का विरोध करेंगे कि इससे बजट के असन्तुलित हो जाने का, या हानिकारक मँहगाई आने का भय है। हमारी द्विविधा के मूल कारणों तक पहुँचने के हर प्रयास को वे व्यर्थ या असामयिक घोषित करेंगे।

ऐसा होने देना बड़ी भूल होगी कि अमरीका के भविष्य के बारे में यह भीरु दृष्टि-कोण इस सदन के बहुमत को डर दिखाकर राजनीतिक दृष्टि से निःशक्त बना दे। मेरा निवेदन है कि बिना मँहगाई लाए, अधिक तीव्र गति से हमारी अमरीकी अर्थ-व्यवस्था का विस्तार इस कांग्रेस की कार्यसूची पर अंकित पहली चुनौती है।

चार

इस्पात के मूल्य और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था

अगस्त, 1959 की लम्बी इस्पात हड़ताल के चौथे सप्ताह में यह पत्र राष्ट्रपति आइजनहूवर को भेजा गया था। उसमें कांग्रेस-सदस्य बौल्स ने सुझाव दिया है कि अर्थ-व्यवस्था और इस्पात उद्योग, दोनों की दीर्घ कालीन भलाई के लिए इस्पात के मूल्य को बढ़ाने के बजाए घटाना चाहिए।

प्रिय श्री राष्ट्रपति,

युद्ध-काल में मूल्य-प्रशासक और आर्थिक स्थिरीकरण के निदेशक के रूप में इस्पात उद्योग मे मूल्यों, वेतनो और मुनाफो के उलझे हुए पारस्परिक सम्बन्धो से, हफ्ते-ब हफ्ते, मेरा निकट सम्बन्ध रहता था। उसके बाद से, इस महत्वपूर्ण उद्योग के कार्य-संचालन को देखकर मुझे अधिकाधिक परेशानी होती रही है, जिसका हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे रोजगार और विनिर्माण की लागत पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ता है।

इन चौदह वर्षों मे, मालिक-मजदूर मतभेदो के फलस्वरूप, इस्पात उद्योग में छह बार काम बन्द हुआ। एक सौ नब्बे दिनो के उत्पादन की हानि हुई। फलस्वरूप, साढ़े चार करोड टन इस्पात का उत्पादन जो हो सकता था, नही हुआ, और वेतनो व मुनाफों मे करोड़ों डालर की हानि हुई।

वर्तमान गतिरोध का यह चौथा सप्ताह है। अगर जल्दी ही कोई समझौता नही हो जाता, तो हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

हम इस समय पिछले दस वर्षों में अपनी तीसरी मन्दी से निकल रहे हैं। रुकावटों के इस सिलसिले के कारण हमारे विकास की औसत वार्षिक गति इतनी कम हो गई है, जितनी पिछले कई दशकों में कभी नही रही।

इस्पात के उत्पादन, और इस्पात मजदूर की क्रय-शक्ति मे निरन्तर कमी होते रहने से हमारी समृद्धि में और भी कमी आएगी। इसके अतिरिक्त इस्पात का भंडार कम होने पर, अमरीका का लगभग हर उद्योग प्रभावित होगा। मजदूरों और प्रबन्धकों मे कटुता, जो पहले ही चिन्तनीय रूप में अधिक है, और बढ़ जाएगी।

अगर मजदूरों और प्रबन्धकों के समझौते के फलस्वरूप मूल्य बढ़े, तो हमारी अर्थव्यवस्था पर कुल मिलाकर इसका विपरीत प्रभाव और भी अधिक होगा। 1945 में मूल्य प्रशासन कार्यालय द्वारा नियत सीमा 54 डालर प्रति टन से बढ़कर इस्पात का मूल्य यूं भी 1959 में 155 डालर प्रति टन हो गया है। चौदह वर्ष की इस अवधि में, थोक मूल्यों में हुई वृद्धि की यह वृद्धि चार गुनी है।

1953 से अब तक औसत थोक मूल्यों में हुई 9 प्रतिशत वृद्धि में से 7 प्रतिशत इस्पात या इस्पात का प्रयोग करने वाली वस्तुओं के मूल्य में हुई वृद्धि का फल है।

अगर कृषि उत्पादन के थोक मूल्यों में कमी न हुई होती, जो 1953 की तुलना में 9 प्रतिशत गिरे हैं, तो मुख्यत इस्पात उद्योग द्वारा उत्पन्न की गई मँहगाई की प्रवृत्तियाँ और भी अधिक स्पष्ट होतीं। इसका अर्थ है कि भोजन के गिरते हुए मूल्य इस्पात के बढ़ते हुए मूल्य को सतुलित करते रहे हैं।

बार-बार और व्यापक मूल्य वृद्धियों का कारण पूछे जाने पर, इस्पात उद्योग की ओर से हमेशा कहा जाता है कि प्रति घंटा वेतन की दरें भी तीन गुनी हो गई हैं। बार-बार इस बात के दुहराए जाने के कारण बहुत-से लोग समझने लगे हैं कि ऊँचे मूल्यों के लिए केवल मजदूर ही दोषी है। लेकिन इसमें एक निर्णायक महत्त्व का प्रश्न छूट जाता है—प्रतिघंटा वेतन दरों और श्रम की उत्पादन शक्ति का सम्बन्ध।

निगमों के मुनाफे कई तत्वों द्वारा निर्धारित होते हैं, जहाँतक श्रम की लागत एक तत्व है, महत्त्व श्रम के प्रति घंटा मूल्य का नहीं है, वरन् प्रति दिन इस्पात के उत्पादन में श्रम के मूल्य का है। यद्यपि इसके सही आँकडे दुनिया के अधिकतम गुप्त भेदों में से हैं, फिर भी बाह्य प्रमाणों से संकेत मिलता है कि वेतन दरों में वृद्धि को बड़ी हद तक श्रम की उत्पादन शक्ति में हुई वृद्धि ने सतुलित कर दिया है।

आज हमारे सामने जो स्थिति है, उसमें तात्कालिक कार्यवाही की आवश्यकता है। अगर हम आगे भी इसी तरह दशाहीन चलते रहे, तो हमारी अर्थ-व्यवस्था की गति और भी धीमी हो जाएगी, और सामान्य पुन:-निर्माण के एक निर्णायक बिन्दु पर रोजगार और मुनाफे दोनों के लिए खतरा पैदा हो जाएगा।

इसे केवल प्रबन्धकों और मजदूरों के बीच एक द्वन्द्व के रूप में देखने पर, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि पिछले दिनों श्रम की उत्पादन शक्ति में हुई वृद्धि को देखते हुए, बिना मूल्यों में कोई वृद्धि किए, इस्पात उद्योग में वेतनों में वृद्धि होनी चाहिए। उच्च क्षमता स्तर पर काम करते हुए, इस्पात उद्योग तब भी अधिकतम मुनाफे कमा सकता है।

लेकिन मैं समझता हूँ कि जनहित में सर्वोत्तम यह होगा कि वेतन दरों में कोई परिवर्तन किए बिना, इस्पात के मूल्य घटाये जाएँ। इसका प्रमाण स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस्पात उद्योग यह महत्त्वपूर्ण क़दम उठाकर अधिकतम मुनाफ़े कमाता रह सकता है।

स्वभावत: इस प्रस्ताव के प्रति न प्रबन्धकों का दृष्टिकोण उत्साहपूर्ण है, न मजदूरों

का। लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं जब हम सभी को विशेष समूह-हितों के आगे जाकर व्यापक जनहित की दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं गंभीरता से विश्वास करता हूँ कि इस्पात उद्योग के सम्बन्ध मे यह ऐसा ही अवसर है।

इस्पात के मूल्यों में दस डालर प्रति टन की कमी से आगामी शरद ऋतु में मोटरों, कपडे धोने की मशीनों, रेफ्रीजरेटरो, और अन्य घरेलू सामान के मूल्यों मे कमी हो सकती है। इससे हमारे सड़क-निर्माण कार्यक्रम, औद्योगिक निर्माण, मशीनो औजारों और अन्य आवश्यक वस्तुओं की लागत में कमी हो सकती है।

इससे हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को भी वह शक्ति पुनः प्राप्त करने मे सहायता मिल सकती है, जो तभी आ सकती है जब हमारी उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग हो रहा हो, और हमारे लोगो को पूर्णतः रोजगार उपलब्ध हो। स्वयं इस्पात उद्योग में इससे बिक्री बढ़ सकती है, ज्यादा लोगों को, ज्यादा टिकाऊ काम मिल सकता है, और इस्पात के आयात मे दूसरों का मुकाबला करने में हमारी स्थिति सुधार सकती है।

पिछले कुछ महीनों मे हमने मँहगाई के खतरे के बारे मे बहुत कुछ सुना है, लेकिन मैं समझता हूँ आर्थिक विकास के बारे में बहुत कम बात हुई है। मेरा निवेदन है कि दोनों समस्याओं में निकट सम्बन्ध है, और इस्पात मूल्यों को घटाकर आंशिक रूप में दोनों का ही सामना किया जा सकता है।

इस कारण मेरा सादर निवेदन है कि हमारे देश और हमारी अर्थ-व्यवस्था के दीर्घ-कालीन हित में, आप इस्पात उद्योग से यह साहसपूर्ण, रचनात्मक कार्यवाही करने के लिए कहे।

पुन.निर्माण करने और शिक्षा को सुधारने के प्रयत्नों की गति धीमी करें, और नीग्रो अमरीकियों से कहे कि वे कुछ दिन और धीरज रखें।

व्यवहार मे वे कहेंगे—"दुनिया को रोको, हम उतरना चाहते हैं।" लेकिन दुनिया रुकेगी नही, और हममे से सर्वाधिक भीरु भी उतर नही सकते।

हमारी तेजी से बदलती हुई दुनिया मे जितने भयंकर खतरे हैं, उतने इतिहास के किसी अन्य काल मे नही थे। और न किसी अन्य काल ने ऐसे उत्साहवर्द्धक अवसर ही प्रदान किए थे कि व्यक्ति का विकास हो, वास्तव मे उसकी प्रतिष्ठा हो, और मानवी शक्तियाँ सामान्य कल्याण के लिए मुक्त हों।

अत: हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य मे उदारमना व्यक्ति हमारे और अन्य अ-साम्यवादी राष्ट्रो के बीच अधिक सबल विश्व सहयोग की, अन्य लोगों की स्वतन्त्रता और कल्याण मे अधिक रुचि लेने की, और अधिक दृढता की माँग करेंगे, कि हम न केवल सोवियत धमकियो का सामना करें, बल्कि देश मे भी ज्यादा अच्छा समाज निर्मित करें, जिसमे मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार काम करने को स्वतन्त्र हो, चाहे उनकी जाति, धर्म या रंग कुछ भी हो।

नए सन्दर्भ मे लोकतन्त्र के वास्तविक अर्थ की बहस होने पर, नए मतभेदों के प्रकट होने और नए राजनीतिक दृष्टिकोणों के अपनाए जाने पर, हम आशा करते हैं कि उन्ही का पक्ष सबल रहेगा, जो मनुष्य के अधिकारो और जिम्मेदारियों को सर्वोपरि रखते है। आज के खतरनाक, उत्तेजक, और सभावनापूर्ण विश्व के सन्दर्भ में, लोक-तान्त्रिक आस्था के संभाव्य फलों को पुन.परिभाषित करना ऐसे लोगों का कर्त्तव्य है।

का। लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं जब हम सभी को विशेष समूह-हितों के आगे जाकर व्यापक जनहित की दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं गंभीरता से विश्वास करता हूँ कि इस्पात उद्योग के सम्बन्ध में यह ऐसा ही अवसर है।

इस्पात के मूल्यों में दस डालर प्रति टन की कमी से आगामी शरद ऋतु में मोटरों, कपड़े धोने की मशीनों, रेफ्रीजरेटरों, और अन्य घरेलू सामान के मूल्यों में कमी हो सकती है। इससे हमारे सड़क-निर्माण कार्यक्रम, औद्योगिक निर्माण, मशीनी औजारों और अन्य आवश्यक वस्तुओं की लागत में कमी हो सकती है।

इससे हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को भी वह शक्ति पुनः प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है, जो तभी आ सकती है जब हमारी उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग हो रहा हो, और हमारे लोगों को पूर्णतः रोजगार उपलब्ध हो। स्वयं इस्पात उद्योग में इससे बिक्री बढ़ सकती है, ज्यादा लोगों को, ज्यादा टिकाऊ काम मिल सकता है, और इस्पात के आयात में दूसरों का मुकाबला करने में हमारी स्थिति सुधार सकती है।

पिछले कुछ महीनों में हमने मँहगाई के खतरे के बारे में बहुत कुछ सुना है, लेकिन मैं समझता हूँ आर्थिक विकास के बारे में बहुत कम बात हुई है। मेरा निवेदन है कि दोनों समस्याओं में निकट सम्बन्ध है, और इस्पात मूल्यों को घटाकर आंशिक रूप में दोनों का ही सामना किया जा सकता है।

इस कारण मेरा सादर निवेदन है कि हमारे देश और हमारी अर्थ-व्यवस्था के दीर्घ-कालीन हित में, आप इस्पात उद्योग से यह साहसपूर्ण, रचनात्मक कार्यवाही करने के लिए कहें।

पाँच

सातवें दशक का नया मोड़

श्री चौल्स का कथन है कि युद्धोत्तर काल का अन्त होने के साथ, हमारे समाज में नई शक्तियाँ विकसित हो रही हैं। वे अपील करते हैं कि उनका सामना करने में हम घिसे-पिटे राजनीतिक लेबिलों का परित्याग करें। न्यू हैवेन कॉनेक्टिकट में 21 नवम्बर, 1961 को येल लॉफोरम के समक्ष दिया गया भाषण।

दुनिया, अपनी अर्थ-व्यवस्था, और अन्य राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों के प्रसंग में, हम एक मोड़ के निकट आ रहे हैं हम युद्धोत्तर काल के अन्त पर पहुँच गए हैं, और अनिश्चयपूर्वक मनुष्य के इतिहास में एक नये युग के प्रवेशद्वार पर खड़े हैं।

मेरा विश्वास है कि हमारे अपने समाज में जो आर्थिक और सामाजिक विभ्रम दिखाई पड़ते हैं, वे उस हलचल का एक अंग हैं, जो महान् राष्ट्रीय निर्णयों के पहले उत्पन्न होती है।

तीन सशक्त राजनीतिक नीतियाँ हमारे समाज में काम कर रही हैं, जिनमें से किसी के भी बारे में यह संभावना नहीं है कि वह पुराने नारों का शिकार होगी, या परिचित रीतियों से उसका राजनीतिक वर्गीकरण आसानी से हो सकेगा। धीरे-धीरे, हममें से हर एक पर दबाव पड़ रहा है कि हम इन शक्तियों का सामना करें, सार्वजनिक प्रश्नों सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करें, निष्फल धारणाओं का परित्याग करें, और नई स्थितियाँ ग्रहण करें।

इनमें से पहली शक्ति युद्धोत्तर कालीन परस्पर सम्बद्ध जगत का हमारे अमरीकी समाज पर पड़ने वाला विशाल प्रभाव है, और उस प्रभाव के अधिक यथार्थपरक उत्तर के लिए हमारी खोज है।

पिछले पन्द्रह वर्षों से, हममें से बहुतेरे लोग एक-दूसरे को विश्वास दिलाते रहे हैं कि हम जिन विश्व-व्यापी दबावों का सामना करने की कोशिश करते रहे हैं, वे अस्थायी हैं, अगर हम बुद्धिमत्ता और साहस से काम करें तो किसी प्रकार दुनिया का संकट समाप्त हो जाएगा, और हम अपनी भौतिक सुविधाओं का उपभोग करते हुए निरुद्विग्न और सुखी रह सकेंगे।

यह ख़तरनाक रूप में संकीर्ण दृष्टिकोण कुछ हमारे अलगाववादी अतीत के आकर्षण

के कारण है और कुछ विश्व के मामलों में विकृत दृष्टिकोण के कारण, जो इसलिए उत्पन्न हुआ कि युद्ध के बाद हमने विशेषतः अनुकूल स्थिति से अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सामना किया था ।

उस समय अमरीकी अर्थ-व्यवस्था ही युद्ध के विनाश से अछूती थी, युद्धकालीन विशाल पूंजी विनियोजन से सबल हुई थी, और आगे बढ़ने को आतुर थी । अणु-अस्त्रों का एकाधिकार अमरीकी सैन्य शक्ति का दृढ़ आधार था ।

फलस्वरूप, अन्य राष्ट्रों की तुलना में अमरीका की शक्ति बहुत अधिक थी । उस समय दुनिया में शायद ऐसा कुछ भी नहीं था, जो करना चाहने पर नहीं हम नहीं कर सकते थे ।

पिछले कुछ वर्षों में स्थिति बिलकुल बदल गई है । सातवें दशक के प्रारम्भ में, एक सशक्त नया यूरोप, रोमी सभ्यता के बाद पहली बार एक समेकित समाज का निर्माण कर रहा है, सोवियत संघ की औद्योगिक और सैन्य शक्ति केवल हमसे ही कम है, और एक कठोर तथा कट्टु साम्यवादी शासन के अन्तर्गत चीन अपने पड़ोसियों के बारे में कुछ खतरनाक रूप में प्रसारवादी विचार विकसित कर रहा है ।

साथ ही, एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका में एक नई चेतना आई है कि निरक्षरता, गरीबी, और बीमारी को खतम किया जा सकता है, और उनके लोगों को नए अवसर उपलब्ध हो सकते हैं ।

फलस्वरूप आज दुनिया में असीमित सम्भावनाएँ हैं, और गंभीर अनिश्चय हैं । तब, क्या यह आश्चर्य की बात है कि हममें से जो लोग अधिक भीरु हैं, वे उससे बाहर निकलना चाहते हैं, या उसकी उपेक्षा करना चाहते है, या बौद्धिक घरौंदों में घुस जाना चाहते हैं, इस उम्मीद में कि वे जब वापस बाहर आएँगे तो दुनिया किसी प्रकार एक पीढ़ी पहले के अधिक व्यवस्थित रूप में वापस आ चुकी होगी ?

अतः, हम अब दूसरी शक्ति को देखें, जो मेरे विचार से सातवें दशक में राजनीतिक घटनाक्रम का रूप निर्धारित करने में सहायक होगी—हमारी अपनी अर्थ-व्यवस्था में विकसित हो रही शक्तियां । इन शक्तियों के दबावों का सामना करने के प्रयास में हम फिर देखते हैं कि बहुतेरी पुरानी धारणाएँ अगर अप्रासंगिक नहीं, तो खोखली प्रतीत होती हैं ।

अपने सर्वोत्तम रूप में काम करते हुए, जिसमें वह सर्वाधिक प्रभावकारी और गतिशील होती है, हमारी पूँजीवादी व्यवस्था योग्य प्रबन्ध, छोटे मुनाफे और अधिकतम संभव मात्रा तक बिक्री बढ़ाने के सशक्त प्रयासों पर आधारित रही है, जिसमें मात्रा बढ़ने के साथ मुनाफे भी बढ़ते हैं ।

कुछ उद्योगों में हम अब देखते हैं कि मूल्य और वेतन सम्बन्धी ऐसे हथकंड़ों के द्वारा, जिनका आर्थिक तथ्यों से शायद ही कोई सम्बन्ध होता है, इस सूत्र का सर्वथा परित्याग कर दिया गया है । कुछ उद्योगों में मनमाने मूल्य तय कर दिए जाते हैं, ताकि मुनाफे ज्यादा हों, जबकि 25 प्रतिशत या उससे अधिक उत्पादन क्षमता बेकार पड़ी...

राजनीतिक पुनःस्थापन की इस अवधि में एक तीसरी शक्ति का भी सामना हमें करना पडेगा—जिसे हम दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र समझते हैं, उसमें पूर्ण नागरिकता के लिए हमारे नीग्रो नागरिकों की तेजी से बढ़ती हुई माँगें।

पीढ़ियों तक जातीय भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष की अगुग्राई गोरे अमरीकी लोग करते रहे, जिनकी अन्तरात्मा कहती थी कि किसी समूह के विरुद्ध भेदभाव उनके नैतिक सिद्धान्त के विरुद्ध था। अब नीग्रो अमरीकी इसका नेतृत्व कर रहे हैं, और अपने नीग्रो सह-नागरिकों से अपील कर रहे हैं कि हमारे संविधान के अन्तर्गत अपने अधिकारों की माँग करें। नीग्रो लोग प्रतिमास बढ़ती हुई संख्या में इसका उत्तर दे रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, ये स्वर अब केवल हमारे देश में ही नही, वरन् सारी दुनिया में सुने जा रहे हैं। जब तक हम उन अमरीकियों को पूर्ण लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित रखते हैं, जिनके पूर्वज अफ्रीका से आए थे, तब तक हम यह आशा नही कर सकते कि एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधि लोकतांत्रिक आस्था सम्बन्धी हमारे दावों को स्वीकार करेंगे।

इस प्रकार, ये तीन चुनौतियाँ हैं, जो सातवें दशक में अमरीकी लोगों के सामने हैं—दुनिया के साथ हमारे सम्बन्ध, अपनी अर्थ-व्यवस्था की कार्य-क्षमता को सुधारने की हमारी योग्यता; और जाति, विश्वास, या धर्म के आधारों पर किसी अमरीकी के साथ भेदभाव को समाप्त करने के हमारे प्रयास।

इन प्रश्नों के परस्पर विरोधी उत्तरों से सातवें दशक में लगभग निश्चित रूप में नए राजनीतिक सम्बन्धों का उदय होगा।

चूंकि 'उदारवादी' 'दकियानूसी', 'उग्र', या 'प्रतिक्रियावादी' जैसे पुराने राजनीतिक विशेषणों की प्रासंगिकता तेजी से समाप्त हो रही है, अतः नए दृष्टिकोण जितनी जल्दी विकसित हों, उतना ही हम सब के लिए अच्छा होगा। जो नारे चौथे दशक में हमें प्रभावित करते थे, वे अब अधिकाधिक अमरीकियों को प्रेरित या प्रभावित नहीं कर पाते।

मेरा यह मतलब नही कि जिस प्रकार के राजनीतिक तर्क और कार्य हमें सातवें दशक में प्रभावित करेंगे, उनका अतीत से कोई सम्बन्ध ही नही होगा। किसी भी युग में, उदारवाद कुछ मार्मिक मूल्यों में विश्वास की माँग करता है, जिन्हें हर पीढ़ी को, स्वयं अपने अनुभवों और लक्ष्यों के यथार्थ के दृष्टि से पुनः निरूपित करना पड़ता है।

अतीत की भाँति, आने वाले दिनों में भी, दकियानूसी विचारकों से अपेक्षा की जा सकती है कि वे अतीत से अधिक प्रेरणा ग्रहण करेंगे, और भविष्य को आशंका की दृष्टि से देखेंगे।

उनमें से अधिक पराकाष्ठावादी यह माँग करेंगे कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ को, और अपने मित्रों के साथ की गई संधियों को छोड़कर निकल आएँ, अपने नगरों का

रहती है। कुछ अन्य उद्योगों मे मजदूर आन्दोलन कम काम करने के तरीके अपनाता है, जिससे उत्पादन कम होता है, और लागत तथा मूल्य उसी के अनुसार बढ़ जाते हैं।

व्यापक दृष्टि से, यह स्पष्ट है कि हम एक ऐसी स्थिति की ओर बढ़ते रहे हैं जिसमे सशक्त निहित स्वार्थों के लिए अपने हितों की रक्षा करना संभव होता है, जबकि लाखो लोग बेकार घूमते हैं, और हमारी आबादी के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से को पर्याप्त भोजन और मकान और अच्छी शिक्षा नही मिल पाती।

यह पता लगाने के लिए गंभीर पुनः निरीक्षण की आवश्यकता है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के बहुतेरे हिस्से गतिहीन क्यों पडे रहते हैं, हमारे विकास की गति अधिकांश औद्योगिक देशों की तुलना मे पिछड क्यों गई है, बीस प्रतिशत अमरीकी परिवारों की आय अब भी 2000 डालर प्रतिवर्ष से कम क्यों है, और जनसंख्या के कई हिस्सों में बेकारी अब भी दूर क्यों नही हो रही है, जबकि अधिकतम संभव उत्पादन की आवश्यकता है।

हमारी घरेलू अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे जिन प्रश्नों को पूछने और उनका उत्तर खोजने की आवश्यकता है, उनमे से कुछ ये हैं:

हम अपने आवास उद्योग को किस प्रकार पुनः संगठित कर सकते हैं, जिससे कम मूल्यों पर प्रतिवर्ष अधिक संख्या मे और ज्यादा अच्छे मकान बनें ?

हम अपने नगरो मे पुन-निर्माण मे तेजी कैसे ला सकते हैं, जिससे सातवें दशक के अन्दर गन्दी बस्तियाँ समाप्त हो जाएँ ?

हम सर्वोत्तम चिकित्सा सुविधाएँ उन लोगो को कैसे प्रदान कर सकते हैं, जिन्हें सबसे अधिक आवश्यकता है ?

और सबसे बड़ा प्रश्न है कि हम अपनी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को सबल कैसे बना सकते हैं, जिससे सभी प्रतिभाशाली अमरीकी लड़के-लड़कियों को कालेज में प्रवेश करने का अवसर मिले ?

ज्यादा अच्छे उत्तरो के लिए हमारी खोज स्थानीय, राज्य, और संघ शासनों तक ही सीमित नही रहनी चाहिए। इसके लिए हमें मजदूर संगठनों, विश्वविद्यालयों और हमारे व्यापार तथा कृषि संगठनों की सर्वोत्तम बुद्धियों की भी सहायता लेनी चाहिए।

हमारी अर्थ-व्यवस्था वह आवश्यक उपकरण है, जिसके द्वारा हमे अपने सभी नागरिकों के लिए अधिक अवसरो और सुरक्षा की व्यवस्था करनी है, पर्याप्त प्रतिरक्षा व्यवस्था निर्मित करनी है, और उन साधनो की व्यवस्था करनी है, जिनसे लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से अपनी गरीबी को मिटाने का प्रयास करने वाले नए राष्ट्रों की बढ़ती हुई दिक्कतों को हम कम कर सकें।

केवल एक आत्म-विश्वासपूर्ण, गतिशील अमरीका ही इस चुनौती का सामना कर सकता है। लेकिन उत्पादन वृद्धि मे अड़चन डालने वाली पहले से ही मौजूद बाधाओं ने हमारी प्रगति को रोक रखा है।

राजनीतिक पुनःस्थापन की इस अवधि में एक तीसरी शक्ति का भी सामना हमें करना पड़ेगा—जिसे हम दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र समझते हैं, उसमें पूर्ण नागरिकता के लिए हमारे नीग्रो नागरिकों की तेज़ी से बढ़ती हुई माँगें।

पीढ़ियों तक जातीय भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष की अगुआई गोरे अमरीकी लोग करते रहे, जिनकी अन्तरात्मा कहती थी कि किसी समूह के विरुद्ध भेदभाव उनके नैतिक सिद्धान्त के विरुद्ध था। अब नीग्रो अमरीकी इसका नेतृत्व कर रहे हैं, और अपने नीग्रो सह-नागरिकों से अपील कर रहे हैं कि हमारे संविधान के अन्तर्गत अपने अधिकारों की माँग करें। नीग्रो लोग प्रतिमास बढ़ती हुई संख्या में इसका उत्तर दे रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, ये स्वर अब केवल हमारे देश में ही नहीं, वरन् सारी दुनिया में सुने जा रहे हैं। जब तक हम उन अमरीकियों को पूर्ण लोकतान्त्रिक अधिकारों से वंचित रखते हैं, जिनके पूर्वज अफ्रीका से आए थे, तब तक हम यह आशा नहीं कर सकते कि एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधि लोकतान्त्रिक आस्था सम्बन्धी हमारे दावों को स्वीकार करेंगे।

इस प्रकार, ये तीन चुनौतियाँ है, जो सातवें दशक में अमरीकी लोगों के सामने हैं—दुनिया के साथ हमारे सम्बन्ध, अपनी अर्थ-व्यवस्था की कार्य-क्षमता को सुधारने की हमारी योग्यता; और जाति, विश्वास, या धर्म के आधारों पर किसी अमरीकी के साथ भेदभाव को समाप्त करने के हमारे प्रयास।

इन प्रश्नों के परस्पर विरोधी उत्तरों से सातवें दशक में लगभग निश्चित रूप में नए राजनीतिक सम्बन्धों का उदय होगा।

चूंकि 'उदारवादी' 'दकियानूसी', 'उग्र', या 'प्रतिक्रियावादी' जैसे पुराने राजनीतिक विशेषणों की प्रासंगिकता तेज़ी से समाप्त हो रही है, अतः नए दृष्टिकोण जितनी जल्दी विकसित हों, उतना ही हम सब के लिए अच्छा होगा। जो नारे चौथे दशक में हमें प्रभावित करते थे, वे अब अधिकाधिक अमरीकियों को प्रेरित या प्रभावित नहीं कर पाते।

मेरा यह मतलब नहीं कि जिस प्रकार के राजनीतिक तर्क और कार्य हमें सातवें दशक में प्रभावित करेंगे, उनका अतीत से कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा। किसी भी युग में, उदारवाद कुछ सार्विक मूल्यों में विश्वास की माँग करता है, जिन्हें हर पीढ़ी को, स्वयं अपने अनुभवों और तथ्यों के यथार्थ के दृष्टि में पुन. निरूपित करना पड़ता है।

अतीत की भाँति, आने वाले दिनों में भी, दकियानूसी विचारकों से अपेक्षा की जा सकती है कि वे अतीत से अधिक प्रेरणा ग्रहण करेंगे, और भविष्य को आशंका की दृष्टि से देखेंगे।

उनमें से अधिक पराकाष्ठावादी यह माँग करेंगे कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ को, और अपने मित्रों के साथ की गई संधियों को छोड़कर निकल आएँ, अपने नगरों का

पुनःनिर्माण करने और शिक्षा को सुधारने के प्रयत्नों की गति धीमी करें, और नीग्रो अमरीकियों से कहे कि वे कुछ दिन और धीरज रखें।

व्यवहार मे वे कहेगे—"दुनिया को रोको, हम उतरना चाहते हैं।" लेकिन दुनिया रुकेगी नही, और हममे से सर्वाधिक भीरु भी उतर नही सकते।

हमारी तेजी से बदलती हुई दुनिया मे जितने भयंकर खतरे हैं, उतने इतिहास के किसी अन्य काल मे नही थे। और न किसी अन्य काल ने ऐसे उत्साहवर्द्धक अवसर ही प्रदान किए थे कि व्यक्ति का विकास हो, वास्तव में उसकी प्रतिष्ठा हो, और मानवी शक्तियाँ सामान्य कल्याण के लिए मुक्त हो।

अतः हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में उदारमना व्यक्ति हमारे और अन्य अ-साम्यवादी राष्ट्रों के बीच अधिक सबल विश्व सहयोग की, अन्य लोगों की स्वतन्त्रता और कल्याण में अधिक रुचि लेने की, और अधिक दृढ़ता की माँग करेंगे, कि हम न केवल सोवियत धमकियो का सामना करें, बल्कि देश में भी ज्यादा अच्छा समाज निर्मित करें, जिसमें मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार काम करने को स्वतन्त्र हो, चाहे उसकी जाति, धर्म या रंग कुछ भी हो।

नए सन्दर्भ में लोकतन्त्र के वास्तविक अर्थ की वहस होने पर, नए मतभेदों के प्रकट होने और नए राजनीतिक दृष्टिकोणों के अपनाए जाने पर, हम आशा करते हैं कि उन्ही का पक्ष सबल रहेगा, जो मनुष्य के अधिकारो और जिम्मेदारियो को सर्वोपरि रखते हैं। आज के खतरनाक, उत्तेजक, और संभावनापूर्ण विश्व के सन्दर्भ में, लोक-तान्त्रिक आस्था के संभाव्य फलो को पुन.परिभाषित करना ऐसे लोगो का कर्तव्य है।

दूसरा भाग

ज़िम्मेदार राज्य शासन—विकेन्द्रीकरण की कुंजी

अपने राज्य शासनों के संयन्त्र को अपने समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने मे हम पिछड़ गए हैं।

फलस्वरुप, कई अवसरों पर जनमत ने संघ शासन को मजबूर किया है कि वह ऐसी समस्याओ को अपने हाथ में ले, जिन पर राज्यो की राजधानियों मे कार्यवाही करना ज्यादा अच्छा होता। वाशिंगटन मे केन्द्रित शक्ति मे वृद्धि होने का कारण बहुधा हमारी असफलता में देखा जा सकता है कि राज्यों की शासकीय पद्धतियों को हम अपने काल के अनुरूप नही बना सके।

9 मार्च, 1950

छह

गवर्नर का कार्य, एक गवर्नर की दृष्टि में

कानेक्टिकट के गवर्नर के रूप में अपने कार्यकाल के पहले छह महीनों का सिंहावलोकन करते हुए श्री बौल्स अपने नए कार्य की जिम्मेदारियों, खतरों, और अवसरों का विवेचन करते हैं। न्यूयॉर्क टाइम्स मैगजीन, 24 जुलाई, 1949।

पिछले नवम्बर मास मे मैं कॉनेक्टिकट का गवर्नर बन गया, जो मेरे दल, मतदाताओं, और स्वयं मेरे लिए कुछ आश्चर्य की बात थी। मैं बहुत कम, 2,225 वोटों के बहुमत से जीता। कॉनेक्टिकट में चुनावों के आधुनिक इतिहास मे इससे कम बहुमत का केवल यही दृष्टान्त है।

सारे देश की भांति, कॉनेक्टिकट के रिपब्लिकनो को पूर्ण विश्वास था कि वे जीतेंगे। कॉनेक्टिकट 'स्थिर आदतों की भूमि' है, और पिछले एक सौ वर्षों में केवल ग्यारह डेमोक्रेटिक गवर्नर हुए थे।

मैंने गवर्नर का चुनाव लड़ा, इसलिए नही कि मेरे विचार मे डेमोक्रेटिक उम्मीदवारों के 1948 में सफल होने की कोई उम्मीद थी—कॉनेक्टिकट मे तो और भी नही—बल्कि अन्य कई कारणों से, जो मुझे महत्वपूर्ण प्रतीत होते थे।

अधिकांश अन्य राज्यों की भांति, कॉनेक्टिकट के सामने कुछ गंभीर समस्याएँ थी। स्कूलों और अध्यापको की बड़ी कमी थी, जिसे हमारे नगर बिना सहायता के पूरी नहीं कर सकते थे। हमारे यहां मकानों की कमी अन्य राज्यों से भी अधिक थी—और हमारे यहां गन्दी बस्तियां भी अनुपात से अधिक हैं। दो पीढी पूर्व या और भी पहले बनाये गए, पुराने पिंजड़ेनुमा मानसिक अस्पतालो [की] जगह आधुनिक मानसिक अस्पतालो की बड़ी आवश्यकता थी। बढ़ती हुई बेकारी का सामना करने के लिए व्यापक श्रम क़ानूनो की, और वृद्धावस्था की सहायता मे वृद्धि करने की भी आवश्यकता थी।

मैं अनुभव करता था कि ऐसी समस्याओं को राज्य द्वारा हल किया जा सकता है, और करना चाहिए। वाशिंगटन में शासन का अत्यधिक केन्द्रीकरण खतरनाक हो सकता है। लेकिन अगर कोई राज्य शासन अपने लोगों के लिए मकानों की उचित

व्यवस्था नही कर पाता, या अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पाता, या वृद्धों की देख-भाल नही कर पाता, तो संघ शासन को आखिरकार मजबूरी मे, या राज्य कार्य-वाही के अभाव मे कदम उठाना पड़ता है।

मै समझता हूँ कि वाशिंगटन मे शासन के अत्यधिक केन्द्रीकरण को रोकने का का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि सामान्यतः राज्य शासनों की कार्यक्षमता मे सुधार किया जाय।

मुझे आशा थी कि अगर कॉनेक्टिकट मे और अन्य राज्यों में, अपनी समस्याओं का सामना करने में ज़िम्मेदारी और कार्य कुशलता के काफी ऊँचे प्रतिमान स्थापित किये जाएँ, तो वाशिंगटन की ओर देखने की आवश्यकता कम पड़ेगी।

जब चुनाव मे अपनी जीत का अचम्भा कम हुआ, और मैंने अपने काम पर नजर डाली, तो मुझे दो तात्कालिक काम नजर आए। पहला काम यह था कि जिस मंच के आधार पर मैं चुना गया था, उसे कार्यान्वित करने के लिए एक विधायक कार्यक्रम बनाऊँ। दूसरे, मुझे राज्य का बजट तैयार करना था।

मुझे उम्मीद थी कि दोनो ही कामो मे बड़ी कठिनाइयाँ सामने आएँगी। कारण यह था कि कॉनेक्टिकट की सीनेट मे तो डेमाक्रेटिक दल का अच्छा बहुमत था, लेकिन प्रतिनिधि सभा मे रिपब्लिकनो का विशाल बहुमत था।

इन दो ज़िम्मेदारियो के अतिरिक्त, मैं केवल इतना जानता था कि मेरा काम यथाशक्ति सक्षम रीति से राज्य का शासन चलाना है, और विधानमडल की अनुमति से, प्रशासकीय कार्यकुशलता मे सुधार करने के लिए, जो भी सगठनात्मक परिवर्तन हो सकें, करने थे। लेकिन पिछले छह महीनो के अनुभव ने मुझे सिखाया है कि गवर्नर के काम मे और भी बहुतेरे कर्तव्य, ज़िम्मेदारियाँ, सिरदर्द और सन्तोष शामिल है।

गवर्नर की ज़िन्दगी के सर्वाधिक सतोषजनक पक्षो मे से एक यह है कि सारे राज्य से लोग निरन्तर उससे मिलने आते हैं। वस्तुतः गवर्नर का दफ्तर देखने मे, और बहुधा सुनने मे भी, न्यू इगलैण्ड की किसी निरन्तर चल रही नगर-सभा जैसा लगता है।

गवर्नर के काम के इस अग को देखकर मुझे और भी अधिक विश्वास हो गया है, कि वाशिंगटन की कोई एजेन्सी राज्य शासन का स्थान नही ले सकती। राज्य शासन मे, विशेषत कॉनेक्टिकट जैसे छोटे-से राज्य मे, आप उन दृष्टिकोणो के साथ निकट सम्पर्क मे रहते और काम करते है, जो अन्तत सार्वजनिक नीतियो को निर्धारित करते हैं।

जब वे समझते है कि आप सही है, और विशेष रूप मे जब वे समझते है कि आप गलती पर हैं, तो वे शीघ्रता से अपनी राय आप तक पहुँचा देते हैं। यह प्रत्यक्ष लोकतन्त्र है—सीधी बात, और कोई रोक-टोक नहीं।

इसके अलावा, हर गवर्नर की भाँति, मैं अपने दल के नेता के रूप मे काम करता हूँ। यह जरूरी है कि मेरे दल के विधायक, और मेरे दल के नगर अध्यक्ष तथा

राज्य और स्थानीय शाखाओं के अन्य पदाधिकारी किसी भी समय मुझ से मिल सकें, और राजनीतिक निर्णय लेने मे मैं उनकी सहायता करूँ।

विधानमण्डल की बैठक के दिनो मे रोज सुबह मैं उसके डेमाक्रेटिक नेताओ से मिलता, और विधानमण्डल में उनकी उस दिन की कार्यनीति के सम्बन्ध में चर्चा करता। (रिपब्लिकन नेता भी निमन्त्रित किए जाते थे, लेकिन वे बहुत कम अवसरों पर आते।) सत्र के दिनों मे किसी भी समय समितियों के अध्यक्ष श्रम, शिक्षा, आवास या अन्य विधेयको के सम्बन्ध मे किसी नए विधायक सकट को लेकर मेरे पास आते, जिनमे उन्हे शीघ्र उत्तर की आवश्यकता होती।

गवर्नर के ये सभी अतिरिक्त, और विशेष कर्त्तव्य दिलचस्प, रोचक, और आवश्यक है। किन्तु गवर्नर के मूल कार्यों के साथ जुड़ जाने पर इनका बोझ अवश्य ही बहुत अधिक हो जाता है।

मैं शुरू से ही जानता था कि प्रशासन को सुधारने का काम आसान नही होगा। कॉनेक्टिकट की 108 एजेन्सियो से ऐसा प्रशासकीय संयन्त्र बन गया है जिससे रूबी गोल्डबर्ग को भी अचरज होगा। एजेन्सियो के आठ सौ अध्यक्ष या कमिश्नर है, जो कम से कम सिद्धान्त रूप मे, सीधे मुझ को उत्तरदायी हैं। अगर मै 'मन्त्रिपरिषद् की बैठक' बुलाने का साहस करूँ, तो सम्भतः सारे ही आठ सौ को बुलाना होगा। इनमें से बहुतेरी एजेन्सियाँ तो कुकुरमुत्ते की तरह अपने-आप ही 'उग आई' हैं। कुछ की रचना स्पष्टत: राजनीतिक कारणो से हुई है।

रिपब्लिकन और डेमॉक्रेटिक, दोनों ही दलो के सुशासन में रुचि रखने वाले कानेक्टिकट के बहुतेरे नागरिकों ने राज्य के इस खर्चीले, तारतम्यहीन संयन्त्र को सुधारने की चेष्टा की है। गवर्नर विल्बर क्रास ने चौथे दशक मे इसकी कोशिश की थी, और कुछ प्रगति भी हुई थी। मैंने फिर कोशिश करने का निर्णय किया।

अपने सर्वप्रथम कार्यों मे से एक में मैंने विधानमण्डल से अनुरोध किया कि राज्य की एक 'हूवर समिति' के द्वारा शासन को पुनः सगठित किया जाय। शासकीय मितव्ययिता मे रुचि रखने वाले कुछ करदाता समूहों को भी दबाव डालने पर, विधानमण्डल इसके लिए सहमत हो गया। समिति को अगले वर्ष के प्रारम्भ में अपनी सिफारिशें पेश करनी हैं। अगर हम भाग्यशाली रहे, तो 1951 तक संभव है कि कॉनेक्टिकट का शासन कुछ अधिक गतिशील दिखाई पड़े।

एक अन्य प्रशासकीय दिक्कत यह थी कि मेरे सोलहो मुख्य कमिश्नर रिपब्लिकनो द्वारा नियुक्त किये गए, और स्वय भी रिपब्लिकन थे। उनमें से कुछ तो घोषित रूप मे मेरे सामान्य कार्यक्रम और नीतियों के विरुद्ध थे। इनमे कई योग्य व्यक्ति है, लेकिन मैं कभी-कभी सोचता हूँ क्या यह स्थिति वैसी ही नही है, जैसे क्रिसलर कम्पनी द्वारा नियुक्त निदेशक मण्डल को लेकर जनरल मोटर कम्पनी को चलाने की चेष्टा की जाय।

मेरा सबसे बड़ा, और निश्चय ही सबसे कठिन काम यह था कि मैं एक विधायक कार्यक्रम तैयार करूँ, और स्वीकृत कराऊँ। अपने प्रथम सन्देश में मैंने एक कार्यक्रम

निरूपित किया, जिसे तैयार करने के लिए मैं लगभग चुनाव के दिन से ही काम करता रहा था।

इस कार्यक्रम को डेमोक्रेटिक दल, और सीनेट का, तथा कोई सशक्त स्वतंत्र नागरिक समूहों का भी दृढ़ समर्थन प्राप्त था। सीनेट में डेमोक्रेटिक बहुमत होने के कारण, मैं सीनेट द्वारा कार्यक्रम के समर्थन पर भरोसा कर सकता था। लेकिन रिपब्लिकनों द्वारा नियन्त्रित प्रतिनिधि सभा का मामला भिन्न था, और उसे राह पर लाना असम्भव साबित हुआ।

इसका कारण यह है कि जिसे प्रगतिशील रिपब्लिकन और डेमोक्रेट दोनों ही 'सड़ी हुई नगर व्यवस्था' कहते हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, 1850 के पूर्व स्थापित कोई भी कस्बा, चाहे जितना छोटा हो, प्रतिनिधि सभा में दो सदस्य भेज सकता है। चूंकि गृह-युद्ध के समय से, कनेक्टिकट के लगभग सभी छोटे कस्बों का विशाल बहुमत रिपब्लिकन रहा है, और चूंकि उनकी संख्या बड़े शहरों से बहुत अधिक है, अतः सदन में हमेशा एक पहले से ही मौजूद रिपब्लिकन बहुमत सुरक्षित रहता है।

यद्यपि प्रतिनिधि-सभा के दो-तिहाई सदस्य रिपब्लिकन हैं, लेकिन वे केवल एक तिहाई लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कनेक्टिकट के पांच सबसे बड़े शहरों में हमारी जन-संख्या का लगभग 35 प्रतिशत रहता है। लेकिन प्रतिनिधि सभा के 35 प्रतिशत सदस्य चुनने के बजाए, वे तीन प्रतिशत से भी कम सदस्य चुनते हैं।

मुझे स्वय छोटे कस्बो से बड़ा प्यार है। वस्तुतः मैंने स्वय एक छोटे से कस्बे एसेक्स मे रहना पसन्द किया, जिसकी आबादी कुल 3,100 है। फिर भी, मैं इससे सहमत नही हो सकता कि कुल 2,523 पुरुष, स्त्रियां और बच्चो की जनसख्या वाले, छह सबसे छोटे कस्बो के बारह प्रतिनिधि कुल 6,56,000 आबादी के पांच सबसे बड़े शहरो के दस प्रतिनिधियो को मतदान मे हरा दें, जैसा कि आम तौर पर होता है।

विधानमण्डल के सत्र मे वह चाहे जो कुछ भी कहे या करें, कनेक्टिकट की प्रतिनिधि सभा मे रिपब्लिकन विधायक दल के किसी नेता के सामने इसकी दूरस्थ सभावना पर विचार करने की आवश्यकता भी नही आती, कि चुनाव मे उसकी हार हो सकती है। यह स्थिति कल्पनापूर्ण, जिम्मेदार लोकतन्त्र के लिए अनुकूल नहीं है।

मैं समझता हूं कि अब समय आ गया है, कि इस व्यापक लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के सम्बन्ध मे राज्य सरकारें गभीरता से विचार करें। अपनी शासकीय समस्याओ के हल के लिए वाशिंगटन की ओर देखने की वर्तमान आवश्यकता का आगे चलकर यह परिणाम हो सकता है कि शासकीय शक्ति का खतरनाक अति केन्द्रीकरण हो जाय।

अगर हम यह मानकर चलते हैं कि सार्वजनिक समस्याओ को हल करना आवश्यक है, तो इसके पक्ष मे प्रबल तर्क है कि उनमे से यथासभव अधिक से अधिक को राज्यों के माध्यम से हल किया जाय। लेकिन राज्य उस समय तक प्रभावकारी और पर्याप्त कार्यवाही नही कर सकेंगे, जब तक उनकी लोकतान्त्रिक व्यवस्था उन्हे इस योग्य नही बनाती कि उनके नागरिको की इच्छा और सकल्प उनमें परिलक्षित हो।

कनेक्टिकट मे हम ऐसी व्यवस्था प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं।

सात

हमारे स्कूलों की चुनौती

युद्धोत्तर काल में कॉनेक्टिकट में स्कूलों के गंभीर अभाव ने वित्त-व्यवस्था और राजनीति की बड़ी कठिन समस्याएँ प्रस्तुत कीं। गवर्नर बोल्स ने नवम्बर, 1949 में राज्य विधान-मंडल का एक विशेष 'स्कूल' सत्र बुला कर, उसमें यह संदेश प्रस्तुत किया। कॉनेक्टिकट के लगभग दो-तिहाई बच्चे अब ऐसे स्कूलों में पढ़ रहे हैं, जो इसके कुछ सप्ताह बाद स्वीकृत कानून के अन्तर्गत बनाए गए।

हम यहाँ कॉनेक्टिकट की महासभा में इस विशिष्ट उद्देश्य से एकत्रित हुए हैं कि अपने राज्य में सार्वजनिक शिक्षा पर गंभीर प्रभाव वाले कदमों पर विचार करें।

न केवल कॉनेक्टिकट के लिए, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र और दुनिया के लिए, शायद इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कोई एक विषय नहीं है। अगर हम इस समय अपनी शिक्षा-व्यवस्था को सुधारने के लिए उचित कार्यवाही नहीं करते, तो हम अपने लोकतांत्रिक शासन के भविष्य को खतरे में डाल देंगे।

पिछले तीस वर्षों से, बिना किसी बड़ी सफलता के, हम जिन समस्याओं को हल करने के लिए संघर्ष करते रहे हैं, स्पष्टतः हमारे बच्चों को भी बहुसंख्यक उतनी ही उलझी हुई, बल्कि शायद और भी कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

अतः, जब हम अपनी शिक्षा-व्यवस्था को सुधारने की बात करते हैं, तो दरअसल हमारे सामने सवाल यह होता है कि भविष्य की समस्याओं का सामना करने के लिए, हम अपने बच्चों को किस प्रकार तैयार कर सकते हैं। कोई भी समुदाय, राज्य या राष्ट्र अपने भविष्य के कल्याण के लिए जो सर्वाधिक लाभकारी विनियोजन कर सकता है, हम उसकी चर्चा करके निर्णय करने को एकत्रित हुए हैं।

लेकिन ऐसे भी लोग हैं, जिनका कहना है कि जो शिक्षा-व्यवस्था हमारी पीढ़ी के लिए काफी अच्छी थी, वह हमारे बच्चों के लिए भी अवश्य ही काफी अच्छी होगी। मुझे लगता है कि इस दृष्टिकोण का कोई तार्किक आधार नहीं है। हमारे पिताओं को छोटे-छोटे स्कूलों में पुराने किस्म की जो शिक्षा मिली थी, आजके बच्चों को भी वही शिक्षा देकर हम यह आशा नहीं कर सकते कि उससे वे कल अणु-युग की समस्याओं का सामना कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त, आज हमारे सामने हमारी सार्वजनिक शिक्षा के गुणात्मक ह्रास की भी आशंका है। हम न केवल आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, वरन् इसका गंभीर खतरा है कि हम पीछे हटने लगें।

जैसा मैंने बार-बार जोर दिया है, हमें अपने अध्यापक-प्रशिक्षण को, अध्यापकों की भर्ती को, और शिशु कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक अपनी शिक्षा व्यवस्था के पाठ्यक्रम को पुष्ट करना होगा।

इसके अतिरिक्त, हमें स्कूलों के लिए पर्याप्त इमारतों के बढ़ते हुए अभाव की समस्या का भी सामना करना होगा। बुरे स्कूल में अच्छी शिक्षा संभव है, और अच्छे स्कूल में बुरी शिक्षा भी हो सकती है। फिर भी, कॉनेक्टिकट में शिक्षा के स्तर को क़ायम रखने और सुधारने के लिए स्कूली इमारतों के निर्माण को बहुत अधिक बढ़ाना एक तात्कालिक आवश्यक कदम है, और यही आज के इस विशेष सन्देश का विषय है।

स्कूली इमारतों के लिए राजकीय सहायता की सामान्य समस्या निश्चय ही बड़ी उलझी हुई है। इसका अन्तिम हल प्राप्त करने के पहले कई प्रश्नों पर विचार करना होगा। मैं संक्षेप में इन प्रश्नों पर दृष्टि डालूँगा।

पहला प्रश्न है कि हमारी स्कूली इमारतों को बढ़ाने और आधुनिक बनाने की आवश्यकता कहाँ तक है। इस प्रश्न पर असहमति का कोई तर्कसंगत आधार नहीं हो सकता।

स्थानीय स्कूल बोर्डों के पिछले प्रतिवेदन में हमारी स्कूली सुविधाओं की अपर्याप्तता की ओर विशेष ध्यान खींचा गया है। उसमें कहा गया है कि हमारे वर्तमान स्कूलों में से लगभग एक चौथाई उन्नीसवीं सदी में बने थे। अब भी एक कमरे वाले पचपन स्कूलों का उपयोग हो रहा है। चौथे दशक में हमने अपनी स्कूली इमारतों की देख-रेख और उन्हें बढ़ाने के लिए बहुत कम काम किया, और पिछले दस सालों में और भी कम स्कूल बनाये गए हैं। इसके साथ ही, हमारे स्कूली बच्चों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है।

प्रतिवेदन से पता चलता है कि इस समय भी हमारे बच्चों को उचित शिक्षा-सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, और हालत निरन्तर बिगड़ती जाएगी। हमारे बहुतेरे नगरों और कस्बों को नियमित कक्षा-भवनों के बाहर कक्षाएँ लगानी पड़ती हैं, और कई स्कूलों में कक्षाएँ तहखानों में, नगर-सभा-स्थलों में, जहाँ तक कि खत्तियों और गुसलखानों में भी लगाई जाती हैं। ये ज्ञात तथ्य हैं।

भविष्य की ओर देखते हुए, प्रतिवेदन में संक्षेप में बताया गया है कि स्थानीय स्कूल बोर्ड के सदस्यों की राय में, अगले दो वर्षों में, और अगले दस वर्षों में, कितनी नई स्कूली इमारतों की जरूरत होगी। ये संख्याएँ काफ़ी बड़ी हैं। उनसे पता चलता है कि स्कूली इमारतों के निर्माण के एक बड़े कार्यक्रम को, अगले वर्ष या उसके अगले वर्ष नहीं, बल्कि अभी शुरू करने की जरूरत है।

दूसरा सवाल है कि इस उद्देश्य के लिए क्या राज्य की सहायता जरूरी है। यद्यपि ऐसे नगर कम ही हैं जो सचमुच ऋण की कानूनी सीमा तक पहुँच गए हैं, किन्तु ऐसे नगरों की संख्या कहीं अधिक है, जो ऋण लेने की व्यावहारिक आर्थिक सीमा तक पहुँच गए हैं या जल्दी ही पहुँच जाएँगे। इसके अलावा, हम यह भी जानते हैं कि कई स्थानीय शासनों को पहले ही सम्पत्ति कर को आर्थिक सीमा तक बढ़ाना पड़ा है।

अधिकांश मामलों में हमारे नगरों और कस्बों के सामने न केवल स्कूली इमारतें बनाने के काफी बड़े कार्यक्रम हैं, बल्कि पूँजी की अन्य बड़ी आवश्यकताएँ भी हैं, जैसे पानी और सफाई की व्यवस्थाओं में सुधार और विस्तार, दमकल और पुलिस सुरक्षा की व्यवस्था, सार्वजनिक इमारतें आदि। स्थानीय स्कूल बोर्डों द्वारा दी गई विस्तृत जानकारियों से इन सामान्य स्थितियों का पता चलता है।

विशिष्ट रूप में, 116 नगरों और कस्बों के स्कूल बोर्डों का कहना है कि स्कूल निर्माण के आवश्यक कार्यक्रम को चलाने के लिए उन्हें राज्य की सहायता मिलनी आवश्यक है। अन्य सत्रह कस्बों के कथनों से भी यह नतीजा निकाला जा सकता है कि उनके लिए राज्य की सहायता आवश्यक है। केवल सात का स्पष्ट रूप में कहना है कि सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अतः यह बात बिलकुल साफ है कि अगर कॉनेक्टिकट राज्य, अन्य कई राज्यों की भाँति स्कूल निर्माण कार्यक्रमों में स्थानीय समुदायों की वित्तीय सहायता नहीं करता, तो इन स्कूलों का निर्माण नहीं हो सकेगा।

तीसरा प्रश्न है कि क्या हमारे सभी नगरों और कस्बों को सहायता की एक समान आवश्यकता है। उत्तर स्पष्ट है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता में हमारे नगरों और कस्बों में बड़ी विभिन्नता है। हमारे कुछ नगर बहुत धनी हैं, और कुछ बहुत ग़रीब, और बहुतेरे इनके बीच में हैं। खर्च करने की हर समुदाय की योग्यता का निर्णय हमें मुख्यतः इस आधार पर करना होगा कि उसके आकार की तुलना में, उसका मूल कराधान योग्य धन कितना है।

हमारे लोकतांत्रिक समाज में हर बच्चे को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलना चाहिए, चाहे वह धनी कस्बे में रहता हो, या निर्धन कस्बे में। अतः हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि कॉनेक्टिकट के सभी बच्चों को शिक्षा के समान अवसर मिलें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, हमें राज्य की सहायता का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि अपने बच्चों के प्रति अपने आवश्यक कर्त्तव्यों की पूर्ति करने की वित्तीय क्षमता विभिन्न समुदायों में एक जैसी हो जाय।

अब हम चौथे सवाल को देखें। अगर स्कूलों का निर्माण करने के लिए नगरों को राजकीय सहायता की आवश्यकता है, तो क्या कॉनेक्टिकट राज्य वास्तव में इस समय सहायता देने की स्थिति में है?

इस प्रश्न का उत्तर बहुत कुछ नीचे लिखे तथ्यों में मिल जाएगा। शिक्षा में धन

लगाने की हमारी योग्यता का हमारी आय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। कनेक्टिकट के लोगों की कुल आय पिछले दस वर्षों में बहुत अधिक बढ़ गई है। फिर भी, यद्यपि शिक्षा में एक स्पष्ट सकट हमारे सामने है, हम दस वर्ष पहले कहीं कम समृद्धि की अवस्था में शिक्षा पर अपनी आय का जितना हिस्सा लगाते थे, आज शिक्षा के ख़र्च का अनुपात उससे काफ़ी कम है।

इसमें सन्देह की गुंजाइश बहुत कम है कि शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य में कनेक्टिकट के लोग अधिक धन लगाने की स्थिति में हैं।

पाँचवा प्रश्न है—राज्य द्वारा कितनी सहायता दी जाय ? और इसके लिए धन कैसे प्राप्त किया जाय ? मेरा अपना विचार है कि समानता लाने वाली पद्धति के आधार पर, नगरों और कस्बों को राज्य की सहायता का औसत स्कूल निर्माण की लागत के एक-चौथाई से लेकर आधे तक होना चाहिए। विशिष्ट मामलों में सहायता इस औसत से कम या ज़्यादा हो सकती है।

कुछ लोगों ने सुझाव दिया है कि अन्य उद्देश्यों के लिए अपने ख़र्चों में कटौती करके हम आवश्यक धन प्राप्त करें। आप में से जिनकी राय ऐसी हो, उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे साफ़-साफ़ बताएँ कि आप राज्य की वर्तमान सेवाओं में कहाँ कटौती करेंगे और किस हद तक।

उदाहरण के लिए, क्या आप राज्य की पुलिस के ख़र्चे में कमी करेंगे ? क्या आप हमारे वृद्धों और दुर्भाग्यशाली लोगों के कल्याण के लिए किये जाने वाले भुगतानों के ख़र्च में कमी करेंगे ? अगर हाँ, तो कितनी ? क्या आप राज्य के स्वास्थ्य कार्यक्रमों में कटौती करेंगे ? बेकारी के मुआवज़े और मज़दूरों के मुआवज़े के कार्यक्रमों में ? राष्ट्रीय रक्षा दल में ? पर-निर्भर बच्चों को दी जाने वाली सहायता में ?

आप में से कुछ लोग, जो जानते हैं कि हमारे बजट को सन्तुलित रखना कितना कठिन है, और यह भी कि महत्त्वपूर्ण राज्य सेवाओं को ख़तरे में डाले बिना ख़र्चों में कोई बड़ी कटौती करना संभव नहीं है, यह सुझाव रखते हैं कि कर वृद्धि के द्वारा स्कूल निर्माण की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय।

यह एक सच्चा-सीधा दृष्टिकोण है। लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि आर्थिक ढिलाई की इस अवधि में कर वृद्धि से सारे राज्य में व्यापार और रोज़गार के सुधार में गंभीर बाधा आएगी।

इसके अतिरिक्त, मैं समझता हूँ कि कर वृद्धि अनावश्यक है। बजट निदेशक को इस समय जैसी आशा है, अगर हमारी राजस्व सम्बन्धी स्थिति उससे कहीं अधिक बिगड़ नहीं जाती, तो मेरा विश्वास है कि सावधानी से प्रबन्ध करके, और समुचित विधायक कार्यवाही के द्वारा हम अपने आय-व्यय को सन्तुलित रख सकते हैं।[1]

1. गवर्नर बोल्स के प्रशासन काल में कानेक्टिकट उन तीन राज्यों में से एक था, जिन्होंने बिना कर वृद्धि के अपने बजट को सन्तुलित किया।

समस्या को हल करने का एक और महत्वपूर्ण तरीका है। मेरा मतलब स्थानीय रूप में निर्मित स्कूलों के खर्च में राज्य के हिस्से की अदायगी किश्तों में करने की पद्धति से है।

जब कोई व्यापार-संस्था अपने कारखाने को बढ़ाती है, तो वह आमतौर पर कर्ज ले लेती है, और कारखाने के उपयोगी जीवन-काल में, कई वर्षों की अवधि में उस कर्ज को अदा करती है। जब कोई परिवार कोई घर खरीदता है, तो आमतौर पर उसे रेहन रखकर धन की व्यवस्था करता है, और कई वर्षों में उसे अदा कर देता है। कानेक्टिकट में हम इस समय इसी तरीके से अपने शिक्षक कॉलेजों, व्यवसायिक स्कूलों और कॉनेक्टिकट विश्वविद्यालय के नए हिस्सों का निर्माण कर रहे हैं। स्कूल निर्माण के लिए हमें ढाई करोड़ डालर वार्षिक राज्य कोष की आवश्यकता पड़ेगी। यह धन भी हम इसी रीति से प्राप्त कर सकते हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह सत्र व्यक्तिगत रूप में हर विधायक की, और हर राजनीतिक दल की निष्ठा की परीक्षा है। हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को पुष्ट करना चाहते हैं, तो इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम आवश्यक कदम उठाने को तैयार हैं या नहीं ?

प्रश्न बिलकुल साफ और असन्दिग्ध है, और इसमें सचमुच गलतफहमी की कोई गुंजाइश नहीं है। लगभग एक वर्ष से हम लोग स्कूलों के निर्माण की बात कर रहे हैं। हर कदम पर हम आग्रहपूर्वक कहते रहे हैं कि अब कार्यवाही होनी चाहिए। हम अब उस स्थिति पर आ गए हैं, जहाँ आम लोगों की भाषा में या तो काम होना चाहिए, या बहस बन्द होनी चाहिए।

इस सत्र के प्रारम्भ होने के समय, हम सब पर एक बड़ी जिम्मेदारी है। मेरी जिम्मेदारी का एक हिस्सा यह है कि मैं आपको साफ-साफ बताऊँ कि इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मेरी राय क्या है, और अधिक से अधिक तथ्य जो मैं प्राप्त कर सकूँ, आपके सामने प्रस्तुत करूँ।

यह मैंने कर दिया है। अब क्या होता है, यह आपके हाथ में है।

कानेक्टिकट में मकानों के अभाव की पूर्ति

भूतपूर्व सैनिकों द्वारा मकानों की माँग 1948-49 में एक तीव्र राजनीतिक प्रश्न था। इस लेख में बताया गया है कि कम कीमत पर मकान बनाने और स्वामित्व का एक प्रभावी कार्यक्रम कॉनेक्टिकट शासन ने किस प्रकार विकसित किया। इस तरह का प्रयास किसी राज्य शासन द्वारा शायद ही कभी किया गया था। सत्तर हज़ार स्त्री पुरुष और बच्चे अब इस विशेष कार्यक्रम के अन्तर्गत बनाए गए मकानों में रह रहे हैं। नवम्बर, 1950 में प्रकाशित 'टू थर्ड्स ऑफ ए नेशन' शीर्षक परिचर्चा से।

सार्वजनिक आवास कार्यक्रमों में क्या हमारे राज्य शासनों का कोई योग हो सकता है? इस प्रश्न पर न केवल आवास की समस्या में रुचि रखने वालों को, वरन् उन सभी लोगों को सावधानी से विचार करना चाहिए, जो केन्द्रीय शासन पर हमारी बढ़ती हुई निर्भरता से चिन्तित हैं।

आम तौर पर, राज्य कार्यक्रमों द्वारा नहीं, वरन् सघ-नगरपालिका कार्यक्रमों के द्वारा गन्दी बस्तियों की सफाई की जा रही है, कम कीमत के मकान बनाए जा रहे हैं, निजी निर्माण कार्य को प्रोत्साहित किया जा रहा है, और मध्य-वित्त वाले लोगों की कठिन आवास समस्या को हल करने की चेष्टा की जा रही है।

गन्दी बस्तियों की सफाई, पुनर्विकास, मकान सम्बन्धी खोज, मकान बनाने और खरीदने वालों के लिए रेहन ऋण कार्यक्रम आदि के लिए सघ शासन इतनी, इस प्रकार की, और ऐसे रूप में सहायता प्रदान करता है, जो हमारी वर्तमान कर व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकांश राज्यों की क्षमता के बाहर है।

लेकिन कानेक्टिकट के गवर्नर के रूप में अपने अनुभव से मुझे विश्वास हो गया है कि कोई जिम्मेदार सुचालित राज्य शासन काफी बड़ा आवास कार्यक्रम आरम्भ कर सकता है, और धन की व्यवस्था करके चला सकता है। ऐसा कार्यक्रम सघीय और स्थानीय कार्यक्रमों का एक आवश्यक और मूल्यवान पूरक होगा।

उदाहरण के लिए, कोई सक्षम और सक्रिय राज्य शासन, उधार लेने के अधिकार का उपयोग करके, बिना करदाताओं पर बोझ डाले, सामान्य आय वाले लोगों के

लिए प्रति उत्तम आवास कार्यक्रम चला सकता है। छोटे पैमाने पर वह नए कार्यक्रमों और वित्तीय पद्धतियों का परीक्षण कर सकता है, जिसका प्रयास करना संघ शासन के लिए अव्यावहारिक होगा।

नित्य-प्रति के प्रत्यक्ष सम्पर्कों के द्वारा, जो दूरस्थ संघ शासन के लिए असम्भव है, वह स्थानीय आवास अधिकरणों के काम के स्तर को उठा सकता है, और उनके कार्यों को समन्वित कर सकता है। और वह संघीय अनुदानों के साथ पूरक धन की व्यवस्था करके, तथा स्थानीय अधिकारियों को ऐड लगाकर, और सामूहिक कार्यों को प्रोत्साहन देकर गन्दी बस्तियों की सफाई, पुनर्विकास, और कम किराए वाले मकानों की व्यवस्था को और आगे बढ़ा सकता है।

इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न केवल आवास समस्या का ही नहीं है, वरन् लोकतांत्रिक शासन सम्बन्धी हमारी धारणा के मर्म तक, विशेषतः राज्य और संघीय शक्तियों के सम्बन्धों तक जाता है। संघ शासन से कहना कि वह नगर शासनों के साथ मिल कर सार्वजनिक आवास कार्यक्रम का पूरा बोझ उठाए, इसमें न केवल हम राज्य शासन के एक ऐसे पक्ष की अवहेलना करते हैं, जो मेरी राय में बड़ा महत्त्वपूर्ण है, वरन् इसके साथ हाँ वाशिंगटन के ऊपर और अधिक निर्भरता को प्रोत्साहित करते हैं।

कॉनेक्टिकट में आवास सम्बन्धी बड़े ही तीव्र विधायक और राजनीतिक विवादों को दो वर्ष तक सुनने के बाद, मुझे अब कोई गलतफहमी नहीं है कि राज्य का आवास कार्यक्रम आसानी से चलाया जा सकता है। राज्य प्रशासनों में, और राज्यों के राजनीतिक दलों में भी राज्य आवास कार्यक्रमों के विरोधी उतने ही दृढ़ और मुखर हैं, जितने वाशिंगटन में।

फिर भी, जब मैं दस हज़ार साफ, अच्छे, राज्य के धन से बने मकानों की पहली किश्त में 2500 उत्कंठित कॉनेक्टिकट परिवारों को प्रवेश करते देखता हूँ तो भावोद्वेग के साथ इतना ही कह सकता हूँ कि गतिशील लोकतांत्रिक समुदायों के निर्माण में राज्य के आवास कार्यक्रम का जो योग हो सकता है, उसे देखते हुए अगर कुछ विधायक और राजनीतिक सिरदर्द होते भी हैं तो कोई विशेष बात नहीं।

अमरीकी लोगों का यह दृढ़ और उचित विश्वास है कि उचित मूल्य या किराए पर अच्छे मकानों की व्यवस्था का हमारे स्वतन्त्र समाज के स्वास्थ्य में आधारभूत महत्त्व है। वे अनुभव करते हैं कि जब निजी साधनों से ऐसे मकानों के लिए वित्त-व्यवस्था न हो सके, तो उनके शासन का कर्त्तव्य है कि हमारी निजी उद्यम व्यवस्था के अन्तर्गत ही काम करते हुए, इस कमी को पूरी करने के तरीके निकालें।

युद्ध के बाद कॉनेक्टिकट में आवास सम्बन्धी स्थिति राष्ट्र के अन्य औद्योगिक राज्यों जैसी ही थी। मुख्यतः कॉनेक्टिकट के विशेष युद्ध उद्योगों में काम करने के लिए बड़ी संख्या में मज़दूरों के आने के कारण, हमारी आबादी दस वर्षों में लगभग तीन लाख बढ़ गई। लैनहैम अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गए पाँच हज़ार अस्थायी मकानों के अतिरिक्त, युद्ध-काल में मकानों का निर्माण लगभग पूरी तरह रुका रहा।

फलस्वरूप, हमारे छोटे-से राज्य में लगभग 37,000 परिवार मित्रों या सम्बन्धियों के यहाँ टिके हुए थे, और अन्य 42,000 ऐसे मकानों में रहते थे जिन्हें विशेषज्ञ लोग 'उचित से नीचे स्तर का' कहते थे, अर्थात् गन्दी बस्तियों में।

इसके साथ ही, यह भी स्पष्ट हो गया कि कॉनेक्टिकट में निजी उद्यम प्रति वर्ष केवल सात या आठ हजार मकानों के लिए धन की व्यवस्था कर सकता था। 1946 में भूतपूर्व सैनिकों के लिए सघीय सकटकालीन आवास कार्यक्रम के समाप्त हो जाने के बाद, निजी उद्यम द्वारा केवल अधिक आय वालों के लिए मकान बनाये गए, जिनका बिक्री मूल्य 15,000 डालर से अधिक होता था, और किराए 90 डालर मासिक से अधिक होते थे।

क्षुब्ध भूतपूर्व सैनिकों ने अपने सर्वाधिक निकट शासन संस्था से, अर्थात् राज्य विधान-मंडलों से फरियाद की। उनकी यह माँग 1948 में गवर्नर पद के लिए मेरे चुनाव अभियान का एक प्रमुख अंग बन गई, कि निजी ठेकेदारों के काम के पूरक रूप में, निम्न और मध्य-वित्त समूहों के लिए एक सचमुच पर्याप्त राज्य आवास कार्यक्रम के लिए शीघ्र और प्रभावी कार्यवाही की जाय।

पद-ग्रहण करने के बाद मैंने विधान-मंडल से एक राज्य ऋण-पत्र जारी करने का अधिकार माँगा, जिससे 13,000 मकान बनाये जाएँ। मेरा प्रस्ताव अन्ततः इस शर्त पर मान लिया गया कि उनमें से आधे मकान किराए पर दिए जाएँ, और आधे सामान्य आय वाले लोगों के हाथ बिक्री के लिए हों।

इस योजना का एक प्रमुख अंग यह था कि कार्यक्रम की वित्त-व्यवस्था अधिकांश राज्य द्वारा जारी किये गए एक वर्षीय पत्रकों के द्वारा हो, जिनका प्रति वर्ष नवीकरण किया जाय। पचास वर्षीय ऋणों पर ब्याज की सामान्य 2·6 प्रतिशत दर की तुलना में, इस समय इन पत्रकों पर ब्याज की दर 1 प्रतिशत से भी कम है। इस कम खर्च वाली, अल्प-कालीन वित्त व्यवस्था से हम मकानों के औसत किराए को 43 डालर पर ला सके। हर वर्ष ब्याज की चालू दर के अनुसार यह रकम घटाई बढ़ाई जाएगी, और राज्य को कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ेगा।

लेकिन बिक्री के लिए बनाये गए मकानों में नुकसान होने का कुछ खतरा है। अगर ब्याज की दर काफी बढ़ जाय, तो एक घाटा पैदा हो जाएगा जो राज्य को भरना पड़ेगा। मकानों के अभाव की समस्या की तीव्रता के देखते हुए, यह मान लिया गया कि इसका खतरा उठाया जाय। (ब्याज की दर सचमुच बढ़ी, और घाटा पैदा हुआ। लेकिन मकानों के व्यापक अभाव को कम करने के लिए यह मूल्य थोड़ा ही प्रतीत होता है।)

इस व्यापक कार्यक्रम को महासभा के समक्ष प्रस्तुत करने के पहले मैंने सारे राज्य के वास्तुकारों, ठेकेदारों, इमारती सामान के वितरकों, और मजदूर नेताओं से इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ चर्चा की। उन सभी से मुझे आश्वासन मिला है कि कम से कम लागत पर अच्छे किस्म के मकान बनाने में राज्य को अधिकतम सहयोग

देने की पूरी कोशिश की जाएगी।

सारे कॉनेक्टिकट के इमारती मजदूर संगठनों के प्रतिनिधि नेताओं के आश्वासन से मुझे विशेष संतोष मिला कि कम काम करने या नकली काम करने के किसी भी प्रकार के तरीके सहन नहीं किये जाएँगे। यह वादा पूरा किया गया है।

कॉनेक्टिकट में अपने आवास-निर्माण के प्रयत्नों के द्वारा हमने राज्य और स्थानीय शासनों के बीच तथा शासन और निजी उद्यम के बीच एक प्रकार की मिली-जुली जिम्मेदारी क़ायम की है। मैं समझता हूँ कि हमने अधिकतम शंकालु लोगों को भी यह विश्वास दिला दिया है कि राज्य के धन से चलाये गए, सुनियोजित आवास कार्यक्रम से न केवल निजी निर्माण कार्यों को, वरन् घरेलू सामान और फर्नीचर आदि की पूर्ति करने वालों को भी बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

राज्य कार्यक्रम का लगभग हर अंग निजी उद्यम के हाथ में रहता है। स्थानीय आवास अधिकारी निजी वास्तुकारों की सेवाओं का उपयोग करते हैं। वे निर्माण का काम निजी इमारती ठेकेदारों को सौंप देते हैं, जो निजी क्षेत्रों से इमारती सामान खरीदते हैं, और निजी व्यापार की सामान्य स्थितियों में काम करने वाले मजदूरों को काम पर लगाते हैं।

सारी वित्त-व्यवस्था, जिसमें कार्यक्रम के घर-स्वामित्व सम्बन्धी अंग के लिए रेहन-ऋणों की देख-रेख भी शामिल है, निजी बैंकों, और निजी ऋण एजेन्सियों के द्वारा की जाती है।

हमारा अनुमान है कि 13,000 मकानों के पूरे कार्यक्रम से, कानेक्टिकट में 1950 में बने मकानों की संख्या, इसके पूर्व किसी भी वर्ष में बने मकानों की अधिकतम संख्या से 75 प्रतिशत अधिक होगी। बिना राज्य शासन के प्रयत्नों के, ये मकान न बनते।

हर अमरीकी परिवार के लिए एक अच्छा घर, आधुनिक लोकतन्त्र की चुनौती का एक अंग है। इस बोझ के उचित हिस्से को उठाकर, राज्य शासन केवल उस दिन को ज्यादा जल्दी लाने में सहायक होंगे, जब मकान पूरी संख्या में उपलब्ध हों, बल्कि वे यह भी प्रदर्शित करेंगे कि हमारी परम्परागत संघ-राज्य व्यवस्था व्यवहार में भी उतनी ही सक्षम है जितनी सिद्धान्त में, और यह कि 'काम कराने के लिए' हमेशा वाशिंगटन जाना हमारे नागरिकों के लिए जरूरी नहीं है।

नौ

एक प्रस्तावित राज्य स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम

कोई राज्य शासन किस प्रकार 'जबरदस्त बीमारी' के खर्चों को पूरा करने में अपने नागरिकों की सहायता करने के लिए एक बीमा कार्यक्रम बना और चला सकता है, इसे गवर्नर बौल्स ने 28 अगस्त, 1950 को दिये गए एक रेडियो भाषण में बताया।

हम अमरीकी लोग प्रति वर्ष अधिक स्वस्थ होते जा रहे हैं। नवजात शिशु के अपेक्षित जीवन काल मे, 1900 से अब तक हमने लगभग बीस वर्ष जोड़े हैं। क्षय रोग, निमोनिया, और डिप्थीरिया जैसे रोगो के विरुद्ध, जिनसे पहले लोग बड़ी संख्या मे मरते थे, हमने प्रभावी कार्यवाही की है।

हम इस समय कैंसर, बच्चो के पक्षाघात, हृदय रोग, और अन्य ऐसे रोगो के सम्बन्ध मे तेजी से प्रगति कर रहे हैं।

कॉनेक्टिकट में स्वास्थ्य सम्बन्धी हमारे कार्य विशेषतः अच्छे रहे हैं। हमारे पास अति उत्तम डाक्टर और अच्छे अस्पताल हैं। अमरीका के लगभग अन्य किसी भी हिस्से की अपेक्षा हमारे लोग अधिक स्वस्थ और दीर्घजीवी होते हैं।

फिर भी, मैं समझता हूँ कि चिकित्सा सुविधा के सम्बन्ध मे तीन प्रश्न ऐसे हैं, जिनकी ओर हमे अधिक ध्यान देना चाहिए।

प्रथम, गंभीर बीमारियो के शुरू होने के पहले ही उनका पता लगाने के लिए हम क्या कर सकते हैं?

दूसरे, यहाँ कनेक्टिकट मे हम डॉक्टरो के लिए अधिक प्रशिक्षण की व्यवस्था कैसे कर सकते हैं?

तीसरे, लम्बी और विपत्ति लाने वाली बीमारियो के बहुत बड़े खर्चों के सम्बन्ध मे हम क्या कर सकते हैं, जिन्होंने बहुतेरे परिवारों को हमेशा के लिए कर्जदार बना रखा है?

हम पहले प्रश्न से आरम्भ करें—गंभीर रोगो की शुरू मे ही पकड़। डाक्टर इस बात पर सहमत हैं कि अगर वे किसी गंभीर बीमारी को प्रारम्भिक अवस्था मे ही पकड़ लें, तो वे हजारों ऐसे व्यक्तियो की जान बचा सकते हैं जिनके लिए अन्यथा कोई चारा नहीं रहता। इसी कारण हम सबसे आग्रह किया जाता है कि पूरी जाँच के

लिए डॉक्टर के पास वर्ष में एक बार जरूर जाएं।

निजी उदासीनता या आलस्य के कारण हममें से कुछ लोग इस सलाह पर ध्यान नहीं देते। ऐसा लगता है जैसे हमें इसके लिए समय ही नहीं मिलता। लेकिन हजारों अन्य लोग सोचते हैं कि वे ऐसा करने की स्थिति में नहीं हैं।

इस समस्या के हल करने के लिए, मैंने सुझाव दिया है कि हम सारे राज्य में बीस या तीस नैदानिक कक्ष स्थापित करें, जो स्वयं डॉक्टरों द्वारा ही नियंत्रित और संचालित किये जाएं। इनमें से कई ऐसे हो सकते हैं जो एक कस्बे से दूसरे कस्बे में घूमते रहें। इन नैदानिक कक्षों द्वारा कॉनेक्टिकट के सभी नागरिकों की, कम खर्च पर वर्ष में एक या दो बार पूरी स्वास्थ्य परीक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

इसका खर्च एक राज्य-व्यापी बीमा व्यवस्था के द्वारा चलाया जा सकता है, जिसमें कम आय वाले परिवारों के बोझ को कम करने के लिए राज्य शासन प्रत्यक्ष वित्तीय अनुदान दे सकता है।

कई डाक्टरों ने मुझ से कहा है कि ऐसी किसी व्यवस्था के द्वारा नियमित स्वास्थ्य परीक्षा सगठित होने पर कॉनेक्टिकट में शायद प्रति वर्ष हजारों जानें बचाई जा सकती हैं। व्यापक एक्स-रे परीक्षाओं के फलस्वरूप क्षय रोग के विरुद्ध जो प्रगति हुई है, उससे पता चलता है कि ज्यादा बड़े पैमाने पर क्या कुछ किया जा सकता है।

दूसरी समस्या स्वास्थ्य सम्बन्धी हमारे वर्तमान साधनों को बढ़ाने की है, ताकि हमारे सभी लोगों को उस उच्च स्तर की स्वास्थ्य सेवा प्राप्त हो, जो आधुनिक चिकित्सा पद्धति प्रदान कर सकती है। आने वाले वर्षों में हमें ज्यादा अस्पताल बनाने होंगे, उन्हें अच्छी तरह सज्जित करना होगा, और अधिक सख्या में डाक्टरों, नर्सों, और अन्य स्वास्थ्य विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करना होगा।

अपने डॉक्टरी स्कूलों की सुविधाओं को बढ़ाने के सम्बन्ध में मैं विशेषतः चिन्तित हूँ। यद्यपि येल विश्वविद्यालय का मेडिकल स्कूल अमरीका के सर्वोत्तम डाक्टरी स्कूलों में से एक है, किन्तु उसकी भौतिक सीमाएं इतनी हैं कि प्रति वर्ष केवल पैंसठ स्त्री-पुरुष ही प्रशिक्षण समाप्त करके निकल सकते हैं। यह संख्या पचीस वर्ष पहले भी इतनी ही थी।

हमारे अति उत्तम हार्टफ़ोर्ड अस्पताल पर आधारित, एक नया कॉनेक्टिकट विश्व-विद्यालय मेडिकल स्कूल प्रति वर्ष कॉनेक्टिकट के बहुतेरे युवक-युवतियों को चिकित्सा व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित कर सकता है, जो इस समय डाक्टर बनने के अवसर से वंचित रह जाते हैं।

तीसरा प्रश्न, जिसका उत्तर हमें खोजना होगा, सबसे अधिक महत्वपूर्ण है— लम्बी बीमारी पर होने वाला बहुत ही बड़ा खर्च, जो बहुतेरे कॉनेक्टिकट परिवारों की आय क्षमता के परे होता है।

उच्च कोटि की चिकित्सा सुविधा का मूल्य इतना अधिक होने के उचित कारण हैं। आधुनिक अस्पतालों को बनाने, सज्जित करने, और चलाने में बड़ा खर्च आता

है। डाक्टर के प्रशिक्षण मे सात या आठ वर्ष लगते हैं। बहुतेरी आवश्यक नई दवाएँ बड़ी कीमती होती हैं।

इन बडे खर्चों का हमारे हजारो नागरिको पर बडा हानिप्रद प्रभाव पड़ता है। कुछ ने मुझे मर्म-स्पर्शी पत्र लिखे है।

हम एक प्रतिनिधि उदाहरण को देखें, जिसकी जानकारी मुझे कुछ दिन पहले ही मिली। एक परिवार मे पिता की उम्र सैंतालीस वर्ष है, और आमदनी 65 डालर प्रति सप्ताह है—जो अब कॉनेक्टिकट के सभी परिवारों की औसत आय के लगभग है। कड़ी मेहनत से, और किफायतशारी से उन्होने कई वर्षों में 3,100 डालर बचाए थे। उन्हे यह सोचकर सन्तोष मिलता था कि इन धन से वे अपने बड़े ही प्रतिभाशाली पुत्र और पुत्री को कालेज भेज सकेंगे।

लेकिन तीन वर्ष पहले माँ के पिता को, जो उनके साथ ही रहते थे, दिल की एक गभीर बीमारी हो गई। बीमारी लम्बी थी, और उसमें चिकित्सा और अस्पताली देख-भाल के लिए 4,000 डालर की आवश्यकता पड़ी। फलस्वरूप उनकी बचत के 3,100 डालर बड़ी तेजी से घटने लगे, और अब दोनों बच्चों के लिए कालेज जाना असभव हो गया है।

यह मामला असामान्य नही है। निश्चय ही आप अपने नगर मे और भी ऐसे दुखद मामलों को जानते होंगे, जैसे मैं अपने नगर मे जानता हूँ।

ब्लू क्रॉस जैसे वैकल्पिक स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम समस्या की गंभीरता को कम करने में सहायक होते हैं। लेकिन वे किसी भी तरह सभी नागरिको तक नही पहुँच सकते, और सभी तरह के मामलो को अपने हाथ में भी नही ले सकते।

इस स्थिति का सामना करने के लिए मैं एक विशेष कॉनेक्टिकट बीमा योजना का सुझाव रखता हूँ, जो स्वेच्छा पर आधारित वर्तमान कार्यक्रमों की पूरक होगी।

इस कार्यक्रम की वित्तीय व्यवस्था के लिए, हम अपने वार्षिक करो के माध्यम से छोटी-छोटी रकमें एक सामान्य निधि मे जमा करेंगे। यह सामान्य निधि साधारण बीमारियों का खर्च देने के लिए इस्तेमाल नहीं की जाएगी। इसका उपयोग केवल उन लम्बी, गभीर, और खर्चीली बीमारियों में किया जाएगा, जिनका खर्च अपने सामान्य पारिवारिक खर्चों में निकालने की उम्मीद अधिकाश परिवार नही कर सकते।

मैं कुछ विस्तार से बताऊँ कि मेरे प्रस्ताव पर किसी तरह से काम होगा। हर परिवार के लिए, उसकी आय को देखते हुए, एक सीमा निर्धारित कर दी जाएगी। चिकित्सा के जो खर्च इस सीमा से कम होंगे, उनकी अदायगी सामान्य रीति से सीधे की जाएगी, लेकिन उससे अधिक खर्च होने पर परिवार को केन्द्रीय बीमा निधि से सहायता मिलेगी।

उदाहरण के लिए, जिस बीमारी का खर्च किसी परिवार की वार्षिक आय के 10 प्रतिशत से कम हो उसका खर्च बीमार या उसके परिवार द्वारा सीधे दिया जाय। बीमा निधि का इस्तेमाल तभी किया जाय, जब किसी एक वर्ष मे पारिवारिक बीमारी

का कुल खर्च आय के 10 प्रतिशत से अधिक हो।

जिस परिवार का मैंने ऊपर जिक्र किया, यह योजना उसकी निम्न प्रकार से सहायता करती। आपको याद होगा कि पिता की आय 65 डालर प्रति सप्ताह थी, अर्थात् 3,380 डालर वार्षिक। किसी साधारण बीमारी या बीमारियों का खर्च, जो 338 डालर तक हो—अर्थात् 3,380 डालर के 10 प्रतिशत तक—परिवार की आय, बचत, या अन्य साधनों से दिया जायगा।

लेकिन नाना की लम्बी दिल की बीमारी में अस्पताल और डाक्टरों के बिल 4,000 डालर से अधिक हो गए थे। इस अतिरिक्त भारी खर्च के लिए परिवार राज्य बीमा निधि से सहायता माँगता।

सावधानी से तथ्यों की जाँच करने के बाद, बीमारी के कुल खर्च 4,000 डालर, और परिवार की आय के 10 प्रतिशत, 338 डालर (जो परिवार द्वारा सीधे दिया जाता) के अन्तर की अदायगी बीमा निधि द्वारा कर दी जाती। इस मामले में यह रकम 3,362 डालर होती।

यह राज्य-व्यापी कार्यक्रम, हर एक की आय के आधार पर न्यूनाधिक मात्रा में सभी को उपलब्ध होगा। उदाहरण के लिए, अगर किसी परिवार की वार्षिक आय 25,000 डालर है, तो उसके सदस्यों से अपेक्षित होगा कि किसी वर्ष में बीमारी या बीमारियों पर होने वाले खर्च में प्रथम 2,500 डालर, या पारिवारिक आय का दस प्रतिशत वे स्वयं देंगे।

इस प्रस्ताव के कई विभिन्न रूप हो सकते हैं। मुझे विश्वास है कि पूरी बहस और व्यावसायिक विचार-विमर्श से, विशेषतः इस क्षेत्र में व्यापक अनुभव रखने वाली वैकल्पिक स्वास्थ्य बीमा एजेन्सियों की सलाह से इस योजना को सुधारा जा सकता है।

लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते कि समस्या की उलझनों को अपने मार्ग में बाधक होने दें। चिकित्सा का खर्च बढ़ने के साथ, समस्या अधिकाधिक गंभीर होती जाएगी। जिसे कुछ डाक्टर 'विपत्ति लाने वाली' बीमारी कहते हैं, उससे अचानक पीड़ित होने वाले निम्न और सामान्य आय वाले परिवारों के भयंकर बोझ को कम करने का कोई तरीका हमें निकालना पड़ेगा।

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि इस तरह की योजना में चिकित्सा का शासकीय नियंत्रण, या जिसे कुछ पराकाष्ठावादी 'चिकित्सा का समाजीकरण' कहते हैं, उसका कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत, यह कार्यक्रम एक न्यास-मंडल द्वारा संचालित होना चाहिए, जिसमें व्यावसायिक लोगों का—डाक्टरों, अस्पतालों के अध्यक्षों आदि का—बहुमत हो सकता है।

अपनी मर्जी से डाक्टर या रोगी चुनने में, या रोगी और डाक्टर के सम्बन्धों में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसमें चिकित्सा के उच्च स्तर कायम रखे और सुधारे जा सकेंगे। यह निजी स्वास्थ्य साधनों का डाक्टरों, नर्सों, अस्पतालों और दवाखानों

का—उपयोग करने वाला कानेक्टिकट का कार्यक्रम होगा, जिसका वाशिंगटन में संघ शासन से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

इससे न केवल कॉनेक्टिकट के हजारों परिवारों को बड़ा लाभ होगा, जिनके सामने चिकित्सा के भारी खर्चों की आशंका है, बल्कि डाक्टरों, नर्सों, दवाखानों, और अस्पतालों के अध्यक्षों को भी होगा, जो रोगियों को प्रदान की गई सेवाओं का मूल्य प्राप्त करना बहुधा कठिन पाते हैं।

जिन तीन समस्याओं का मैंने जिक्र किया है, वे मुझे बहुत दिनों से परेशान करती रही हैं। मैं जानता हूँ कि ये समस्याएँ आपमें से भी बहुतों को परेशान करती रही हैं। मैंने जो उत्तर प्रस्तुत किए हैं, हो सकता है कि दूसरों के पास उससे ज्यादा अच्छे उत्तर हों। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि हम आवश्यकता का सामना करें, और उसकी पूर्ति के सबसे अधिक व्यावहारिक, सक्षम और कम खर्च वाले तरीके निकालने की चेष्टा मिलकर करें।

हमारे पास कॉनेक्टिकट में बड़ा धन है और स्वास्थ्य सेवाओं के सम्बन्ध में हमने अबतक अति उत्तम कार्य किया है। दूसरों को रास्ता दिखाने के लिए हमारी स्थिति असाधारण रूप में अनुकूल है। अन्यत्र की भाँति यहाँ भी हमारी जिम्मेदारी है कि हम अपने संघ शासन की सहायता लिए बिना, अपनी समस्याओं को प्रभावकारी रीति से राज्य के आधार पर हल करें।

हमारी संघ व्यवस्था अड़तालीस 'राज्य शासन की प्रयोगशालाएँ' प्रदान करती है, जिनमें सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के नए तरीके छोटे पैमाने पर निकाले, परखे, और सवारे जा सकते हैं।

इस परम्परा में हमारे दूर पश्चिम के कुछ राज्यों ने वेतन और काम के घंटों सम्बन्धी हमारे वर्तमान कानूनों के बड़े हिस्से का निर्माण किया। हमारे वर्तमान राष्ट्रीय कृषि विस्तार और खोज कार्यक्रम में कानेक्टिकट ने प्रमुख योग दिया।

अब मेरा सुझाव है कि एक राज्य स्वास्थ्य कार्यक्रम के विकास में भी कॉनेक्टिकट अगुआई करे, जो पर्याप्त चिकित्सा सुविधा, अधिक डाक्टरों और नर्सों, अधिक अस्पतालों और चिकित्सालयों सम्बन्धी हमारे नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति, स्वयं व्यावसायिक लोगों के निर्देशन में करे।

ऐसे किसी प्रयास में शासकीय हस्तक्षेप से डाक्टरों और रोगियों दोनों की ही स्वतंत्रता को हमें ध्यानपूर्वक सुरक्षित रखना होगा। चिकित्सा के अपने ऊँचे स्तर की भी हमें सावधानी से रक्षा करनी होगी।

लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते कि शासन के सहयोगी प्रयासों के प्रति अपने परम्परागत भय के कारण हम चुप बैठ जाएँ, और कुछ न करें।

बीमारी को रोकने और उसका इलाज करने के लिए हमें अपने वर्तमान चिकित्सा साधनों को बढ़ाना होगा। हमें इसके साथ ही यह भी व्यवस्था करनी होगी कि अच्छी चिकित्सा की सुविधाएँ कॉनेक्टिकट के हो परिवार की आर्थिक क्षमता के अन्दर हों।

हमारा कर्त्तव्य है कि निजी चिकित्सक, शासन और अन्य सभी समूह मिलकर ऐसे कार्यक्रमों के द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करें, जो व्यावहारिक हों, कम खर्च वाले हों, और हमारी अमरीकी कार्यपद्धति के अनुकूल हों।

वाशिंगटन में इस समय जिस राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम की चर्चा हो रही है, चिकित्सा व्यवसाय द्वारा उसका तीव्र विरोध होने का एक कारण यह भी है कि उसे बनाने में चिकित्सा व्यवसाय का बहुत कम हाथ था।

इस कारण, मैं विशेष रूप से चाहता हूँ कि एक राष्ट्र-व्यापी समस्या के प्रति, एक विशिष्ट कॉनेक्टिकट दृष्टिकोण सम्बन्धी अपने सुझाव पर मुझे कॉनेक्टिकट के डाक्टरों, नर्सों, चिकित्सा प्रशिक्षकों और व्यावसायिक संगठनों की राय मालूम हो।

मैं यह बता दूँ कि कॉनेक्टिकट के प्रमुख डाक्टरों और सर्जनों की एक अनौपचारिक समिति के साथ, जिसमें राज्य के कुछ चोटी के चिकित्सा विशेषज्ञ भी शामिल हैं, कुछ निजी बैठकों में मैंने इस चुनौती के सम्बन्ध में चर्चा की थी। इन वार्त्ताओं को आगे बढ़ाने के लिए मैंने स्वास्थ्य साधन सम्बन्धी गवर्नर की एक विशेष समिति नियुक्त की है।

कर्मचारियों और खोज कार्य सम्बन्धी मेरे आकस्मिक कोष से समिति के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था कर दी गई है। मेरा ख्याल है कि उनके प्रथम प्रतिवेदन और सिफ़ारिशें अगले कुछ सप्ताहों में तैयार हो जाएँगी।[1]

---

1 जनवरी,.1 1951 में श्री बौल्स के गवर्नर पद से हटने पर यह संभावनापूर्ण योजना खतम हो गई

राज्य-शासन का आधुनिकीकरण

अप्रैल, 1950 में, गवर्नर बौल्स ने अनिच्छुक विधान-मंडल से आग्रह किया कि वह 'लिटिल हूवर कमीशन' की सिफ़ारिशों को स्वीकार करले, जिसे उन्होंने कॉनेक्टिकट राज्य की पुरानी और अकुशल शासकीय पद्धतियों का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया था। यद्यपि प्रतिनिधि सभा के अधिकांश मार्गाए रिपब्लिकन बहुमत ने अधिकांश सिफ़ारिशों को अस्वीकार कर दिया, लेकिन दस वर्ष बाद, सौ वर्ष में पहली बार राज्य की प्रतिनिधि सभा में डेमाक्रेटिक बहुमत होने पर, उसकी सहायता से गवर्नर अब्राहम रिबिकाफ के कार्यकाल में ये सिफ़ारिशें लगभग ज्यों की त्यों स्वीकार कर ली गई।

एक सौ सत्तर वर्षों से, हमारे संघ और राज्य दोनों स्तरों के शासन में, संयम और संतुलन की व्यवस्था वह आधारशिला रही है, जिस पर हमारे लोकतंत्र का निर्माण किया गया है। इसकी व्यावहारिक शक्ति कई ऐसे संकटों के समय प्रमाणित हुई है, जिसमें से कोई भी शासन के इससे दुर्बल रूप को नष्ट कर सकता था।

अगर परखे हुए सिद्धान्त से हमें अतीत की भांति भविष्य में भी काम लेना है, तो हमें कार्यकारी, विधायक, और न्यायिक तीनों विभागों को सबल बनाने के लिए निरन्तर काम करना चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से हर एक जनता के निकट रहे, और उनकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति जिम्मेदार रहे। हमें इनमें से हर एक को आवश्यक उपकरण प्रदान करना चाहिए, जिससे कि समस्याओं और संघर्षों का शीघ्रता से और लोकतांत्रिक रीति से निपटारा किया जा सके।

हमारे संघ शासन की व्यवस्था को अच्छी काम चलाऊ हालत में रखने की दिशा में काफी प्रगति हुई है। हमारी संघीय कांग्रेस और अदालतों की रीतियों और पद्धतियों में निरन्तर सुधार हुआ है, और संघ शासन की कार्यकारी शाखा का कई अवसरों पर पुन: संगठन किया गया है। अपने संघ शासन के कार्य-संचालन के इस निरन्तर पुन परीक्षण के फलस्वरूप हम उसके तीनों महान् विभागों के बीच शक्ति के नाजुक सन्तुलन को कायम रख सके हैं।

लेकिन हमारे संविधान के निर्माताओं ने हमारी शासन व्यवस्था मे एक और भी आधारभूत सतुलन स्थापित किया था—केन्द्रीय शासन और राज्यों के बीच शक्ति और उत्तरदायित्व का विभाजन। ऐसा कहना मेरी राय मे उचित होगा कि इस आवश्यक आधारभूत सतुलन को कायम रखने में हम उतने सफल नही रहे।

हम अपने राज्य शासनों के सयन्त्र को अपने समाज की बढती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में पिछड़ गए हैं।

फलस्वरूप, कई अवसरो पर जनमत ने संघ शासन को ऐसी समस्याएँ अपने हाथ मे लेने पर मजबूर किया है, जिनका निपटारा राज्यों की राजधानियो में करना ज्यादा अच्छा होता। वाशिंगटन मे केन्द्रित शक्ति मे हुई वृद्धि का एक बडा कारण हमारी इस असफलता मे देखा जा सकता है कि हम राज्यों की शासकीय पद्धतियों को समयानुसार विकसित नही कर सके।

हम स्वयं अपने कॉनेक्टिकट राज्य की स्थिति पर नजर डालें। हमारे राज्य का सविधान, और उस पर आधारित शासकीय ढांचा 130 वर्ष से भी पहले, 1818 में विकसित हुआ था। यह एक भिन्न और कही अधिक सरल युग की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया गया था, जब हमारे खेतो, गाँवों, और कस्बों तक औद्योगीकरण का प्रभाव नही पहुँचा था, जब न रेलें थी, न वायुयान, न रेडियो या मोटरें, न विशाल औद्योगिक कारखाने या भीड़ भरे शहर, न व्यापक बेकारी का खतरा था, न अणु-युद्ध का।

हमारा प्रारम्भिक कॉनेक्टिकट राज्य शासन एक सरल संगठन था, जिसमें केवल चार छोटे-छोटे विभाग थे। पचास वर्ष पहले भी, हमारे वर्तमान 202 विभागों और एजेन्सियों मे से 80 प्रतिशत का कोई अस्तित्व नही था। 1930 तक भी, गवर्नर और राज्य के कई विभागों के अध्यक्ष पद को केवल आंशिक समय वाले काम समझा जाता था। उस धीमे चलने वाली, घोडा-गाडी की अर्थ-व्यवस्था की पद्धतियों और आवश्यकताओ का स्थान धीरे-धीरे हमारे मशीन युग की पद्धतियों और आवश्यकताओं ने ले लिया है।

इस बीच राज्यो शासन के काम अच्छे और बुरे कालों मे, रिपब्लिकन और डेमाक्रेटिक दोनों प्रशासनो के अन्तर्गत, और बहुधा खर्च या कार्य-कुशलता का कोई विशेष ध्यान रखे बिना ही निरन्तर बढते रहे हैं।

कई पीढ़ियों से यह बात स्पष्ट रही है कि अन्य राज्यों की भाँति, कॉनेक्टिकट में *शासन की जिम्मेदारियाँ बढ जाने से, प्रशासन में कसाव लाना जरूरी है,* कि आंशिक समय वाला शासन अपव्ययपूर्ण और प्रभावहीन होता है, और यह है कि सुधारो की जरूरत काफी दिनों से है।

लोकतंत्र और कार्य-कुशलता में वृद्धि करने की दृष्टि से, हमारे राज्य-शासन के व्यापक पुनः संगठन के सुझाव कई बार दिये गए। 1902 में रिपब्लिकन गवर्नर ॐ पी० मैक्लीन ने और 1936 में डेमोक्रेटिक गवर्नर विल्बर क्रॉस ने राज्य संवि

धान के आधुनिकीकरण के लिए साहसपूर्ण किन्तु निष्फल प्रयास किए।

ये और अन्य प्रयत्न अधिक सफल क्यों नहीं हुए, इसके कारण स्पष्ट रूप में ये हैं—हमने ऐसे व्यक्तियों और संगठनों की संख्या और शक्ति को हमेशा वास्तविकता से कम समझा है, जिनका कु-शासन में भारी स्वार्थ है। प्रस्तावित परिवर्तनों से प्रभावित होने वाले निहित स्वार्थ बड़े सक्रिय थे, जबकि उनसे लाभान्वित होने वाली जनता सोई हुई थी।

पदग्रहण करने के बाद, 5 जनवरी, 1949, को अपने संदेश में मैंने सुझाव रखा था कि अपने कॉनेक्टिकट शासन को सर्वथा आधुनिक बनाने के लिए आप और मैं—कार्यकारिणी और विधान-मंडल—मिलकर पूरी शक्ति से प्रयास करें। अपने राज्य के लोगों के लिए अपनी सेवाओं में सुधार करने के लिए, अपव्यय को खत्म करने के लिए, और जहाँ भी संभव हो, अपने काम के खर्चों को कम करने के लिए, जो भी परिवर्तन आवश्यक हो, करें।

हम 31 मार्च, 1949 को इस बात पर सहमत हुए कि तीन सदस्यों का राज्य संगठन कमीशन नियुक्त किया जाय, जो हमारे शासन की हर शाखा का अध्ययन करे, अन्य सुव्यवस्थित राज्यों के साथ हमारी शासकीय कार्यप्रणाली की तुलना करे, और सभी मामलों पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे। कमीशन की सिफारिशें अब हमारे सामने हैं।

सरल रूप में, इन निष्कर्षों का सारांश यह है—कमीशन की राय में, 132 वर्ष पुराने संविधान पर आधारित हमारे राज्य शासन का संयन्त्र बुरी तरह और खतरनाक रूप में पुराना पड़ चुका है। एक प्रशासकीय जंगल उग आया है, जो विधान-मंडल, गवर्नर, अदालतों, या जनता के जिम्मेदार नियंत्रण की पहुँच के बाहर है, और जिसके फलस्वरूप व्यापक अपव्यय, अकुशलता, और निराशा उत्पन्न होती है।

यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि अकुशल, और गतिहीन नौकरशाही के दलदल में फँस जाने से हमारे राज्य-शासन को केवल हजारों राज्य कार्यचारियों और बीसियों स्वेच्छित सेवा बोर्डों और कमीशनों के सदस्यों की लगन, योग्यता, और जनसेवा की भावना ने ही रोका है।

कमीशन की सिफारिशें सीधे आधारभूत प्रश्नों को उठाती हैं। जो सुझाव दिये गए हैं, वे आंशिक रूप में बड़े और सफल व्यापारिक उद्यमों के प्रशासकीय अनुभवों से लिये गए हैं। अन्य सुझावों के आधार हैं, हूवर कमीशन द्वारा समर्थित सु-प्रबन्ध के सिद्धान्त, उन राज्यों के अनुभवों जो पुनः संगठन योजनाओं पर अमल कर चुके हैं, और अन्त में, स्वयं कमीशन के सदस्यों के व्यावहारिक अनुभव, जो कॉनेक्टिकट उसकी परम्पराओं, और विशिष्ट समस्याओं से परिचित हैं।

सिफारिशों को कई भिन्न वर्गों में रखा जा सकता है।

प्रथम, यह सुझाव दिया गया है कि हमारे राज्य के वित्तीय ढाँचे का पूरी तरह पुनः संगठन किया जाय, ताकि हमें हर समय अपने राजस्व और खर्चों की सही स्थिति

की जानकारी रहे। आज हमारे बजट सम्बन्धी और वित्तीय कार्यकलापों मे पाँच भिन्न एजेन्सियों की विभाजित जिम्मेदारी है, जिनके लगभग उतने ही भिन्न विचार और दृष्टिकोण हैं।

दूसरे, प्रतिवेदन मे कहा गया है कि हमारे शासन की कार्यकारी शाखा की 202 एजेन्सियों और कमीशनो को कार्यात्मक आधार पर अठारह विभागों मे समेकित कर दिया जाय।

तीसरे, संगठन कमीशन की सिफारिश है कि हमारी अपव्ययपूर्ण काउण्टी व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाय, जो कई पीढ़ियों से हमारे शासन का पाँचवाँ पहिया बनी रही है। दुहरावट, बढ़े हुए खर्च, और अनावश्यक राजनीतिक पदो के रूप में करदाताओं ने इस घिसी-पिसी व्यवस्था की भारी कीमत अदा की है।

चौथे, कमीशन ने हमारे नगरो और कस्बो के लिए सच्चे स्वशासन के एक कार्यक्रम की सिफारिश की है। हमारी वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय शासन संस्थाएँ वास्तव में राज्य शासन के ही क्षेत्र हैं, जो महासभा की अनुमति के बिना बहुतेरी समस्याओं पर कोई ठोस कार्यवाही नहीं कर सकते। सर्वोत्तम शासन वह होता है जो जनता के सर्वाधिक निकट हो। जैसा कमीशन ने कहा है, इसके लिए स्व-शासन और विकेन्द्रीकरण में बहुत अधिक वृद्धि की आवश्यकता है।

पाँचवें, कमीशन ने कहा है कि हमारी अदालती व्यवस्था को पुनः संगठित किया जाय, जिसमे छोटी अदालतों मे पूरा समय देने वाले जज हों, और हमारे उच्च तथा सामान्य वाद न्यायालयों को समेकित किया जाय। इससे हमारी सम्पूर्ण अदालती व्यवस्था में बड़ा सुधार होगा, और राजनीति के अन्तिम अवशेष भी, जहाँ कहीं होंगे, समाप्त हो जाएँगे।

छठे, कमीशन का प्रस्ताव है कि महासभा सुसंगठित हो, उसके लिए पर्याप्त कर्मचारी हों, और लम्बे समय तक लगन से किए जाने वाले उसके काम का उचित मुआवजा दिया जाय।

सातवें, कमीशन की सिफारिश है कि एक अधिक सरल और स्पष्ट राज्य संविधान स्वीकार किया जाय, जिसमें हमारी परम्परागत नागरिक स्वतंत्रा की पूर्ण सुरक्षा हो।

इन प्रस्तावों मे निकट अतीत के इतिहास में पहली बार कॉनेक्टिकट को शासन की एक आधुनिक व्यवस्था प्राप्त होगी। हमारे शासन के तीन मौलिक विभाजनों में से हर एक को सबल बनाकर, ये प्रस्ताव हमारे लोकतंत्र को नई शक्ति प्रदान करेंगे। ये हमे इस योग्य बनाएँगे कि अपने लोगों के लिए हम जिन सेवाओं की व्यवस्था करते हैं, उनमे काफी सुधार कर सकें। इसके अतिरिक्त, इनके द्वारा हम काफी बचत भी कर सकेंगे। कमीशन का अनुमान है कि दो वर्षों में कम से कम एक करोड़ बीस लाख डालर की बचत होगी।

कमीशन का प्रतिवेदन केवल एक ही मामले में निराशाजनक है। मैं जानता हूँ

कि आप में से भी बहुतों को मेरी भाँति खेद होगा कि कमीशन के पाँच सदस्य इस प्रश्न पर सहमत नहीं हो सके कि विधान-मंडल में प्रतिनिधित्व की हमारी सर्वथा बेकार हो चुकी व्यवस्था को किस प्रकार संशोधित किया जाय।

जिन सिद्धान्तों के आधार पर हमारी सीनेट और प्रतिनिधि सभा के सदस्य चुने जाते हैं, उन्हें 1818 के मूल संविधान में निरूपित किया गया था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, सीनेट के सदस्य समान प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने जाते थे। दूसरी ओर प्रतिनिधि सभा के सदस्य मतदाताओं की समान संख्या के बजाए, विशिष्ट नगरों और कस्बों का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने जाते थे।

1818 में यह अनुचित नहीं था। उन प्रारम्भिक दिनों के कॉनेक्टिकट में हमारे सबसे बड़े और सबसे छोटे नगरों के आकार का मामूली सा फर्क अपेक्षतया महत्वहीन था। आज अन्तर कहीं ज्यादा है, और स्थिति उतनी ही भिन्न है। फलस्वरूप प्रतिनिधि सभा के चुनाव की यह पुरानी पद्धति हमारे दो-तिहाई लोगों के प्रति बड़ी भेदभावपूर्ण हो गई है।

इस समय हमारे एक तिहाई लोग प्रतिनिधि सभा के दो तिहाई सदस्यों को चुनते हैं। कॉनेक्टिकट की इस स्थिति को सारे अमरीका में प्रतिनिधि शासन के एक घिसे-पिटे और अलोकतान्त्रिक रूप के विशिष्ट उदाहरण के रूप में पेश किया जाता है।

कमीशन ने एक वैकल्पिक व्यवस्था तैयार करने के लिए लगन के साथ बड़ी चेष्टा की, जिस पर पाँचों सदस्य सहमत हो सकें। दुर्भाग्यवश वे अपने मतभेद दूर नहीं कर सके, और उन्होंने सुझाव दिया कि इस प्रश्न को फिर किसी समय के लिए स्थगित कर दिया जाय। किन्तु कॉनेक्टिकट में पूर्ण लोकतन्त्र की उपलब्धि के मार्ग में नागरिकों के प्रतिनिधित्व की यह असमान व्यवस्था एक बाधा बनी रहती है। जल्दी या देर से इस बाधा को हटाना होगा।

अन्यत्र की भाँति कॉनेक्टिकट में भी राजनीतिक उदासीनता समाप्त हो रही है। अणु-युग में, अपने शासन के कार्यकलाप में हमारी जनता की गंभीर रुचि है, और इतिहास के अन्य किसी भी काल से अधिक, उनका दृढ़ निश्चय है कि शासन उनके सच्चे हितों का प्रतिनिधत्व करेगा।

मैं अपनी स्थिति बिलकुल साफ कर देना चाहूँगा। प्रतिनिधित्व के इस एक प्रश्न को छोड़कर, मैं इस प्रतिवेदन को उत्साहपूर्वक स्वीकार करता हूँ। मैं आपसे, कॉनेक्टिकट की महासभा से, अधिक से अधिक गंभीरता के साथ आग्रह करता हूँ कि इसे कानून का रूप देने के लिए आवश्यक कार्यवाही करें।

तीसरा भाग

स्वतन्त्र व्यक्ति और स्वतन्त्र मन

आज व्यक्ति की स्वतन्त्रता का संघर्ष हमारे काल का निर्णायक राजनीतिक संघर्ष है। अमरीका स्वतन्त्रता के बारे में क्या सोचता है, और इससे भी अधिक, अमरीका स्वन्त्रता के बारे में क्या करता है, इसका प्रभाव हर राष्ट्र के लोगों पर, और हर शासन की नीतियों पर पड़ता है। अपने इतिहास के अन्य किसी भी काल से अधिक, अमरीका में हम लोग इस सम्बन्ध मे विभ्रम को कोई स्थान नहीं दे सकते कि स्वतन्त्रता क्या है, बल्कि हमें स्वतन्त्रता के अर्थ और उसकी प्राप्ति के उपाय के सम्बन्ध में व्यापक, गंभीर सहमति प्राप्त करने की चेष्टा करनी होगी।

28 मई, 1950

ग्यारह

स्वतन्त्रता की अन्तहीन खोज

इस लेख में (न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन, 28 मई, 1950) गवर्नर बोल्स इस बात पर जोर देते हैं कि इस बात को प्रमाणित करना वर्त्तमान पीढ़ी की जिम्मेदारी है कि 'मनुष्य के अधिकारों' को सफलतापूर्वक अठारहवीं सदी से बीसवीं सदी में लाया जा सकता है।

लिंकन ने 1864 में कहा था, "दुनिया को स्वतन्त्रता की कभी कोई अच्छी परिभाषा नही मिली, और इस समय अमरीकी लोगो को इसकी बडी जरूरत है। हम सब अपने को स्वतन्त्रता के पक्ष में घोषित करते हैं, लेकिन एक ही शब्द का प्रयोग करते हुए, हम सब का तात्पर्य एक ही नही होता।"

हमारा तात्पर्य अब भी एक नही होता। फिर भी, आज व्यक्ति की स्वतन्त्रता का संघर्ष हमारे काल का निर्णायक राजनीतिक सघर्ष है। अमरीका स्वतन्त्रता के बारे में क्या सोचता है, और इससे भी अधिक अमरीका स्वतन्त्रता के बारे में क्या करता है, इसका प्रभाव हर राष्ट्र के लोगो और हर शासन की नीतियो पर पड़ता है। अपने इतिहास के अन्य किसी भी काल से अधिक, अमरीका मे हम लोग इस सम्बन्ध में विभ्रम को कोई स्थान नही दे सकते, कि स्वतन्त्रता क्या है, बल्कि हमें स्वतन्त्रता के अर्थ, और उसकी प्राप्ति के उपाय के सम्बन्ध में व्यापक, गंभीर सहमति प्राप्त करने की चेष्टा करनी होगी।

"स्वतन्त्रता' स्वयं एक बहुमुखी शब्द है। स्वतन्त्रता के ही कई रूप हैं। स्वतन्त्रता को अविभाज्य कहने मे न ईमानदारी है, न सचाई।

प्रथम, और स्पष्ट रूप में, राजनीतिक स्वतन्त्रता है—अपने कांग्रेस सदस्यों, राष्ट्रपति, गवर्नरों, प्रधान मन्त्रियों और कर वसूल करने वालो का चुनाव करने की स्वतन्त्रता, शासकीय नीतियो को स्वीकार या अस्वीकार करने की स्वतन्त्रता।

फिर, नागरिक स्वतन्त्रता है—अपने मन की बात खुलकर कहने की, शांति-पूर्ण समूहों मे एकत्र होने की, सार्वजनिक सेवाओ की समान उपलब्धि की, और अपने देश में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-फिरने की आजादी, उचित विचारण का अधिकार, अनुचित तलाशी, गिरफ्तारी और निर्वासन के विरुद्ध सुरक्षा।

फिर, निजी स्वतन्त्रता है—अपना धर्म चुनने की, अपनी इच्छा से विवाह करने,

और अपनी धारणाओं के अनुसार अपने बच्चों को पालने की, और अगर हम चाहें तो शाकाहारी, संन्यासी, या नाचने वाले बनने की स्वतन्त्रता।

फिर कुछ मानवी स्वतन्त्रताएँ हैं— बिना जाति, धर्म, मूल राष्ट्रीयता या आर्थिक स्थिति सम्बन्धी किसी भेद भाव के, आज़ादी के साथ, मानवी गरिमा के अनुरूप, और अपनी पूरी क्षमता तक अपना विकास करने की स्वतन्त्रता। यह एक अपेक्षतया नई धारणा है, जिसकी चर्चा मैं बाद में अधिक विस्तार के साथ करूँगा।

और तब आर्थिक स्वतन्त्रता आती है—जहाँ चाहें काम करने की, अपना काम या व्यापार चुनने की, कोई नई वस्तु बनाने या बेचने की, जो भी वेतन या मूल्य मिल सके, उसे प्राप्त करने की, काम करने या छोड़ देने की, सम्पत्ति रखने या बेच देने की स्वतन्त्रता—जो सब काम करने की हमारी क्षमता, बुद्धि और तत्परता पर निर्भर है।

अधिकांश सभ्यताओं ने इनमें से कुछ न कुछ स्वतन्त्रता प्रदान की है। हमारे युग के पहले, सभी तरह की स्वतन्त्रता प्रदान करने का दावा किसी ने नहीं किया। पुरानी सभ्यताओं में ऐसा अधिक होता रहा है कि ये सभी या अधिकांश स्वतन्त्रताएँ किसी एक विशिष्ट वर्ग को प्रदान की जाती थी, और अन्य सभी वर्ग अधिकांश उनसे वंचित रहते थे।

आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज की कसौटी यह नहीं है कि वास्तविक व्यवहार में ये अलग-अलग स्वतन्त्रताएँ कितनी संख्या में मौजूद हैं। कसौटी यह है कि कितनी स्वतन्त्रता कितने लोगों को उपलब्ध है। इस कसौटी में अमरीका अपनी स्थापना के समय से ही, इतिहास में किसी भी देश या सभ्यता से आगे रहा है। इसके अलावा, दुनिया के अन्य किसी भी देश की तुलना में आज हम अधिक लोगों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रहे हैं।

चूँकि सभी स्वतन्त्रताएँ राजनीतिक स्वतन्त्रता पर निर्भर हैं, अतः हम पहले उस पर विचार करें।

हमारे देश का जन्म अपने नागरिकों के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता के आधार-भूत सिद्धान्त को लेकर हुआ था। पिछले डेढ़ सौ वर्षों से हम इस मूल स्वतन्त्रता को सिद्धान्त के साथ-साथ व्यवहार में भी प्रतिष्ठित करने के लिए कार्यरत रहे हैं। जब अमरीका की स्थापना हुई, उस समय हमारे वयस्क नागरिकों में एक अल्प-संख्या को ही मतदान करने या सार्वजनिक पद ग्रहण करने का अधिकार था। नीग्रो, स्त्रियों और कुछ राज्यों में सम्पत्तिहीन लोग, इनका शासन संचालन में कोई हाथ नहीं था।

आज, चुनावकर लगाने वाले बचे हुए राज्यों में कई लाख नीग्रो लोगों के दुखद अपवाद को छोड़कर, इक्कीस वर्ष से अधिक आयु के सभी अमरीकी नागरिकों को मताधिकार प्राप्त है।

नागरिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में क्या स्थिति है? यह भी स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र, हमारे संविधान और अधिकार-पत्र में प्रतिष्ठित एक आधार भूत स्वतन्त्रता थी।

अधिकांश देशों की तुलना में, विशेषतः तानाशाही देशों की तुलना में, अमरीका का इतिहास स्पृहणीय है। लेकिन सच कहें तो हम जानते हैं कि हमारा इतिहास किसी तरह दोष-रहित नहीं रहा।

अमरीका में गोरे लोगों के लिए नागरिक स्वतंत्रता का जो रूप है, उस रूप में वह दक्षिण के नीग्रो लोगों को कभी उपलब्ध नहीं रही। और आज हम देखते हैं कि कांग्रेस के अन्दर और बाहर, कुछ आडम्बरपूर्ण लोग हर ऐसे व्यक्ति की नागरिक स्वतंत्रता पर जहरीला हमला कर रहे हैं जिसके विचार उनके अपने विचारों से मेल नहीं खाते। यह सिद्धान्त कि हम विश्व साम्यवाद की सबसे बुरी विशेषताओं में से एक की—अर्थात् नागरिक स्वतंत्रता के दमन की—नकल करके उसे पराजित कर सकते हैं, और अपनी स्वतंत्रता को सबल बना सकते हैं, निश्चय ही बड़ा खतरनाक है।

लेकिन इन दुखद तथ्यों के सम्बन्ध में भी आशान्वित होने का काफी कारण है। कोई भी निष्पक्ष प्रेक्षक यह स्वीकार करेगा कि युद्ध के बाद नीग्रो नागरिकों को अधिक नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करने की दिशा में जितनी प्रगति हुई है, उतनी हमारे इतिहास की अन्य किसी तुलनीय अवधि में नहीं। जहाँ तक चरित्र-हनन की मौजूदा बाढ़ का सम्बन्ध है, इस बात के संकेत अभी भी मिल रहे हैं कि न्याय और विवेक की परम्परागत अमरीकी भावना फिर से ऊपर आ रही है।

यद्यपि नागरिक स्वतन्त्रता के प्रश्न ने हमारे सारे इतिहास में बहुतेरे मतभेद उत्पन्न किए हैं, किन्तु आर्थिक स्वतन्त्रता की समस्या और भी अधिक विवादपूर्ण है, और उसमें गलतफहमी की गुंजाइश ज्यादा है।

प्रारम्भिक अमरीका आर्थिक स्वतन्त्रता का एक आदर्श था, सभ्यता के इतिहास में अनोखा। एक नए राष्ट्र, नए लोगों के रूप में हमने अपने आप को एक विशाल देश में पाया, जिसके साधन अप्रयुक्त पड़े थे, जिसमें अपार धन था, विशाल स्वामी-हीन भूमि थी, और कुल्हाड़ी, कुदाली, या हल लेकर काम करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए असीमित आर्थिक अवसर थे।

लेकिन इस पौरुष-भरे युग की प्रिय स्मृतियों के प्रति अपने उत्साह में हमें यह तथ्य नहीं भूल जाना चाहिए कि इतिहास में अभूतपूर्व औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक स्वतन्त्रता की हमारी मूल धारणाओं की कठिन परीक्षा ली। इससे निस्सन्देह राष्ट्रीय धन में, श्रम की बचत करने वाले उपकरणों में, और मजदूरों की उत्पादन-शक्ति में विशाल वृद्धि हुई। लेकिन अधिकाधिक अमरीकियों के हमारे शहरों में इकट्ठा होकर मिलों और कारखानों में वेतन-भोगी मजदूर बनने से, हमारे बहुसंख्यक लोगों के लिए निजी आर्थिक स्वतन्त्रता का पुराना आदर्श लुप्त होने लगा।

अनिवार्य ही, औद्योगिक क्रान्ति ने जो आर्थिक स्वतन्त्रता हमसे छीन ली, उसके कुछ हिस्से को फिर से हासिल करने के लिए हमने लोकतन्त्र के महानतम उपकरण, राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपयोग किया। हम 1929 के बहुत पहले से ही ऐसा करने लगे थे। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में 'पॉपुलिस्ट' आन्दोलन के समय, थियोडोर

रूज़वेल्ट की 'समुचित' नीति और वुडरोविल्सन की 'नई स्वतंत्रता' के समय भी, हम बढते हुए औद्योगिक संयन्त्र और घटती हुई आर्थिक स्वतंत्रता के बीच पुनः सन्तुलन स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे।

1929 की विशाल मन्दी के बाद, यह अनिवार्य था कि लोगों को फिर से काम पर लगाने, और बेकारी के बीमे की व्यवस्था करने के लिए, भविष्य में अनियन्त्रित आर्थिक विपत्ति को रोकने के लिए, किसानों को आय में तेज गिरावट से बचाने के लिए, और अमरीकी परिवारों को समृद्धि के बीच भूखे रहने से बचाने के लिए, हम अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपयोग करें।

इसके साथ ही, एक और विशिष्ट विकास ऐसा हो रहा था, जिसका स्वतन्त्रता सम्बन्धी हमारे विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इतिहास का अध्ययन करने वाला व्यक्ति इस पर आश्चर्य किए बिना नहीं रह सकता, कि पिछले डेढ़ सौ वर्षों में मानवी अधिकारों और स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में समाज के दृष्टिकोण में कितना ज़बर्दस्त परिवर्तन हुआ है।

मेरा तात्पर्य विशेषतः इस बात से है कि बिना उसकी जाति, धर्म या आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान दिए, आज़ादी से, आत्म-सम्मान के साथ, और अपनी क्षमता की पूर्ण सीमा तक अपना विकास करने के हर पुरुष, स्त्री और बच्चे के अधिकार पर अधिकाधिक ज़ोर दिया जा रहा है।

आंशिक रूप में इस धारणा की जड़ें भी वहीं हैं जहाँ हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता की, और इसे भी हमारे स्वतन्त्रता के घोषणापत्र' में प्रयुक्त शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—"कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, कि सृजनकर्त्ता ने उन्हें कुछ स्वयं-सिद्ध और महरणीय अधिकार प्रदान किए हैं, और यह कि इनमें जीवन, स्वतन्त्रता, और सुख प्राप्ति के प्रयास भी हैं।"

आंशिक रूप में यह धारणा हमारे महान् धर्मों की भी है—हममें सबसे छोटे, दुर्बल, गरीब, और बोझ से दबे व्यक्ति का भी ईश्वर की दृष्टि में मूल्य है।

आंशिक रूप में, मानव मन और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ज्यादा अच्छी जानकारी से, व्यक्ति के विकास में वातावरण के, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों के प्रभाव की ज्यादा अच्छी समझ से भी इसका विकास हुआ है।

सभी अमरीकी बच्चों के लिए सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था करने का आन्दोलन मानवी अधिकारों में वृद्धि के सर्वप्रथम और सर्वाधिक निर्णायक संघर्षों में से एक था।

अभी सौ वर्ष पहले तक ही, हमारे कुल सर्वाधिक सम्मानित नागरिकों की राय थी कि 'जनता' के लिए शिक्षा अनुचित, अनावश्यक, और निश्चित रूप में खतर-नाक थी।

अपने शासन को बहुमत की इच्छा के अनुसार चलाने की राजनीतिक स्वतन्त्रता के फलस्वरूप, सार्वजनिक शिक्षा को धीरे-धीरे सारे अमरीका में अपना लिया गया। आज सार्वजनिक शिक्षा सम्बन्धी हमारी धारणा और भी विस्तृत हो रही है, और

अन्ततः इसका यह परिणाम हो सकता है कि सभी योग्य छात्रों को कालेजों में प्रवेश मिले।

अधिक व्यापक मानवी अधिकारों के लिए इस लम्बे संघर्ष का एक और पक्ष बीमारी के बोझ से अधिकाधिक लोगों को मुक्त करने से सम्बन्धित है। हमने यह निश्चय कर लिया कि मानसिक रोगी, अंधे विकलाग, क्षयग्रस्त, और अन्य रोगी तथा पंगु लोगों को अनुपयोगी और सहायता के परे मान कर नही छोड दिया जाएगा।

अपने नगर, राज्य, और संघ शासन के द्वारा, इन लोगो के लिए चिकित्सा सम्बन्धी खोज, पुनर्वास, सार्वजनिक स्वास्थ्य, और अस्पताल सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए हमने अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपयोग किया। मैं समझता हूँ कि अन्त मे हम किसी व्यावहारिक पद्धति के सम्बन्ध मे सहमति प्राप्त कर सकेंगे जिससे रोगो की रोकथाम के लिए आधुनिक चिकित्सा सुविधाएँ हमारे सभी नागरिकों को प्राप्त हों, चाहे उनकी आय जो भी हो।

हमारी सार्वजनिक अन्तरात्मा के विकास का एक और उदाहरण यह है कि हम अपने वृद्ध लोगो को, जिन्हे कठोर औद्योगिक समाज पहले दूध मे से मक्खी की तरह निकाल फेंकता था, सुरक्षा, प्रतिष्ठा, और आराम का एक अच्छा न्यूनतम स्तर—संक्षेप में, अधिक मानवी स्वतन्त्रता—प्रदान करने का अधिकाधिक प्रयत्न कर रहे हैं। एक अन्य उदाहरण गन्दी बस्तियो की सफाई करने के कार्यक्रमों का है, ताकि हमारे अधिकाधिक नागरिकों को अच्छे आधुनिक घरो मे रहने और अपने परिवारों का पालन-पोषण करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

हम जिसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं, वह भौतिक धन की समानता नही है, बल्कि अपनी क्षमता और रुचियों के अनुसार रहने, काम करने, और आगे बढने के अवसरों की समानता है, अच्छी शिक्षा और अच्छे स्वास्थ्य का हमारा और हमारे बच्चो का अधिकार है, मूल न्यूनतम सुरक्षा का अधिकार है। इनके अतिरिक्त, अधिकाधिक राजनीतिक और नागरिक स्वतन्त्रता हमारा लक्ष्य है, जो हमेशा अमरीकी उदारवादी परम्परा का आधार रही है।

यह प्रमाणित करना हमारी पीढ़ी का कार्य है कि 'मनुष्य के अधिकारों' को सफलतापूर्वक अठारहवी सदी से बीसवी सदी मे लाया जा सकता है।

नई आप्रवास नीति की आवश्यकता

नम्बर, 1951 में सर्वे पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में हमारी अन्धी और भेदभावपूर्ण आप्रवास नीति की श्री चौल्स आलोचना करते हैं, और एक ऐसे दृष्टि कोण का समर्थन करते हैं, जिसमें सभी योग्य आवेदकों को एक-सा अधिकार हो, चाहे उनकी मूल राष्ट्रीयता जो भी हो।

अमरीका को आप्रवास सम्बन्धी एक नई नीति की बड़ी आवश्यकता है। हमारी वर्तमान नीति की उत्पत्ति हार्डिंग और कूलिज के युग मे हुई थी, जब हमने नासमझी के साथ यह निश्चय कर रखा था कि हम अपने को दुनिया, उसकी समस्याओं, और उसके लोगों से अलग रखेंगे। इसके सिद्धान्त पुराने पड़ चुके हैं, भेदभावपूर्ण हैं, और उन लोकतांत्रिक धारणाओं का स्पष्ट उल्लंघन करते हैं, जिन पर हमारे देश का निर्माण हुआ है।

स्वतन्त्रता के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर होने के समय से 1921 तक, अमरीका ने सारी दुनिया से आए आप्रवासियों का उदारता से स्वागत किया। फलस्वरूप, लगभग चार करोड़ स्त्री-पुरुष और बच्चे अमरीका में स्वतन्त्रता और संभावनाओं के नए जीवन का निर्माण करने के लिए समुद्रों को पार करके आए।

अमरीका में नए आने वालो का यह प्रवाह, ज्ञात इतिहास के सबसे बड़े निष्क्रमणों मे से एक है। बीसवी सदी के पहले दस वर्षों मे, आप्रवासियों का औसत दस लाख स्त्री, पुरुष और बच्चे प्रतिवर्ष था—हमारी उस समय की जनसंख्या के एक प्रतिशत से अधिक। 1910 तक, अमरीका में रहने वाले सभी लोगों मे से 40 प्रतिशत या तो स्वयं विदेश में पैदा हुए थे, या उनके माता-पिता अथवा उनमें से किसी एक का जन्म विदेश में हुआ था।

आज अमरीका की शक्ति आंशिक रूप मे इस कारण है कि अरसे तक हमने उदारतापूर्वक यूरोप के लोगों को अपने मे शामिल किया। हमारे सर्वश्रेष्ठ विद्वानों, वैज्ञानिकों, सार्वजनिक अधिकारियों, व्यापार और श्रम के नेताओं में से कई पचास वर्ष पूर्व के आप्रवासियों के पुत्र या पौत्र हैं।

1921 में सर्वप्रथम प्रतिबन्धात्मक कानून बनाये गए। इसके द्वारा, अमरीकी महाद्वीप के अन्य भागो से नए आने वालों को छोड़कर, जिन्हें विशेष रूप से छूट दी गई, प्रति वर्ष 3, 50, 000 आप्रवासियों की अधिकतम सीमा बाँध दी गई।

इन प्रतिबन्धों का यह असर पड़ा कि आप्रवासियों की वार्षिक संख्या, पहले महायुद्ध के पूर्व प्रति वर्ष आने वालों की औसत संख्या की एक तिहाई रह गई। इसमें अलग-अलग राष्ट्रों के लिए संख्या निर्धारण में पूर्वी और दक्षिणी यूरोप से आ सकने वाले के विरुद्ध गहरा भेदभाव बरता गया।

लेकिन 1921 का कानून तो केवल एक शुरुआत थी। 1924 में नया कानून बनाया गया, जिसमें आप्रवासियों की कुल संख्या आधी से भी कम कर दी गई, और दक्षिणी तथा पूर्वी यूरोप के लोगों के विरुद्ध और भी कठोर भेदभाव बरता गया। यही कानून, जो 1929 में फिर संशोधित किया गया, अब भी हमारी आप्रवास नीति का आधार है।

इस तीस वर्षीय आप्रवास नीति का पहला लक्ष्य, स्पष्टतः, हमारे देश में आने वाले आप्रवासियों की संख्या को कम करना रहा है। यह लक्ष्य भलीभाँति पूरा हुआ है। यद्यपि 1914 के बाद से हमारी जनसंख्या एक तिहाई बढ़ गई है, लेकिन पहले महायुद्ध के तत्काल पूर्व के चौदह वर्षों में, प्रतिवर्ष अमरीका आने वाले आप्रवासियों की औसत संख्या का छठा भाग ही 1924 के कानून द्वारा निर्धारित संख्याओं के अन्तर्गत प्रतिवर्ष आने पाता है।

आप्रवासियों की संख्या में इतनी बड़ी कटौती स्पष्टतः उस समय भी गलत थी, जब 1924 में हमारी वर्तमान नीति प्रतिष्ठित हुई। ऐसी कठोर नीति अब बहुत बड़े पैमाने पर हो रहे एक विश्व संघर्ष के बीच और भी गलत है। इस संघर्ष में सफल होने की हमारी योग्यता, हमारे लोगों की शक्ति, विश्वास और योग्यता पर निर्भर है।

इस तथ्य से कौन इन्कार कर सकता है कि पिछले एक सौ वर्षों में जो लाखों व्यक्ति अमरीका आए, उन्होंने न केवल आर्थिक शक्ति के सन्दर्भ में, वरन् अध्यात्मिक मूल्यों में भी, हमें असीमित बल प्रदान किया है ?

हमारी वर्तमान भ्रमपूर्ण आप्रवास नीति का दूसरा लक्ष्य कानून द्वारा यह तय करने की चेष्टा करना रहा है, कि किस प्रकार के लोग 'सर्वोत्तम' अमरीकी नागरिक बनते हैं। इस लक्ष्य के अनुरूप, हमारे आप्रवास सम्बन्धी कानूनों का आग्रह है कि अंग्रेज और जर्मन लोग, इटली और रूस के लोगों की अपेक्षा ज्यादा वांछनीय अमरीकी होते हैं।

राष्ट्रीयता के 'वर्ग' की यह धारणा लाखों अमरीकियों को निम्न कोटि के नागरिकों का स्थान देने का यह प्रयास, लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के विरुद्ध जाता है। यह अलोकतान्त्रिक ही नहीं है, हास्यास्पद है।

इस बात का कोई भी प्रमाण कहाँ है, कि उन अमरीकियों की अपेक्षा, जो पश्चिमी और उत्तरी यूरोप के लोगों के वंशज हैं, हमारे देश के निर्माण में उन अमरीकियों का योग कम रहा है, जो दक्षिणी या पूर्वी यूरोप के लोगों के वंशज हैं ?

वस्तुतः, वे राज्य जिनमें पोलैण्ड, इटली, यूनान, और पूर्वी तथा दक्षिणी यूरोप के अन्य देशों से आये आप्रवासी अधिवासित बने हैं—न्यूयार्क, मैसाचुसेट्स, रोड आइलैण्ड, कनैक्टिकट, न्यूजर्सी, पेन्सिलवेनिया, और मिशिगन—ये इस देश के सर्वाधिक समृद्ध राज्यों में से हैं। प्रगतिशील विधि-निर्माण में वे आगे हैं।

निम्नलिखित तुलनाओं से पता चलता है कि 1924 के कानून ने हमारी नीति के एक अंग के रूप में कितने बड़े भेदभाव को प्रतिष्ठित किया है।

पहले महायुद्ध के तत्काल पूर्व के वर्ष 1914 में इटली से 2,96,000 आप्रवासी आए थे। 1921 के अधिनियम ने इसे घटाकर 42, 000 प्रतिवर्ष कर दिया। और 1924 के कानून द्वारा निर्धारित, इटली के आप्रवासियों की वर्तमान सीमा केवल 5,000 प्रतिवर्ष रह गई है।

1914 में पोलैण्ड से 1, 74, 000 आप्रवासी अमरीका आए। 1921 के कानून ने उनकी संख्या घटाकर 30, 000 कर दी, और 1925 के कानून ने कुल 6, 000। यूनान से 1907 में 46, 000 लोग हमारे देश में आए थे, लेकिन अब केवल 207 व्यक्ति प्रति वर्ष ही आ सकते हैं।

इसके विपरीत, 1921 के कानून ने इंगलिस्तान और उत्तरी आयरलैण्ड से आने वालों की उच्चतम सीमा 77,000 निर्धारित की जो इन देशों से किसी एक वर्ष में आने वालों की अधिकतम संख्या से कुछ ही कम थी। 1924 के कानून में भी, जब कुल आप्रवासियों की संख्या आधी कर दी गई, तो इंगलिस्तान के हिस्से को केवल 65,000 तक ही घटाया गया। इस कानून के अन्तर्गत, जर्मनी के आप्रवासियों की कुल वार्षिक संख्या, इटली, यूनान, और पोलैण्ड सहित दक्षिणी यूरोप के सभी देशों की कुल संख्या से काफी अधिक है।

यद्यपि युद्ध के प्रभाव के अन्तर्गत कांग्रेस द्वारा 1948 में स्वीकृत 'विस्थापित व्यक्तियों' से सम्बन्धित कानून ने विशेषत: कठिन परिस्थितियों में फँसे हुए बहुतेरे शरणार्थियों को तत्काल अमरीका आने की अनुमति दे दी, किन्तु इसने हमारी मूल नीति को संशोधित नहीं किया। इस कानून के अन्तर्गत जिन 3, 30, 000 आप्रवासियों को आने दिया गया है, लगभग उन सभी की गिनती सम्बन्धित देशों से भविष्य में आ सकने वालों में कर ली जाएगी।

इसका अर्थ है कि अगर वर्तमान कानून को बदला नहीं जाता, तो भविष्य में कई वर्षों तक, कुछ ऐसे विशेष मामलों की अपेक्षतया छोटी संख्या को छोड़कर, जो संख्या-निर्धारण के प्रतिबन्धों में नहीं आते, दक्षिणी और पूर्वी यूरोप के देशों से आप्रवासियों का आना बिलकुल बन्द रहेगा।

हम इस कानून में से दक्षिण और पूर्वी यूरोप के विरुद्ध किये गए बुरे भेदभाव को भी समाप्त कर सकते हैं। राष्ट्रीय संख्या-निर्धारण को खतम कर देना चाहिए। जहाँ तक जाति, रंग, धर्म और मूल राष्ट्रीयता का प्रश्न है, सभी प्रार्थियों को एक ही स्तर पर रखना चाहिए।

नए आप्रवास कानून के शुरू के वर्षों मे अधिकांश राष्ट्रों की निर्धारित संख्या जल्दी ही भर जाती थी, और दक्षिणी तथा पूर्वी यूरोप के देशों में अपनी बारी की प्रतीक्षा करने वालों की संख्या बढ़ती जाती थी। लेकिन 1930 के बाद, मन्दी के फलस्वरूप, आप्रवासियों की संख्या घट गई और 1940 और बाद, युद्ध के कारण और भी कमी आई। 1940 और 1946 के बीच अंग्रेजों ने अपनी काफी बड़ी वार्षिक संख्या के केवल पाँच प्रतिशत का उपयोग किया, और आयरवासियों ने केवल 3 प्रतिशत था। सभी देशों का कुल औसत केवल 23 प्रतिशत था। हमें चाहिए कि इस कमी को पूरी करने के लिए आप्रवासियों को आने दें, और इसमें राष्ट्रीयता का कोई भेद न करें।

मेरा सुझाव है कि हम अपनी जनसंख्या के एक प्रतिशत के दो बटा पाँच हिस्से को आप्रवासियों की अधिकतम वार्षिक सीमा निर्धारित करें, जिसमें अमरीकी महाद्वीप के बाहर के सभी देश शामिल हों, और कोई राष्ट्रीय सीमाएँ न बाँधी जाएँ। अमरीका के अन्दर-अन्दर विकास के समर्थक लोग जितना पसन्द करेंगे, उससे यह संख्या अधिक हो सकती है। लेकिन मुझे विश्वास है कि अधिकांश अमरीकी इस अनुपात को काफ़ी कम मान कर स्वीकार कर लेंगे।

ऐसे किसी क़ानून के अन्तर्गत किस तरह के लोग अमरीका मे आएँगे? क्या उनमें अपना रास्ता खुद बनाने की क्षमता होगी? क्या वे सबल, कानून का आदर करने वाले, और निष्ठावान होंगे? साम्यवादियों, फ़ासिस्टों, और अन्य अवांछनीय तत्वों के आने का खतरा कितना है?

पीढ़ियों से, यूरोप के हर कस्बे, गाँव, और शहर में, ऐसे बीसियों, सैकड़ों, और हजारों व्यक्ति रहे हैं, जिन्होंने अमरीका को एक स्वप्न देश समझा, जिसमे किसी दिन जाकर रहने की उन्हें आशा थी। ऐसे लोगों की संख्या काफी कम थी जिनमे सचमुच इतना साहस और लगन थी कि वे हजारों मील समुद्र को पार करके अपने परिवारों को एक दूर देश में नए घरों में ले जाएँ, और ये आमतौर पर सबलतम, योग्यतम, और सर्वाधिक दृढ़-निश्चयी लोग थे।

आज लाखों ऐसे लोग, जो अपने पुराने देशों से एक, दो या तीन पीढ़ी से ही दूर रहे हैं, सैकड़ो विभिन्न रीतियों से हमारी आर्थिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के स्वस्थ विकास में योग दे रहे हैं। जबकि हमारे पुराने परिवारों में से कुछ मे यह प्रवृत्ति रही है कि अपने अतीत की गरिमा में ही खोए रहे, और लोकतंत्र को पूर्व-स्थापित मानकर चलें, इन अपेक्षतया नए आने वालों में से बहुतेरे हमारे सम्पूर्ण अमरीकी समाज में नया जीवन और नए प्राण फूँकते रहे हैं।

विदेशों से प्रति वर्ष कुछ हजार नए अमरीकियों के आ जाने से, जो स्वास्थ्य, चरित्र, और योग्यता के आधार पर चुने गए हों, हम कौशल, कल्पना और क्षमता के अपने राष्ट्रीय भंडार में और अधिक वृद्धि करेंगे। और चूँकि ये नए नागरिक बिना राष्ट्रीयता, जाति, या धर्म का ध्यान रखे चुने गए होंगे, अतः वे दुनिया के सामने यह

प्रमाणित करेंगे कि अमरीका में पहले की भाँति आज भी लोकतंत्र केवल एक नारा ही नहीं है।

जहाँ तक साम्यवादियों, फासिस्टों, और अन्य 'अवांछनीय' तत्त्वों का सम्बन्ध है, हमारी अमरीकी आप्रवास सेवा उन्हें छाँटने में बड़ी कुशल हो गई है। विस्थापित व्यक्ति अधिनियम के अन्तर्गत जो ढाई लाख स्त्री-पुरुष आए, उनमें से 1 जनवरी, 1951 तक केवल तीन किसी कारणवश देश से निर्वासित किये गए।

मूर्खतापूर्ण रीति से प्रतिबन्ध लगाने और भेदभाव करने वाले अपने आप्रवास कानूनों की चुनौती को हम स्वीकार करें। इस सम्बन्ध में कार्यवाही की जरूरत बहुत दिनों से है।

तेरह

एक अमरीकी क़स्बे का चित्र—एक्सेस, कॉनेक्टिकट

समाज कल्याण से सम्बन्धित भारतीय श्रोताओं के समक्ष, 1952 के आरम्भ में, श्री बौल्स अमरीका के एक छोटे-से कस्बे का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करते है। यह भाषण बाद में प्रकाशित हुआ, और सारे हिन्दुस्तान में कई भाषाओं में वितरित किया गया।

मुझे हमेशा ऐसा लगा है कि एक देश के लोग सचमुच किसी अन्य देश के लोगो को उस समय तक नही समझ सकते, जब तक कि वे यह न जान लें कि दूसरे देश के लोग कैसे रहते हैं, क्या सोचते हैं, उनके अनुभव और उनकी आशाएँ क्या हैं।

मेरे लिए, हिन्दुस्तान मे सबसे रोचक और फलप्रद समय वह रहा है, जब मैं गाँवो, छोटे कस्बो और बडे शहरो की यात्रा करता रहा हूँ, मोहल्लो में जाता रहा हूँ, और यह देखने की कोशिश करता रहा हूँ, कि लोग कैसे रहते है, किन बातो के बारे मे सोचते है, और कैसे अपने बच्चों को पालते है।

चूँकि मैं चाहता हूँ कि आप मेरे देश को समझें, इसलिए मैं आपको कॉनेक्टिकट राज्य में एसेक्स के छोटे-से कस्बे के बारे मे बताना चाहूँगा, जहाँ मैं रहता हूँ।

कॉनेक्टिकट अमरीका के उत्तर-पूर्वी भाग में एक छोटा-सा राज्य है, जिसकी आबादी केवल बीस लाख है। यह 1635 मे बसा था, और हमारे सबसे पुराने राज्यों मे से भी है। यह तारीख आपको तो कुछ ही समय पहले की प्रतीत होगी, लेकिन मेरे देश के लिए बहुत पुरानी है।

कॉनेक्टिकट को इंगलिस्तान से आये हुए लोगो ने बसाया। वे अधिकांश किसान थे जो धार्मिक उत्पीड़न से बचने के लिए आए थे, जिसके वे अपने देश मे शिकार हुए थे। वे इसलिए आए थे कि निरंकुशता और तानाशाही से स्वतंत्र होकर, अपनी इच्छानुसार ईश्वर की उपासना कर सकें, और जिस तरह उचित समझें, अपना जीवन बिता सकें।

कॉनेक्टिकट की अधिकांश भूमि, जिसे वे जोतते थे, बजर और पथरीली थी, और सर्दी बड़ी कठोर होती थी। अतः उन्नीसवी सदी के मध्य मे, जब उन्होंने अमरीकी पश्चिमी की नई आश्चर्यजनक भूमि के बारे में सुना, जहाँ लगभग किसी भी

दिशा में, आप मील भर तक हल चलाते चले जा सकते थे, जहाँ भूमि उपजाऊ और जलवायु अधिक अनुकूल थी, तो पूरे के पूरे गाँव और कस्बे उठ कर पश्चिमी की ओर चले गए।

उन्नीसवी सदी के अन्तिम भाग मे, यूरोपीय आप्रवासियो की नई लहर ने कॉनेक्टिकट को फिर से बसाया। आज राज्य का दूसरा सबसे बड़ा नगर न्यू हैवेन, 65 प्रतिशत 'इटालवी' है—अर्थात्, वहां के 65 प्रतिशत लोगो का, या उनके माता-पिता अथवा नाना-दादा में से किसी का जन्म इटली में हुआ था। इसी तरह, न्यू ब्रिटेन में 60 प्रतिशत 'पोलैण्डवासी' हैं, और राज्य की राजधानी हार्टफोर्ड में 40 से 50 प्रतिशत तक 'आयरी' लोग हैं।

सिवाय उसके लोगों के, कॉनेक्टिकट मे प्राकृतिक साधन लगभग नही हैं। वहाँ न कोई खाने हैं, न तेल। फिर भी, कॉनेक्टिकट मे प्रति व्यक्ति आय अमरीका मे सबसे अधिक है, मुख्यतः इस कारण कि वहाँ के लोग बडे ही कुशल है। हमारे सैकडों कारखानो मे, हर प्रकार के विनिर्माण कार्य में, यह कौशल रचनात्मक कार्यों में लगता है, और बदले मे लोगों को उच्च वेतन मिलता है।

सौ वर्ष पहले कॉनेक्टिकट के केवल 15 प्रतिशत भाग में जगल था। शेष पर खेती होती थी। यद्यपि राज्य की आबादी अब पहले से बहुत अधिक घनी हो गई है, और कई बडे शहर हैं, लेकिन 70 प्रतिशत भूमि फिर से जगल हो गई है, और पुराने खेतो मे से अधिकाश जगल मे आ गए है।

राज्य मे दो बड़े विश्वविद्यालय हैं—येल विश्वविद्यालय और कॉनेक्टिकट विश्वविद्यालय—जिनमे कुल लगभग बारह हजार छात्र-छात्राएं हैं। सात छोटे कालेज और अध्यापको के प्रशिक्षण के लिए चार विशेष कालेज भी है।

हमारी सार्वजनिक स्कूल व्यवस्था अच्छी है, लेकिन उतनी अच्छी नही, जितनी हमारी राय मे होनी चाहिए। हम उसे सुधारने की निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। हम इसकी भी कोशिश कर रहे हैं कि कॉनेक्टिकट के हमारे बच्चे अधिक सख्या में कालेज जा सकें। हमारे कानून के अनुसार, सोलह वर्ष की आयु तक सभी लडके-लडकियो का स्कूल जाना आवश्यक है। उनमे से लगभग 30 प्रतिशत 'हाई स्कूलो' या माध्यमिक स्कूलो से उत्तीर्ण होने के बाद विश्व-विद्यालयो मे जाते हैं।

हम अपनी आवास व्यवस्था और अपने अस्पतालों को भी सुधारने की निरन्तर चेष्टा कर रहे हैं, और यहाँ भी अच्छी प्रगति हो रही है। अपने सभी लोगो के लिए अधिक फलदायक, और अधिक आत्म-सम्मानपूर्ण जीवन का आधार निर्मित करने के लिए, हम हर सभव प्रयत्न कर रहे हैं।

जिस कस्बे मे मैं रहता हूँ, एसेक्स, उसमें लगभग 3,500 लोग रहते हैं। यह अति सुन्दर नगर कॉनेक्टिकट नदी के किनारे बसा हुआ है। एसेक्स के लोग विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगे हुए हैं। पाँच छोटे-छोटे कारखाने हैं, जिनमें से सबसे बड़े कारखाने में लगभग दो सौ व्यक्ति काम करते हैं। कुछ लोग वर्ष में दो से छह महीने

तक किसी कारखाने में काम करते हैं, अन्य चार-पांच महीनों तक खेती करते हैं, और एक महीना मछली पकड़ते हैं। हर साल वसन्त में नदी में बड़ी मछलियां होती हैं, और आम तौर पर उनका अच्छा मूल्य मिलता है।

एसेक्स में बहुत धनी लोग नहीं हैं, और न सचमुच बहुत ग़रीब लोग हैं। वहां के सात सौ परिवारों में से, मैं केवल पन्द्रह-बीस को गिन सकता हूं, जिनके पास कोई नौकर है। जहां तक मैं जानता हूं, केवल एक परिवार के पास दो नौकर हैं।

बात यह है, कि अमरीका में नौकरों को इतना अधिक वेतन मिलता है, कि हममें से अधिकांश नौकर नहीं रख सकते। यह भी एक कारण है कि हम इतने सारे बिजली के उपकरणों का उपयोग करते हैं, जिसे लेकर मेरे कुछ भारतीय मित्र हमारे साथ मज़ाक करते हैं। हमने ये उपकरण नौकरों का स्थान लेने के लिए बनाए हैं।

हमारे कस्बे के शासन को 'प्रत्यक्ष लोकतन्त्र' कहा जा सकता है। अगर आग बुझाने के नए इंजन, या किसी नई सड़क या स्कूल की ज़रूरत हो, तो नगरपालिका कार्यालय पर एक सूचना लगा दी जाती है कि अमुक तारीख़ की रात को उस प्रश्न पर निर्णय करने के लिए नगर-सभा होगी।

कस्बे में मतदान योग्य आयु के वे सभी लोग सभा में आते हैं, जिनकी सम्बन्धित प्रश्न में रुचि होती है। वे एक सभा संचालक चुनते हैं, जो सभा की अध्यक्षता करता है, और सारा कस्बा किसी विधान-मंडल या विधान सभा की तरह काम करता है, जिसमें हर व्यक्ति का एक वोट होता है। उस रात हम सड़क, या दमकल, या स्कूल या और जो भी प्रश्न हो, उसके सम्बन्ध में एक लोकतांत्रिक निर्णय करके घर लौटते हैं।

अपना शासन चलाने के लिए एसेक्स में नगर सभा के अतिरिक्त तीन मुख्य नगर अधिकारी होते हैं, जो जनता द्वारा चुने जाते हैं। उन्हें 'सेलेक्टमेन' कहा जाता है। 'सेलेक्टमेन' बहुमत वाले दल के सदस्य होते हैं, और तीसरा अल्पमत वाले दल का सदस्य होता है। उसका काम है कि वह बहुमत दल के सदस्यों पर नज़र रखे ताकि हम सभी के हितों को ईमानदारी से और कुशलतापूर्वक ध्यान में रखा जाय।

मैं कह सकता हूं कि हमारे कस्बे में अधिकांश लोगों की सर्वाधिक रुचि अपने परिवार और गिरजाघर के चारों ओर चलने वाली ज़िन्दगी में रहती है। कस्बे में कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट, और यहूदी मतों के लगभग बारह भिन्न गिरजाघर हैं। घर और गिरजा, अधिकांश लोगों के लिए यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्थाएं हैं।

विदेशों से आने वाले जो लोग हमारे छोटे अमरीकी कस्बों में जाते हैं, वे यह सोच सकते हैं कि मेरे सह नागरिकों में से कुछ का दृष्टिकोण संकुचित है यह सच है कि हम बहुधा स्वयं अपनी समस्याओं में इतना फँस जाते हैं, कि हम में से कुछ लोग दुनिया की समस्याओं के बारे में पर्याप्त विचार नहीं करते। लेकिन यह स्थिति तेज़ी से बदल रही है। जिस उलझी हुई और परस्पर सम्बद्ध दुनिया में हम लोग इस समय रह रहे हैं, उसकी चुनौती के प्रति अमरीका के अन्य स्थानों की भांति एसेक्स के लोग

भी जागरूक हो रहे हैं। वे उन समस्याओं के ज्यादा अच्छे उत्तर प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, जो हम सभी की समस्याएँ हैं, जैसे यहाँ आप लोग कर रहे हैं।

जब भी मैं हिन्दुस्तान से घर वापस गया हूँ, मुझे आधा दर्जन निमंत्रण मिले हैं कि मैं हिन्दुस्तान के बारे में बोलूँ—हिन्दुस्तान के लोग किस तरह सोचते हैं, आप किस तरह के लोग हैं, कैसे रहते हैं, यानी आपके बारे में सभी कुछ। अब हर सप्ताह हर प्रकार के ऐसे विषयों पर सभाएँ होती हैं, जिनमें दस या पन्द्रह वर्ष पहले भी लोगों में रुचि ही नहीं थी।

अगर आप मुझसे पूछें कि एसेक्स में मेरे सह-नागरिक दुनिया में सबसे अधिक क्या चाहते हैं, तो मैं कहूँगा विश्व-शांति—एक ऐसे भविष्य की ओर देखने का अवसर जो घृणा और कटुता से मुक्त हो, उस संघर्ष से मुक्त हो, जिसे अपने जीवनकाल में हमने इतना अधिक देखा है।

अगर आप रविवार को एसेक्स के हमारे गिरजाघरों में जाएँ तो आप धर्मोपदेशों में बार-बार सभी जातियों और धर्मों के लोगों के बीच शांति और सद्भावना की अपील सुनेंगे। आप लोगों को सिर झुकाकर विश्वशांति के लिए प्रार्थना करते सुनेंगे।

मेरे ये पड़ोसी तर्क-बुद्धि में विश्वास करने वाले लोग हैं, और सोचते हैं कि शांति की समस्या केवल इतनी ही है कि सभी लोग तर्क-बुद्धि से काम करें। एक अर्थ में उनका सोचना ठीक है। अगर सभी लोग तर्क-बुद्धि से और समझदारी से काम लें, अगर सभी लोग दूसरों के दृष्टिकोण को समझने की कुछ अधिक चेष्टा करें, अगर एक देश को दूसरे से काटने वाले लौह-आवरण न हों, तो शांति की उपलब्धि कुछ ज्यादा आसान हो जाय।

अगर आप मेरे पड़ोसियों को मेरी तरह जानते, तो आप देखते कि उनमें बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनमें किसी के विरुद्ध सचमुच कोई कटुता है। आप उन्हें बहुत कुछ वही बातें सोचते और कहते पाएँगे, जो यहाँ हिन्दुस्तान में आप लोग सोचते और कहते हैं। सबसे अधिक उन्हें यह आशा है कि विश्व में सच्ची सद्भावना के मार्ग में जो बाधाएँ हैं, उन्हें दूर करने का कोई उपाय निकलेगा।

मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान से बहुतेरे लोग अमरीका आकर मेरे कस्बे की तरह सामान्य कस्बों को देख सकेंगे और एसेक्स में मेरे पड़ोसियों की तरह सामान्य लोगों से बातचीत कर सकेंगे।

मैं यह भी आशा करता हूँ की अमरीकी लोग और अधिक संख्या में हिन्दुस्तान आकर हिन्दुस्तान की जिन्दगी को—पारिवारिक जीवन को, मोहल्लों और गाँवों की जिन्दगी को—देख सकेंगे, और इस तरह हिन्दुस्तान के लोगों को, दुनिया को आप जो कुछ सिखा सकते हैं, उसे ज्यादा अच्छी तरह समझेंगे, जैसे मैंने आपको जाना है।

चौदह

नीग्रो लोग गांधी से क्या सीख सकते हैं

मॉण्टगोमरी, अलाबामा में, 1957 के अन्त में, मार्टिन लूथर किंग ने बसों के एक असाधारण बहिष्कार का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया, जो महात्मा गांधी के सिविल नाफरमानी के सिद्धान्तों पर आधारित था। 1 मार्च, 1958 के सैटरडे इवनिंग पोस्ट में प्रकाशित इस लेख में श्री बौल्स महात्मा गांधी की कार्यप्रणाली का, और अमरीका की जातीय समस्या के सन्दर्भ में उसकी उपयोगिता का संक्षिप्त विवेचन करते हैं।

नीग्रो उपदेशक ने अपने गिरजा-क्षेत्र के लोगों से कहा, "आइए, हम फिर से अभ्यास करें। मैं एक गोरा आदमी हूँ, और मैं आपका अपमान करता हूँ, आपको धक्का देता हूँ। संभवतः आपको मार भी देता हूँ। आप क्या करेंगे ?"

उनका उत्तर तैयार था — "मैं शान्त रहूँगा। मैं हटूँगा नहीं। मैं मुड़कर मारूँगा नहीं। मैं दूसरा गाल भी सामने कर दूँगा।"

1956 में दिसम्बर की एक शाम थी। एक वर्ष तक पैदल काम पर जाकर और सामान्य भंडारों से संगठित की गई सैकड़ों मोटरों में सवारी करके, मॉण्टगोमरी, अलाबामा के 42,000 नीग्रो नागरिकों ने बिना भेदभाव के बसों में सवारी करने के अपने संवैधानिक अधिकार को मनवा लिया था।

अगले काम के दिन से बसों में नए नियम लागू होने वाले थे। अब वे अपने गिरजाघरों में बैठने के स्थानों को बसों की सीटें मान कर धीरज के साथ अभ्यास कर रहे थे कि मानवीय सम्बन्धों की इस सर्वाधिक विस्फोटक समस्या में अपने ईसाई सिद्धान्तों पर किस प्रकार आचरण करें।

उनके पादरी ने उन्हें सलाह दी, "याद रखिए अहंकार मत कीजिए। गोरे मुसाफिरों पर रोब मत दिखाइए। धैर्य और आदर दिखाइए। आप उनके साथ वही व्यवहार करें, जो आप चाहते हैं कि वे आपके साथ करें।"

उनके बाद के सप्ताहों में गोरे कट्टर-पंथियों ने गोलियाँ चलाईं, बम फेंके, और नीग्रो लोगों व उनके नेताओं का बुरी तरह अपमान किया और धमकियाँ दीं। लेकिन वे बिना अहंकार या कटुता के अपनी जगह पर दृढ़ और सौम्य खड़े रहे।

जब आखिरकार उनकी जीत हुई, तो बहुतेरे गोरे नागरिकों को जो बसों में भेद-भाव की समाप्ति का प्रतिरोध संगठित करने में सक्रिय रहे थे मजबूरन कहना पड़ा, "नीग्रो लोगों ने अभी जो कुछ किया है, उसकी क्षमता उनमें थी इसे हम नहीं जानते थे। हमने कभी नहीं सोचा था कि हम उनका आदर करने लगेंगे लेकिन ऐसा हो गया है।"

पहाड़ी पर (ईसा के) उपदेश का यह आधुनिक व्यावहारिक प्रदर्शन कैसे सम्भव हुआ ? किन पद्धतियों ने इसे संभव बनाया ?

माण्टगोमरी के कार्यक्रम की गहरी आध्यात्मिक जड़ें, न केवल ईसाइयत में, वरन् एशिया के प्राचीन धर्मों में भी थी। सत्ताइस वर्षीय नीग्रो पादरी, मार्टिन लूथर, किंग जो कार्यक्रम की सफलता के लिए अन्य किसी भी व्यक्ति से ज्यादा जिम्मेदार थे साफतौर पर कहते हैं कि उन्होंने अपनी पद्धतियाँ सीधे गांधी जी से ली हैं, जिन्होंने करोड़ों हिन्दुस्तानियों को आजादी दिलाने के लिए प्रतिभाशाली नीति से उनका प्रयोग किया था।

स्वयं गांधीजी को रूसी लेखक टॉलस्टाय के अतिरिक्त, अमरीका के थोरो से प्रेरणा मिली थी जिन्हें भगोड़े नीग्रो लोगों से सम्बन्धित कानून का 'शांतिपूर्ण विरोध' करने के कारण मैसाचुसेट्स में कारावास का दण्ड मिला था। थोरो के निबन्ध 'सिविल डिसओबीडिएन्स' (सिविल नाफरमानी) से ही गांधी जी ने यह शब्द लिया था जिसका प्रयोग उनके कार्यक्रम का वर्णन करने के लिए आमतौर पर किया जाता है।

अपने को कठोर-प्रकृति समझने वाले बहुतेरे अमरीकी, मॉण्टगोमरी की घटनाओं को एक विशेष स्थिति कहकर टाल दे सकते हैं, और इस सुझाव की हँसी उड़ा सकते हैं कि इन पद्धतियों से सचमुच उन विस्फोटक जातीय विरोधों को कम किया जा सकता है, जिनमें बहुतेरी अमरीकी बस्तियाँ बुरी तरह फँसी हुई हैं। लेकिन एक बात निश्चित है—गांधी जी की अंतिम सफलता के पहले उनके समकालीन लोग इस सम्बन्ध में जितने शंकालु थे, इन अमरीकियों की सशयालुता उससे अधिक नहीं है।

गांधी जी के संघर्ष की शुरुआत, और मॉण्टगोमरी के बहिष्कार के बीच कई महत्त्वपूर्ण समानताएं है। माण्टगोमरी का आन्दोलन एक घटना से आरम्भ हुआ, जो विकसित होकर एक धर्मयुद्ध बन गया।

एक शांत-स्वभाव नीग्रो दर्जिन, श्रीमती रोज़ा पार्क्स को कई अवसरों पर बस में अपनी जगह गोरे लोगों को देनी पड़ी थी। लेकिन एक दिन, किसी ऐसे कारण से प्रेरित होकर, जिसे वह स्वयं भी पूरी तरह नहीं समझती, उन्होंने अचानक अपनी जगह से न हटने का निर्णय किया। जब बस के चालक ने पुलिस बुलाने की धमकी दी, तो उन्होंने उत्तर दिया, "तो आप उन्हें बुला लीजिए।"

श्रीमती पार्क्स को गिरफ्तार कर लिया गया। नीग्रो धार्मिक नेताओं ने एक दिन के लिए बसों के नगर-व्यापी बहिष्कार की अपील की। जब गोरे कट्टर पंथियों की तीव्र प्रतिक्रिया हुई, तो विरोध-प्रदर्शन बढ़ा, यहाँ तक कि पूरे नगर की बस व्यवस्था, और मॉण्टगोमरी का लगभग हर नीग्रो परिवार इससे प्रभावित हो गया।

गांधी जी का आन्दोलन, जिसने अन्ततः भारत को विदेशी शासन से मुक्त किया,

बहुत कुछ इसी प्रकार आरम्भ हुआ था उनके साथ, आन्दोलन को आरम्भ करने वाली चिंगारी 1893 मे, दूरस्थ, जातिभेद से ग्रस्त दक्षिण अफ्रीका मे एक रेलगाडी में पैदा हुई थी।

गाधी उस समय तेइस वर्ष के एक युवा वकील थे, और एक मुकद्दमे में एक भारतीय नागरिक की ओर से दक्षिण अफ्रीका गए थे। दक्षिण अफ्रीका में पहली रेल यात्रा करते हुए रात के समय उन्हें आदेश दिया गया कि वे गोरे लोगों के लिए आरक्षित डिब्बे को छोड़ दें। जब उन्होंने इन्कार किया, तो अगले स्टेशन पर उन्हें उतार दिया गया।

उनका बडा कोट और सामान रेलगाड़ी मे ही रह गया, जो तेजी के साथ दृष्टि से ओझल हो गई। सुबह की ठंड मे कांपते हुए, उन्होंने अपने-आप से यह निर्णायक प्रश्न पूछा, "क्या मैं यहाँ दक्षिण अफ्रीका मे रहकर अपने और अन्य तिरस्कृत लोगों के अधिकारों के लिए लड़ूँ, या हार मानकर हिन्दुस्तान वापस चला जाऊँ?"

उन्होंने लिखा है, "मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि हिन्दुस्तान वापस चले जाना कायरता होगी।" उन्होंने तय किया कि, "सही काम को किसी भी मूल्य पर करने की हिम्मत करना ही सबसे श्रेष्ठ नियम है।"

बाद मे जब वे प्रीटोरिया के लिए घोड़ागाडी पर रवाना हुए, तो उन्हे 'सैमी' कहकर बुलाया गया, बाहर एक गदे बोरे पर बैठने को कहा गया, और एक भारी-भरकम गोरे ने उन्हें पीटा। प्रीटोरिया पहुँचने पर होटलो ने उन्हें कमरा देने मे इन्कार कर दिया। आखिरकार एक अमरीकी नीग्रो ने उनकी सहायता की और किसी प्रकार उनके ठहरने का प्रबन्ध किया।

अगले दिन गांधी जी ने प्रीटोरिया के भारतीयो को एक सभा में बुलाया, जहां उन्होंने सुझाव दिया कि वे साहस करें, और अपने साथ होने वाले भेदभाव के विरुद्ध लड़ें, और यह लड़ाई नए रचनात्मक तरीको से चलाई जाय।

गाधी जी ने कहा कि सच्चे पडोसियों का समाज हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अत: हमारा तरीका हिंसा का न होकर समझाने-बुझाने का होना चाहिए। भारतीय अल्पसंख्यक समुदाय को घृणा का परित्याग करना होगा। गोरों के अन्यायपूर्ण, भेद-भाव करने वाले कानूनों का विरोध करते हुए भी, उन्हें अपने गोरे पड़ोसियो का, अपने जैसे मनुष्यो के रूप में आदर करना होगा।

उन्हें अविचल रहकर, और बिना उलट कर हाथ उठाए, या किसी का अपमान किए, चोटें सहने और जेल जाने के लिए अपने को तैयार करना होगा। उन्हें न केवल शब्दों से, बल्कि अपने जीवन के द्वारा दूसरो को समझाना होगा। अपने शब्दों को उन्हें जीवन में उतारना होगा।

उन्होंने कहा, "हम पहले इस पर विचार करें कि हमारे विरुद्ध गोरे लोगों को क्या शिकायतें हैं। हम देखें कि हमारे साथ भेदभाव करने के पक्ष में गोरे लोग जो कारण या तर्क देते हैं, क्या वे उचित हैं।"

उन्हें सुनने के लिए आये हुए भारतीय व्यापारियों में से कई ऐसे थे जो अपनी चालाकी और चतुर सौदागरी के लिए विख्यात थे। गांधी जी ने कहा कि वे कठोरता के साथ सचाई पर चलें, और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी की नई चेतना प्रदर्शित करें।

उन्होंने आगे कहा, "हम अपनी सारी कठिनाइयों के लिए गोरों को दोष नहीं दे सकते न हम अपने-आप सारी गरीबी को ही दूर कर सकते हैं, जिसमें हमारे लोग फंसे हुए हैं। लेकिन हम अपने घरों की सफाई करना, अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ाना, और गरीबों के बच्चों के लिए मुफ्त स्कूलों की व्यवस्था करना आरम्भ कर सकते हैं।"

प्रयोगों और गलतियों से होकर, गांधीजी ने राजनीतिक कार्यवाही का एक नया कार्यक्रम निकाला, जिसके नाटकीय नए रूप थे। केवल कानून के माध्यम से काम करने के बजाए—पार्लियामेण्ट (संसद्) से प्रतिबन्धात्मक कानूनों को खतम करने की अपीलें और अदालतों या चुनावों में विजय प्राप्त करने की चेष्टाएँ—गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों को सिखाया कि वे भेदभाव वाले कानूनों के लिए शांतिपूर्ण प्रतिरोध के साथ समाज की रचनात्मक सेवा का मेल कैसे बिठाएँ।

उन्होंने हजारों भारतीयों के एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन का नेतृत्व किया, जो राज्य के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जानबूझ कर भेदभाव वाले कानूनों को तोड़ता गया। सैकड़ों पुलिस की मार से गिर गए, और हजारों जेल गए।

अन्त में प्रधान मंत्री स्मट्स ने निश्चय किया कि गांधी जी के साथ उचित समझौता करने के अलावा और कोई व्यावहारिक उपाय नहीं था। उन्होंने कहा, "बीस हजार हिन्दुस्तानियों को जेल में नहीं रखा जा सकता।"

× × ×

स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपनी शक्तियों, और अहिंसात्मक कार्यवाही की अपनी पद्धतियों का उपयोग करने के लिए, 1915 में गांधीजी हिन्दुस्तान वापस लौट आए। अफ्रीका की भाँति हिन्दुस्तान में भी उनका कार्यक्रम अंग्रेजी प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष करने तक सीमित न रहकर बहुत आगे तक गया। उनका लक्ष्य एक ऐसे हिन्दुस्तान का निर्माण करना था, जो अपना शासन स्वयं कर सके। अतः उन्होंने जितना समय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने में लगाया, उतना ही गाँवों में रचनात्मक कार्य के लिए अपने देशवासियों को प्रशिक्षित करने में।

भारतीय विकास के उनके तेरह-सूत्री कार्यक्रम में हिन्दुओं के अन्दर छुआछूत का अन्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता और भाईचारे की स्थापना, और पाँच लाख गाँवों में जहाँ अधिकांश भारतवासी रहते थे, खेती, भोजन, शिक्षा, और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करना शामिल था।

अपनी राजनीतिक प्रतिभा के द्वारा गांधीजी ने ऐसे प्रश्नों को चुनकर नाटकीय रूप दिया, जिन्हें लोग समझते थे। 1930 में उनके नमक मार्च ने स्वतन्त्रता की सारी लड़ाई को भारतीय ग्रामीणों की एक सीधी-सी माँग पर केन्द्रित कर दिया—घरेलू

नमक बनाने पर प्रतिबन्ध की, और नमक पर घृणित अंग्रेजी कर की समाप्ति ।

जब गांधीजी ने घोषणा की कि दो सौ मील पैदल चल कर अरब सागर के तट पर जाएँगे, और सबसे बड़े मानवी साम्राज्य की अवज्ञा करके, ईश्वर के बनाए समुद्र से नमक बनाएँगे तो हिन्दुस्तान में बिजली दौड़ गई। जहां-जहां से चल कर वह गुजरे, लाखों किसान उनकी जयजयकार करते सड़कों के किनारे एकत्रित हो गए।

5 अप्रैल की रात को वे समुद्र के किनारे पहुँचे । उन्होंने कहा, "ईश्वरेच्छा हुई, तो कल सुबह साढ़े छह बजे हम सिविल नाफरमानी शुरू करेंगे।" सूर्योदय के समय उन्होने अपनी सामान्य प्रार्थना सभा की ओर नियत समय पर समुद्र तट से नमक की पहली मुट्ठी उठाने के लिए पहुँचे।

जब यह खबर सारे देश में फैली, तो बड़ी तीव्र उत्तेजना उत्पन्न हुई जो दूर-से-दूर गाँव में भी पहुँची । नेहरू और लगभग एक लाख अन्य व्यक्ति गिरफ़्तार कर लिए गए।

तब गांधीजी ने घोषणा की कि वे नजदीक के सरकारी नमक भंडार पर एक अहिंसात्मक प्रदर्शन का नेतृत्व करेंगे । उन्हें भी तत्काल गिरफ़्तार कर लिया गया, लेकिन 2,500 भारतीयों ने प्रदर्शन किया, जिन्होंने पुलिस के खिलाफ आवाज या हाथ न उठाने की शपथ ले रखी थी ।

यद्यपि सैंकड़ों व्यक्ति (पुलिस की मार से) गिरा दिये गए, किन्तु कोई प्रतिहिंसा नहीं हुई । जब गांधीजी ने जेल में सुना कि उत्तर-पूर्वी सीमाप्रान्त के जबर्दस्त पठान मुसलमानों ने भी अपना आत्मानुशासन क़ायम रखा, तो उन्हें बड़ी खुशी हुई । हर जगह हिन्दुस्तानी अपना सिर कुछ ऊँचा करके खड़े होने लगे, और पहली बार यह अनुभव करने लगे कि व्यक्तियों के रूप में उनके कुछ अधिकार हैं, जिम्मेदारियाँ हैं, और एक भविष्य है ।

तीस वर्ष तक गांधीजी ने प्रतिभापूर्ण राजनीतिक समय-ज्ञान के साथ और अप्रतिम विजय में दृढ़ विश्वास के साथ, एक स्वतन्त्र और सामाजिक चेतना युक्त भारत का निर्माण करने के लिए शांतिपूर्ण राजनीतिक कार्यवाही की अपनी क्रांतिकारी नई पद्धतियों का प्रयोग किया ।

स्वतंत्रता आखिरकार 15 अगस्त, 1947 को प्राप्त हुई । एक उपनिवेश-विरोधी क्रांति की कैसी विचित्र और शानदार परिणति थी । चालीस करोड़ लोगों ने अपना शासन स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया था । चमत्कार यह था कि उन्होंने यह विजय बिना किसी रक्तपात और घृणा के प्राप्त की थी । चूंकि अंग्रेजों ने बड़े अच्छे ढंग से हार मान ली, इसलिए ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत समानता और पारस्परिक आदर के एक नए सम्बन्ध की नींव पड़ी ।

हिन्दुस्तान में, या माण्टगोमरी, अलाबामा में भी, गांधीवादी दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रभावकारिता से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता ।

लेकिन क्या यह लिटिल रॉक, शिकागो, लेविट टाउन, और न्यू आर्लियन्स में भी काम कर सकता है ? तीन सौ वर्षों तक, बहुत कुछ अनजाने में ही, ईसाई

उन्हें सुनने के लिए आये हुए भारतीय व्यापारियों में से कई ऐसे थे जो अपनी चालाकी और चतुर सौदागरी के लिए विख्यात थे। गांधी जी ने कहा कि वे कठोरता के साथ सचाई पर चलें, और समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी की नई चेतना प्रदर्शित करें।

उन्होंने आगे कहा, "हम अपनी सारी कठिनाइयों के लिए गोरों को दोष नहीं दे सकते न हम अपने-आप सारी गरीबी को ही दूर कर सकते हैं, जिसमें हमारे लोग फँसे हुए हैं। लेकिन हम अपने घरों की सफाई करना, अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ाना, और गरीबों के बच्चों के लिए मुफ्त स्कूलों की व्यवस्था करना आरम्भ कर सकते हैं।"

प्रयोगों और गलतियों से होकर, गांधीजी ने राजनीतिक कार्यवाही का एक नया कार्यक्रम निकाला, जिसके नाटकीय नए रूप थे। केवल कानून के माध्यम से काम करने के बजाए—पार्लियामेण्ट (संसद्) से प्रतिबन्धात्मक कानूनों को खत्म करने की अपीलें और अदालतों या चुनावों में विजय प्राप्त करने की चेष्टाएँ—गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों को सिखाया कि वे भेदभाव वाले कानूनों के लिए शांतिपूर्ण प्रतिरोध के साथ समाज की रचनात्मक सेवा का मेल कैसे बिठाएँ।

उन्होंने हज़ारों भारतीयों के एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन का नेतृत्व किया, जो राज्य के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जानबूझ कर भेदभाव वाले कानूनों को तोड़ता गया। सैकड़ों पुलिस की मार से गिर गए, और हज़ारों जेल गए।

अन्त में प्रधान मंत्री स्मट्स ने निश्चय किया कि गांधी जी के साथ उचित समझौता करने के अलावा और कोई व्यावहारिक उपाय नहीं था। उन्होंने कहा, "बीस हज़ार हिन्दुस्तानियों को जेल में नहीं रखा जा सकता।"

× × ×

स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपनी शक्तियों, और अहिंसात्मक कार्यवाही की अपनी पद्धतियों का उपयोग करने के लिए, 1915 में गांधीजी हिन्दुस्तान वापस लौट आए। अफ्रीका की भाँति हिन्दुस्तान में भी उनका कार्यक्रम अंग्रेज़ी प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष करने तक सीमित न रहकर बहुत आगे तक गया। उनका लक्ष्य एक ऐसे हिन्दुस्तान का निर्माण करना था, जो अपना शासन स्वयं कर सके। अतः उन्होंने जितना समय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने में लगाया, उतना ही गाँवों में रचनात्मक कार्य के लिए अपने देशवासियों को प्रशिक्षित करने में।

भारतीय विकास के उनके तेरह-सूत्री कार्यक्रम में हिन्दुओं के अन्दर छुआछूत का अन्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता और भाईचारे की स्थापना, और पाँच लाख गाँवों में जहाँ अधिकांश भारतवासी रहते थे, खेती, भोजन, शिक्षा, और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करना शामिल था।

अपनी राजनीतिक प्रतिभा के द्वारा गांधीजी ने ऐसे प्रश्नों को चुनकर नाटकीय रूप दिया, जिन्हें लोग समझते थे। 1930 में उनके नमक मार्च ने स्वतन्त्रता की सारी लड़ाई को भारतीय ग्रामीणों की एक सीधी-सी माँग पर केन्द्रित कर दिया—घरेलू

नमक बनाने पर प्रतिबन्ध की, और नमक पर घृणित अंग्रेजी कर की समाप्ति।

जब गांधीजी ने घोषणा की कि दो सौ मील पैदल चल कर अरब सागर के तट पर जाएँगे, और सबसे बड़े मानवी साम्राज्य की अवज्ञा करके, ईश्वर के बनाए समुद्र से नमक बनाएँगे तो हिन्दुस्तान में बिजली दौड़ गई। जहाँ-जहाँ से चल कर वह गुजरे, लाखों किसान उनकी जयजयकार करते सड़कों के किनारे एकत्रित हो गए।

5 अप्रैल की रात को वे समुद्र के किनारे पहुँचे। उन्होंने कहा, "ईश्वरेच्छा हुई, तो कल सुबह साढ़े छह बजे हम सिविल नाफ़रमानी शुरू करेंगे।" सूर्योदय के समय उन्होंने अपनी सामान्य प्रार्थना सभा की और नियत समय पर समुद्र तट से नमक की पहली मुट्ठी उठाने के लिए पहुँचे।

जब यह खबर सारे देश में फैली, तो बड़ी तीव्र उत्तेजना उत्पन्न हुई जो दूर-से-दूर गाँव में भी पहुँची। नेहरू और लगभग एक लाख अन्य व्यक्ति गिरफ़्तार कर लिए गए।

तब गांधीजी ने घोषणा की कि वे नजदीक के सरकारी नमक भंडार पर एक अहिंसात्मक प्रदर्शन का नेतृत्व करेंगे। उन्हें भी तत्काल गिरफ़्तार कर लिया गया, लेकिन 2,500 भारतीयों ने प्रदर्शन किया, जिन्होंने पुलिस के खिलाफ़ आवाज या हाथ न उठाने की शपथ ले रखी थी।

यद्यपि सैकड़ों व्यक्ति (पुलिस की मार से) गिरा दिये गए, किन्तु कोई प्रतिहिंसा नहीं हुई। जब गांधीजी ने जेल में सुना कि उत्तर-पूर्वी सीमाप्रान्त के जबर्दस्त पठान मुसलमानों ने भी अपना आत्मानुशासन क़ायम रखा, तो उन्हें बड़ी खुशी हुई। हर जगह हिन्दुस्तानी अपना सिर कुछ ऊँचा करके खड़े होने लगे, और पहली बार यह अनुभव करने लगे कि व्यक्तियों के रूप में उनके कुछ अधिकार हैं, जिम्मेदारियाँ हैं, और एक भविष्य है।

तीस वर्ष तक गांधीजी ने प्रतिभापूर्ण राजनीतिक समय-ज्ञान के साथ और अंतिम विजय में दृढ़ विश्वास के साथ, एक स्वतंत्र और सामाजिक चेतना युक्त भारत का निर्माण करने के लिए शांतिपूर्ण राजनीतिक कार्यवाही की अपनी क्रांतिकारी नई पद्धतियों का प्रयोग किया।

स्वतंत्रता आखिरकार 15 अगस्त, 1947 को प्राप्त हुई। एक उपनिवेश-विरोधी क्रांति की कैसी विचित्र और शानदार परिणति थी। चालीस करोड़ लोगों ने अपना शासन स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। चमत्कार यह था कि उन्होंने यह विजय बिना किसी रक्तपात और घृणा के प्राप्त की थी। चूंकि अंग्रेजों ने बड़े अच्छे ढंग से हार मान ली, इसलिए ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत समानता और पारस्परिक आदर के एक नए सम्बन्ध की नींव पड़ी।

हिन्दुस्तान में, या माण्टगोमरी, अलाबामा में भी, गांधीवादी दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रभावकारिता से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता।

लेकिन क्या यह लिटिल रॉक, शिकागो, लेविट टाउन, और न्यू ऑर्लियन्स में भी काम कर सकता है? तीन सौ वर्षों तक, बहुत कुछ अनजाने में ही, ईसाई

उन्हें सुनने के लिए आये हुए भारतीय व्यापारियों में से कई ऐसे थे जो अपनी चालाकी और चतुर सौदागरी के लिए विख्यात थे। गांधी जी ने कहा कि वे कठोरता के साथ सचाई पर चलें, और समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी की नई चेतना प्रदर्शित करें।

उन्होंने आगे कहा, "हम अपनी सारी कठिनाइयों के लिए गोरों को दोष नहीं दे सकते न हम अपने-आप सारी गरीबी को ही दूर कर सकते हैं, जिसमें हमारे लोग फँसे हुए हैं। लेकिन हम अपने घरों की सफाई करना, अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ाना, और गरीबों के बच्चों के लिए मुफ्त स्कूलों की व्यवस्था करना आरम्भ कर सकते हैं।"

प्रयोगों और गलतियों से होकर, गांधीजी ने राजनीतिक कार्यवाही का एक नया कार्यक्रम निकाला, जिसके नाटकीय नए रूप थे। केवल कानून के माध्यम से काम करने के बजाए—पार्लिमेण्ट (संसद्) से प्रतिबन्धात्मक कानूनों को खतम करने की अपीलें और अदालतों या चुनावों में विजय प्राप्त करने की चेष्टाएँ—गांधीजी ने हिंदुस्तानियों को सिखाया कि वे भेदभाव वाले कानूनों के लिए शांतिपूर्ण प्रतिरोध के साथ समाज की रचनात्मक सेवा का मेल कैसे बिठाएँ।

उन्होंने हज़ारों भारतीयों के एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन का नेतृत्व किया, जो राज्य के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जानबूझ कर भेदभाव वाले कानूनों को तोड़ता गया। सैकड़ों पुलिस की मार से गिर गए, और हज़ारों जेल गए।

अन्त में प्रधान मंत्री स्मट्स ने निश्चय किया कि गांधी जी के साथ उचित समझौता करने के अलावा और कोई व्यावहारिक उपाय नहीं था। उन्होंने कहा, "बीस हज़ार हिन्दुस्तानियों को जेल में नहीं रखा जा सकता।"

× × ×

स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपनी शक्तियों, और अहिंसात्मक कार्यवाही की अपनी पद्धतियों का उपयोग करने के लिए, 1915 में गांधीजी हिन्दुस्तान वापस लौट आए। अफ्रीका की भाँति हिन्दुस्तान में भी उनका कार्यक्रम अंग्रेज़ी प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष करने तक सीमित न रहकर बहुत आगे तक गया। उनका लक्ष्य एक ऐसे हिंदुस्तान का निर्माण करना था, जो अपना शासन स्वयं कर सके। अतः उन्होंने जितना समय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने में लगाया, उतना ही गाँवों में रचनात्मक कार्य के लिए अपने देशवासियों को प्रशिक्षित करने में।

भारतीय विकास के उनके तेरह-सूत्री कार्यक्रम में हिन्दुओं के अन्दर अछूतोद्धार का यत्न, हिन्दू-मुस्लिम एकता और भाईचारे की स्थापना, और सात लाख गाँवों में जहाँ अधिकांश भारतवासी रहते थे, खेती, भोजन, शिक्षा, और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करना शामिल था।

अपनी राजनीतिक प्रतिभा के द्वारा गांधीजी ने ऐसे प्रश्नों को चुनकर नाटकीय रूप दिया, जिन्हें लोग समझते थे। 1930 में उनके नमक मार्च ने स्वतन्त्रता की सारी लड़ाई को भारतीय [illegible] की एक सीधी-सी माँग पर केंद्रित कर दिया—परंतु

नमक बनाने पर प्रतिबन्ध की, और नमक पर घृणित अंग्रेजी कर की समाप्ति ।

जब गांधीजी ने घोषणा की कि दो सौ मील पैदल चल कर अरब सागर के तट पर जाएँगे, और सबसे बड़े मानवी साम्राज्य की अवज्ञा करके, ईश्वर के बनाए समुद्र से नमक बनाएँगे तो हिन्दुस्तान में बिजली दौड़ गई । जहाँ-जहाँ से चल कर वह गुजरे, लाखों किसान उनकी जयजयकार करते सड़कों के किनारे एकत्रित हो गए ।

5 अप्रैल की रात को वे समुद्र के किनारे पहुँचे । उन्होंने कहा, "ईश्वरेच्छा हुई, तो कल सुबह साढ़े छह बजे हम सिविल नाफरमानी शुरू करेंगे ।" सूर्योदय के समय उन्होंने अपनी सामान्य प्रार्थना सभा की और नियत समय पर समुद्र तट से नमक की पहली मुट्ठी उठाने के लिए पहुँचे।

जब यह खबर सारे देश मे फैली, तो बड़ी तीव्र उत्तेजना उत्पन्न हुई जो दूर-से-दूर गाँव मे भी पहुँची । नेहरू और लगभग एक लाख अन्य व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए।

तब गांधीजी ने घोषणा की कि वे नजदीक के सरकारी नमक भंडार पर एक अहिंसात्मक प्रदर्शन का नेतृत्व करेंगे । उन्हें भी तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन 2,500 भारतीयो ने प्रदर्शन किया, जिन्होंने पुलिस के खिलाफ आवाज या हाथ न उठाने की शपथ ले रखी थी ।

यद्यपि सैकड़ों व्यक्ति (पुलिस की मार से) गिरा दिये गए, किन्तु कोई प्रतिहिंसा नही हुई । जब गांधीजी ने जेल में सुना कि उत्तर-पूर्वी सीमाप्रान्त के जबर्दस्त पठान मुसलमानों ने भी अपना आत्मानुशासन कायम रखा, तो उन्हे बड़ी खुशी हुई । हर जगह हिन्दुस्तानी अपना सिर कुछ ऊँचा करके खड़े होने लगे, और पहली बार यह अनुभव करने लगे कि व्यक्तियो के रूप में उनके कुछ अधिकार हैं, जिम्मेदारियाँ हैं, और एक भविष्य है ।

तीस वर्ष तक गांधीजी ने प्रतिभापूर्ण राजनीतिक समय-ज्ञान के साथ और अंतिम विजय मे दृढ़ विश्वास के साथ, एक स्वतन्त्र और सामाजिक चेतना युक्त भारत का निर्माण करने के लिए शांतिपूर्ण राजनीतिक कार्यवाही की अपनी क्रांतिकारी नई पद्धतियों का प्रयोग किया ।

स्वतंत्रता आखिरकार 15 अगस्त, 1947 को प्राप्त हुई । एक उपनिवेश-विरोधी क्रांति की कैसी विचित्र और शानदार परिणति थी । चालीस करोड़ लोगों ने अपना शासन स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया था । चमत्कार यह था कि उन्होंने यह विजय बिना किसी रक्तपात और घृणा के प्राप्त की थी । चूंकि अंग्रेजो ने बड़े अच्छे ढंग से हार मान ली, इसलिए ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत समानता और पारस्परिक आदर के एक नए सम्बन्ध की नींव पड़ी ।

हिन्दुस्तान में, या माण्टगोमरी, अलाबामा में भी, गांधीवादी दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रभावकारिता से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता ।

लेकिन क्या यह लिटिल रॉक, शिकागो, लेविट टाउन, और न्यू आर्लियन्स में भी काम कर सकता है ? तीन सौ वर्षों तक, बहुत कुछ अनजाने में ही ईसाई

सिद्धान्तो के विरुद्ध चलते रहने के फलस्वरूप जो जातीय पूर्वाग्रह और भय संचित हो गए हैं, क्या यह उनसे अमरीकियो को—उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, हर दिशा में—मुक्ति दिला सकता है ?

अन्याय से लडने के गाधीजी के तरीके की सफलता की मुख्य शर्तें ये थी, कि यह सघर्ष ऐसी कानूनी व्यवस्था के अन्तर्गत हुआ, जिसका प्रशासन लोकतांत्रिक सिद्धान्तों मे विश्वास प्रकट करने वालों के हाथ में था, और जिसमें बड़ी हद तक समाचार पत्रो और बोली की आजादी थी।

इसके अतिरिक्त, एक प्रशिक्षित वकील के रूप मे, गांधीजी हमेशा कानून की महत्ता का आदर करते रहे। उन्होने कहा कि कानून बनाने और लागू करने के राज्य के अधिकार को स्वीकार किया जाय, और इसके साथ ही, जब तक लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का उल्लघन करने वाले क़ानून बदले न जाएँ, तब तक उनका विरोध करने मे अपने व्यक्तित्व और अपनी स्वतत्रता को अर्पित कर दिया जाय। उनकी अपील मनुष्य के बनाये भेदभावपूर्ण कानूनों के विरुद्ध एक उच्चतर प्राकृतिक नियम से, नैतिक नियम से थी।

ठीक यही तरीका था, जिससे मॉण्टगोमरी के सुसंगठित नीग्रो नागरिक, प्रतिभाशाली नेतृत्व के अन्तर्गत, नगर की बसों में भेदभाव को खतम करा सके। रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग और उनके सहयोगियों के नेतृत्व और प्रेरणा के फलस्वरूप, वे अपनी जन-सभाएँ "उन लोगो के लिए जो हमारा विरोध करते हैं" प्रार्थनाओं से प्रारम्भ करने लगे, और उन्होंने नियमित शपथ ली कि वे 'केवल प्रेम और अहिंसा के हथियारो' का उपयोग करेंगे। उन्होने कहा कि वे 'ईश्वर के साथ चल रहे' थे। अपने आन्दोलन का नाम उन्होने 'मॉण्टगोमरी सुधार सघ' रखा।

गांधीजी की भाँति, डा० किंग ने भी इस बात पर जोर दिया कि वे और उनके सहयोगी रंगीन लोगों की ही नही, गोरे लोगो की भी प्रगति के लिए काम कर रहे थे।

डा० किंग ने कहा, "गोरे लोगो द्वारा भेदभाव के पक्ष मे दिये गए तर्कों को हम परीक्षा करें। हम देखें कि क्या उनमे ऐसी भी स्थितियाँ परिलक्षित होती हैं, जिनके बारे में हम कुछ कर सकते हैं, और स्वयम कार्यवाही करें।"

और तब डा० किंग ने सफाई के साथ नीग्रो लोगों में अवैध बच्चों की सख्या, अपराधो की सख्या, साधनों के परे जाकर मोटरो की खरीद, और स्वास्थ्य के नीचे स्तरों को गिनाया। और गुलामी, भेदभाव, और बलात् दूसरे दर्जे की नागरिकता के इन परिणामों को मिटाने के लिए मॉण्टगोमरी सुधार संघ दिन-रात काम करता है।

मॉण्टगोमरी नगर और कल्याण विभाग के रजिस्टरों मे अभी भी परिवर्तन दिखाई पडने लगा है—नीग्रो लोगो मे शराबखोरी, बाल अपराध, और तलाक़ घटे हैं।

जब भेदभाव के अहिंसात्मक विरोध और समाज-सेवा का यह मिला-जुला कार्यक्रम मॉण्टगोमरी के बाहर फैलेगा, तो मार्ग के दुर्गम होने की सभावना है। गाधीजी ने स्वयं यह प्रदर्शित किया कि सभी मनुष्यों की समान प्रतिष्ठा के ईसाई लक्ष्य की

प्राप्ति का कोई आसान, अनायास मार्ग नहीं है।

दूसरा गाल सामने करके हिन्दुस्तानियों ने पहले तो अंग्रेज़ों के गुस्से को और भी भड़काया। नेहरू ने एक बार कहा कि जब वे अपनी रक्षा के लिए बिना एक उँगली भी उठाए चुपचाप खड़े थे, उस समय अपनी लोहे जड़ी लाठियों से उन्हें पीटने वाले सिपाहियों की आँखों में जैसी घृणा देखी थी, उससे अधिक घृणा अन्य किसी में नहीं देखी। अपनी अन्तरात्मा की ऐसी कठोर परीक्षा किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

लेकिन महत्त्व अंतिम परिणाम का था। जब हिन्दुस्तानियों ने शांतिपूर्ण प्रतिरोध की अपनी क्षमता प्रमाणित कर दी, अन्तत. अंग्रेज भी उनका आदर करने लगे। इतनी ही महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे स्वयं अपना आदर करने लगे। नेहरू ने कहा, "हम अपना भय त्याग कर मनुष्यों की तरह चलने लगे।"

यहाँ अमरीका में राष्ट्र-व्यापी स्तर पर ऐसे किसी कार्यक्रम की संभावनाओं के बारे में फ़ैसला करना कठिन है। गांधीजी न केवल एक गंभीर, निष्ठावान, और साहसी आध्यात्मिक नेता थे, वरन् उनकी राजनीतिक प्रतिभा भी असाधारण थी। अमरीका में, दबाव पड़ने पर ऐसा ही विश्वास और कौशल प्राप्त करने की नीग्रो नेताओं की योग्यता पर बहुत-कुछ निर्भर होगा। इससे भी अधिक निर्भर होगा उनके अनुयायियों की संख्या, साहस और निष्ठा पर।

केवल एक ही बात निश्चित है—अगर हमें अमरीका में जातीय मेलजोल प्राप्त करना है, तो किसी प्रकार की महान् नैतिक शक्ति का निर्माण करना होगा, जो हमारी राष्ट्रीय अन्तरात्मा को जगाए।

जल्दी या देर से, दक्षिण के साथ-साथ उत्तर, पूर्व और पश्चिम से भी एकमात्र संभव ईसाई उत्तर प्राप्त होगा, क्योंकि ईसा यह दिखाने आये थे कि ईश्वर सबका पिता है, और सभी मनुष्य भाई हैं, और ईसा की दृष्टि में यहूदी और ईसाई, यूनानी और बर्बर, काले और गोरे में कोई भेद नहीं है।

सिद्धान्तों के विरुद्ध चलते रहने के फलस्वरूप जो जातीय पूर्वाग्रह और भय संचित हो गए हैं, क्या यह उनसे अमरीकियों को—उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, हर दिशा में—मुक्ति दिला सकता है ?

अन्याय से लड़ने के गांधीजी के तरीके की सफलता की मुख्य शर्तें ये थी, कि यह संघर्ष ऐसी कानूनी व्यवस्था के अन्तर्गत हुआ, जिसका प्रशासन लोकतांत्रिक सिद्धान्तों में विश्वास प्रकट करने वालों के हाथ मे था, और जिसमे बड़ी हद तक समाचार पत्रों और बोली की आजादी थी।

इसके अतिरिक्त, एक प्रशिक्षित वकील के रूप मे, गांधीजी हमेशा कानून की महत्ता का आदर करते रहे। उन्होने कहा कि कानून बनाने और लागू करने के राज्य के अधिकार को स्वीकार किया जाय, और इसके साथ ही, जब तक लोकतांत्रिक सिद्धान्तो का उल्लंघन करने वाले कानून बदले न जाएँ, तब तक उनका विरोध करने में अपने व्यक्तित्व और अपनी स्वतन्त्रता को अर्पित कर दिया जाय। उनकी अपील मनुष्य के बनाये भेदभावपूर्ण कानूनो के विरुद्ध एक उच्चतर प्राकृतिक नियम से, नैतिक नियम से थी।

ठीक यही तरीका था, जिससे मॉण्टगोमरी के सुसंगठित नीग्रो नागरिक, प्रतिभाशाली नेतृत्व के अन्तर्गत, नगर की बसों में भेदभाव को खतम करा सके। रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग और उनके सहयोगियों के नेतृत्व और प्रेरणा के फलस्वरूप, वे अपनी जन-सभाएँ "उन लोगों के लिए जो हमारा विरोध करते हैं" प्रार्थनाओं से आरम्भ करने लगे, और उन्होंने नियमित शपथ ली कि वे 'केवल प्रेम और अहिंसा के हथियारों' का उपयोग करेंगे। उन्होंने कहा कि वे 'ईश्वर के साथ चल रहे' थे। अपने आन्दोलन का नाम उन्होंने 'मॉण्टगोमरी सुधार संघ' रखा।

गांधीजी की भांति, डा० किंग ने भी इस बात पर जोर दिया कि वे और उनके सहयोगी रंगीन लोगों की ही नही, गोरे लोगों की भी प्रगति के लिए काम कर रहे थे।

डा० किंग ने कहा, "गोरे लोगो द्वारा भेदभाव के पक्ष मे दिये गए तर्कों की हम परीक्षा करें। हम देखें कि क्या उनमें ऐसी भी स्थितियाँ परिलक्षित होती हैं, जिनके बारे में हम कुछ कर सकते हैं, और स्वयं कार्यवाही करें।"

और तब डा० किंग ने सफाई के साथ नीग्रो लोगों में अवैध बच्चों की संख्या, अपराधों की संख्या, साधनों के परे जाकर मोटरों की खरीद, और स्वास्थ्य के नीचे स्तरों को गिनाया। और गुलामी, भेदभाव, और बलात् दूसरे दर्जे की नागरिकता के इन परिणामों को मिटाने के लिए मॉण्टगोमरी सुधार संघ दिन-रात काम करता है।

मॉण्टगोमरी नगर और कल्याण विभाग के रजिस्टरों में अभी भी परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा है—नीग्रो लोगों में शराबखोरी, बाल अपराध, और तलाक घटे हैं।

जब भेदभाव के अहिंसात्मक विरोध और समाज-सेवा का यह मिला-जुला कार्यक्रम मॉण्टगोमरी के बाहर फैलेगा, तो मार्ग के दुर्गम होने की संभावना है। गांधीजी ने स्वयं यह प्रदर्शित किया कि सभी मनुष्यों की समान प्रतिष्ठा के ईसाई लक्ष्य की

प्राप्ति का कोई आसान, अनायास मार्ग नहीं है।

दूसरा गाल सामने करके हिन्दुस्तानियों ने पहले तो अंग्रेजों के गुस्से को और भी भड़काया। नेहरू ने एक बार कहा कि जब वे अपनी रक्षा के लिए बिना एक उँगली भी उठाए चुपचाप खड़े थे, उस समय अपनी लोहे जड़ी लाठियों से उन्हें पीटने वाले सिपाहियों की आँखों में जैसी घृणा देखी थी, उससे अधिक घृणा अन्य किसी में नहीं देखी। अपनी अन्तरात्मा की ऐसी कठोर परीक्षा किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

लेकिन महत्त्व अंतिम परिणाम का था। जब हिन्दुस्तानियों ने शांतिपूर्ण प्रतिरोध की अपनी क्षमता प्रमाणित कर दी, अन्ततः अंग्रेज भी उनका आदर करने लगे। इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वे स्वयं अपना आदर करने लगे। नेहरू ने कहा, "हम अपना भय त्याग कर मनुष्यों की तरह चलने लगे।"

यहाँ अमरीका में राष्ट्र-व्यापी स्तर पर ऐसे किसी कार्यक्रम की संभावनाओं के बारे में फैसला करना कठिन है। गांधीजी न केवल एक गंभीर, निष्ठावान, और साहसी आध्यात्मिक नेता थे, वरन् उनकी राजनीतिक प्रतिभा भी असाधारण थी। अमरीका में, दबाव पड़ने पर ऐसा ही विश्वास और कौशल प्राप्त करने की नीग्रो नेताओं की योग्यता पर बहुत-कुछ निर्भर होगा। इससे भी अधिक निर्भर होगा उनके अनुयायियों की संख्या, साहस और निष्ठा पर।

केवल एक ही बात निश्चित है—अगर हमें अमरीका में जातीय मेलजोल प्राप्त करना है, तो किसी प्रकार की महान् नैतिक शक्ति का निर्माण करना होगा, जो हमारी राष्ट्रीय अन्तरात्मा को जगाए।

जल्दी या देर से, दक्षिण के साथ-साथ उत्तर, पूर्व और पश्चिम से भी एकमात्र संभव ईसाई उत्तर प्राप्त होगा, क्योंकि ईसा यह दिखाने आये थे कि ईश्वर सबका पिता है, और सभी मनुष्य भाई हैं, और ईसा की दृष्टि में यहूदी और ईसाई, यूनानी और बर्बर, काले और गोरे में कोई भेद नहीं है।

पन्द्रह

नीग्रो अधिकार—कार्यवाही का समय अभी है

दक्षिण के साथ-साथ उत्तर की उप-नगरियों में उत्पन्न जातीय तनावों ने प्रेरणा दी कि हम अमरीका में सभी हिस्सों में इस 'नैतिक कैंसर' पर फिर से नज़र डालें। न्यूयार्क टाइम्स, 17 जनवरी, 1960, और न्यू रिपब्लिक, 6 जुलाई, 1959 से।

अमरीका में जातीय भेदभाव को खतम करने का प्रमुख कारण साम्यवाद की चुनौती नहीं है। न विदेशों में मित्र प्राप्त करना और लोगों को प्रभावित करना ही इसका मुख्य कारण है। मुख्य कारण सरल और सीधा-सा यह है कि जातीय भेद-भाव गलत है।

जातीय भेदभाव हमारे समाज में एक नैतिक कैंसर है। यह हमारी धार्मिक और लोकतान्त्रिक आस्था का जीवित, निरन्तर, और सदा-वर्त्तमान खंडन है। यह हमारी राष्ट्रीय अन्तरात्मा को निरन्तर क्षय करता है।

प्रश्न मुख्यतः शेष मानव-जाति के साथ शांतिपूर्वक रहने का नहीं है। जब तक हम अपनी राष्ट्रीय अन्तरात्मा से इस दाग को नहीं मिटा देते, तब तक हम स्वयं अपने साथ शांतिपूर्वक रहने की आशा नहीं कर सकते।

हमारे देश में जातियों के बीच जो कुछ भी होता है—चाहे लिटिल रॉक में हो या माण्टगोमरी में, लेविट टाउन में हो या शिकागो में—वह हम सब के साथ होता है, और अमरीकियों के रूप में हम सब उसमें सहभागी हैं।

कौन अमरीकी समुदाय ऐसा है—चाहे पूर्व में हो या पश्चिम में, उत्तर में हो या दक्षिण में—जो अपनी आत्म-परीक्षा करके अपने को निर्दोष कह सके?

हममें से कौन ऐसा है जो रोज़ आवास, स्कूल, और मनोरंजन के ऐसे क्षेत्रों से नहीं गुज़रता जो रंगीन लोगों के लिए निषिद्ध हैं? हममें से कौन ऐसा है जो भेदभाव की अर्थनीति में, चाहे कितने ही अनजाने में, भाग नहीं लेता?

हम इस बात को न भूलें कि अमरीकी नीग्रो अब उत्तर में रहते हैं। डेट्रॉएट में नीग्रो लोगों की संख्या न्यू आर्लियन्स की पाँच गुनी है, लॉस ऐन्जेलेस में मियामी की छः गुनी।

फिर बहुतेरे उत्तरी लोग ऐसे हैं जो आत्म-तुष्टि की भावना के साथ जातीय भेद-

भाव को केवल एक हिस्से की समस्या समझते हैं। दक्षिण में जिसे वे एकीकरण की धीमी गति समझते हैं, उसकी निंदा करते हैं, जबकि अपने चारों ओर व्याप्त भेदभाव के प्रति उदासीन या लगभग उदासीन रहते हैं।

दक्षिण के अतिरिक्त जो उन्तालीस राज्य हैं, उनमें केवल उन्नीस ने उचित रोजगार आचरण कमीशन नियुक्त किए हैं, और उनमें से भी तीन को कोई कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है।

बीस अन्य अ-दक्षिणी राज्यों में रोजगार सम्बन्धी भेदभाव के बारे में कोई क़ानूनी कार्यवाही नहीं हुई है। केवल नौ अ-दक्षिणी राज्यों ने सार्वजनिक सहायता से बने मकानों में भेदभाव के विरुद्ध कानूनी कदम उठाए हैं। तीस अन्य अ-दक्षिणी राज्यों में आवास सम्बन्धी भेदभाव के विरुद्ध कोई सरकारी कार्यवाही नहीं की गई है।

न्यू हैवेन और पिट्सबर्ग जैसे कई शहर अपने पुन. निर्माण के लिए दूरगामी कदम उठा रहे हैं, जिनमें गंदी बस्तियों की सफाई, और मानवीय पुनर्वास भी शामिल है, जो जातीय तनावों को कम करने के लिए आवश्यक है। लेकिन बहुतेरे उत्तरी नगरों मे ानूनों की कथित समान सुरक्षा के पीछे व्यवहार में व्यापक भेदभाव छिपा है— स सम्बन्धी निषिद्धियों और गरीबी के प्राकृतिक चयन द्वारा होने वाला भेदभाव। के प्रमुख नगरो मे बहुत कम ऐसे हैं जिनमे 20 प्रतिशत से अधिक नीग्रो बच्चे गोरे बच्चों के साथ पढते हों।

"उत्तर की लगभग हर अमरीकी बस्ती अगर ईमानदारी से अपने जातीय सम्बन्धो पर विचार करे तो उसे पता चलेगा कि उसका जीवन उसके घोषित आदर्शों से कितनी दूर है। और एक बार यह देख लेने पर कि हमारे अपने नगरों और राज्यों में क्या कमी है, हमारे अन्दर यह भावना कम होगी कि मैसन-डिक्सन रेखा के दक्षिण के गोरे पराकाष्ठावादियों की निन्दा करना ही काफी है। दक्षिण पर किसी बात का इतना असर नही पड़ेगा जितना इसका कि उत्तर के अति तत्पर आलोचक स्वयं ज्यादा अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करें।

हम सभी के सौभाग्य से, संविधान में कोई रंग-भेद नहीं है। चौदहवें संशोधन के अनुसार यह ज़रूर आवश्यक है कि हमारे सार्वजनिक जीवन के सभी अंगों से जातीय भेदभाव को समाप्त किया जाय। मानवी अधिकारों का सार्विक घोषणा-पत्र, जिसे दुनिया के बहुत बड़े बहुमत ने स्वीकार कर लिया है, विश्व-व्यवस्था के प्रथम सिद्धान्तों में से एक के रूप में इसकी पुष्टि करता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया है कि 'अधिकतम सुविचारित गति' के साथ जातीय अलगाव का अंत किया जाय। और नीग्रो लोग मुकदमे चलाकर इस आदेश का पालन कराएँगे। दक्षिण और अन्यत्र उठते हुए नीग्रो लोगो में ऐसे मुकदमे चलाने वालो की पर्याप्त संख्या निकल आएगी, चाहे उन्हें रोकने के लिए कितना भी दबाव क्यों न डाला जाय। चाहे जो भी दल सत्तारूढ़ हो, कानूनों का अन्तत. पालन होगा ही।

और, निस्सन्देह, कानून स्वयं एक प्रभावशाली शिक्षक है। सेना बल, राष्ट्र की राजधानी, और अन्तर्राज्य रेलगाड़ियों में भेदभाव की समाप्ति का, बहुतेरे दक्षिणियों को यह विश्वास दिलाने में बड़ा प्रभाव पड़ा कि इन क्षेत्रों में एकीकरण उचित था। कितनी और किसी भी तरह की बातचीत का ऐसा प्रभाव नहीं हो सकता था।

किन्तु इसकी आशंका प्रतीत होती है कि हम वकीलों और जजों के भरोसे बैठ जाएँ, और कहें कि अब यह केवल कानून और व्यवस्था का प्रश्न रह गया है। राष्ट्रपति आइजनहूवर के इस कथन में यही दृष्टिकोण दिखाई देता प्रतीत होता था, कि उन्होंने किसी से भी यह नहीं कहा, अपनी पत्नी से भी नहीं, कि वे सर्वोच्च न्यायालय के एकीकरण सम्बन्धी निर्णय को सही समझते हैं या ग़लत।

लेकिन केवल अदालती आदेशों से लोगों के दिल और दिमाग नहीं बदलेंगे। हमारा लक्ष्य यह नहीं है कि हम कानून की अपरिहार्य शक्ति को अनिच्छापूर्वक मजबूरी में स्वीकार करें। हमारी आशा है कि ऐतिहासिक आवश्यकता के समझे जाने से हर समुदाय से जातीय तत्वों में मेल-जोल पैदा करने के प्रयत्नों को बढ़ावा मिलेगा।

अगर स्कूलों के एकीकरण का प्रश्न, केवल कानून के पालन में विश्वास करने वालों, और उससे बचने की चेष्टा करने वालों के बीच एक कानूनी प्रश्न होता, तो 1954 में सर्वोच्च न्यायालय की कार्यवाही के पूर्व कोई प्रश्न रहा ही न होता। लेकिन इससे तो समस्या ही उलट जाती है। अदालत ने इसलिए कार्यवाही की, कि समानता की संवैधानिक सुरक्षा इस राष्ट्र के गंभीरतम राजनीतिक सिद्धान्तों से सम्बद्ध है, और इसलिए कि उसके समक्ष एक नैतिक प्रश्न था, जो हमारे अधिकार-पत्र और हमारी ईसाई सभ्यता के मर्म तक जाता था।

क़ानून को अपनी शक्ति केवल इस कारण प्राप्त नहीं होती कि वह कानून है। उसे इसलिए समर्थन प्राप्त होता है कि उसमें समाज का नैतिक उद्देश्य निहित होता है, और राजनीतिक नेताओं का, व उन सभी लोगों का जो समान अधिकारों की स्थापना चाहते हैं, केवल इतना ही काम नहीं है कि वे अदालती फैसलों का सहारा लेकर उन पर अमल कराएँ, बल्कि लोगों को यह समझाना भी है कि ये फैसले सही हैं।

अतः हमारी द्विविधा एक नैतिक और राष्ट्रीय द्विविधा है। इस परिप्रेक्ष्य में, विश्व मत की चेतना उन कामों में हमारी सहायक हो सकती है, जो हमें किसी भी सूरत में करने चाहिए। लेकिन, कम से कम तीन रूपों में, विश्व का अनुभव मेरी राय में हमारे लिए और भी अधिक सहायक हो सकता है।

प्रथम, इस प्रश्न पर अत्यधिक दोषी होने की हमारी भावना इससे कम होगी। जातीय भेदभाव के दोषी केवल हम ही अकेले नहीं हैं। यह एक सार्वभौमिक दोष है। यह दुनिया की सभी संस्कृतियों में व्याप्त है, सभी मनुष्य इससे प्रभावित हैं।

दूसरे, सर्वोच्च न्यायालय के स्कूल एकीकरण निर्णय को कार्यान्वित कराने के लिए सफलतापूर्वक लड़ने वाले नीग्रो और गोरे वकीलों के कौशल और अनथक प्रयास

को अफ्रीका और एशिया वालों ने जिस सद्भावना और प्रशंसा की दृष्टि से देखा है, वह हमारे उत्साह को बढ़ाने वाली चीज है।

तीसरे, दुनिया के अनुभव से हम यह भी सीख सकते हैं कि प्रगति की कुंजी केवल कानूनों में ही नहीं है, वरन् लोगों के दिलों में भी है। अगर हम में अपनी खामियों को स्वीकार करने की, और दूसरों से सहायता लेने की विनम्रता हो, तो हम सब लोग—नीग्रो और गोरे दोनों ही—अन्य लोगों के व्यावहारिक अनुभव से सीख सकते हैं।

हमें रचनात्मक कार्य का सबसे बड़ा अवसर हमारे अपने पड़ोस में, अपने सह-नागरिकों के साथ अपने नित्य-प्रति के सम्बन्धों में मिलता है।

अगर भेदभाव के प्रति हमारी बढ़ती हुई चिन्ता को राष्ट्रीय पैमाने पर सामुदायिक कार्यक्रमों में ढाला जा सके, तो आगामी वर्षों में आश्चर्यजनक प्रगति हो सकती है।

मैसन-डिक्सन रेखा के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर की बस्तियों के लिए एक नागरिक प्रश्नावली में नीचे लिखे प्रश्न हो सकते हैं—

पुलिस विभाग में कितने नीग्रो हैं? दमकल में? नगरपालिका में? शिक्षा व्यवस्था में?

ऐसे कामों के लिए क्या नीग्रो लोगों को पूरा अवसर मिलता है? अगर हाँ, तो क्या उन्हें केवल योग्यता और सेवाओं के आधार पर तरक्की दी जा सकती है?

सार्वजनिक और निजी दोनों ही व्यवस्थाओं में किस प्रकार के मकान नीग्रो लोगों को उपलब्ध हैं? चिकित्सा और अस्पताल की सुविधाएँ कैसी हैं।

क्या सार्वजनिक आवास और मनोरंजन की सुविधाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का भेदभाव है?

निजी उद्यम के कामों में क्या स्थिति है? क्या नीग्रो मजदूरों को ऐसे काम मिलते हैं जिनमें उनके कौशल का पूरा उपयोग हो?

कार्य सम्बन्धी, व्यावसायिक प्रशिक्षण क्या नीग्रो लोगों को पूरी तरह उपलब्ध है?

क्या पुलिस और अदालतें उनके साथ आबादी के अन्य हिस्सों के समान ही उचित व्यवहार करती हैं?

हर शहर में, मेयर और प्रमुख नागरिकों के नेतृत्व में ग़ैर सरकारी समूहों द्वारा निष्पक्ष अध्ययन से ऐसे प्रश्नों के उत्तरों के सम्बन्ध में सामुदायिक सहमति प्राप्त की जा सकती है। और ये तथ्य फिर रचनात्मक लोकतांत्रिक कार्यवाही का आधार बन सकते हैं।

गुन्नार मिर्डल द्वारा समस्या के अति उत्तम अध्ययन 'ऐन अमेरिकन डाइलेमा' (एक अमरीकी द्विविधा) में ऐसी कार्यवाही का एक महत्त्वपूर्ण संकेत मिलता है। यह संकेत इस अत्यधिक आशाजनक तथ्य में है कि गोरे लोग जिन अधिकारों को

प्रदान करने के लिए सबसे ज्यादा तैयार हैं—काम में अवसर की समानता, समान और पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा और आवास व्यवस्था, और क़ानून की दृष्टि में समानता—उन्हीं अधिकारों को प्राप्त करने के लिए नीग्रो लोग सबसे अधिक उत्सुक हैं।

हमारे पास अब भी समय है, यह स्वयं हमारे नीग्रो सह-नागरिकों में सहनशक्ति और धैर्य के असाधारण गुणों के कारण ही है। इस बात को 185 वर्ष हो गए, जब हमने स्वतंत्रता के घोषणापत्र में ऐलान किया था कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र और समान हैं। इसके नब्बे वर्ष बाद हम गुलामों को मुक्त करने में सफल हुए। यह निर्णय करने में हमें और नब्बे वर्ष लगे कि हमारे स्कूलों में नीग्रो और गोरे बच्चों का अनिवार्य अलगाव असंवैधानिक था।

आज अधिकांश अमरीकी अपने दिलों में जानते हैं कि अब सफाई देने का समय नहीं रहा, अब कार्यवाही करने का समय आ गया है। हम जानते हैं कि सभी जातियों और मतों के लोगों के लिए अवसरों की वास्तविक समानता को अब रोका नहीं जा सकता। अतः अब हम अपनी अदालतों और अपनी अन्तरात्मा द्वारा आवश्यक बताई गई कार्यवाही की ओर बढ़ें।

सोलह

नैतिक खाई

स्मिथ कालेज की स्नातकीय कक्षा के समक्ष, जिसकी एक सदस्य उनकी पुत्री भी थी, श्री बोल्स खेद प्रकट करते हैं कि उनकी पीढ़ी आधुनिक अमरीकी समाज के लिए पर्याप्त नैतिक सन्दर्भ का निर्माण नहीं कर सकी। समारम्भ भाषण, स्मिथ कालेज, 5 जून, 1960।

आप में से बहुतेरे लोग अपने माता-पिताओं की पीढ़ी के प्रति जितने सहिष्णु रहे हैं, मैं समझता हूँ कि इतिहास उससे अधिक सहिष्णु होगा। जिस प्रकार की दुनिया में हमें रहना पड़ा, और जिसकी व्यवस्था में भी हमें हाथ बँटाना पड़ा, यद्यपि हम लोग, आपके माता-पिता और मैं, उसके लिए बिलकुल भी तैयार नहीं थे, फिर भी मैं समझता हूँ कि हमने जो कुछ भी किया वह कसौटी पर काफी खरा उतरेगा।

उदाहरण के लिए, मेरी पीढ़ी ने 130 वर्ष पुरानी परम्परा को तोड़कर अलगाव की प्रवृत्ति को छोड़ दिया। उसने आर्थिक और सामाजिक विपत्ति आने पर, राष्ट्रीय एकता को नई गम्भीरता और अर्थ प्रदान करने के लिए कार्यवाही की। उसने युद्धोत्तर काल में मार्शल योजना, उत्तरी अटलांटिक संधि, चतु सूत्री कार्यक्रम, और पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम की साहसपूर्ण, रचनात्मक धारणाओं को लेकर नई दिशाओं में क़दम उठाए।

हममें से जो अधिक भीरू हैं, उनमें से बहुतेरे हमारी प्राविधिक उपलब्धियों से काफ़ी भ्रमाकित हैं। वे कहते हैं कि हमारी गायें बहुत अधिक दूध देती हैं, और हमारी मशीनें बहुत अधिक इस्पात का उत्पादन करती हैं।

निस्सन्देह, जिन प्रश्नों की ओर ध्यान देना आवश्यक था, उनमें से बहुतों के सम्बन्ध में हम पर्याप्त कार्य नहीं कर सके। दुनिया के भूखे बच्चों तक फ़ालतू दूध को पहुँचाना भी स्पष्टतः ऐसा एक कार्य था।

फिर भी, आपके माता-पिताओं, और अपनी पीढ़ी के शेष लोगों की ओर से, मैं आशा करता हूँ कि हमारे प्रति आपका निर्णय बहुत अधिक कठोर नहीं होगा। यह सच है कि हमने असमान गति से और रुक-रुक कर ऐसा किया, फिर भी हमने ऐतिहासिक कर्तव्यों को पूरा किया। मैं आशा करता हूँ कि आने वाले वर्षों में जो नए कर्तव्य हमारे सामने आएँगे, उन्हें पूरा करने की क्षमता और सकल्प भी हममें होगा।

लेकिन, यह सच्चाई और ईमानदारी से विश्लेषण करने का अवसर है। जो क्षेत्र

शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, उसमें हमारा विश्वास पिछले वर्षों में दुर्बल रहा है। नई और अपरिचित समस्याओं को निपटाने के अपने प्रयासों में, हमने उन मानव-मूल्यों के विकास की उपेक्षा की, जो हमारे अमरीकी समाज के स्वास्थ्य और शक्ति के लिए आधारभूत महत्त्व के हैं।

हमने केवल चतुराई दिखाने को, और सिद्धान्तहीन चालबाजियों को श्रेय समझा है, बल्कि अनजाने रूप से हमने उन्हें महिमामंडित किया है। अपने कुछ मर्यादित प्रशंसनीय कार्यों की व्याख्या करने के लिए, हमने सौदेबाजी और चालबाजी की शब्दावली का उपयोग किया है। ऐसा है जैसे किसी भले काम का औचित्य हम इस प्रकार सिद्ध करना चाहें कि हमारे कार्य के वास्तविक कारण उतने भले नहीं थे, जितने प्रतीत होते थे।

उदाहरण के लिए, हम कहते हैं कि अपने नीग्रो नागरिकों को प्रथम श्रेणी की नागरिकता प्रदान करने का अवसर आ गया है, इसलिए नहीं कि स्वतन्त्रता के घोषणापत्र में हमारे यह घोषित करने के बाद कि 'सभी मनुष्य जन्म से समान हैं' वे 180 वर्ष से प्रतीक्षा कर रहे हैं, बल्कि इसलिए कि एशिया और अफ्रीका में रहने वाला मनुष्य-जाति का रंगीन बहुमत अब हमें देख रहा है।

अपने कालेजों और विश्व-विद्यालयों में अति आवश्यक छात्रवृत्तियों के लिए जन समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से हम सम्बन्धित क़ानून को 'राष्ट्रीय प्रतिरक्षा शिक्षा अधिनियम कहते हैं, और उसे हमने आवश्यक करने वाली साम्यवाद-विरोधी घोषणाओं और निष्ठा की शपथों से सजा रखा है।

अपनी विदेशी सहायता को सगर्व उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने के बजाए—गरीबी, निरक्षरता, और रोग को कम करने में नए राष्ट्रों की सहायता करने का एक गंभीर प्रयास, जिससे वे स्वयं अपनी संस्कृतियों के अन्दर स्वाधीन रह सकें—हम कहते हैं कि हमारा वास्तविक उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र संघ में मित्र और समर्थन खरीदना है, या बेचैन लोगों को कठिन प्रश्न पूछने से रोकना है, या भूखे पेटों को इस सिद्धान्त-हीन मान्यता के आधार पर भरना है कि भर पेट खाने वाले विदेशी, अपने सामन्ती समाजों के अन्यायों और अत्याचारों को ज्यादा आसानी से सह लेंगे—और इस प्रकार यथास्थिति के समर्थन में हमारे साथ शामिल हो जाएँगे।

जब हम दुनिया के मामलों में गलत काम करने चलते हैं—जैसे अंग्रेजी साईकिलों या विदेशी वस्त्रों पर शुल्क बढ़ाना—तो भी हम यही कहते हैं कि हम 'राष्ट्रीय प्रति-रक्षा' के हित में काम कर रहे हैं।

इस अव्यवस्थापूर्ण नई दुनिया में अपने भय और निराशाओं के कारण, हम इस प्रकार काम करने लगे हैं कि जैसे हमारा मुख्य राष्ट्रीय उद्देश्य मनुष्य की प्रतिष्ठा के प्रति अपनी मूल अमरीकी प्रतिबद्धता को कायम रखना और बढ़ाना नहीं है, वरन् रूसी लोग जो कुछ भी करने का निर्णय करें उसका प्रतिकार करना है।

और विदेशों में जहाँ हम साम्यवादियों से अधिक चालाक होने की कोशिश करते

हैं, यहाँ देश के अन्दर हम अन्धी नकल करते है। राजनीतिज्ञ, पत्रकार, व्यापारी—यहाँ तक कि प्राध्यापक भी—अपने सर्वाधिक सिद्धान्तनिष्ठ कार्यो के लिए सर्वाधिक सिद्धान्तहीन कारण देने की प्रवृत्ति के अधिकाधिक शिकार हो रहे है।

ऐसा कहते हुए हम आत्म-तोष की भावना के साथ मुस्कराते है कि उच्च स्थानों मे भ्रष्टाचार की घटनाओं से, और राष्ट्रीय विश्वास के पदो के दुरुपयोग से यही प्रमाणित होता है कि राजनीति आखिर राजनीति है।

उत्तर के पद-लोलुप लोग दक्षिण के अपने सहयोगियों को विश्वास दिलाते हैं कि वे अपने इलाके के राजनीतिक दबावों के कारण ही नीग्रो अधिकारों के पक्ष में वोट देते है।

लडकों के ग्रीष्म-कालीन शिविरो और अस्पतालो के निर्माण के चन्दे देने वाले व्यापारी तत्काल ऐसा कह कर अपने भले उद्देश्यों पर परदा डालने लगते हैं कि इस तरह के कामो से उनके व्यापार का अच्छा प्रचार होता है, और फिर, इन रकमो पर टैक्स नही देना पडता।

इसी प्रसग मे वह बात उठती है, जो मैं मुख्य रूप से कहना चाहता हूँ—इतिहास की उस घड़ी में ही, जब विश्व के सघर्ष की वास्तविक प्रकृति सामने आ रही है, हमारे सामने मूल्यों का एक सकट उत्पन्न हो गया है। जिन नैतिक प्रतिमानो मे विश्वास करना हम पसन्द करते है, उनमे करो की चोरी और खर्चे के गलत हिसाब, झूठे विज्ञापन और नाप-तोल मे बेईमानी, मिलावटी सामान, और मनोरंजन के नाम पर हिंसा के उपयोग को सहन करने की अनैतिकता शामिल है।

हम बुद्धू न प्रतीत हो, किसी भी ओर से होने वाली आलोचना से प्रभावित होने वाले से प्रतीत हों, विवाद से बचें, और यह प्रमाणित करें कि हम यथार्थवादी हैं, यों ही किसी बात को लेकर नही उड़ चलते, इसके राष्ट्रीय प्रयास मे हमने अपने स्वीकृत विश्वासो और अपने वास्तविक नित्य-प्रति के आचरण में एक नैतिक खाई बना ली है। एक स्वतत्र समाज के रूप में जीवित रहने के हमारे प्रयास मे यह नैतिक खाई एक अधिकाधिक बढ़ता हुआ खतरा बन सकती है।

जो वास्तविक प्रश्न है, वह अधिक से अधिक यह है कि क्या बीसवी सदी के आणविक आतंक की सैनिक, प्राविधिक, और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे कोई खुला हुआ समाज अनिश्चित काल तक टिका रह सकता है।

अभी से ऐसे बहुतेरे लोग हैं, जो तनाव घटने की किसी संभावना की अपेक्षा, आणविक गतिरोध के भयकर लेकिन परिचित खतरों के बीच अपने को अधिक सुरक्षित समझते हैं। उनके लिए किसी एक दिशा मे सीधे चलना ज्यादा आसान है, चाहे उस रास्ते का अन्त स्पष्टतः सर्वनाश ही क्यों न हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों ने विलियम बटलर येट्स के वचन को फिर से सच साबित करने का निश्चय कर रखा है—"जो सबसे अच्छे हैं, उनमें विश्वास का अभाव है, जो सबसे बुरे हैं, उनमे तीव्रतम आवेग भरे हैं।" वे पेचीदगियों से, मध्यम

मार्गों से, कठिन चुनावों से, एक साव भिन्न वैकल्पिक नीतियों पर चलने की आवश्यकता से, और और आधुनिक विश्व में अनुभव, निपुणता, और धीरज की आवश्यकता से परेशान हैं।

ये ऐसे लोग हैं जिन्हें इन दिनों, जब बटन दबाने से युद्ध हो सकता है, निषेधाज्ञाओं से बाहर ही रखना अच्छा है। मशीनों और मशीनगनों द्वारा होने वाले सीमित विनाश के समय भी ये लोग काफी खतरनाक थे। आज के आणविक जगत में उनका स्पर्श प्रलयकारी हो सकता है।

अमरीका के रचनात्मक नेतृत्व के सामने अब केवल रूसियों का सामना करने की ही चुनौती नहीं है, वरन् इसकी भी है कि क्रान्तिकारी विश्व की प्रकृति को समझे, साम्यवादी समाज में काम कर रही शक्तियों को खोजे, और अन्य लोगों की आकांक्षाओं से भी सम्पर्क स्थापित करे—एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका के पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे, जो हमारी धरती को केवल अधिकाधिक बेलगाम होते हुए रूस-अमरीका संघर्ष का अखाड़ा ही नहीं समझें।

इस चुनौती का सामना करने के लिए आगे बढ़ते समय हम वुडरो विल्सन के शब्दों को याद कर सकते हैं, जिन्होंने एक बार आन्नापोलिस में एक स्नातकीय कक्षा से कहा था—

"हमारे समान धनी अन्य राष्ट्र भी हुए हैं, उतने ही शक्तिशाली राष्ट्र भी हुए हैं, उतने ही उत्साहपूर्ण राष्ट्र भी हुए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि हम इस बात को कभी नहीं भूलेंगे कि इस राष्ट्र का निर्माण हमने अपनी सेवा करने के लिए नहीं, मनुष्य-जाति की सेवा के लिए किया था।...दुनिया में अन्य किसी भी राष्ट्र का जन्म इस उद्देश्य से नहीं हुआ कि वह जितना अपने हित में कार्य करे, उतना ही शेष जगत के हित में भी।"

अमरीकी समाज के सभी स्तरों पर इस दृष्टि को फिर से प्राप्त करके, हम उस प्राचीन आस्था की शांत बुद्धिमत्ता को फिर से प्राप्त कर सकते हैं, जो युगों से बाइबिल के द्वारा हम तक पहुँची है : "हम कष्टों में आनन्दित होते हैं, यह जानते हुए कि कष्टों से धैर्य आता है, और धैर्य से अनुभव, और अनुभव से आशा।"

पुनश्च

थॉमस जेफरसन ने एक बार कहा था, "लोकतंत्र शासन का एकमात्र ऐसा रूप है जो मनुष्य के अधिकारों के विरुद्ध निरन्तर खुले या गुप्त रूप में युद्ध-रत नहीं रहता।" किन्तु लोकतंत्र के सामने कभी ऐसी गंभीर चुनौती नहीं रही, जैसी इस घड़ी है।

यह चुनौती आंशिक रूप में लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्त के खतरे के कारण है, लेकिन उससे भी अधिक यह हमारी परम्परागत दृष्टि, आदर्शों और व्यक्तिगत प्रतिबद्धता की भावना में ह्रास होने के कारण है।

मूल सिद्धान्तों पर वापस जाकर ही हम अपने सामान्य उद्देश्य को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। जिन सत्यों को हमारे 'घोषणा-पत्र' ने कभी 'स्वयं सिद्ध' कहा था, वे अब भी सभी युगों के महान् सत्यों में से हैं—"कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, कि उनके सृजनकर्त्ता ने उन्हें कुछ अहरणीय अधिकार प्रदान किए हैं, कि इनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति के प्रयास भी हैं।"

यह हमारी पीढ़ी का कर्त्तव्य है कि अपने पूर्वजों की पूरी निष्ठा और उत्साह के साथ, नए विश्व सन्दर्भ में इन सार्विक सत्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करें। मैं समझता हूँ कि अन्तिम परिणाम की निजी जिम्मेदारी में हममें से हर एक का हिस्सा है।

देश और विदेश दोनों में ही हमें स्वार्थ के बजाए उदारता से, हिंसा के बजाए करुणा से, घृणा के बजाए प्रेम से काम करना सीखना होगा। अपने में, अपने भविष्य में, और अपनी सामान्य बिरादरी में अपनी दृढ़ आस्था से हमें इन्कार न करके, दृढ़ता से उसे प्रस्तुत करना होगा।

ऐसा करके ही हम उस अमरीका का निर्माण कर सकते हैं जो न केवल सामान्य प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक भौतिक शक्ति में, वरन् सभी मनुष्यों के मूल अधिकारों और उनकी प्रतिष्ठा के प्रति नैतिक प्रतिबद्धता में भी सबल हो। स्थायी शांति का यही आधार हो सकता है। मैं समझता हूँ कि परिणाम का फैसला अब होने वाला है।

वाशिंगटन, डी. सी., 17 अगस्त, 1962

मार्गों से, कठिन चुनावों से, एक साथ भिन्न वैकल्पिक नीतियों पर चलने की आवश्यकता से, और और आधुनिक विश्व में संतुलन, निपुणता, और धीरज की आवश्यकता से परेशान हैं।

ये ऐसे लोग हैं जिन्हें इन दिनों, जब बटन दबाने से युद्ध हो सकता है, नियंत्रण-कक्षों से बाहर ही रखना अच्छा है। संगीनों और मशीनगनों द्वारा होने वाले सीमित विनाश के समय भी ये लोग काफी खतरनाक थे। आज के आण्विक जगत में उनका स्पर्श प्रलयकारी हो सकता है।

अमरीका के रचनात्मक नेतृत्व के सामने अब केवल रूसियों का सामना करने की ही चुनौती नहीं है, वरन् इसकी भी है कि क्रांतिकारी विश्व की प्रकृति को समझे, साम्यवादी समाज में काम कर रही शक्तियों को खोजे, और अन्य लोगों की आकांक्षाओं से भी सम्पर्क स्थापित करे—एशिया, अफ्रीका, और लातिन अमरीका के पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे, जो हमारी धरती को केवल अधिकाधिक बेलगाम होते हुए रूस-अमरीका संघर्ष का अखाड़ा ही नहीं समझते।

इस चुनौती का सामना करने के लिए आगे बढ़ते समय हम वुडरो विल्सन के शब्दों को याद कर सकते हैं, जिन्होंने एक बार आन्नापोलिस में एक स्नातकीय कक्षा से कहा था—

"हमारे समान धनी अन्य राष्ट्र भी हुए हैं, उतने ही शक्तिशाली राष्ट्र भी हुए हैं, उतने ही उत्साहपूर्ण राष्ट्र भी हुए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि हम इस बात को कभी नहीं भूलेंगे कि इस राष्ट्र का निर्माण हमने अपनी सेवा करने के लिए नहीं, मनुष्य-जाति की सेवा के लिए किया था।...दुनिया में अन्य किसी भी राष्ट्र का जन्म इस उद्देश्य से नहीं हुआ कि वह जितना अपने हित में कार्य करे, उतना ही शेष जगत के हित में भी।"

अमरीकी समाज के सभी स्तरों पर इस दृष्टि को फिर से प्राप्त करके, हम उस प्राचीन आस्था की शांत बुद्धिमत्ता को फिर से प्राप्त कर सकते हैं, जो युगों से बाइबिल के द्वारा हम तक पहुँची है : "हम कष्टों में आनन्दित होते हैं, यह जानते हुए कि कष्टों से धैर्य आता है, और धैर्य से अनुभव, और अनुभव से आशा।"

पुनश्च

थॉमस जेफरसन ने एक बार कहा था, "लोकतंत्र शासन का एकमात्र ऐसा रूप है जो मनुष्य के अधिकारों के विरुद्ध निरन्तर खुले या गुप्त रूप में युद्ध-रत नहीं रहता।" किन्तु लोकतंत्र के सामने कभी ऐसी गंभीर चुनौती नही रही, जैसी इस घड़ी है।

यह चुनौती आंशिक रूप में लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्त के खतरे के कारण है, लेकिन उससे भी अधिक यह हमारी परम्परागत दृष्टि, आदर्शों और व्यक्तिगत प्रतिबद्धता की भावना में ह्रास होने के कारण है।

मूल सिद्धान्तों पर वापस जाकर ही हम अपने सामान्य उद्देश्य को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। जिन सत्यों को हमारे 'घोषणा-पत्र' ने कभी 'स्वयं सिद्ध' कहा था, वे अब भी सभी युगों के महान् सत्यो मे से हैं—"कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, कि उनके सृजनकर्त्ता ने उन्हे कुछ अहरणीय अधिकार प्रदान किए हैं, कि इनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति के प्रयास भी हैं।"

यह हमारी पीढ़ी का कर्त्तव्य है कि अपने पूर्वजों की पूरी निष्ठा और उत्साह के साथ, नए विश्व सन्दर्भ मे इन सार्विक सत्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करें। मैं समझता हूँ कि अन्तिम परिणाम की निजी जिम्मेदारी मे हममे से हर एक का हिस्सा है।

देश और विदेश दोनो में ही हमें स्वार्थ के बजाए उदारता से, हिंसा के बजाए करुणा से, घृणा के बजाए प्रेम से काम करना सीखना होगा। अपने में, अपने भविष्य में, और अपनी सामान्य बिरादरी में अपनी दृढ आस्था से हमें इन्कार न करके, दृढ़ता से उसे प्रस्तुत करना होगा।

ऐसा करके ही हम उस अमरीका का निर्माण कर सकते हैं जो न केवल सामान्य प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक भौतिक शक्ति मे, वरन् सभी मनुष्यों के मूल अधिकारों और उनकी प्रतिष्ठा के प्रति नैतिक प्रतिबद्धता में भी सबल हो। स्थायी शांति का यही आधार हो सकता है। मैं समझता हूँ कि परिणाम का फैसला अब होने वाला है।

वाशिंगटन, डी. सी., 17 अगस्त, 1962